अथ सुश्रुतसंहितानिदानस्थान-
विषयाऽनुक्रमणिका।

इति सुश्रुतसंहितानिदानस्थानविष-
याऽनुक्रमणिका समाप्ता ।

॥ श्रीः ॥

अथ सुश्रुतसंहिताशारीरस्थान-
विषयाऽनुक्रमणिका ।

इति सुश्रुतसंहिताशारीरस्थान
विषयानुक्रमणिका समाप्ता।

इति

सुश्रुतसहिता निदानस्थान–शारीरस्थान

विषयानुक्रमणिका

समाप्त ।

॥ श्रीः ॥

अथ सुश्रुतसंहिता ।

सान्वयभाषाटीकासहिता ।

निदानस्थानम् २.

प्रथमोऽध्यायः १

अथातो वातव्याधिनिदानं * व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे (सूत्रस्थानके) अगाडी (निदानस्थानमें) (प्रथम) वातव्याधियोंके निदानका व्याख्यान करतेहैं ॥

धन्वन्तरिं धर्मभृतां वरिष्ठममृतोद्भवम् ॥ चरणावुपसंगृह्य सुश्रुतः परिपृच्छति १ ॥ वायोः प्रकृतिभूतस्य व्यापन्नस्य च कोपनैः ॥ स्थानं कर्म च रोगांश्च वद मे वदतांवर ॥ २ ॥

धार्मिकोंमें श्रेष्ठ अमृतके साथ उत्पन्न हुए ऐसे धन्वन्तरि भगवान्के दोनों चरण पकडकर महर्षि सुश्रुत पूँछते भये ॥ १ ॥ हे [illegible] श्रेष्ठ भगवन् ! प्रकृतिभूत (स्वाभाविक) वायुका तथा कोपन पदार्थों करके कोपको प्राप्त हुए वायुका स्थान, कर्म और गुण (विस्तारपूर्वक) मेरे प्रति वर्णन करो ॥ २ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्राब्रवीद्भिषजांवरः ॥ स्वयंभूरेष भगवान् वायुरित्यभिशब्दितः ॥ ३ ॥ स्वातन्त्र्यान्नित्यभावाच्च सर्वगत्वात्त-

* [illegible] ॥ ([illegible]) [illegible] ॥ ([illegible] २) [illegible] "[illegible]" [illegible] " [illegible] " [illegible] ॥

थैव च ॥ सर्वेषामेव सर्वात्मा सर्वलोकनमस्कृत ॥४॥ स्थित्युत्पत्तिविनाशेषु भूतानामेष कारणम् ॥ अव्यक्तो व्यक्तकर्मा च रूक्ष· शीतो लघु· खर ॥ ५ ॥ तिर्यग्गो द्विगुणश्चैव रजोबहुल एव च ॥ अचिंत्यवीर्यो दोषाणा नेता रोगसमूहराट्॥६॥आशुकारी मुहुश्चारी पक्वाधानगुदालय ॥ देहे विचरतस्तस्य लक्षणानि निबोध मे ॥७॥

इस प्रकार सुश्रुतके वचन सुनकरके वैद्योमें श्रेष्ठ श्रीधन्वतरिजी बोलते भये कि यह वायु स्वयभू है (परमाणुरूप है) और भगवान् (ऐश्वर्यवान्) है ऐसे कहा जाता है ॥ ३ ॥ यह वायु स्वतत्रता होनेसे और नित्यभाव (नित्यता) होनेसे और सर्वत्र गमनशक्ति होनेसे सब जगत्के जीवोंका सर्वात्मा है और सब लोकोंकरके नमस्कार किया हुआ है ॥४॥ प्राणियोंकी उत्पत्ति और स्थिति तथा विनाशका यह वायुही कारण है स्वय वायु अव्यक्त (अप्रकट) है और प्रकट कर्मोका करनेवाला है, रूक्ष है, शीतल है, हलका है, खरखरा है ॥ ५ ॥ तिर्यग्गामी (तिरछा चलनेवाला) है, दो गुणवाला (शब्द और स्पर्श गुणवाला) है और (गुणत्रयात्मक होकर) रजोगुणप्रधान है और अचित्य पराक्रमवाला है और सर्व दोषों (कफ, पित्त, रक्तादि) का प्रेरण करनेवाला है और रोगोंके समूहका राजा है ॥६॥ शीघ्र प्रभाव करनेवाला है और वारवार विचरनेवाला है विशेष करके पक्वाशय और गुदामें वास करता है (यह प्रकृतिस्थ वायुके गुण स्थानादि कहे हैं) सम्पूर्ण देहमें विचरनेवाले इस वायुके लक्षण (विस्तारपूर्वक) मेरेसे श्रवण करो ॥ ७ ॥

शुद्ध वायुके कर्म।

दोषधात्वग्निसमता सप्राप्तिं विषयेषु च ॥
क्रियाणामानुलोम्य च करोत्यकुपितोऽनिल ॥ ८ ॥

बिना कुपित हुआ अर्थात् शुद्ध निर्विकार वायु सब दोष, धातु और जठराग्निकी समानता करता है (अर्थात् क्षय, वृद्धि किसीको नहीं होने देता जिससे शरीर स्वस्थ और प्रसन्न रहता है)तथा सब विषयोंमें ठीक २ सप्राप्ति होती है और सपूर्ण क्रियाओंमें सप्राप्ति (करणशक्ति, उत्साह और प्रीति) होती है तथा अनुलोमता (मल, मूत्र स्वेदादिकोंकी ठीक २ प्रवृत्ति) होती है ॥ ८ ॥

यथाग्नि पञ्चधा भिन्नो नामस्थानात्मकर्मभि ॥ भिन्नोऽनिलस्तथा ह्येको नामस्थानक्रियामये ॥ ९ ॥ प्राणोदानौ समानश्च

(श्लो० ५) स्वतनुत्वात्स्वतन्त्रत्वादिवरूपा वहिसे भवतुना भवाव (चरक) ॥
(श्लो० ९) यथा पाचकरंजकसाधकालोचकभ्राजकभेदेन पंचधा तिस विमद्य तथ वायुरपि ॥

व्यानश्चापान एव च ॥ स्थानस्था मारुताः पंच यापयन्ति शरीरिणम् ॥ १० ॥

जैसे नाम और स्थान तथा कर्मोंकरके अग्नि (पित्त) पांच प्रकारसे विभक्त हुआ है उसी भांति एक वायु भी नाम, स्थान, क्रिया और रोगोंकरके पांच प्रकारसे विभक्त है ॥ ९ ॥ प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान ऐसे पांच प्रकारका पांच स्थानोंमें स्थित हुआ वायु जीवोंके शरीरोंको धारण करताहै ॥ १० ॥

प्राणवायु ।

वायुर्यो वक्त्रसञ्चारी स प्राणो नाम देहधृक् ॥ सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते॥ प्रायशः कुरुते दुष्टो हिक्काश्वासादिकान्गदान् ॥ ११ ॥

जो वायु मुखद्वारा बाहर और भीतर गमन करता है वह प्राणनामक वायु देहका धारण करनेवाला है और वही प्राणवायु अन्नको भीतर प्रवेश करता है और वही प्राणोंको अवलम्बन करता है यहां प्राण शब्दसे जीव, बल, ओज तथा अग्नि आदिका ग्रहण करना चाहिये । और यदि यह प्राणवायु दुष्ट हो (बिगड जाय) तो हिचकी, श्वास आदि रोग उत्पन्न करता है ॥ ११ ॥

उदानवायु ।

उदानो नाम यस्तूर्द्ध्वमुपैति पवनोत्तमः ॥ तेन भाषितगीतादिविशेषोऽभिप्रवर्त्तते ॥ ऊर्द्ध्वजत्रुगतान्रोगान्करोति च विशेषतः ॥ १२ ॥

जो पवनोंमें श्रेष्ठ ऊपरको गमन करता है वह उदाननामक वायु है उस करके मनुष्य संभाषण तथा गीतादिकके विषयमें प्रवृत्त होता है और यही दुष्ट हो तो ऊर्द्ध्वजत्रुगत रोग, नयन, घ्राण, कर्ण और शिरके रोग विशेष करके करता है "च" शब्दसे काम स्वरभेदादिभी करता है ॥ १२ ॥

(श्लो० ११) वायुर्यो वक्त्रसञ्चारी इत्यत्र वक्त्रसंचारस्योपलक्षणत्वेन मूर्द्धोरःकण्ठनासिका [illegible] स्थानमिति मतम् । यदुक्तम् [illegible]—प्राणो मूर्द्धन्यवस्थितः कण्ठोरश्चरो बुद्धीन्द्रियहृदयमनोधमनीधारण[illegible]श्वासोच्छ्वासान्नप्रवेशादिक्रिय इति। केचिदिदमाहुः—प्राणस्य स्थानं हृदयमेवेति। केचित्प्राणस्य स्थानं नाभिरिति वदन्ति यथा नाभिस्थः प्राणपवन इति शार्ङ्गधरः। [illegible] इति [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] प्राणानामभि[illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ (श्लो० १२) [illegible] [illegible]। उदानस्य स्थानं [illegible]—"[illegible] [illegible] [illegible]" ॥ (श्लो० २०) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]।

समानवायु ।

आमपक्वाशयचरः समानो वह्निसंगतः ॥ सोऽन्नं पचति तज्जांश्च विशेषान्विविनक्ति हि ॥ गुल्माग्निसंगातीसारप्रभृतीन्कुरुते गदान् ॥ १३ ॥

आमाशय और पक्वाशयमें विचरनेवाला अथवा आमके पाकका जो आशय उसमें विचरनेवाला अर्थात् पक्वाशयमें रहनेवाला समाननामक वायु जठराग्निका सहायक है वही अन्नको पचाता है और वही (दुष्ट हो तो) जठराग्निजन्य रोगोंको विशेष करके उत्पन्न करताहै तथा गुल्म और अग्निसंग (मंदाग्नि) अतिसार आदि रोगोको करताहै । यहां " तज्जान् विविनक्ति " के कई यह अर्थ करतेहैं कि अन्नपरिपाकजन्य जो कार्यविशेष है उनका विवेचन करताहै अर्थात् रस, दोष, मूत्र, पुरीष आदिको पृथक २ करताहै ॥ १३ ॥

व्यानवायु ।

कृत्स्नदेहचरो व्यानो रससंवहनोद्यतः ॥ स्वेदासृक्स्रावणो वापि पञ्चधा चेष्टयत्यपि ॥ क्रुद्धश्च कुरुते रोगान् प्रायशः सर्वदेहगान् ॥ १४ ॥

समस्त शरीरमें विचरनेवाला और रसादिकके प्रेरणका उद्यम करनेवाला ऐसा व्याननामक वायु है वही पसीना और रुधिरादिका निकालनेवाला है तथा वही पांच प्रकारके प्रसारण (पसारना) आकुंचन (सिकोडना) विनमन (नीचाकरना) उन्नमन (ऊंचा करना) तिर्यग्गमन (तिरछाकरना) ये शरीरके कर्म करवाताहै और वही क्रुद्ध होजावे तब प्राय सर्व शरीरवर्ती रोगों (ज्वर, वात, रक्त, कुष्ठादि) को उत्पन्न करताहै ॥ १४ ॥

अपानवायु ।

पक्वाधानालयोऽपानः काले कर्षति चाप्ययम् ॥ समीरणः शकृन्मूत्र

(श्लो० १३) आमपक्वाशयचर इति आमस्य पक्वम् आमपक्व तदाशय पच्यमानाहाराशय इत्यर्थ । तत्र चरतीति (डल्हन) । वह्निसंगत अग्निसहायवानिति अग्निसंधुक्षण इत्यर्थ । तज्जान् अन्नपाकजान् रसदोषमूत्रपुरीषाणि विविनक्ति पृथक् करोति । तस्य स्थानम् । नाभीरिति कश्चित् । वाग्भटस्तु इत्याह—समानो ऽन्तरग्निसमीपस्थस्तत्संधुक्षणः पक्वामाशयदोषमलशुक्रार्तवाम्बुवहः स्रोतोविचारी तदवलंबनात् धारयत्यन्न विवेचनीपिट्टाचेनयन्नश्च ॥

(श्लो० १४) रससंवहनोद्यत रसादिप्रेरणोद्यत । कृत्स्नदेहचर सर्वशरीरग । पंचधा चेष्टयति प्रसारणाकुंचनविनमनोन्नमनतिर्यग्गमनानि पंच चेष्टा । अन्ये तु गतिप्रसारणाकुंचनोत्क्षेपणावक्षेपणानि पंच चेष्टाप्रकारा । सर्वदेहगान् ज्वरकुष्ठादीन् । वाग्भटस्तु इत्याह—व्यानो हृदि स्थित कृत्स्न- गतिप्रसारणाकुंचनोत्क्षेपावक्षेपनिमेषोन्मेषणाद्याः प्रायः सर्वा क्रियास्तस्मिन् प्रतिबद्धाः (अ०) ॥

.... पंचधा [illegible] ॥

शुक्रगर्भार्त्तवान्यधः ॥ क्रुद्धस्तु कुरुते रोगान्घोरान्वस्तिगुदाश्रयान् ॥१५॥ शुक्रदोषप्रमेहास्तु व्यानापानप्रकोपजा ॥ युगपत्कुपिता- श्चापि देहं भिंद्युरसंशयम् ॥१६॥

अपाननामक वायु पक्वाशयमे रहताहै और यही वायु समयके ऊपर विष्ठा, मूत्र, वीर्य और स्त्रियोंके गर्भ तथा आर्तवको नीचेको आकर्षण करताहै अर्थात् बाहर निकालताहै और यदि यह कुपित होजाय तो वस्तिस्थानके रोग पथरी आदि तथा गुदाके रोग भगंदर आदि घोर २ रोग उत्पन्न करताहै ॥ १५ ॥ वीर्यके विकार और प्रमेह ये व्यान और अपान दोनोंके कोपसे होतेहै और यदि सब एक समय कुपित होजायँ तो निःसंदेह शरीरका नाश कर देते है ॥ १६ ॥

अतऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि नानास्थानांतराश्रित ॥बहुशः कुपितोवायुर्विका- रान्कुरुते हि यान् ॥ १७ ॥ वायुरामाशये क्रुद्धश्छर्द्यादीन्कुरुते गदान् ॥ मोहं मूर्च्छां पिपासां च हृद्ग्रहं पार्श्ववेदनाम् ॥ १८॥

अब यहांसे अगाडी नाना स्थानोंमे आश्रित हुआ कुपित वायु बहुधा जिन जिन विकारोंको करता है मै उनका वर्णन करता हू॥ १७॥ आमाशयमे कुपित हुआ वायु छर्दि आदिक रोगोको करताहै तथा मोह (चित्तकी अस्थिरता), मूर्च्छा, पिपासा (तृषा), हृदयका स्तंभित होना और पार्श्ववेदना (पसलीका दरद) इत्यादि व्याधियोंको उत्पन्न करता है ॥ १८ ॥

पक्वाशयस्थोऽन्त्रकूजं शूलं नाभौ करोति च ॥ कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्वमा- नाहं त्रिकवेदनाम् ॥ १९ ॥ श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधं कुर्य्यात्क्रुद्ध- समीरणः ॥ वैवर्ण्यं स्फुरणं रौक्ष्यं सुप्तिं चुमचुमायनम् ॥ २० ॥ त्वक्स्थो निस्तोदनं कुर्यात्त्वग्भेदं परिपोटनम् ॥ व्रणाश्रं रक्तगो ग्रंथीन् सशूलान्मांससंश्रितः ॥ २१ ॥ तथा मेदःश्रित कुर्य्या- द्ग्रंथीन्मंदरुजो व्रणान् ॥ कुर्य्याच्छिरागतः शूलं शिराकुंचनपू- रणम् ॥ २२ ॥

(श्लो० १५) पक्वाधानाच्च पक्वाशयस्थानम्। नाभ्यधस्तु इत्यादि—[illegible] (इति वृद्धवाग्भट)। [illegible] ॥(श्लो० २०) [illegible] ॥

पक्वाशयमे यदि वायु कुपित हुआ हो तो अन्त्रकूजन (आंतोका गुलगुलाना अर्थात पेटमें गुडगुड आदि शब्द होना) और नाभिमें दरद तथा मल और मूत्रकी प्रवृत्तिमें कष्ट (या अवरोध) तथा अफारा और त्रिकस्थानमें पीडा करता है ॥ ॥ १९ ॥ कर्ण आदि इन्द्रियोंमे क्रुद्ध हुआ वायु उस इन्द्रियको नष्ट करता है और वर्ण बिगाड़ देता है तथा फरकाव पैदा करता है तथा रूक्षता, सुप्ति (शून्यता) और झुमझुमाट उत्पन्न करता है ॥ २० ॥ त्वचामे कुपित हुआ वायु त्वचामें पीडा करता है तथा त्वचाका भेदन ओर परिपोटन (त्वचाका परिपुटन) करता है ओर रुधिरमे कुपित हुआ वायु व्रण (फोडे फुसी) आदि करता है और मांसमे कुपित हुआ वायु शूलसहित गांठ पैदा करता है ॥ २१ ॥ मेदमे स्थित हुआ कुपित वायु मन्द वेदनावाली व्रणरहित गांठे पैदा करता है तथा शिरा (शरीरके रगों) में प्राप्त हुआ वायु शूल और रगका सुकडजाना अथवा रगका फूलजाना ऐसी व्याधि उत्पन्न करदेता है ॥ २२ ॥

स्नायुप्राप्तः स्तंभकंपौ शूलमाक्षेपणं तथा॥हन्ति सन्धिगतः सन्धीञ्शूलशोफौ करोति च ॥ २३ ॥ अस्थिशोषं च भेदं च कुर्य्याच्छूलं च तत्स्थितः ॥ तथा मज्जगते रुक् च न कदाचित्प्रशाम्यति ॥ २४ ॥ अप्रवृत्तिः प्रवृत्तिर्वा विकृतिः शुक्रगेऽनिले ॥ हस्तपादशिरोधातूंस्तथा सञ्चरति क्रमात् ॥ २५ ॥ व्याप्नुयाद्वाखिलं देहं वायुः सर्वगतो नृणाम् ॥ स्तंभनाक्षेपणस्वापशोफशूलानि सर्वगः ॥ २६ ॥

स्नायु (नसों) मे प्राप्त हुआ वायु स्तंभ (नसका अकडजाना) तथा कांपना और शूल ओर आक्षेप (चलायमान होना) इत्यादि रोग करता है और सन्धियोंमे प्राप्त हुआ वायु सन्धियोंको मार देता है तथा सन्धियोंमें शूल और सूजन पैदा करता है ॥ २३ ॥ अस्थियोंमें प्राप्त हुआ वायु हाडोंको सुखा देता है हडफूटनसी करता है तथा हाडोंमे शूल (चीस) पैदा करता है, मज्जामें स्थित यदि कुपित वायु हो तो उसमें ऐसी पीडा हो जो कभी शांत न हो ॥२४॥ वीर्यमें प्राप्त (कुपित) वायु हो तो वीर्यकी प्रवृत्ति नहीं हो अथवा अतिप्रवृत्ति हो अथवा वीर्यमें विकार हो और

(श्लो० २३) पृथक् पूर्वोक्तश्लोकपाठे न कुर्यादिति क्रियापदेनान्वयः ॥ (श्लो० २४) धातुगत अस्थिस्थित ॥

(श्लो० २५) हस्तपादशिरोधातून् क्रमात् वायुस्तथा संचरति तथा अखिलं देहं व्याप्नुयात् तथा अखिलान् क्रमात् संचरति यथा च सर्वगतो वा भवति सर्वगतम भवतीत्यर्थः (इति डल्हण)॥

सारे शरीरमे वायु कुपित हो तब हाथो, पावो, शिर तथा रक्तादि सब धातुओंमे क्रमसे विचरता है अथवा सारे शरीरमे व्याप्त होता है और यह सब शरीरमें कुपित हुआ वायु मनुष्योंको स्तभन (शरीर जकडजाना) तथा आक्षेपण (उठ उठकर गिरजाना), शरीर सुन्न पडजाना या शरीर सूजजाना या शरीरमे दरद होना ये रोग पैदा करता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

स्थानेषूक्तेषु मिश्रश्च समिश्रा. कुरुते रुजः ॥
कुर्य्यादवयवप्राप्तो मारुतस्तंत्रभिं तान्गदान् ॥ २७ ॥

उपर्युक्त स्थानोमे यदि मिश्र (कफ पित्तादिसे मिला) वायु हो तो मिलीहुई व्याधियां उत्पन्न करता है तथा अवयवो (अग, प्रत्यग) मे प्राप्त हुआ वायु वहां वहां उस उस प्रकारकी व्याधियोंको करता है ॥ २७ ॥

दाहसंतापमूर्च्छा· स्युर्वायौ पित्तसमन्विते ॥ शैत्यशोफगुरुत्वानि तस्मिन्नेव कफावृते ॥ २८ ॥ सूचीभिरिव निस्तोद स्पर्शद्वेष· प्रसुप्तता ॥ शेषा पित्तविकारा स्युर्मारुते शोणितान्विते ॥ २९ ॥

यदि वायु पित्तसे मिला हो तो दाह, सताप और मूर्च्छा आदि रोग होतेहै और जो वायु कफ करके सयुक्त हो तो शीतता, शोथ, तथा गुरुता (भारीपन) आदि रोग होते है ॥ २८ ॥ यदि वायु रक्तसे मिश्रित हो तो सुई चुभोनेकीसी पीडा होती है और स्पर्श बुरा लगता है (अर्थात् हाथ नहीं लगाया जाता) अथवा प्रसुप्तता (शरीरका सुन्न पडजाना या सो जाना) तथा और पित्तके विकार दाह आदिभी होते है ॥ २९ ॥

प्राणे पित्तावृते छर्दिर्दाहश्चैवोपजायते ॥ दौर्बल्य सैदन तंद्रा वैवे पर्यं च कफावृते ॥३०॥ उदाने पित्तसयुक्ते मूर्च्छादाहभ्रमक्लमा ॥ अस्वेदहर्षौ मन्दाग्नि शीतस्तभो कफावृते ॥ ३१ ॥

प्राणवायु पित्तमे आच्छादित होजानेसे छर्दि तथा दाह आदि होते है और यदि प्राणवायु कफसे आच्छादित हो तो दुर्बलता तथा थकान तद्रा और विवर्णता (रूप विगडजाना) आदि होते है ॥ ३० ॥ उदानवायु पित्तमे युक्त हो तो मूर्च्छा, दाह, भ्रम तथा क्लम (थकावट) होता है और जो उदान वायु कफसे सयुक्त हो तो पसीना न आना और हर्ष न होना अथवा हर्ष (रोमहर्ष) तथा मदाग्नि और शीत तथा स्तभ (अकडाव) होता है ॥ ३१ ॥

(श्लो० २७) [illegible] ॥ (श्लो० २८) [illegible] ॥

समाने पित्तसंयुक्ते स्वेददाहौष्ण्यमूर्च्छनम्॥कफाधिकं च विण्मूत्रं रोमहर्षः कफावृते॥३२॥अपाने पित्तसंयुक्ते दाहौष्ण्यं स्यादसृग्दरम्॥ अधःकाये गुरुत्वं च तस्मिन्नेव कफावृते ॥ ३३ ॥ व्याने पित्तावृते दाहो गात्रविक्षेपणं क्लमः ॥ गुरूणि सर्वगात्राणि स्तम्भनं चास्थिपर्वणाम् ॥ लिङ्गं कफावृते व्याने चेष्टास्तम्भस्तथैव च ३४॥

जो समान वायु पित्तकरके संयुक्त हो तो पसीना अधिक आवे, दाह हो, गरमी हो और मूर्च्छन (बेहोशी) हो और यदि यही समान वायु कफयुक्त हो तो कफकी अधिकता और मलमूत्र (तथा स्त्रियोंके आर्तव) की प्रवृत्ति हो और रोमहर्ष हो ॥ ३२ ॥ अपान वायु पित्तसे संयुक्त हो तो दाह, गरमी और रक्तकी प्रवृत्ति हो (अधोमार्गसे रक्तागम हो) और जो अपान कफयुक्त हो तो नीचेके अंगोंमे भारीपना हो ॥ ३३ ॥ व्यानवायु पित्तसे युक्त हो तो दाह और अंगोंका देदेमारना और क्लम (बेचैनी) हो और यदि व्यानवायु कफयुक्त हो तो सब गात्र भारी हों और अस्थि तथा जोडोंमे अकडाव हो तथा चेष्टाओंमे रुकाव होना ये लक्षण होते है ॥ ३४॥

वातरक्त ।

प्रायशः सुकुमाराणां मिथ्याहारविहारिणाम्॥ शोकाच्च प्रमदामद्यव्यायामैश्चातिपीडनात् ॥ ३५॥ऋतुसात्म्यविपर्यासात्स्नेहादीनां च विभ्रमात् ॥ अव्यवायेे तथा स्थूले वातरक्तं प्रकुप्यति ॥३६ ॥

प्रायः विपरीत आहार,विहार करनेवाले कोमल मनुष्योंके शोकसे, अति स्त्रीसंगसे, अति मदिरा पीनेसे, अतिपरिश्रमसे तथा ऋतुविरुद्ध आहार, विहारके सेवनसे तथा स्नेहपानादि (स्नेहपान, वमन, विरेचन, बस्ति आदि) मे अनुचित व्यवहार होनेसे तथा (गृहस्थी होकर) स्त्रीसंग न करनेवाले और स्थूल शरीरवाले मनुष्योंके वायु और रुधिर (मिलकर) कुपित होजाते है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतोऽन्यैश्च वायुः कोपं यात कारणे सेविते स्वे ॥ तीक्ष्णोष्णाम्ले क्षारशाकादिभोज्ये संतापाद्यैर्भूयसा सेवितैश्च ३७ क्षिप्रं रक्तं दुष्टिमायाति तच्च वायोर्मार्गं संरुणद्ध्याशु यात ॥ क्रुद्धस्तैस्तैर्मार्गरोधात्स वायुरत्युद्रिक्तो दूषयेद्रक्तमाशु ॥३८ ॥ तत्संपृक्तं वायुना दूषितेन तत्प्राबल्यादुच्यते वातरक्तम् ॥ तद्वत्पित्तं दूषितेनासृजा च श्लेष्मा दुष्टो दूषितेनासृजा च ॥ ३९ ॥

हाथी, घोड, ऊंट आदिकी सवारीपर अधिक चलनेसे अथवा अन्य वातकारक कारणोंके सेवन करनेसे वायु कोपको प्राप्त होता हे ओर तीक्ष्ण, गरम, खट्टे, खारे, शाकादि तथा भोजनोके खानेसे और वारवार सताप आदिके सेवन करनेसे शीघ्रही रुधिर दुष्टताको प्राप्त होताहै ओर वह कुपित हुआ दुष्टरक्त शीघ्रचारी वायुके मार्गको रोक लेता है ओर फिर मार्ग रुक जानेसे अत्यत कुपित हुआ वायु अति वढे दुष्ट रक्तको और भी दूषित कर देता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ दूषित वायु करके मिला हुआ दूषित जो रक्त उसमे यदि वायुकी प्रबलता हे तो वह वाताधिक वातरक्त कहलाताहै और यदि दूषित रक्तमें पित्त कुपित होकर मिलगया हे तो पेत्तिक वातरक्त कहलाता हे और यदि उस दूषित रक्तके सग दुष्ट हुआ कफ मिला है तो वह श्लैष्मिक वातरक्त कहलाता हे ॥ ३९ ॥

वातरक्तलक्षण ।

स्पर्शोद्विग्नौ तोदभेदप्रशोषस्वापोपेतौ वातरक्तेन पादौ ॥पित्तासृग्भ्यामुग्रदाहौ भवेतामत्यर्थोष्णौ रक्तशोफौ मृदू च ॥४०॥ कण्डूमंतौ श्वेतशीतौ सशोफौ पीनस्तब्धौ श्लेष्मदुष्टे तु रक्ते ॥ सर्वदुष्टे शोणिते चापि दोषाः स्वं स्वं रूपं पादयोर्दर्शयन्ति ॥ ४१ ॥

वातिक वातरक्त हो तो दोनो पावोंमे स्पर्शसे उद्विग्न हो, दरद हो, भेद (भेदनकीसी पीडा अर्थात् कटेसे जायँ)और शुष्कता हो तथा स्वापयुक्त हों (पेर सोयेसे होजायँ) ओर यदि पैत्तिक तथा रक्ताधिक्य वातरक्त हो तो पेरोमे उग्र दाह हो और अत्यत गरम हों, रक्तता ओर सूजन हो ॥४०॥ तथा कफदुष्ट (कफाधिक वातरक्त) हो तो दोनो पेरोंमे खाज हो, श्वेत रग हो, शीतल और शोथयुक्त हो, पुष्ट और कठिन हो और यदि सब दोषोंसे दूषित रक्तवाला वातरक्त हो तो अर्थात् सन्निपातज वातरक्त हो तो पेरोंमे सबही वातादि दोष अपना अपना रूप दिखावे॥४१॥

पूर्वरूप ।

प्राग्रूपे शिथिलौ स्विन्नौ शीतलौ सविपर्ययौ ॥
वैवर्ण्यतोदसुप्तत्वगुरुत्वोपसमन्वितौ ॥ ४२ ॥

यदि दोनो पाव शिथिल हों, पसीना बहुत आवे, शीतल हो अथवा इसके विपरीत गरम रहे, पसीना नहीं आवे और विवर्णता होजाय, दर्द रहे, पेर सोये पेरोंमे बहुत भारीपन हो तथा दाह हो तो वातरक्तका पूर्वरूप जानना (अर्थात् ये लक्षण हों तो जानिये कि वातरक्तका रोग होगा) ॥ ४२ ॥

पादयोर्मूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि ॥
आखोर्विषमिव क्रुद्धं तद्देहमनुसर्पति ॥ ४३ ॥

यह वातरक्त पैरोंसे और कभी हाथोंसे आरंभ होकर विषैले मूषिकके विषके समान क्रुद्ध होकर सारे शरीरमें फैल जाता है ॥ ४३ ॥

साध्यासाध्यता ।

आजानुस्फुटितं यच्च प्रभिन्नं प्रस्रुतं च यत् ॥ उपद्रवैश्च यज्जुष्टं प्राणमांसक्षयादिभिः ॥ शोणितं तदसाध्यं स्याद्याप्यं संवत्सरोत्थितम् ॥ ४४ ॥

जानुपर्यंत जो फूट निकला हो, फटगया हो, झिरने लगा हो, बल, मांसक्षयादि उपद्रवोंसे युक्त हो वह वातरक्त असाध्य हुआ जानो और एकवर्ष पहलेका याप्य होता है ॥ ४४ ॥

आक्षेपकवायु ।

यदा तु धमनीः सर्वाः कुपितोऽभ्येति मारुतः ॥ तदा क्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं मुहुश्चरः ॥ मुहुर्मुहुस्तदाक्षेपादाक्षेपक इति स्मृतः ॥ ४५ ॥

जब कुपित हुआ वायु सब नाडियोंमें प्राप्त होता है तब शीघ्र वारवार शरीरको गिराता है और वारवार संचार करता है । वारवार आक्षेपण करनेसेही इसे आक्षेपक कहते हैं ॥ ४५ ॥

अपतानक और दंडापतानक वायु ।

सोऽपतानकसंज्ञो यः पातयत्यन्तरान्तरा ॥ ४६ ॥ कफान्वितो भृशं वायुस्तास्वेव यदि तिष्ठति ॥ स दण्डवत्स्तम्भयति कृच्छ्रो दण्डापतानकः ॥ ४७ ॥ हनुग्रहस्तदात्यर्थं सोऽन्नं कृच्छ्रान्निषेवते ॥ ४८ ॥

जो आक्षेपक नर्को २ गिरावे वह अपतानक वायु है ॥ ४ ॥ यदि नाडियोंमें कफयुक्त वायु हो तो मनुष्यको दंडकी तुल्य स्तंभित करके गिराता है इसे दंडापतानक कहते हैं यह कष्टसाध्य है ॥ ४७ ॥ अपतानकरोगमें ठोडी अत्यंत स्तंभित हो जाती है जिससे मनुष्य बड़े कष्टसे अन्न आदि खा सकता है (और कभी तो

(श्लो० ४३) वातरक्तस्योत्पत्तिः 'भवत्यधोऽत्र कण्डूः पाण्योस्तोदो विपिटिका । मूर्च्छायां मेदवत्तृष्णा-ज्वरमोहश्वयेरका ॥ हिक्कायां गुल्मशिरःश्राकतोदभ्रमश्रमाः । अंगुलीवक्रतास्तोम्भ्यादरामर्ममदार्बुदा ॥' (भा प्र)
(श्लो० ४६–४७) यः आक्षेपकोऽन्तरान्तरा पातयति सोऽपतानक इत्यर्थः । यदा तु सर्वासु धमनीषु श्लेष्मान्वितो वायुस्तिष्ठति तदा दण्डवत् स्तम्भयति स दण्डापतानकः । अपतानकस्य लक्षणानि दृष्टिस्तब्धता, संज्ञानाशः, कण्ठकूजनम्, परिदाहश्च (इति सुश्रुत) (श्लो० ४८) हनुग्रहस्तु दण्डापतानके अन्तर्भवति अतो पृथङ्नोक्तः (डल्हण)

मुख खुलाही रह जाता है और कभी मिचा रह जाताहै और कभी अधमिंचा) कई इसका यह अर्थ करतेहैं कि जो बहुतही कष्टसे अन्नादि खा सके (अर्थात् मुख खुले मूँदे नहीं ऐसी ठोडीकी नसें अकड़ जायँ) तो उसे हनुग्रह (या हनुस्तंभ) रोग कहतेहैं (सारांश यहहै कि कई तो अपतानकके अन्तर्गत इसे मानते हैं और कई पृथक् अपतानकके तीन भेद इसप्रकार मानते हैं १ दण्डापतानक, २ अंतरायाम, ३ बहिरायाम ॥ ४८) ॥

धनुस्तुल्यं नमेद्यस्तु स धनुःस्तंभसंज्ञकः ॥ अंगुलीगुल्फजठरहृद्वक्षोगलसंश्रितः ॥४९॥ स्नायुप्रतानमनिलो यदा क्षिपति वेगवान् ॥ विष्टब्धाक्षः स्तब्धहनुर्भग्नपार्श्वः कफं वमन् ॥५०॥ अभ्यंतरं धनुरिव यदा नमति मानवः ॥ तदा सोऽभ्यंतरायामं कुरुते मारुतो बली ॥५१॥

जब यह अपतानक वायु धनुषकी भाँति शरीरको नवा दे (टेढा करदेवे) तब इसे धनुस्तंभ (धनुषवायु) कहते हैं (इस धनुस्तंभके दो भेद हैं १ अंतरायाम, २ बहिरायाम) अंगुली, टकने, पेट, हृदय छाती, गल इन सब स्थानोंमें आश्रित हुआ वायु (भीतरकी) नसोंके विस्तारमें प्राप्त होकर जब वेगपूर्वक शरीरको कंपावे या गिरावे तब नेत्र स्तंभित (पथरायेसे) हो जायँ, ठोडी अकडजाय, (अर्थात् मुह खुला या मिचा रह जाय) पसलियाँ टूटने लगें मुहमें झाग आवे या कफ गिरे ॥ फिर यदि मनुष्य भीतरको (मुख नाभिकी ओर) धनुषके आकार नवे (टेढा हो) और बलवान् वायु भीतरको शरीर नवावे तो उसे अंतरायाम कहते हैं । यह अंतरायाम वायु शिरसे पैरतक भीतर (मुख, छाती, नाभि, पाँवके पंजेकी तरफ) की नसोंमें व्याप्त होनेसे होता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥

बाह्यस्नायुप्रतानस्थो बाह्यायामं करोति च ॥
तमसाध्यं बुधाः प्राहुर्वक्षःकट्यूरुभंजनम् ॥ ५२ ॥

यदि यही वायु (पिंडली, टकने, पृष्ठ, वंश और ग्रीवा) की बाहरकी ओर नसोंके विस्तारमें प्राप्त हो तो मनुष्यको बाहरकी तरफ (पीठकी तरफ) धनुषाकार नवा देता है इसे बाह्यायाम या बहिरायाम कहते हैं इसे वैद्य असाध्य कहते हैं क्योंकि इससे छाती कमर, ऊरु आदि टूट जाते हैं (यदि य भग्न नहीं हुए हो तो कुछ यत्नके योग्य होता भी है) और ऊपर लिखे नेत्र पथराना, हनुस्तंभ, पसली टूटना आदि अंतरायामके चिह्न तो प्राप्त होतेही हैं ॥ ५२ ॥

(श्लो० ५२) [illegible] ॥

कफपित्तान्वितो वायुर्वायुरेव च केवल ॥ कुर्य्यादाक्षेपकं त्वन्यं चतुर्थमभिघातजम् ॥ ५३ ॥ अभिघातनिमित्तश्च शोणितातिस्रवाच्च य. ॥ गर्भपातनिमित्तश्च न सिध्यत्यपतानक ॥ ५४ ॥

यह आक्षेपक वायु चार प्रकारका है–कफान्वित आक्षेपक, पित्तान्वित आक्षेपक, केवल वायुसे, चौथा अभिघात (चोट आदिसे) उत्पन्न (ये भेद कई तो यों कहते हैं कि कफान्वित तो दंडापतानक और पित्तान्वित अन्तरायाम तथा केवल वातिक बाह्यायाम है) (और कई उन्हे पृथक् भेद बतलाते हैं और इन्हें पृथक्) ॥ ५३ ॥ अभिघातसे उपजा अपतानक वायु तथा अधिक रक्त निकलनेसे जो हो और स्त्रियोंके गर्भपातसे हो ये अपतानक सिद्ध नहीं होते (वास्तवमें आक्षेपकादी भेद अपतानक वायु है देखो श्लोक ८६ वां डाक्टरीमे इस अपतानक (धनुर्वाए) भेदको " टिटनिस् " कहते हैं और यूनानीवाले " तमदुद " और कजाज कहते हैं) ॥ ५४ ॥

अधोगमा सतिर्यग्गा धमनीरूर्द्धदेहगा ॥ यदा प्रकुपितोत्यर्थं मातरिश्वा प्रपेद्यते ॥ ५५ ॥ तदान्यतरपक्षस्य सधिबन्धान्विमोक्षयन् ॥ हन्ति पक्ष तमाहुर्हि पक्षाघात भिषग्वरा ॥ ५६ ॥ यस्य कृत्स्न शरीरार्द्धमकर्मण्यमचेतनम् ॥ तत पतत्यसून् वापि जहात्यनिलपीडित ॥ ५७ ॥ शुद्धवातहत पक्ष कृच्छ्रसाध्यतम विदु ॥ साध्यमन्येन ससृष्ट न साध्य क्षयहेतुकम् ॥ ५८ ॥

अधोगामिनी (नीचेकी) तिर्यक (तिरछी और ऊर्द्धदेहग) ऊपरकी (आधे शरीरकी) नसोमें कुपितहुआ वायु प्राप्त होजावे तो दूसरे पक्ष (आधे शरीर) के सन्धियोंको छोडकर एकपक्ष (आधे शरीर) को मार (सुन्नकर) देता है उसे वैद्य पक्षाघात कहते हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ जिसका पूरा आधा शरीर निकम्मा (हलचल न सके) और अचेतन (स्पर्शज्ञानसे रहित) होजाय वह मनुष्य गिर जाता है (उठ बैठ नहीं सकता) अथवा प्राण त्याग देता है (अर्थात् निकम्मा शरीर होनेसे पडा रहता है) और अचेतनभी हो तो मर जाता है ॥ ५७ ॥ केवल वायु करके मारा हुआ अर्द्धशरीर कष्टसाध्य होता है और जो इसमें पित्त आदि दूसरा दोष मिला हो तो साध्य है और क्षयके कारण जो पक्षाघात हो तो असाध्य होता है ॥ ५८ ॥

(डाक्टरीमें इसे " हेमिप्लेजिया " और यूनानी इसीको "फालिज" कहते हैं)

वायुरूर्ध्वं व्रजेत्स्थानात्कुपितो हृदयं शिरः ॥ शंखौ च पीडयत्यङ्गान्याक्षिपेन्नमयेच्च सः ॥ ५९ ॥ निमीलिताक्षो निश्चेष्टः स्तब्धाक्षो वापि कूजति ॥ निरुच्छ्वासोऽथवा कृच्छ्रादुच्छ्वस्यान्नष्टचेतनः ॥६०॥ स्वस्थः स्याद्धृदये मुक्ते आवृते च प्रमुह्यति॥ कफान्वितेन वातेन ज्ञेयं एषोऽपतन्त्रकः ॥ ६१ ॥

अपने स्थानसे कुपित हुआ वायु ऊपरको गमन करे हृदय, शिर और कनपटी इन्हें पीडित कर अंगोंको कँपावे तथा नवादे, (धनुषवत् कुछ मोडदे) एक नेत्र मुँदासा रहे, चेष्टा नष्ट हो, नेत्र ठिठरा जायँ, कपोतकासा शब्द (कून्हे) करे, निरुच्छ्वास हो (श्वास न आवे) या कष्टसे श्वास ले, चेतना जाती रहे (इसे अपतन्त्रकवायु कहते हैं) ॥ ५९ ॥ ६० ॥ इसमें जब हृदय कफयुक्त वायुसे छुट जाता है तब स्वस्थ (होशमें) होजाता है और जब कफ सहित वायु हृदयको आच्छादित करलेता है तब मोह (बेहोशी) को प्राप्त हो जाता है । यह अपतन्त्रक वायु कहलाता है (और कई इसे और अपतानकको एकही मानते हैं) (डाक्टरीमें इसका कोई खास नाम नहीं और यूनानीमें भी नहीं है कुछ टिटनिस (तमद्दुद और कजाज) से मिलता है) ॥ ६१ ॥

दिवास्वप्नासमस्थानविकृतोर्द्ध्वनिरीक्षणैः ॥
मन्यास्तम्भं प्रकुरुते स एव श्लेष्मणावृतः ॥ ६२ ॥

दिनके सोने, असमस्थान (ऊँचे नीचे स्थानपर बैठने सोने) के विकारसे तथा ऊपरको बहुत देरतक देखने (सोते समय पसीना आयेमें ग्रीवामें ठंडी वायु लगने) से कफ युक्त वायु मन्यास्तम्भ रोग पैदा करता है (ग्रीवाके पीछे जो दो जोते होते हैं उन्हें मन्या कहते हैं और मन्यास्तम्भ उसे कहते हैं जिसमें ये दोनों जोते या उनमेंसे १ जोता अकड़ जाय) यूनानी हकीम इसे 'इस्तरखा' कहते हैं ॥ ६२ ॥

गर्भिणीसूतिकाबालवृद्धक्षीणेष्वसृक्क्षये ॥ उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि च ॥ ६३ ॥ हसतो जृम्भतो भाराद्विषमाच्छयनादपि ॥ शिरोनासौष्ठचिबुकललाटेक्षणसन्धिगः ॥ ६४ ॥ अर्दयित्वानिलो वक्त्रमर्दितं जनयत्यतः ॥ वक्रीभवति वक्त्रार्द्धं ग्रीवा चाप्यपवर्त्तते ॥ ६५ ॥ शिरश्चलति वाक्सङ्गो नेत्रादीनां च

(श्लो० ६२) मन्या ग्रीवायाः पश्चाद्भागस्था शिरा (इति माधवटीका) दिवास्वप्नासमस्थानविकृत दिवास्वप्नशयनादिति वा पाठान्तरम् । मन्यास्तम्भ वे भिन्न्यानकफुरमन्दे मन्यते (इति टीका) ॥

वैकृतम् ॥ ग्रीवाचिबुकदंतानां तस्मिन् पार्श्वे तु वेदना ॥ ६६ ॥
यस्याग्रजो रोमहर्षो वेपथुर्नेत्रमाविलम् ॥ वायुरूर्द्ध्वं त्वचि स्वाप-
स्तोदो मन्या हनुग्रह ॥ ६७ ॥ तमर्दितमिति प्राहुर्व्याधिं
व्याधिविशारदाः ॥ ६८ ॥ क्षीणस्यानिमिषाक्षस्य प्रसक्ताव्यक्त-
भाषिण ॥ न सिध्यत्यर्दितं बाढं त्रिवर्षं वेपनस्य च ॥ ६९ ॥

गर्भवती स्त्री, प्रसूता, बालक, वृद्ध तथा क्षीण मनुष्योंको, रक्तक्षयमें उच्च स्वरसे बोलनेवालेको, अति कडा पदार्थ खानेवालोंको ॥ ६३ ॥ हसने तथा जमाही लेनेसे बोझ उठानेसे, विषम शयन करनेसे, शिर, नाक, होठ, चिबुक (ठोडी), ललाट और नेत्रसंधि इनमें प्राप्त हुआ वायु मुख आदि स्थानोंको पीडितकर अर्दितनामक वायुरोग उत्पन्न करता है। इसमें ग्रीवा (गरदन) का आधाभाग टेढा होजाता है (अर्थात् दाहिनी या बाँयी किसी एक तरफका आधा चेहरा बाँका होजाताहै) और ग्रीवा (गरदन) भी टेढी होजातीहै ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ शिर चलायमान होता है, वाणी शिथिल होजाती है, नेत्र आदि विकृत होजातेहैं (ओडापन होताहै), ग्रीवा (गरदन), ठोडी, दांत येभी टेढे (बेडोल) होजातेहैं और जिस तरफ चेहरेमें टेढापन हो उसी तरफके पार्श्व (पसवाडे, हाथ, कंधे ग्रीवाके जोते) आदिमें पीडा होतीहै ॥ ६६ ॥ इसका पूर्वरूप यह है कि, रोमहर्ष हो, कंप हो (शरीर कांपने लगे), नेत्रोंमें मलमल जल आवे, वायुका ऊर्द्धगमन हो, त्वचा शून्यसी हो, कुछ २ पीडा हो, मन्यास्तंभ तथा हनुस्तंभ हो ॥ ६७ ॥ इसे व्याधियोंके जानने-वाले वैद्य अर्दितरोग कहते हैं ॥ ६८ ॥ क्षीण मनुष्यके तथा जिसकी पलक झिपे नहीं तथा जो कष्टसे बोले और स्पष्ट शब्द न बोलसके तथा तीनवर्ष रोगको बीत-जायँ अथवा जिसके मुख, नासिका और नेत्र ये तीनो बहने लगें और जिसके शरीरमें कंप हो उसका अर्दित वायु चिकित्सा करके सिद्ध नहीं होता है डाक्टर लोग इसे "फेशियल परालेसिस" और यूनानीवाले "लकवा" कहतेहैं ॥ ६९ ॥

वक्तव्य—हम जो रोगोंके प्रति हरेक रोगका डाक्टरी और यूनानीसे यथासंभव नाम आदि लिखतेहैं यदि इनमेंसे किसीके कारणों अथवा लक्षणोंमें कुछ अंतरभी हो तो यह देशांतरके भेदसे या देशांतरीय विद्वानोंके विचारका फरक जानना चाहिये ॥

पार्ष्णिं प्रत्यंगुलीनां तु कंडरा यानिलार्दिता ॥
सक्थ्नः क्षेपं निगृह्णीयात् गृध्रसीति हि सा स्मृता ॥ ७० ॥

(श्लो० ६९) [illegible] (इति निबंध)
(श्लो० ७०) [illegible] –"[illegible] । [illegible] -

टाकणे (टखने) और अगुलियोकी कण्डरा (मोटी नसे) वायुसे व्याप्त हो और साथलोंके फरकोको बद कर दे तो उसे गृध्रसी वायु कहते हैं इसमें पावँ टेढे पडते है ठीक पदक्षेपणका अवरोध हो जाता हे ओर साथलोंमें बाँकापन होनेसे देहमें भी बाँकापन हो जाता है ॥ ७० ॥

तलं प्रत्यंगुलीनां तु कंडरा बाहुपृष्ठत ॥
बाह्वो कर्मक्षयकरी विश्वाचीति हि सा स्मृता ॥ ७१॥

अगुलियोके नीचे बाहुके पृष्ठकी तरफ जो मोटी नसें है उनमें प्राप्त हुवा वायु जो बाहुओंके कार्य (वस्तु पकडना, उठना, मोडना आदि) को नष्ट कर दे वह विश्वाची नाम वातव्याधि कहलाती है ॥ ७१ ॥

वातशोणितज शोफो जानुमध्ये महारुज ॥
शिरः क्रोष्टुकेपूर्वं तु स्थूल क्रोष्टुकमूर्द्धवत् ॥ ७२ ॥

वात ओर रुधिरसे उत्पन्न हुआ महाशूलवाला गोडेमें जो शोथ हे ओर क्रोष्टु (शृगालके) शिरके समान जिसमे स्थूलता हो उसे क्रोष्टुशिर (क्रोष्टशीर्ष) रोग कहते है ॥ ७२ ॥

वायु कटया स्थित सक्थ्नः कंडरामाक्षिपेद्यदा ॥ खंजस्तदा भवेज्जन्तु पंगु सक्थ्नोर्द्वयोर्वधात् ॥ ७३ ॥ प्रकामन्वेपते यस्तु खंजन्निव च गच्छति ॥ कलायखंज त विद्यान्मुक्तसंधिप्रबंधनम् ७४

जब कटिमे स्थित हुआ वायु साथलकी नसोंको शिथिल करदेताहै (मारदे) तब उससे मनुष्य खज (विकलगति) हो जाता हे (इसको खजरोग) कहते हैं ओर यदि दोनो साथलो (कूल्हेके जोडों) की नसें शिथिल कर देवे तो मनुष्य पगु (पांगला) होजाता है (इसे पगुरोग कहते हैं)(इसमे खड़ा होकर मनुष्य नहीं चल सकता बैठा २ पावोंको घीसता चलता है) ॥ ७३ ॥ और जो पांव रखते हुए काँपे ओंके खाता हुआ चले उसे कलायखज व्याधि कहतेहै इसमें संधियोंके बध ढीले हो जाते है ॥ ७४ ॥

न्यस्ते तु विषमे पादे रुज कुर्यात्समीरण ॥
वातकंटक इत्येष विज्ञेय खुडकाश्रित ॥ ७५ ॥

—[illegible] ॥ १ ॥ [illegible] ॥ २ ॥ [illegible] ॥ १ ॥

(श्लो० ७१) [illegible] ॥

ऊची नीची जगहमे (अचानक) पांव रखनेसे खुड्क (पांवकी साधियां टख ने)मे व्याप्त होकर वायु जो पीडा करे उसे वातकंटक व्याधि कहते हैं ॥ ७५॥ यूनानी हकीम इसे नुकरसकी किसम कहते हैं ॥

पादयोः कुरुते दाहं पित्तासृक्संहितोनिलः ॥ विशेषतश्चंक्रमतः पाददाहं तमादिशेत् ॥ ७६ ॥ हृष्यतश्चरणौ यस्य भवतश्च प्रसुप्तवत् ॥ पादहर्ष स विज्ञेयः कफवातप्रकोपजः ॥ ७७ ॥

पित्त और रुधिरसे मिला हुआ वायु दोनों पावोंमे विशेषकरके चलते समय दाह पैदा करे उसे पाददाह नामक व्याधि कहतेहैं ॥ ७६ ॥ जिसके पांव रोमहर्षसे युक्त हो और सोये हुएसे (झनमनाट युक्त) हों वह कफ तथा वायुके कोपसे उपजा पादहर्ष नामक रोग होता है ॥ ७७ ॥

अंसदेशे स्थितो वायुः शोषयित्वा सबंधनम् ॥
शिरांस्त्वाकुच्य तत्रस्थो जनयेत्स्यपबाहुकम् ॥ ७८ ॥

अंस (कांधे) मे स्थित हुआ वायु अंसके बंधनरूप कफको सुखाकर और वहांकी नसोंको सकोड़कर तहां स्थित हुआ ही अपबाहुक नामक व्याधि उत्पन्न करता है (इसमे हाथ मुड़ता या सीधा नहीं होता) ॥ ७८ ॥

यदा शब्दवहं स्रोतो वायुरावृत्य तिष्ठति ॥ शुद्धः श्लेष्मान्वितो वापि बाधिर्यं तेन जायते ॥ ७९ ॥ हनुशंखशिरोग्रीवं यस्य भिंदन्निवानिलः ॥ कर्णयोः कुरुते शूलं कर्णशूलं तदुच्यते ॥ ८०॥

शब्दके वहने (भीतर लेजाने) वाली कानकी नसोंको रोककर स्थित हुआ शुद्ध (अकेला) वायु अथवा कफमे मिलाहुआ वायु हो तो उससे बाधिर्य (बहरापन) होताहै (इसे बाधिर्यनामक व्याधि कहतेहैं)॥७९॥ हनु (ठोडी), शंख (कनपटी), शिर और ग्रीवा इन स्थानोंको भेदन करता हुआसा वायु यदि कानमें दरद करे तो उसे कर्णशूलनामक वातव्याधि कहतेहैं ॥ ८० ॥

आवृत्य वायुः सकफो धमनीः शब्दवाहिनीः ॥
नरान्करोत्यक्रियकान् मूकमिन्मिणगद्गदान् ॥ ८१ ॥

शब्दको वहानेवाली जिह्वाकी धमनियोंको रोककर कफयुक्त वायु (या केवल वायु) मनुष्योंको जिह्वाके कार्यसे रहित गूँगा या मिनमिणा या गद्गदवाणीवाला (कावा) करदेती है ॥ ८१ ॥

(श्लो०७७) हृष्यत इति हर्षो धर्मायतस्य मेदनादिकं न्य [illegible] (इति डल्हणः) ॥

(वक्तव्य) बाधिर्य और कर्णशूलके यूनानी, डाक्टरी नामादि कर्णरोगके प्रकरणमे कहेजावेगे और मूकादिकको जिह्वारोगके प्रकरणमे देख लेना इसीप्रकार और व्याधियोंके भी नाम आदि उनके मुख्य प्रकरणमे लिखे जावेगे ॥

अधो या वेदना याति वर्चोमूत्राशयोत्थिता ॥ भिन्दतीव गुदोपस्थ सा तूणीत्युपदिश्यते ॥ ८२ ॥ गुदोपस्थोत्थिता सैव प्रतिलोमविसर्पिणी ॥ वेगैः पक्वाशयं याति प्रतितूणी तु सा स्मृता ॥८३॥

मलाशय और मूत्राशयसे उठी हुई वेदना (शूल) गुदा और लिंगको भेदन करती हुईसी जो नीचेको गमन करे वह तूणीनामक वातव्याधि कहलातीहै ॥८२॥ और गुदा तथा उपस्थ (लिंग) से उठी हुई पीडा प्रतिलोम (उलटी ऊपरको) गमन करनेवाली अपने वेगोंसे पक्वाशयमें पहुँचे तो उसे प्रतितूणी कहते है ॥८३॥

आटोपमत्युग्ररुजमाध्मातमुदरं भृशम् ॥ आध्मानमिति जानीयाद्धोरं वातनिरोधजम् ॥ ८४ ॥ विमुक्तपार्श्वहृदयं तदेवामाशयोत्थितम् ॥ प्रत्याध्मानं विजानीयात्कफव्याकुलतानिलम् ॥८५॥

आटोप करके सहित बहुत उग्र पीडा करनेवाला जिसमे उदर (पक्वाशय) मशककी भांति फूल जाय उसे आध्मान रोग जानना चाहिये । यह घोर व्याधि (प्राय) (अधो) वायुके रोकनेसे होती है ॥ ८४ ॥ और इसी प्रकारकी व्याधि आमाशयमे (नाभिसे ऊपर) हो पेट फूले तथा पँसवाड़े ओर हृदय फटजाय तो उसे प्रत्याध्माननामक व्याधि कहतेहै इसमे कफमें मिला हुआ वायु होताहै ॥ ८५ ॥

(वक्तव्य) आध्मानका अफारा पक्वाशय (नाभीके नीचे) के स्थानमें होता है जो केवल वायुकृत होता है और प्रत्याध्मानका आमाशयमे होताहै (नाभिसे ऊपर) और इसमे कफयुक्त वायुकृत होताहै इनको यूनानीमे नफख कहते है ॥

अष्ठीलोन्नद्धं ग्रन्थिमूर्द्धमायतमुन्नतम् ॥ वाताष्ठीलां विजानीयाद्बहिर्मार्गनिरोधिनीम् ॥ ८६ ॥ एतामेव रुजायुक्तां वातविण्मूत्ररोधिनीम् ॥ प्रत्यष्ठीलामिति वदेज्जठरे तिर्यगुत्थिताम् ॥ ८७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

पाषाणके तुल्य कडी ग्रन्थी ऊपरको फैली हुई ऊंची हो और बाहरके मार्गो (मलके मार्ग और मूत्रके मार्ग इन) को रोकनेवाली हो उसे (वाताष्ठीला) जानना चाहिये ॥८६॥ और यही जो पीडायुक्त हो और अधोवायु, विष्ठा व मूत्रको रोकनेवाली हो और पेटमें तिरछी और उठी हुई हो उसे प्रत्यष्ठीला कहतेहै ॥ ८७ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मकृ० सुश्रुतसं० भा०टी० निदानस्थाने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २

अथातोऽर्शसां निदानं व्याख्यास्यामः।

अब यहांसे अगाडी अर्श (बवासीर) के निदानकी व्याख्या करते हैं ॥

षडर्शांसि भवंति वातपित्तकफशोणितसन्निपातैः सहजानि चेति ॥ १ ॥ तत्रानात्मवता यथोक्तैः प्रकोपणैर्विरुद्धाध्यशनस्त्रीप्रसंगोत्कटकासनपृष्ठयानवेगविधारणादिभिर्विशेषैः प्रकुपिता दोषा एकशो द्विशः समस्ता शोणितसहिता वा यथोक्तप्रसृताः प्रधानधमनीरनुप्रपद्याऽधो गत्वा गुदमागम्य प्रदूष्य वलीर्मांसप्ररोहाञ्जनयंति ॥ २ ॥

अर्श (बवासीर) छः (६) प्रकारका होताहै वातसे, पित्तसे, कफसे, सन्निपातसे, रक्तसे और सहज (जन्मसे) ॥ १ ॥ तहां जो मनुष्य जितेंद्रिय नहीं हैं उनके यथोक्त (हिताहितीय अध्यायोक्त) अपथ्य भोजन जो दोषोंको प्रकुपित करे उससे (अर्थात् दोषोंके कोप करनेवाले आहार, विहारसे), विरुद्ध भोजनसे, भोजनपर भोजन करनेसे और अति स्त्रीसेवनसे, उत्कटकासन (बहुत जोरसे खांसने)से अथवा उत्कट आसन (बहुत कठोर आसनमें बैठे रहने)से, पृष्ठयान (अश्वपृष्ठादिकी पीठपर अयुक्त सवारी करने)से, वेगोंके रोकनेसे इत्यादि विशेष कुपथ्योंसे कुपित हुए दोष एक २ (अकेले) तथा दोदो मिलकर तथा तीनों दोष तथा रक्तसहित यथोक्त प्रसरित हुए प्रधान धमनी (पुरीषवाहिनी धमनी) में अनुसरण कर नीचे गमन करके गुदास्थानमें प्राप्त होकर और गुदाकी त्रिवलीको दूषित करके मांसप्ररोह अर्थात् मस्से उत्पन्न कर देते हैं ॥ २ ॥

विशेषतो मदाग्नेस्तथा तृणकाष्ठोपललोष्टवस्त्रादिभिः शीतोदकसस्पर्शनाद्वा कंदाः परिवृद्धिमासादयन्ति तान्यर्शांसीत्याचक्षते॥३॥

वे मस्से विशेषकर मंदाग्नि मनुष्योंके तथा तृण, काठ, पत्थर, लोहादि वस्त्र और वस्त्र आदिके रगडने आदिसे अथवा अति ठंड (और अति गरम) जलके स्पर्शसे वृद्धिको प्राप्त हो जाते हैं उन गुदाके मस्सोंको अर्श अर्थात् बवासीर कहते हैं॥३॥

(मत १) षडर्शांसि [illegible] द्विविधानि [illegible] [illegible]- [illegible] तथाचाह चरके-"[illegible] [illegible] ॥ [illegible] [illegible] च ॥ १ ॥" (मत २) यथोक्त[illegible] पूर्वोक्त[illegible] ॥

तत्र स्थूलान्त्रप्रतिबद्धमर्द्धपञ्चाङ्गुलं गुदमाहुस्तस्मिन्वलयस्ति-स्रोऽध्यर्द्धाङ्गुलांतरभूता प्रवाहिणी विसर्जनी संवरणी चेति ॥४॥ चतुरङ्गुलायता सर्वास्तिर्यगेकाङ्गुलोच्छ्रिता ॥शंखावर्तनिभाश्चापि उपर्युपरि संस्थिता ॥ ५ ॥ ॥ गजतालुनिभाश्चापि वर्णत. सम्प्रकीर्त्तिता. ॥ रोमान्तेभ्यो यवाध्यर्द्धो गुदौष्ठ. परिकीर्त्तित ॥६॥

तहां मोटी अतडी (जिसमेसे विष्ठा आती हे उस) से प्रतिबद्ध (मिला हुआ) साढे पॉच अगुल प्रमाणका गुदास्थान हे उसमे डेढ डेढ अगुलकी तीन वली(छल्ले) हे (वे छल्ले डेढ डेढ अगुलके अतरसे एकके परे दूसरा इस प्रकारसे हैं उन तीनोंको त्रिवली कहते हे) उनमसे पहिली वली प्रवाहिणी दूसरी विसर्जनी तीसरी संवरणी है॥४॥ये सब वली चार अगुल चौडी (मोटी)ओर तिरछी हुई एक अंगुल उभरी हुई शखकी आकृति (आंटी) की तरह एकके ऊपर एक (एकसे परे दूसरी)ऐसी है ॥ ५ ॥ ओर आकारमे हाथीके तालुके समान है तथा जो (आधे अगुल) प्रमाणका गुदाका ओष्ठ (किनारा) रोमांतसे (अर्थात् जहां रोमका अत है वहांसे) है(सारांश यह हे कि बाहर जहांतक रोम है वहांसे अगाडी भीतरको आध अगुल जो गुदाका किनारा हे फिर तीन वली भीतरकी हैं) ॥६ ॥

प्रथमा तु गुदौष्ठादङ्गुलमात्रे ॥७॥ तेषां तु भविष्यतां पूर्वरूपाणि ॥८॥ अन्ने न श्रद्धा कृच्छ्रात्पक्तिरम्लीका सक्थिसदनमाटोप. कार्श्यमुद्गारबाहुल्यमक्ष्णोश्च श्वयथुरन्त्रकूजनं गुदपरिकर्तनमाशङ्का पाण्डुरोगग्रहणीदोषाणां कासश्वासौ भ्रमस्तंद्रानिद्रेन्द्रियदौर्बल्यं च जातेष्वेतानि रूपाणि प्रव्यक्तकराणि भवति ॥ ९ ॥

प्रथम वली तो गुदाके किनारेसे अनुमान एक अगुल मात्र अन्दर है (इसमें विशेष करके अर्श होता है) ॥७॥ अर्शके मस्सोंके पैदा होनेका पूर्वरूप यह है॥८॥ कि, अन्नमें श्रद्धा न होना, कष्टसे पचना, खट्टी डकारें आना, सायरोंका थकना, पेटमे अफरासा होना, कृशता होना, डकारें बहुत आना, नेत्रोंके किनारोंपर शोष होना, पेटमें आंतोंका (गुडगुड) शब्द होना, गुदामे कतरनीसी रहना, पांडुरोग तथा ग्रहणी दोषकी शंका होना, खांसी और श्वास, भ्रम, तंद्रा, निद्रा अधिक और इंद्रियोंमें दुर्बलता होजाना ये लक्षण बवासीरके होनेसे प्रथम प्रगट होजाते हैं (ये सब लक्षण या इनमेंसे थोडेमें लक्षण होते हैं) अथवा मस्से होजानेपर ये रूप सब प्रगट होजाते हैं ॥ ९ ॥

वातार्श।

तत्र मारुतात्परिशुष्कारुणवर्णानि विषममध्यानि कदम्बपुष्पतुण्डिकेरीनाडीमुकुलसूचीमुखाकृतीनि च भवंति तैरुपहत. सशूल सहतमुपवेश्यते कटीपृष्ठपार्श्वमेढ्रगुदनाभिप्रदेशेषु चास्य वेदना। गुल्माष्ठीलाप्लीहोदराणि चास्य तन्निमित्तान्येव भवन्ति। कृष्णत्वङ्नखनयनरदनवदनमूत्रपुरीषश्च पुरुषो भवति ॥ १० ॥

तिसमें वायुसे उपजे अर्शमें सूखे, लालवर्णके, नीचसे टेढे, कदम्बके पुष्प और तुडकेरी (निरमावणके पुष्प) के समान तथा नाडी (नाली) के पुष्पके समान तथा सुईके समान पैने मुखकी आकृतिवाले मस्से होतेहै। इन करके पीडित मनुष्य शूल (दरद मरोड) सहित कडा (ओर देरसे) दस्त जाता है। इसके कमर, पीठ, पसली, लिंग, गुदा ओर नाभि इन प्रदेशोंमे पीडा रहती है ओर गुल्म, वाताष्ठीला, प्लीहावृद्धि, उदररोग ये सब वातार्शोनिमित्त उपद्रव होजातेहै। इस वातार्शरोगी मनुष्यके त्वचा, नख, नेत्र, दांत, मुख तथा मूत्र ओर पुरीष ये सब काले पड जाते है ॥ १० ॥

पित्तान्नीलाग्राणि तनूनि विसर्पीणि पीतावभासानि यकृत्प्रकाशानि शुकजिह्वासंस्थानानि यवमध्यानि जलौकोवक्त्रसदृशानि प्रक्लिन्नानि च भवति। तैरुपहत सदाह सरुधिरमतिसार्यते। ज्वरदाहपिपासामूर्च्छाश्चोपद्रवा भवति। पीतत्वङ्नखनयनदशनवदनमूत्रपुरीषश्च पुरुषो भवति ॥ ११ ॥

पित्तसे उपजी बवासीरके मस्से अग्रभागमेंसे नीले होते है यकृतके तुल्य प्रकाशवाले (चमकीले) और पीलापन लिये होते है छोटे छोटे होते है शीघ्र फैलनेवाले होते है तोतेकी जिह्वाके आकार होते है और बीचसे जौकी तरह मोटे होते है तथा जलौका (जोंक) के मुखके समान होते है और गीले तथा झिरनेवाले होते है। इनसे पीडित मनुष्य दाहयुक्त और रुधिरसे मिला दस्त जाते है तथा ज्वर, दाह, तृषा और मूर्च्छा ये इसमें उपद्रव होते है। इस पित्तकी बवासीरके रोगीके त्वचा, नख नेत्र, दांत, मुख एव मूत्र और विष्ठा पीले (पिलाई) होते है ॥ ११ ॥

(गद १०) [illegible] ॥

(गद ११) [illegible] ॥

श्लेष्मजानि श्वेतानि महामूलानि स्थिराणि वृत्तानि स्निग्धानि पांडूनि करीरपनसास्थिगोस्तनाकाराणि न भिद्यन्ते न स्रवन्ति कंडूबहुलानि च भवंति । तैरुपहत सश्लेष्माणमनल्प मांस धावनप्रकाशमतिसार्यते । शोफशीतज्वरारोचकाविपाकशिरोगौरवाणि चास्य तन्निमितान्येव भवंति । शुक्लत्वङ्नखनयनदनवदनमूत्रपुरीषश्च पुरुषो भवति ॥ १२ ॥

कफसे उपजी ववासीरके मस्स सुपेद, जडमे मोटे, स्थिर, गोल, चिकने, धूंधले होतेहै तथा टेट और वढलके बीज तथा द्राक्षाके आकारके होते है । न वे फटे होते है, न झिरते है, उनमे विशेषकर खाज होती है । इससे पीडित मनुष्य कफयुक्त बहुतसा तथा मांस धोवनसा दस्त जाते है और शोथ, शीतज्वर, अरुचि, पचाव न होना, शिर भारी रहना, ये इसके उपद्रव है तथा कफार्शवाले रोगीके त्वचा, नख, नेत्र, दांत, मुख एव मूत्र और मल प्राय. सुपेद होते है ॥ १२ ॥

रक्तजानि न्यग्रोधप्ररोहविद्रुमकाकेणतिकाफलसदृशानि पित्तलक्षणानि च । यदावगाढपुरीषप्रपीडितानि भवंति तदात्यर्थं दुष्टमनल्पमसृक् सहसा विसृजति । तस्यैवातिप्रवृत्तौ शोणितातियोगोपद्रवाणि भवंति ॥ १३ ॥

रक्तकी ववासीरके मस्से वडकी कोंपलके रग या मूँग तथा चिरमिटीके सदृश होते है उनमे प्राय पित्तकेसे लक्षण होते है और जब गाढा मल हो उससे रगडखावे (या और भांति जोर पडे या अति गरम भोजनादि हो) तब प्राय बहुतसा दुष्ट रक्त दस्तके राहसे आता है (मस्सोंसे निकलता है) और जब इसकी (रुधिरकी) अधिक प्रवृत्ति होती है (अर्थात् अधिक खून निकलता है) तब अति रक्त निकलनेसे (बेहोशी, गिरपडना, आंखोंके आगे अंधेरा आना आदि) उपद्रव होते है ॥ १३ ॥

सन्निपातजानि सर्वदोषलक्षणयुक्तानि भवंति ॥ १४ ॥ सहजानि दुष्टशोणितशुक्रनिमित्तानि तेषां दोषत एव प्रसाधनं कर्तव्यम् ॥ १५ ॥ विशेषतश्चात्र दुर्दर्शनानि परुषाणि पाडूनि दारुणान्य-

---

(गद्य १२) [illegible] ॥ (गद्य १३) [illegible] ॥

तन्मुखानि तैरुपहतः कृशोल्पभुक् शिरासततगात्रोल्पप्रज क्षीण रेता क्षामस्वर. क्रोधनोल्पाग्निर्घ्राणशिरोऽक्षिश्रवणरोगवान् सततमन्त्रकूजनाटोपहृदयोपलेपारोचकप्रभृतिभि पीड्यते ॥ १६ ॥

भवन्ति चात्र –

सन्निपातकी बवासीरके मस्सोंमें सब दोषों (वायु, पित्त, कफ, रक्त) के लक्षण मिले हुए (और सबके उपद्रव) होतेहैं ॥१४॥ और जन्मसे हुई बवासीर माता पिताके रज और वीर्यकी दुष्टताके कारणसे होतीहै, इसका साधन दोषकी प्रधानताके अनुसारही करना चाहिये ॥ १५ ॥ विशेष करके इसमें मस्से दुर्दर्शन (बुरे रूपवाले), कठोर, धूँधले और दारुण, भीतरको मुखवाले होते हैं तिनसे पीडित मनुष्य कृश होता है, थोड़ा भोजन करता है उसका शरीर नसोंसे (स्फुट) व्याप्त रहता है सतानभी कम होते हैं क्षीणवीर्य होताहै फूटी कांसी जैसा स्वर होता है क्रोधयुक्त और अल्प अग्नि होती है तथा नासिका, शिर, नेत्र और कर्णके रोगोंसे व्याप्त होताहै सदा पेटमें आँते गुडगुड शब्द करती हैं अफरासाभी रहा करता है हृदयमें लिपासा रहता है तथा अरुचि आदि रोगोंसे पीडित रहता है॥ १६ ॥ यहां श्लोक हैं–

(वक्तव्य) यूनानी हकीम इसे बवासीरही कहते हैं इसके दो भेद लिखतेहैं एक वह जिसमें मस्से स्पष्ट जाहिर हों दूसरा वह जिसमें मस्से जाहिर न हों इसीको "रियाह बवासीर" कहते हैं मस्सेवाली बवासीरमें दरद होना, खाज या खून आना आदि सब लक्षण होतेही हैं परन्तु रियाह बवासीरमें कबजीयत, गुदा, वस्ति आदिमें दरद, मल्का जल्दी न उतरना, कभी मूत्रबंध होना, कभी बधा पड़ना आदि उपद्रव होते हैं इसका कारण गलीजरिह बताते हैं जो गुरदेमें पैदा हो या और जगहसे यहां आवे डाक्टरीमें इसे हिमोरइडस् (Hemorrhoids) कहते हैं जिसे यूनानीवाले रियाह बवासीर कहते हैं वैद्यकमें अतर्बलिगत बतातें हैं और शेष इसके उपद्रव हैं। साधारण लोगोंमें बवासीरके दो भेद मानेजाते हैं १ बादी, २ खूनी जिसमें रुधिर गिरताहै उसे खूनी और जिसमें खून नहीं गिरता उसे बादी कहतेहैं॥

साध्य असाध्य अर्श।

बाह्यमध्यवलिस्थाना प्रतिकुर्याद्भिषग्वरः ॥
अतर्वलिसमुत्थाना प्रत्याख्यायाचरेत्क्रियाम् ॥ १७ ॥

(मू० १६) [illegible] –"[illegible] ॥ [illegible] ॥ १ ॥ [illegible] ॥ २ ॥ [illegible] ।" ([illegible]) ॥ (श्लो० १७) [illegible] ।

बाहरकी त्रिवली तथा मध्यकी त्रिवलीमे होनेवाली बवासीरकी वैद्यको चिकित्सा करनी चाहिये ओर तीसरी भीतरकी त्रिवलीमें बवासीरके मस्से हो तो यह असाध्य है ऐसा कहकर यदि (क्रिया) चिकित्साका आचरण करे तो करे (नहीं तो चिकित्साही नहीं करे) ॥ १७ ॥

मेढ्गत अर्श ।

प्रकुपितास्तु दोषा मेढ्रमभिप्रपन्ना मांसशोणिते प्रदूष्य कंडूं जनयति ततः कडूयनात्क्षतं समुपजायते तस्मिश्च क्षते दुष्टमांसजाः प्ररोहाः पिच्छिलरुधिरस्राविणो जायते कूर्चकिनोभ्यंतरमुपरिष्टाद्वा ते तु शेफो विनाशयंत्युपघ्नति च पुंस्त्वम् ॥ १८ ॥

जब कुपित हुए वातादि दोष मेढ़ (लिंग इंद्रिय) में प्राप्त हो तब मांस ओर रुधिरको दूषित करके वहां खाज पैदा कर देतेंहै तब खुजानेसे क्षत घाव पड़ जाता है उस घावमे दुष्ट मांसके अंकुर (मस्से) हो जातेहै उनमेंसे गाढी पीपसी तथा रुधिर झिरने लगता है ये खरधरे अंकुर भीतर तथा बाहर होतेंहै वे लिंग इंद्रियको गिरा देते है तथा पुरुषत्वका नाश कर देते है ॥ १८ ॥

योनिमभिप्रपन्नाः सुकुमारान्दुर्गंधान्पिच्छलरुधिरस्राविणश्छत्राकारान्करीराञ्जनयति ॥ १९ ॥

स्त्रियोंकी योनिमे प्राप्त हुए वातादि दोष (मांस ओर शोणितको दूषित करके) कोमल दुर्गंधित छतेके आकार करीर अर्थात् मस्से पैदा करते है उन मस्सोंमेंसे गाढा रुधिर झिरता रहताहै ॥ १९ ॥

कान, नेत्र, नाक और मुखका अर्श ।

त एवोर्द्ध्वमागता श्रोत्राक्षिघ्राणवदनेष्वर्शांस्युपनिर्वर्तयन्ति॥२०॥ तत्र कर्णजेषु बाधिर्यं शूलं पूतिकर्णता च ॥२१॥ नेत्रजेषु वर्त्मावरोधो वेदनास्रावो दर्शननाशश्च ॥ २२ ॥ घ्राणजेषु प्रतिश्यायोतिमात्रं क्षवथुः कृच्छ्रोच्छ्वासता पूतिनस्यं सानुनासिकवाक्यत्वं शिरोदुःख च ॥२३॥ वक्त्रजेषु कंठोष्ठतालूनामन्यतमस्मिन्स्थाने गद्गदवाक्यता रसाज्ञानं मुखरोगाश्च भवति ॥ २४ ॥

(गद्य १८) कूर्चकिनः सूक्ष्मदीर्घांकुरवंतः उपरिष्टात् बाह्यतः (इति निबंध०) ॥
(गद्य २४) वक्त्रेषु कंठोष्ठतालूनामन्यतमस्मिन् स्थाने मांसांकुरा भवंतीत्यर्थः । तैर्गद्गदवाक्यत्वादयो भवंति ॥

वेही वात आदि दोष ऊपरके द्वारोंमें प्राप्त हो तो कर्ण, नेत्र, नासिका, मुख इन स्थानोंमें (मांस और रुधिरको दूषित करके) ववासीर अर्थात् मस्से पैदा करते हैं ॥ २० ॥ उनमेंसे कानमें मस्से हों तो बधिरता, शूल और दुर्गंध होजाती है ॥२१॥ नेत्रमें मस्सा हो जानेसे पलक झिरना बंद होजाताहै दरद होताहै पानीसा बहताहै और दृष्टिका नाश होजाताहै ॥२२॥ नासिकामें मस्सा हो तो बहुत जुखाम हो और छींक आवे कष्टसे सास लिया जाय नाकसे दुर्गंध आवे गुणगुणी आवाज होजाय और शिरमें दरद रहे ॥ २३ ॥ मुखमें मस्से हों तो कंठमें तालुमें या और जगह हों इनके होनेसे गद्गदवाणी हो या रसका ज्ञान नहीं रहे तथा मुखके अनेक रोग होजावें ॥ २४ ॥

व्यानस्तु प्रकुपितं श्लेष्माणं परिगृह्य बहिः स्थिराणि कीलवद-र्शांसि निर्वर्तयति तानि चर्मकीलान्यर्शांसीत्याचक्षते ॥ २५ ॥

भवति चात्र-

सारे शरीरमें व्याप्त व्यान वायु कुपित हो तो कफको ग्रहण करके बाहर शरीरकी त्वचामें स्थिररूप कीलके तुल्य मस्से उत्पन्न कर देता है इन चर्मकीलोंको भी अर्श (त्वग्गतार्श) ऐसा कहते है ॥ २५ ॥ इसमें श्लोक है-

तेषु कीलेषु निस्तोदो मारुतेनोपजायते ॥ श्लेष्मणा तु सवर्णत्वं ग्रथित्वं च विनिर्दिशेत् ॥ २६ ॥ पित्तशोणितजं रौक्ष्यं कृष्णत्वं रक्तता तथा ॥ समुदीर्णखरत्वं च चर्मकीलस्य लक्षणम् ॥ २७ ॥

वायुके दोषसे इन चर्मकीलोंमें निस्तोद (दरद) होता है और कफसे शरीरके तुल्य वर्ण और गांठसी होती है ॥ २६ ॥ पित्त और रुधिरसे रूखापन, कालापन, तथा लाली होतीहै और कठिनता खरदरापन यदि इनमें हो तो सन्निपातज है (चकारसे सन्निपातका ग्रहण होता है)ये चर्मकीलके लक्षण है ॥ २७ ॥

द्वन्द्वजादि अर्श।

अर्शसां लक्षणं व्यासादुक्तं सामान्यतस्तु यत् ॥ तत्सर्वं प्रागभिनिर्दिष्टात्साध्यं वेत्यभिजायते ॥ २८॥ अर्शसां तु दृश्यते रूपं यदा दोषद्वयस्य तु ॥ संसर्गं तं विजानीयात्संसर्गः स च षड्विधः ॥ २९ ॥

(श्लो० २७) पक्षान्तरे ... मोदगरः ॥ (श्लो० २८) प्रागभिनिर्दिष्टात् ... (इति ...)। ... (इति ...) ॥

अर्श (ववासीरके) लक्षण सामान्यतासे विस्तारपूर्वक जैसे वर्णन किये उन सबको पूर्व निर्देशके अनुसार वेद्य साधना करे ॥ २८ ॥ और जो अर्शमें दो दोषोंका रूप दिखाई देवे तो उसे संसर्गज (द्वन्द्वज) जानो । यह संसर्ग छः प्रकारका होता है जैसे १ वातपित्त, २ वातकफ, ३ कफपित्त, ४ वातशोणित, ५ पित्तशोणित, ६ श्लेष्मशोणित ॥ २९ ॥

त्रिदोषाण्यल्पलिंगानि याप्यानि तु विनिर्दिशेत् ॥ द्वंद्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च ॥३०॥ कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च ॥ सन्निपातसमुत्थानि सहजानि तु वर्जयेत् ॥३१॥ सर्वो स्युर्वलयो येषां दुर्नामभिरुपद्रुताः ॥ तैस्तु प्रतिहतो वायुरपानः सन्निवर्तते ॥ ततो व्यानेन संगम्य ज्योतिर्मूर्द्धाति देहिनाम् ॥ ३२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तीन दोषोंके जिसमें थोडे लक्षण हों वह ववासीर याप्य है तथा द्वन्द्वज (दो दोषोंकी) और दूसरी वलीमें हो वहभी याप्यही जानो ॥ ३० ॥ और यदि येही एक वर्षसे ऊपरकी होजाय तो कष्टसाध्य होजातीहै और सन्निपात (सब दोषों) की हो तथा जन्मसे पैदाहुई हो वह (असाध्यहै) त्यागने योग्यहै ॥ ३१ ॥ जिस मनुष्यके सारी तीनों गुदाकी वली ववासीरके मस्सोंसे व्याप्त होजावें तब उन मस्सो करके अवरोधित हुई अपानवायु ठीक नहीं मरती फिर वह रुकी हुई अपानवायु व्यानमे मिलजाती है और ज्योति (शारीरिक अग्नि) को नाश करदेतीहै ॥ ३२ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० निदानस्थाने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३

अथातोऽश्मरीणां निदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अश्मरी (पथरी और शर्करा) के निदानका व्याख्यान करतेहैं ।

चतस्रोऽश्मर्यो भवन्ति श्लेष्माधिष्ठानास्तद्यथा । श्लेष्मणा वातेन पित्तेन शुक्रेण चेति ॥१॥ तथा असंशोधनशीलस्यापथ्यकारिणः प्रकुपितः श्लेष्मा मूत्रसंपृक्तोऽनुप्रविश्य बस्तिमश्मरीं जनयति ॥ २ ॥

कफके मुख्य कारणसे अश्मरी (पथरी) चार प्रकारकी होतीहै १ कफसे, २ वायुसे, ३ पित्तसे और ४ शुक्रसे ॥१॥ अश्मरीको समयानुसार शोधन नहीं करनेवालेके (जो वमन विरेचनादि करके काया शोधन नहीं करते उनके) तथा

(गद १) [illegible]

कुपथ्य करनेवालेके कुपित हुआ कफ मूत्रमें मिलकर वस्ति (मूत्राशयमें) अर्थात् मसानेमें प्रविष्ट होकर (पथरी) पैदा करताहै ॥ २ ॥

तासां पूर्वरूपाणि वस्तिपीडाऽरोचको मूत्रकृच्छ्रं वस्तिशिरोमुष्कशेफसां वेदना कृच्छ्राज्ज्वरावसादौ वस्तगन्धित्वं मूत्रस्येति ॥३ ॥ यथास्वं वेदनावर्णं दुष्टं सान्द्रमथाविलम् ॥ पूर्वरूपेऽश्मनः कृच्छ्रान्मूत्रं सृजति मानवः ॥ ४ ॥

अश्मरीके पूर्वरूप ये हैं कि वस्तिस्थानमें पीडा हो, अरुचि, हो मूत्र कष्टसे हो, वस्ति, मुख, लिंग, वृषण इनमें वेदना हो और कृच्छ्रके कारणसे ज्वर और ग्लानि हो, मूत्रमें बकरेकीसी गंध हो ॥ ३ ॥ तथा जिस दोषोल्वणकी अश्मरी होनेवाली हो उसके अनुसार वेदना हो और वैसाही मूत्रका रंग हो तथा मूत्र दूषित गाढा, आविल (तारछुटे मैला) हो और मनुष्य कष्टसे मूत्रोत्सर्ग करे ॥ ४ ॥

अश्मरीके सामान्य लक्षण ।

अथ जातासु नाभिवस्तिसेवनीमेहनेष्वन्यतमस्मिन्मेहतो वेदना मूत्रधारासंगः सरुधिरमूत्रता मूत्रविकिरणं च गोमेदप्रकाशमनाविलं ससिकतं विसृजति धावनलंघनप्लवनपृष्ठयानाध्वगमनैश्चास्य वेदना भवति ॥ ५ ॥

जब अश्मरी (पथरी) पैदा हो जाय तब नाभि, वस्ति, सीवन, लिंग इनमें कहीं मूत्र करते समय पीडा हो, मूत्रकी धारा रुके (कभी २) रुधिरयुक्त मूत्र हो, मूत्र टपक टपक आवे और गोमेदके रंगका (शरबती), तार छुटनेसे रहित वालि रेतसेकी फटकसे मिला मूत्र (पेशाब) करे और भागने, उलांघने, कूदनेसे तथा पीठपर सवारी करनेसे, मार्ग चलनेसे मनुष्यको पीडा हो ॥ ५ ॥

कफाश्मरी ।

तत्र श्लेष्माश्मरी श्लेष्मलमन्नमभ्यवहरतोऽत्यर्थमुपलिप्याधः परिवृद्धिं प्राप्य वस्तिमुखमधिष्ठाय स्रोतो निरुणद्धि तस्य मूत्रप्रतिघाताद्दाल्यते भिद्यते निस्तुद्यत इव च वस्तिर्गुरुः शीतश्च भवति। अश्मरी चात्र श्वेता स्निग्धा महती कुक्कुटाण्डप्रतीकाशा मधूकपुष्पवर्णा वा भवति तां श्लैष्मिकीमिति विद्यात् ॥ ६ ॥

(गत २) [illegible] ॥ (अ० ५), [illegible] ॥

कफकी पथरी कफकारक भोजन अधिक करनेसे शरीर कफस लिपायमान हो नीचे वस्ति स्थानमें पहुँच वृद्धिको प्राप्त होकर वस्तिके मुखको आच्छादन करके मूत्र-मार्गको रोक देती है तब मनुष्यके मूत्र रुकजानेसे उसका वस्तिस्थान फूटासा जाय, भेदनसा हो, सुईसी चुभे और वस्तिस्थान भारी हो और शीतल हो। इसमें पथरी सुपेद हो, चिकनी हो, बडी मुरगेके अंडके वर्णकी अथवा महुवेके फूल जैसी हो तो इसे कफकी पथरी जानै ॥ ६ ॥

पित्ताश्मरी।

पित्तयुक्तस्तु श्लेष्मा सघातमुपगम्य यथोक्तां परिवृद्धि प्राप्य वस्तिमुखमधिष्ठाय स्रोतो निरुणद्धि तस्य मूत्रप्रतिघाताद्दृह्यते चूष्यते दह्यते पच्यत इव वस्तिरुष्णवातश्च भवति अश्मरी चात्र सरक्ता पीतावभासा कृष्णा भल्लातकास्थिप्रतिमा मधुवर्णा वा भवति ता पैत्तिकीमिति विद्यात् ॥ ७ ॥

पित्तसे युक्तहुआ कफ कठिनताको प्राप्त होकर यथोक्त वृद्धिको प्राप्त हो वस्तिके मुखको अच्छादन करके मूत्रके मार्गको रोक देता है तब उसके मूत्र रुक जानेसे वस्ति (मूत्राशय) तपायमानसा हो चूसासा जाता हो, आगसी लगे पक्तासा हो, तथा उष्णवात (जो उत्तरतन्त्रमें मूत्ररोगोंमें कहा है) हो, (और वस्तिस्थान गरम हो) इसमें पथरी रक्तता लिये हो, पीलापन भी हो, काली हो, भिलावेकी गुठली जसी हो अथवा शहतके रगकी हो, उसे पित्तकी पथरी जाने ॥ ७ ॥

वाताश्मरी।

वातयुक्तस्तु श्लेष्मा सघातमुपगम्य यथोक्ता परिवृद्धि प्राप्य वस्तिमुखमधिष्ठाय स्रोतो निरुणद्धि तस्य मूत्रप्रतीघातात्तीव्रा वेदना भवति तथात्यर्थं पीडयमानो दतान्खादति नाभिं पीडयति मेढ्रं मृद्गाति वायु स्पृशति विशर्धते निदहति वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण चास्य मेहतो नि सरति। अश्मरी चात्र श्यामा परुषा विषमा खरा कदवपुष्पवत्कटकाचिता भवति ता वातिकीमिति विद्यात्॥८॥

वायुसे युक्त हुआ कफ कठिन होकर यथोक्त वृद्धिको प्राप्त हो वस्तिके मुखपर स्थित होके मूत्रके मार्गको रोक देता है, मनुष्यके मूत्र रुकनेसे इसमें तीक्ष्ण पीडा होती है और तीक्ष्ण पीडासे पीडित हुआ मनुष्य दांतोंको पीसता है, नाभिको दबाता है, लिंगको

(पाठ ८) [illegible]

मसलता है, वायु (पवन) का स्पर्श करता है अर्थात् पवन कराता है, या हवाको चाहताहै "विशर्द्धते" अर्थात् गुदासे शब्द करता है तपायमान होता है कभी कभी बहुत किनछनेसे थोड़ा मूत्र या विष्ठा आता है। इसमें पथरी सांवली, कड़ी, टेढ़ा और खरदरी होतीहै तथा कदंबके पुष्पके तुल्य काँटेवाली होतीहै, इसे वायुकी पथरी जाने ॥ ८ ॥

प्रायेणैतास्तिस्रोऽश्मर्यो दिवास्वप्नसमशनाध्यशनशीतस्निग्धगुरुमधुराहारप्रियत्वाद्विशेषेण बालाना भवंति तेषामेवाल्पवस्तिकायत्वादनुपचितमांसत्वाच्च वस्ते सुखग्रहणाहरणा भवंति ॥ ९ ॥

प्राय ये तीनों प्रकारकी पथरी दिनके सोनेसे, अधिक भोजन करनेसे, भोजनपर भोजन करनेसे, शीतल, स्निग्ध, गरिष्ठ और मधुर आहार प्यारा लगनेसे विशेष करके ये बालकोंके होतीहै क्योंकि बालकोंका वस्तिस्थान छोटा होता है और दृढ़ मांस नहीं होता है इसमें बालकोंका बस्तिस्थान पथरीको ग्रहण भी सुखसे (सहजहीमें) कर लेता है और उसका आहरण (निकल जाना क्षय हो जाना) भी सहजहीमें सुखसे होसकता है ॥ ९ ॥

शुक्राश्मरी।

महतां तु शुक्राश्मरी शुक्रनिमित्ता भवंति ॥ १० ॥ मैथुनाभिघाताद्वतिमैथुनाद्वा शुक्रश्चलितमनिर्गच्छद्विमार्गगमनादनिलोऽभिन सगृह्य मेढ्रवृषणयोरन्तरे सहरति सहृत्य चोपशोषयति सा मूत्रमार्गमावृणोति मूत्रकृच्छ्रं वस्तिवेदना वृषणयोश्च श्वयथुमापादयति पीडितमात्रे च तस्मिन्नेव प्रदेशे प्रविलयमापद्यते तां शुक्राश्मरीमिति विद्यात् ॥ ११ ॥ भवति चात्र—

बड़े मनुष्योंके प्राय शुक्रजन्य शुक्राश्मरी होती है ॥ १० ॥ यह शुक्राश्मरी (वीर्यकी पथरी) जब मैथुनके रोकनेसे और अत्यत मैथुनसे शुक्र अपने स्थानसे छुट जाय और बाहर नहीं निकले और विपरीत मार्ग (उलटा) में गमन करे तब उसे वायु इकट्ठा करके लिंग और वृषण (पोतेरो) के मध्य (वस्तिके द्वारपर) स्थित कर देती है और वहां स्थित करके सुखाकर कड़ा कर देती है (जिससे अश्मरी बन जाती) है, फिर यह पथरी आकर मूत्रके मार्गको रोक देती है और मूत्रकृच्छ्र, वस्तिमें दरद, पोतोंपर सोथ ये उपद्रव पैदा करती है और जब उस स्थानको दबाय या मले तब विलाय जाती है इसे शुक्रकी पथरी जाने ॥ ११ ॥ इसमें श्लोक है—

शर्करा सिकतामेहो भस्माख्योऽश्मरीवैकृतम् ॥
अश्मर्या शर्करा ज्ञेया तुल्यव्यंजनवेदना ॥ १२ ॥

शर्करा (रेता) और सिकताप्रमेह तथा भस्माख्य रोग (मूत्र, शुक्ररोग उत्तरतन्त्रोक्त) ये सब पथरीहीके विकार है और पथरीही घुलकर शर्करा होती है क्योंकि इनके लक्षण और वेदना समान है (यूनानी हकीम भी पथरी और शर्कराको एकही किस्मसे बतातेहैं देखो तिब्बते अकबर) ॥ १२ ॥

पवनेऽनुगुणे सा तु निरेत्यल्पा विशेषतः॥सा भिन्नमूर्तिर्वातेन शर्करेत्यभिधीयते ॥ १३ ॥ हृत्पीडा सक्थिसदनं कुक्षिशूलं सवेपथु ॥ तृष्णोर्ध्वगोऽनिलः कार्ष्ण्यं दौर्बल्यं पाण्डुगात्रता ॥१४॥ अरोचकाविपाकौ तु शर्करार्ते भवति हि ॥ मूत्रमार्गप्रवृत्ता सा सक्ता कुर्यादुपद्रवान् ॥ १५ ॥ दौर्बल्यं सदनं कार्श्यं कुक्षिशूलमरोचकम् ॥ पांडुत्वमुष्णवातं च तृष्णा हृत्पीडनं वमिम् ॥ १६ ॥

और यदि पथरी छोटी हो और वायुके अनुकूल हो जाय तब तो प्राय निकल पड़ती है । और जो वायु करके टुकडे २ से (नन्हे २ दानेसे) हो जायँ तो उन्हे शर्करा कहते है ॥ १३ ॥ जिस मनुष्यको शर्करा हो उसके हृदयमे पीडा, साथलोका थकना, कूखमे शूल और शोथ, तृषा और वायुका ऊर्द्धगमन, कृशता (कालापन) और दुबलापन तथा देहका पीला पडना ॥१४ ॥ अरुचि, भोजन ठीक नहीं पचना, ये लक्षण होते है और जब मूत्रके मार्गमे प्रवृत्त हो और वहाँ स्थित हो जाय तब ये उपद्रव होते है॥१५॥दुबलापन, थकान, कृशता, कूखमे शूल, अरुचि, शरीर, नेत्रादि पीले पडना तथा उष्णवात, तृषा, हृदयमें पीडा और वमन (या जी मिचलाना) ॥ १६ ॥

नाभिपृष्ठकटीमुष्कगुदवंक्षणशेफसाम् ॥ एकद्वारस्तनुत्वक्को मध्ये वंस्तिरधोमुख ॥ अलाब्वा इव रूपेण सिरास्नायुपरिग्रह ॥ १७ ॥

नाभि, पीठ, कमर, पोतेर, गुद, नले और लिंग इनके बीचमें एक मुखवाला, पतली झिल्लीवाला, नीचे, इन्द्रियकी जडमें मुखवाला ऐसा बस्तिस्थान (मूत्राशय अर्थात मसारण) है इसका आकार तूंबीके तुल्य है रगों और नसोंमे बँधा हुआ है और लिपटा हुआ है ॥ १७ ॥

वस्तिर्बस्तिशिरश्चैव पौरुषं वृषणौ गुदम्॥एकसंबन्धिनो ह्येते गुदास्थिविवराश्रिता ॥१८॥मूत्राशयो मलाधारः प्राणायतनमुत्तमम् ॥

पक्वाशयगतास्तत्र नाडयो मूत्रवहास्तु याः ॥१९॥ तर्पयंति सदा मूत्रं सरित सागरं यथा ॥ सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यंते मुखान्यासां सहस्रशः ॥ २०॥ नाडीभिरुपनीतस्य मूत्रस्यामाशयांतरात् ॥ जाग्रतः स्वपतश्चैव स निष्पंदेन पूर्यते ॥२१॥ आमुखात्सलिले न्यस्तः पार्श्वेभ्यः पूर्यते नवः ॥ घटो यथा तथा विद्धि वस्तिर्मूत्रेण पूर्यते ॥२२॥

वस्ति और वस्तिका शिर, पौरुष (मेढ्र), पोतरे और गुदा ये सब परस्पर सम्बन्ध रखते हैं और गुदाका जो अस्थि है उसके विवर (फलाय) पर स्थित है ॥ १८ ॥ मूत्राशय (मसाना) मलका आधार है और प्राण (अग्निसोम) का उत्तम स्थान है पक्वाशयमें प्राप्त हुई जो मूत्रकी वहानेवाली नाडी हैं वे सदा सब कालमें मूत्रकी तृप्ति और वृद्धि करती रहती हैं जैसे नदियां समुद्रमें सदा जल भरती रहती हैं और उन नाडियोंके हजारों मुख हैं (जिनसे मूत्र टपकता है) वे सूक्ष्म होके विदित नहीं हो सकते ॥ १९ ॥ २० ॥ नाडियों करके आमाशयादिकोंसे सब कालमें (दिनरात) जागते सोते टपक टपक करके मूत्र वस्तिस्थान (मूत्राशय या मसाने) में आकर इकट्ठा होता है ॥ २१ ॥ (इसीको दृष्टांतसे सिद्ध करते हैं) जैसे जलमें (या कीचमें) मुँहतलक नवीन घडेको गाड दे तो वह अपने पार्श्वस्थ जलसे भर जाता है इसी भांति वस्ति मूत्रसे भर जाती है (ऐसा समझना चाहिये) ॥ २२ ॥

एवमेव प्रवेशेन वातः पित्तं कफोपि वा ॥ मूत्रयुक्त उपस्नेहात्प्रविश्य कुरुतेऽश्मरीम् ॥ २३ ॥ अप्सु स्वच्छास्वपि यथा निषिक्तासु नवे घटे ॥ कालांतरेण पंकः स्यादश्मरीसंभवस्तथा ॥ २४ ॥

इसी प्रकार जिसमेंसे मूत्र टपकता है यदि वहां (उस स्नेहित पदार्थमें) वायु, पित्त, कफ हो तो वे भी मूत्रमें मिलकर मूत्राशयमें जाते हैं और पथरी पैदा कर देते हैं ॥ २३ ॥ जैसे गँदला पानी नये घडेमें रखदेनेसे थोडे कालमें नीचे कीच जमजाता है ऐसेही पथरीकी उत्पत्ति समझो (कई ऐसा भी कहते हैं कि साफ पानी भी नये घडेमें रखनेसे कालान्तरमें कुछ गँदलापन नीचे जमही जाता है ऐसे पथरी है यह " अप्सु स्वच्छासु " पाठ मानते हैं) और पहला अर्थ करनेवाले " अप्स्वस्वच्छासु " ऐसाही पाठ मानते हैं और यही ठीक भी है ॥ २४ ॥

(श्लो० २१) उन्मेदात् समुद्रियत्रानुत्रसुत्र प्रवयसनव् । (इति पाठ.) ॥

सहन्त्यपो यथा दिव्या मारुतोऽग्निश्च वैद्युतः ॥ तद्वद्बलासं वस्तिस्थं सूष्मा संहन्ति सानिलः ॥ २५ ॥ मारुते प्रगुणे वस्तौ मूत्रं सम्यक् प्रवर्तते ॥ विकारा विविधाश्चापि प्रतिलोमे भवन्ति हि ॥ २६ ॥ मूत्राघाताः प्रमेहाश्च शुक्रदोषास्तथैव च ॥ मूत्रदोषाश्च ये केचिद्वस्तावेव भवन्ति हि ॥ २७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जैसे आकाशमें जलको वायु और बिजलीकी अग्नि बाँधकर ओले बना देती है वैसेही वस्तिस्थानमें प्राप्त हुए कफको भी वायुसे मिली हुई उष्मा (गरमी) जमाकर पथरी बना देती है ॥ २५ ॥ यदि वस्तिस्थानमें वायु अनुलोम (सीधा सानुकूल) रहे तब ठीक २ मूत्रकी प्रवृत्ति होकर कोई विकार नहीं होता और जो वहां वायु प्रतिलोम (उलटा सविकार) हो तब अनेक प्रकारके विकार होते हैं ॥ ॥ २६ ॥ मूत्राघात (मूत्र बंद होना), प्रमेह, वीर्यदोषके रोग (क्लैब्यादि) तथा मूत्रदोषके जो रोग (मूत्रकृच्छ्रादि) हैं वे वस्तिस्थानमेंही होते हैं (डाक्टरोंमें पथरीको " स्टोन " (Stone) कहते हैं और यूनानी हकीम "हिसात" कहते हैं इनके मतसे पथरी, मूत्राशय (मसाने) के सिवाय गुरदे तथा जिगरमें भी हो सकती है परंतु वास्तवमें गुरदे और जिगरमें पथरीकी गुंजायश कहां है परन्तु शर्कराका इन स्थानोंमें भी होना संभव है) ॥ २७ ॥

इति पं०मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० निदानस्थाने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४

अथातो भगंदराणां निदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी भगंदरके निदानकी व्याख्या करते हैं ॥

भगंदरके जातिभेद ।

वातपित्तश्लेष्मसन्निपातागन्तुनिमित्ताः शतपोनकोष्ट्रग्रीवपरिस्राविशम्बूकावर्तोन्मार्गिणो यथासंख्यं पंच भगंदरा भवन्ति ॥ १ ॥

वायु, पित्त, कफ, सन्निपात और आगंतुक इन हेतुओंसे शतपोनक, उष्ट्रग्रीव, परिस्रावी, शम्बूकावर्त्त तथा उन्मार्गी ये पांच भगंदर यथाक्रमसे होते हैं अर्थात् वायुसे शतपोनक (जिसमें चालनीकी भांति मेकडों छिद्र हों), पित्तसे उष्ट्रग्रीव और कफसे परिस्रावी, सन्निपातसे शम्बूकावर्त तथा आगन्तु अर्थात् शस्त्रादिके लगनेके क्षतसे उन्मार्गी नामक भगंदर होता है ॥ १ ॥

भगंदरकी निरुक्ति और पूर्वरूप।

ते तु भगगुदबस्तिप्रदेशदारणाच्च भगंदरा इत्युच्यते ॥२॥ अपक्वाः पिडिकाः पक्वास्तु भगंदरास्तेषां तु पूर्वरूपाणि कटीकपालवेदना गुदकंडूर्दाहः शोफश्च गुदस्य भवति ॥ ३ ॥

ये भग, गुदा और वस्ति प्रदेशके विदारण करनेसे भगंदर कहलातेहैं ॥ २ ॥ ये जबतक बिनापके फूटे होते हैं तबतक पिडिका (गुमडी) कहलातेहैं और पके फूटे पीछे भगंदर कहेजाते हैं इनके पूर्वरूप ये हैं कि कमरके हाडमें दरद हो, गुदामें खाज हो और दाह तथा शोथभी गुदामें हो ॥ ३ ॥

शतपोनक।

तत्रापथ्यसेविना वायुः प्रकुपितः सन्निवृत्तः स्थिरीभूतो गुदमभितोऽगुले द्व्यंगुले वा मांसशोणिते प्रदूष्यारुणवर्णां पिडिकां जनयति ॥ ४ ॥ सास्य तोदादीन्वेदनाविशेषाञ्जनयत्यप्रतिक्रियमाणा च पाकमुपैति ॥५॥ मूत्राशयाभ्यासगतत्वाच्च व्रणः प्रक्लिन्नः शतपोनकवदणुमुखैश्छिद्रैरापूर्यते तानि छिद्राण्यजस्रं फेनानुविद्धमधिकमास्रावं स्रवति ॥ ६ ॥

(इनमेंसे) अपथ्य सेवन करनेवालेके वायु कुपित होकर ठहरके गुदाके आसपास प्राप्त होकर गुदासे एक अंगुल या दो अंगुलपर मांस और रुधिरको दूषित करके लाल वर्णकी फुन्सी उत्पन्न करताहै ॥ ४ ॥ वह फुन्सी शूल और विशेष वेदना उत्पन्न करतीहै और जो उसका प्रतीकार शीघ्र २ नहीं हो तो पकजातीहै ॥ ५ ॥ और मूत्राशयके समीप प्राप्त होनेसे (सदा) गीलाहुआ व्रण चलनीकी भांति छोटे २ मुखवाले छिद्रोंसे भरजाताहै उन छिद्रोंमेंसे सदैव झागोंसे मिलाहुआ पीप आदि अधिक निकलताहै ॥ ६ ॥

व्रणश्च ताड्यते भिद्यते छिद्यते सूचीभिरिव निस्तुद्यते गुदं च विदीर्यते वातमूत्रपुरीषरेतसामप्यागमश्चं तैरेवं छिद्रैर्भवति तं भगंदरं शतपोनकमित्याचक्षते ॥ ७ ॥

व्रणमें ताडनेकीसी, भेदन करनेकीसी, छेदन करनेकीसी पीडा हो सुइयोंकीसी पीडा हो और गुदा विदीर्णसी होती हो तथा उन छिद्रोंमेंसे वायु, मूत्र, विष्टा वीर्य निकलने लगे तो इस प्रकारके भगंदरको शतपोनक कहतेहैं ॥ ७ ॥

(पाठ २) [illegible] । (पाठ ४) [illegible] । (पाठ ६) [illegible] (मि० ८८)। (पाठ ७) [illegible] ॥

उष्ट्रग्रीव ।

पित्तं तु प्रकुपितमनिलेनाधः प्रेरितं पूर्ववदवस्थित रक्ता तन्वीमुच्छ्रितामुष्ट्रग्रीवाकारा पिडिकां जनयति ॥८॥ सास्य चोपादीन्वेदनाविशेषाञ्जनयत्यप्रतिक्रियमाणा च पाकमुपैति ॥९॥ व्रणश्चाग्निक्षाराभ्यामिव दह्यते दुर्गंधमुष्णमास्रावं स्रवत्युपेक्षितश्च वात मूत्रपुरीषरेतांसि विसृजति त भगंदरमुष्ट्रग्रीवमित्याचक्षते ॥१०॥

कुपित हुआ पित्त जब अपानवायु करके नीचेको प्रेरण किया हो तब पहलेकी तरह (गुदाके आसपास) स्थित होकर लाल वर्णकी छोटी ऊपरको उठी हुई ऊंटकी ग्रीवाके आकार फुन्सी पैदा करता है॥८॥ वह फुन्सी मनुष्यके (गुदास्थानमें) चूसनेकीसी, जलानेकीसी अनेक वेदना उत्पन्न करती है और उसका उपाय ठीक नहीं किया जाय तो पक जातीहे ॥ ९ ॥ ओर उसका घाव सदा अग्निसे या क्षारसे जलतासा रहता है दुर्गंध युक्त गरम पीव निकलता है और उपेक्षित (विना ठीक चिकित्सा किये) उस घावमेंसे वायु, मूत्र, विष्ठा और शुक्रभी निकलने लगजातेहै ओर इस भगदरको उष्ट्रग्रीव कहतेहै ॥ १० ॥

परिस्रावी ।

श्लेष्मा तु प्रकुपित समीरणेनाधः प्रेरितः पूर्ववदवस्थित शुक्लावभासा स्थिरा कडूमती पिडिका जनयति ॥११॥सास्य कड्वादीन्वेदनाविशेषाञ्जनयत्यप्रतिक्रियमाणा च पाकमुपैति ॥ १२ ॥ व्रणश्च कठिन. संरम्भी कडूप्राय. पिच्छलमजस्रमास्रावं स्रवत्युपेक्षितश्च वातमूत्रपुरीषरेतांसि विसृजति त भगंदरं परिस्राविणमित्याचक्षते१३

कोपको प्राप्त हुआ कफ अपान वायु करके प्रेरण किया हुआ नीचे प्राप्त होकर गुदाके आसपास सुपेद वर्णकी स्थिर (कडी) खाजयुक्त फुन्सी पैदा करता है ॥ ११ ॥ वह फुन्सी मनुष्यके गुदास्थानमें खाज आदि अनेक पीडा उत्पन्न करती है और जो उसका ठीक उपाय नहीं किया जाय तो पाकको प्राप्त हो जाती है ॥ १२ ॥ और इसका घाव कडा, ठीस्से बहनेवाला और अधिक खाजवाला होता है और घावमेंसे गाढी राध निरंतर निकलती रहती है । यदि ठीक चिकित्सा न हो तो उसमेंसे वायु मूत्र, विष्ठा और वीर्य निकलने लगते है इस भगंदरको परिस्रावी कहते है ॥ १३ ॥

शंबूकावर्त।

वायुः प्रकुपितः प्रकुपितौ पित्तश्लेष्माणौ परिगृह्याधोगत्वा पूर्ववदवस्थितः पादांगुष्ठप्रमाणां सर्वलिंगां पिडिकां जनयति ॥ १४ ॥ सास्य तोददाहकण्ड्वादीन्वेदनाविशेषाञ्जनयत्यप्रतिक्रियमाणा पाकमुपैति ॥ १५ ॥ व्रणश्च नानाविधवर्णमास्रावं स्रवति पूर्णनदीशम्बूकावर्तवच्चात्रे समुत्तिष्ठंति वेदनाविशेषास्तं भगदरं शंबूकावर्तमित्याचक्षते ॥ १६ ॥

कुपित हुआ (अपान) वायु कोप हुए पित्त और कफको ग्रहण करके नीचे (गुदाके पास) गमन करके पहलेकी भांति (गुदाके एक या दो अंगुल दूर) स्थित होकर पैरके अँगूठेके तुल्य सब दोषोंके लक्षणवाली फुन्सी उत्पन्न करता है ॥१४॥ यह फुन्सी चीस, दाह और खाज आदिक अनेक वेदना पैदा करती है और जो उसका ठीक प्रतीकार न हो तो पकजाती है ॥ १५ ॥ और इसका घाव अनेक प्रकारके पीव आदि झिराता है और भरीहुई नदी तथा शंखके आवर्त्त (भँवर अथवा आंटी) के तुल्य जिसमें वेदना उठे उस भगदरको " शंबूकावर्त " कहते हैं यह सान्निपातिक है ॥ १६॥

मूढेन मांसलुब्धेन यदस्थिशल्यमन्नेन सहाभ्यवहृतं यदा गाढपुरीषोन्मिश्रमपानेनाधः प्रेरितमसम्यगागतं गुदं क्षिणोति तत्र क्षतनिमित्तः कोथ उपजायते तस्मिंश्च क्षते पूयरुधिरावकीर्णमांसकोथे भूमाविव जलप्रक्लिन्नायां क्रिमयः संजायन्ते ॥ १७ ॥ ते भक्षयतो गुदमनेकधा पार्श्वतो दारयति तस्य तैर्मार्गैः कृमिकृतैर्वातमूत्रपुरीषरेतांसि निःसरन्ति तं भगदरमुन्मार्गिणमित्याचक्षते ॥ १८ ॥ भवन्ति चात्र—

मांस खानेवाले मूढ लोग जो हड्डीको भोजनके संग खाजाते हैं वह गाढे पुरीषमें मिलकर अपानवायुकरके नीचे (गुदामें) प्रेरणाकी हुई (आडी, टेढी या) बडी होनेसे गुदामें घाव कर देती है फिर घावमें पकाव होजाता है और उस घावमें राध और रुधिरयुक्त मांसके होजानेसे जैसे जलसे गीली पृथ्वीमें कृमि पडजाते हैं वैसेही इसमें भी कृमि उत्पन्न होजाते हैं ॥ १७ ॥ वे कृमि गुदाके

-मांसको खाकर अनेक भांतिसे नरावरकी तरफ विदारण कर देते है तब मनुष्यके उन कृमिकृत मार्गोंसे वायु, मूत्र, विष्ठा तथा वीर्य निकलने लग जाता है उस भगदरको उन्मार्गी कहते है (तथा बवासीरके मस्से काटनेके जखमसे अथवा और भांति चोट लगजानेसे, छिल जाने, कटजाने, रगड लगजाने आदिसे घाव होकर जो भगदर हो वह भी उन्मार्गी ही समझो) ॥ १८ ॥ यहांपर श्लोक है-

उत्पद्यतेऽल्परुक्शोफा क्षिप्रं चाप्युपशाम्यति ॥
पाय्वर्तदेशे पिडिकां सां ज्ञेयान्यां भगदरात् ॥ १९ ॥

जो थोडे दरद और थोडे शोथवाली फुन्सी गुदाके पास हो और शीघ्र शांत होजाय वह भगदरसे पृथक् (सादी फुन्सी) होती है ॥ १९ ॥

भगदरी तु विज्ञेया पिडिकातो विपर्ययात् ॥ पायो स्याद्‌द्व्यंगुले देशे गूढमूला सरुग्ज्वरा ॥२०॥ यानयानान्मलोत्सर्गात्कडूरुग्दाहशोफवान् ॥ पायुर्भवेद्रुजं कट्यां पूर्वरूप भगदरे ॥ २१ ॥

तथा इसके विपरीत गुदासे दो अंगुल दूर गूढ मूलवाली और चीस और ज्वरयुक्त जो फुन्सी होती है वह भगदरी कहलाती है ॥ २० ॥ सवारीपर चलनेसे मलोत्सर्ग करनेसे जो गुदामें खाज, दरद, जलन और शोथ हो तथा कमरमें पीडा हो तो भगदरका पूर्वरूप जानना चाहिये ॥ २१ ॥

घोराः साधयितुं दुःखाः सर्व एव भगदराः ॥
तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थः क्षतजश्च भगदरः ॥ २२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सबही भगदर घोर और दुःखसे साधनयोग्य होते है तिनमें भी त्रिदोषका (शम्बूकावर्त नामक) भगदर तथा क्षतसे उपजा (उन्मार्गी) भगदर ये दोनों असाध्य होते है (यूनानीमें इसे नासूरमिकअद कहते है और डाक्टरोंमें इसी प्रकार गुदाके पासका जखम (Fistula) कहते है इनके यहां इससे कुछ विशेषता नहीं) ॥ २२ ॥

इति पण्डितमुरलीधरशर्मकृ० सुश्रुतसं० भा० टी० निदानस्थाने चतुर्थोऽध्याय ॥ २९ ॥

पञ्चमोऽध्याय ५

अथातः कुष्ठनिदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अठारहों कुष्ठके निदानकी व्याख्या करते हैं ॥

मिथ्याहाराचारस्य विशेषाद्गुरुविरुद्धासात्म्याजीर्णाहिताशिनः स्नेहपीतस्य वान्तस्य वा व्यायामग्राम्यधर्मसेविनो ग्राम्यानूपौदकमांसानि वा पयसाभीक्ष्णमश्नतो यो वा मज्जत्यप्सूष्माभितप्तः सहसा छर्दिं वा प्रतिहन्ति तस्य पित्तश्लेष्माणौ प्रकुपितौ परिगृह्यानिलः प्रवृद्धस्तिर्यग्गाः शिराः संप्रतिपद्य समुद्धूय बाह्यं मार्गं प्रति समन्ताद्विक्षिपति ॥ १ ॥

अनुचित आहार तथा अनुचित आचार (अगम्यागमनादि) करनेसे, विशेष कर गरिष्ठ भोजन करनेसे, विरुद्ध भोजन करनेसे अर्थात् रसविरुद्ध संयोगविरुद्धादि खाने पीनेसे तथा देश, काल, प्रकृति, आदिके प्रतिकूल भोजन करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे और अहित वस्तु खानेसे, (अयुक्त) स्नेहपान करने तथा वमन करनेके पीछे व्यायाम या मैथुन करनेसे और ग्राम्यपशु तथा जलके किनारेके जीव और जलजन्तुओंके मांसका दूधके साथ खानेसे अथवा जो मनुष्य गरमी (धूप, अग्नि आदि) से सतप्त हुआ तत्काल जलमें स्नान करे तथा जो आतेहुए वमनको रोके उसके कुपित हुए कफ और पित्तको बढाहुआ वायु ग्रहणकरके तिर्यग्गामिनी शिराओंमें गमन करके और बाह्यमार्गकी ओर प्राप्तहोकर समस्त शरीरमें फैला देता है ॥ १ ॥

यत्र यत्र च दोषो विक्षिप्तो निःसरति तत्र तत्र मण्डलानि प्रादुर्भवन्त्येवमुत्पन्नस्त्वचि दोषस्तत्र च परिवृद्धिं प्राप्याप्रतिक्रियमाणोऽभ्यन्तरं प्रतिपद्यते धातून्दूषयन् ॥ २ ॥

फिर जहां जहां प्राप्तहुआ दोष बाहरनिकल प्रगट होताहै वहांही वहां मण्डल (चकत्ते) पैदा होजातेहैं और फिर त्वचामें उत्पन्न हुआ दोष ठीक२ प्रतिकार न होने पर वृद्धिको प्राप्तहोकर धातुओंको दूषित करता हुआ भीतरको प्रवेश करजाताहै॥२॥

कुष्ठका पूर्वरूप।

तस्य पूर्वरूपाणि त्वक्पारुष्यमकस्माद्रोमहर्षः कण्डूः स्वेदबाहुल्यमस्वेदनं वाङ्गप्रदेशानां स्वापः क्षतविसर्पणमसृजः कृष्णता चेति ॥

(गय०) [illegible] ॥

इस कुष्ठरोगके पूर्वरूप ये हैं त्वचामें कठोरता हो, अकस्मात् रोम खडे होजावें, खाज होने लगे, अधिक पसीना आवे अथवा बिलकुल पसीना नहीं आवे और अंग प्रत्यंग सोजाया करे (अर्थात् झनझनाट करनेलगें, स्पर्शज्ञान न रहे) और घाव यदि किसी कारणसे होजाय तो वह फैलने लगे (शीघ्र अच्छा न हो) और रुधिरमें कालापन होजाय (तो जाने कि इस मनुष्यके कुष्ठरोग होगा) ॥ ३ ॥

तत्र सप्त महाकुष्ठान्येकादश क्षुद्रकुष्ठान्येवमष्टादश कुष्ठानि भवन्ति४

जिनमेंसे सात महाकुष्ठ और ग्यारह क्षुद्रकुष्ठ हैं ऐसे सब मिलकर अठारह प्रकारके कुष्ठ हैं ॥ ४ ॥

तत्र महाकुष्ठान्यरुणौदुम्बरर्ष्यजिह्वकपालकाकणकपुण्डरीकदद्रुकुष्ठानीति ॥५॥ क्षुद्रकुष्ठान्यपि स्थूलारुष्क महाकुष्टमेककुष्ट चर्मदल विसर्प परिसर्प सिध्म विचर्चिका किटिभ पामा रकसा चेति ॥६॥

इनमेंसे महाकुष्ठ ये हैं १ अरुण, २ औदुंबर, ३ ऋष्यजिह्व, ४ कपाल, ५ काकणक, ६ पुंडरीक, ७ दद्रु ॥५॥ और क्षुद्रकुष्ठ ये हैं १ स्थूलारुष्क, २ महाकुष्ठ, ३ एककुष्ठ, ४ चर्मदल, ५ विसर्प ६, परिसर्प, ७ सिध्म, ८ विचर्चिका, ९ किटिभ, १० पामा, ११ रकसा । इसप्रकार सात महाकुष्ठ और ग्यारह क्षुद्रकुष्ठ मिलकर १८ हुए ॥ ६ ॥

बहुतसे आचार्य दद्रुको क्षुद्रकुष्ठोंमें मानतेहैं और महाकुष्ठको महाकुष्ठोंमें और कई ग्रंथोंमें कुष्ठोंमें नामभेद और क्षुद्रत्व और महत्वमेंभी अंतर है जैसे देखो वाग्भट में और तरह लिखाहै और भावप्रकाशमें औरहीतरह देखो टिप्पणी ॥

सर्वाणि कुष्ठानि सवातानि सपित्तानि सश्लेष्माणि सक्रिमीणि च भवन्त्युत्सन्नतस्तु दोषग्रहणमभिभवात् ॥ ७ ॥

सभी कुष्ठ वातयुक्त होते हैं और सभी पित्तयुक्त तथा कफयुक्तभी होते हैं और सभी सूक्ष्म क्रिमियोंसे व्याप्त होते हैं परंतु जहां जिस दोषकी उत्कटता होती है वहां प्रधानतासे उसी दोषका ग्रहण किया जाता है ॥ ७ ॥

(गद्य ५–६) वाग्भटे महाकुष्ठानि यथा—"[illegible] दद्रु [illegible] ॥ पुण्डरीक[illegible] च महाकुष्ठानि [illegible]" इति [illegible] । [illegible] क्षुद्रकुष्ठानि ॥ भावप्रकाशे महाकुष्ठानि यथा—"[illegible] ॥ [illegible] महाकुष्ठानि [illegible]" इति । [illegible] क्षुद्रकुष्ठानि "[illegible] ॥ [illegible] पामा [illegible] ॥ [illegible] ([illegible]) ॥

तत्र वातेनारुणं पित्तेनौदुम्बरर्ष्यजिह्वकपालकाकणकानि । श्लेष्मणा पौंडरीकं दद्रुकुष्ठं चेति ॥८॥ तेषां तु महत्त्वं क्रियागुरुत्वमुत्तरोत्तर धात्वनुप्रवेशादसाध्यत्वं चेति ॥ ९ ॥

उनमेंसे वायुसे (वायुकी प्रधानतासे) अरुण कुष्ठ होता है और पित्तसे औदुंबर, ऋष्यजिह्व, कपाल और काकणक ये ४ कुष्ठ होते हैं और कफसे पौंडरीक तथा दद्रु होते हैं ॥ ८ ॥ इनमें महत्त्व (महाकुष्ठपन) यही है कि इनकी क्रियामें भारीपन है और उत्तरोत्तर धातुओंमें प्रवेश होजानेमें असाध्यता है ॥ ९ ॥

महाकुष्ठके लक्षण ।

तत्र वातेनारुणभानि तनूनि विसर्प्पीणि तोदभेदस्वापयुक्तान्यरुणानि ॥१०॥ पित्तेन पक्वोदुंबरफलाकृतिवर्णान्यौदुम्बराणि ॥११॥ ऋष्यजिह्वाप्रकाशखरत्वानि ऋष्यजिह्वानि ॥ १२ ॥ कृष्णकपालिकाप्रकाशानि कपालकुष्ठानि ॥१३॥ काकणन्तिकाफलसदृशान्यतीवरक्तकृष्णानि काकणकानि ॥ १४ ॥ तेषां चतुर्णामप्योषचोषपरिदाहधूमायमानानि क्षिप्रोत्थानप्रपाकभेदिस्रावीनि क्रिमिजन्म च सामान्यानि लिंगानि ॥ १५ ॥

जिसमें लाल वर्णकी छोटी २ फैलनेवाली फुन्सियां होती हैं तथा चौंस, भेद (भेदनकीसी पीडा) और स्वाप (स्पर्शका अज्ञान) होता है उसे अरुणकुष्ठ कहते हैं यह वातज है ॥ १० ॥ जो पके गूलरफलके समान हो उसे औदुम्बर कुष्ठ कहते हैं यह पित्तज है ॥११॥ और जो ऋष्य (रुरु मृग) की जिह्वाके समान खरदरापन युक्त हो उसे ऋष्यजिह्व कुष्ठ कहते हैं ॥ १२ ॥ जो कृष्णकपाल (काली-सिपता) के तुल्य अथवा घड़ेके ठिकरेके समान हो वह कपालकुष्ठ कहलाता है ॥१३॥ काकणन्तिका (चिरमटी) फलके सदृश अत्यन्त रक्त और काले घाव जिसमें हों वह काकणक कुष्ठ है ॥ १४ ॥ इन चारों (पैत्तिक कुष्ठों) में दाह, चोष (चूसनेकीसी पीडा) और आसपासमें जलन होना तथा धुआंसे ध्यानसा होना, शीघ्र उत्पन्न होना, शीघ्रही पकना और फूटजाना तथा कृमि उत्पन्न होजाना ये (सामान्य) लक्षण हैं ॥ १५ ॥

पुंडरीकपत्रप्रकाशानि पौंडरीकानि ॥ १६ ॥ अतसीपुष्पवर्णानि ताम्राणि वा विसर्पीणि पिडिकावन्ति च दद्रुकुष्ठानि ॥ १७ ॥

(पाठ १६) पद्मपत्रनिभ स्वल्पान्याहुः पौण्डरीकाणि ।

तयोर्द्वयोरप्युत्सन्नता परिमंडलता कंडूश्चिरोत्थानत्व चेति सामान्यरूपाणि ॥ १८ ॥

जो कमलपत्रके समान हो वह पौंडरीक कुष्ठ है ॥ १६ ॥ अतसीके पुष्पके समान (ऊदे) या तांबेके वर्ण फैलनेवाले और छोटी फुन्सीवाले चकदे हों वे दद्रुकुष्ठ (दाद) कहलातेहै इन (कफज कुष्ठों) में कुछ २ उभार (ऊंचापन) परिमडलता (चकदे होना), खाज होना और बहुत समयतक होना ये सामान्य लक्षण होतेहै ॥ १७ ॥ १८ ॥

क्षुद्रकुष्ठान्यत ऊर्द्ध्वं वक्ष्याम. ॥ १९ ॥

इससे अगाडी क्षुद्रकुष्ठोके (लक्षणों) को वर्णन करते है ॥ १९ ॥

स्थूलानि संधिष्वतिदारुणानि गुरूणि च स्युः कठिनान्यरूंषि ॥ त्वक्कोचभेदस्वपनागसादाः कुष्ठे महत्पूर्वयुते भवंति ॥ २० ॥ कृष्णारुणं येन भवेच्छरीरं तदेककुष्ठं प्रवदत्यसाध्यम् ॥ स्युर्यने कडूव्यथनौपचोपास्तलेपु तच्चर्मदल वदति ॥ २१ ॥

जिसमें सधियोंमें मोटापन युक्त, अतिदारुण नडे और कठोर मण हों उसे स्थूलारुष्क कुष्ठ कहते है । और जिसमे त्वचामे सकोच भेद और स्वाप (स्पर्शाज्ञान) हो तथा अगमे ग्लानि हो तो वह महाकुष्ठ नामक (क्षुद्र) कुष्ठ है ॥ २० ॥ जिसमें काला और लाल शरीर पडजाय उसे एककुष्ठ कहतेहै और यह एककुष्ठ असाध्य है । जिसमें हाथ पावोंके चर्ममें (मोटापन हो) और खाज, व्यथन (दर्द) और दाह तथा चोप हो यह चर्मदल कुष्ठ कहलाता है ॥ २१ ॥

विसर्पवत्सर्पति सर्वतो यस्त्वग्रक्तमासान्यभिभूय शीघ्रम् ॥ मूर्च्छाविदाहारतितोदपाकान्कृत्वा विसर्पः स भवेद्विकारः ॥ २२ ॥

जो विसर्पकी भांति त्वचा रक्त और मांसमें प्राप्त होकर शीघ्र सारे शरीरमें फैल जाय और मूर्च्छा, दाह, अरति तथा तोद (दर्द) और पाक (पक जाना) इन उपद्रवोंसे करके फैले तो उसे विसर्प नामक कुष्ठ कहते है ॥ २२ ॥

(श्लो० २०) गुरूणि च स्थाने स्पर्शगणि इति वा पाठः । गर्भणि तन्त्रा स्थूलानि स्थूलारूकानि त्वक्संकोच कोपभेदस्वपनादि ... यथा त्वक्कोच स्वापोद स्वपनत्व इति महत्पूर्वयुते महाकुष्ठाख्ये ॥ (श्लो० २१) तेषु हस्तपादतलेषु । (श्लो० २२) ... मूर्च्छा ... विविधविसर्प शीघ्रविसर्पि ... (इति डल्हन)॥

शनैः शरीरे पिडका स्रवंत्यः सर्पन्ति यास्तं परिसर्पमाहुः ॥
कण्ड्वन्वितं श्वेतमपायि सिध्मं विद्यात्तनु प्रायश ऊर्ध्वकाये ॥ २३ ॥
राज्योऽतिकण्ड्वतिरुजः सरूक्षा भवन्ति गात्रेषु विचर्चिकायाम् ॥
कण्डूमती दाहरुजोपपन्ना विपादिका पादगतैयमेव ॥ २४ ॥

जो स्रावयुक्त फुन्सी धीरे धीरे शरीरमें फैलने लगे उसे परिसर्पनामक कुष्ठ कहते हैं। जिसमें खाजयुक्त सुफेद और कष्टरहित चकत्ते प्रायः ऊपरके शरीर (छाती, ग्रीवा, मुखादि) पर हों उसे सिध्मनामक कुष्ठ कहते हैं ॥ २३ ॥ जो गात्र (हाथ, पांव आदि) में खाज और दर्दयुक्त रूखी रेखासी (तरेडेसी) हो जायँ उसे विचर्चिका नामक कुष्ठ कहते हैं और यदि ये रेखा दाह और पीडायुक्त केवल पैरोंहीमें हों तो उसेही विपादिका (बिंवाई) कहतेहैं (वास्तवमें विचर्चिका और विपादिका एकही है) ॥ २४ ॥

यत्स्रावि वृत्तं घनमुग्रकण्डु तत्स्निग्धकृष्णं किटिभं वदन्ति ॥ स्रावा-
वकण्डूपरिदाहवद्भिः पामाणुकाभिः पिडकाभिरुक्ता ॥ २५ ॥ स्फोटैः
सदाहैरति सैव कच्छूः स्फिक्पाणिपादप्रभवैर्निरुक्ता ॥ कण्ड्वन्विता
या पिडका शरीरे सस्रावहीना रकसोच्यते सा ॥ २६ ॥

जो स्रावयुक्त चकत्ता गाढा हो और जिसमें उग्र खाज हो तथा चिकना और काला हो उसे किटिभ कुष्ठ कहते हैं। तथा जिसमें स्राव और खाज तथा दाहयुक्त छोटी २ फुन्सियां उठें उसे पामा (पांव खारिश या खुजली) कहते हैं ॥ २५ ॥ और जिसमें अतिदाहयुक्त फफोले (फोडे) फूलें और हाथ पैरोंमें हों उसे कच्छू कहते हैं (यहभी पामाका भेद है इसमें खाज कम होती है और दाह अधिक) तथा जो शरीरपर नन्ही २ अलाईसी खाजयुत और स्रावरहित हों उसे रकसा (सूखी खाज) नामक कुष्ठ कहतेहैं ॥ २६ ॥

अरुःससिध्मं रकसा महच्च यच्चैककुष्ठं कफजान्यमूनि ॥ वायोः
प्रकोपात्परिसर्पमेकं शेषाणि पित्तप्रभवाणि विद्यात् ॥ २७ ॥

स्थूलारुष्क, सिध्म, रकसा महत्कुष्ठ तथा एककुष्ठ ये कफकी उत्कृष्टतासे होतेहैं और वायुकी उत्कृष्टतासे एक परिसर्प होताहै और शेष सब पित्तकी उत्कृष्टतासे होतेहैं ॥ २७ ॥

(श्लो० २३) [illegible] । सिध्मकुष्ठं [illegible] ([illegible]) ॥
(श्लो० २४) [illegible] । (श्लो० २६) [illegible] ॥ (श्लो० २७) [illegible] ॥

किलासमपि कुष्ठविकल्प एव तात्रविधं वातेन पित्तेन श्लेष्मणा चेति। कुष्ठकिलासयोरंतरं त्वग्गतमेव किलासमपरिस्रावि च॥२८॥ तद्वातेन मंडलमरुण परुषं परिध्वंसि च पित्तेन पद्मपत्रप्रतीकाशं सपरिदाहं च श्लेष्मणापि श्वेत स्निग्ध बहलं कंडूमच्च ॥ २९ ॥ तेषु संबद्धमंडलमतर्जात रक्तरोम चासाध्यमग्निदग्धं च ॥ ३० ॥

किलासभी कुष्ठहीका एक भेद है वह किलास तीन प्रकारका होता है वायुसे, पित्तसे, कफसे । कुष्ठ और किलासमें अंतर यही है कि जो त्वचाहीमें प्राप्त हो और नहीं स्रवता हो वह किलास और जो अन्य धातुओंमें व्याप्त हो तथा स्रावयुक्त हो तो किलास कुष्ठही है ॥ २८ ॥ वायुसे हो तो चकदे लाल और खरदरे और दुष्ट होतेहैं, पित्तसे हो तो कमलपत्रके तुल्य और दाहयुक्त होतेहै तथा कफसे हो तो श्वेत, चिकने, मोटे और खाजयुक्त चकदे होतेहै ॥ २९ ॥ इनमेंसे जो बहुतसे चकदे आपसमे मिलेहुए हों और चकद्दोंके भीतर लाल रोम (रूँगटे) हों तो वह किलास (चित्रकुष्ठ) असाध्य होताहै तथा जो अग्निसे जलकर सुपेद चकद्दा स्थिर होजाय वहभी असाध्यही होजाताहै ॥ ३० ॥

कुष्ठेषु रुक्त्वक्संकोचस्वापस्वेदशोफभेदकौण्यस्वरोपघाता' वातेन। पाकावदरणांगुलिपतनकर्णनासाभंगाक्षिरागसत्त्वोत्पत्तय· पित्तेन। कडूवर्णभेदशोफास्रावगौरवाणि श्लेष्मणा ॥ ३१ ॥

कुष्ठोंमें चीस, त्वचाका सुकड़ जाना, स्पर्शज्ञान न रहना, पसीना होना, शोथ, भेदन हो जाना, कौण्य (नष्टकारिता) तथा स्वर बिगडजाना ये उपद्रव वायुसे होते-है और पक जाना, फट जाना, अंगुली गलकर गिर जाना, कान और नाक गल जाना, नेत्र अति लाल होना ये पित्तसे होतेहै । तथा खाज, वर्णमे भेद, सूजन और स्राव यद होना और भारीपन ये कफसे होते है ॥ ३१ ॥

तत्रादिबलप्रवृत्त पौंडरीकं काकणं चासाध्यम्॥३२॥ भवति चात्र–

(गद २८) किलासमित्यत्र कुष्ठविकल्प इत्यत्र कुष्ठ ॥ (गद २९) परिध्वंसि दुष्टं पतन-स्वभावम् ॥ (गद ३०) संबद्धमंडलमित्यत्र संश्लिष्टमंडलमिति पाठांतरम् । अंतर्जातं रक्तरोम येषु–अंत मध्ये जातानि रक्तानि रोमाणि यस्मिन् तदसाध्यमिति ॥ (गद ३१) कौण्यं नष्टकारित्व । कोऽपि स्वेदस्तु अस्वेदनिरोधाय व्याधिरागात् स्वेद स्वादित्यर्थे॥ तत्र तत्र कृमीनां सम्भव (इति डल्हन)॥ (गद ३२) आदिबलप्रवृत्तानि पूर्वोक्तकुष्ठलक्षणानि यथास्वदोषे वर्धन्ते। यथा–पापकर्मजन्मस्य मे प्रथमोऽयिद्विरोगात्मना कुशाय मनागपश्योति द्विप ... ॥

इनमेंसे आदिबलप्रवृत्त कुष्ठ (शुक्र शोणितदोषज अर्थात् जो माता पिताके शोणित,शुक्रके दोषसे हो)तथा पौंडरीक और काकण ये असाध्य है॥३२॥यहां श्लोकहैं-

यथा वनस्पतिर्जात प्राप्य कालप्रकर्षणम्॥ अंतर्भूमिं विगाहेत मूलैर्वृष्टिविवर्द्धितैः ॥ ३३ ॥ एवं कुष्ठं समुत्पन्नं त्वचि कालप्रकर्षतः ॥ क्रमेण धातून्व्याप्नोति नरस्याप्रतिकारिणः ॥ ३४ ॥

जैसे उत्पन्न हुआ वृक्ष समयकी अधिकता पाकर वर्षासे उसकी जड बढ २ कर भीतरही भीतर पृथ्वीमें फैल (कर बलवान् हो) जाता है ॥ ३३ ॥ इसी प्रकारसे त्वचामें उत्पन्न हुआ कुष्ठभी प्रतीकार न करनेवाले मनुष्योंके कालकी अधिकताके कारण क्रमसे धातुओंमें व्याप्त होजाता है ॥ ३४ ॥

धातुगत कुष्ठलक्षण।

स्पर्शहानिः स्वेदनत्वमीषत्कण्डूश्च जायते ॥ वैवर्ण्यं रूक्षभावश्च कुष्ठे त्वचि समाश्रिते ॥ ३५ ॥ त्वक्स्वापो रोमहर्षश्च स्वेदस्याऽभिप्रवर्तनम्॥ कण्डूर्विपूयकश्चैव कुष्ठे शोणितसंश्रिते ॥ ३६ ॥ बाहुल्यं वक्त्रशोषश्च कार्कश्यं पिडकोद्गमः ॥ तोदः स्फोटः स्थिरत्वं च कुष्ठे मांससमाश्रिते ॥ ३७ ॥

त्वचा (चर्म) में कुष्ठ प्राप्त हो तो स्पर्श न सुहावे, पसीना हो, कुछ २ खाज हो, त्वचाका वर्ण पलट जाय तथा रूखापन होजावे ॥ ३५ ॥ यदि रुधिरमें प्राप्त हुआ कुष्ठ हो तो त्वचामें स्वाप हो, रोम खडे होजावें, पसीना बहुत आवे, खाज हो और दुर्गंधता होजाय ॥ ३६ ॥ कुष्ठ मांसमें प्राप्त हो तो मोटे २ चकदे होजावें मुँह सूखासा रहे, (त्वचामें) कडापन होजाय, फुन्सी पैदा होने लगे, दरद हो, त्वचा फटने लगे और चकदे स्थिर (कठोर) पड जावें ॥ ३७ ॥

दौर्गन्ध्यमुपदेहश्च पूयोऽथ क्रिमयस्तथा ॥ गात्राणां भेदनं चापि कुष्ठे मेदः समाश्रिते ॥ ३८ ॥ नासाभंगोऽक्षिरागश्च क्षतेषु क्रिमिसंभवः ॥ भवेत्स्वरोपघातश्च अस्थिमज्जसमाश्रिते ॥३९॥ कौण्यं गतिक्षयोऽङ्गानां संभेदः क्षतसर्पणम्॥ शुक्रस्थानगते लिंगं प्रागुक्तानि तथैव च ॥ ४० ॥

(श्लो०३३) [illegible] ॥ (श्लो०३६) [illegible] ॥ (श्लो०३७) [illegible] ॥ (श्लो०३८) [illegible]

मेदमें प्राप्त हुआ कुष्ठ हो तब दुर्गंधता हो, देह गरम रहे, पीव निकलने लगे और कृमि होजायँ तथा अंगोंका भेदन हो (शरीर फटने लगे) ॥ ३८ ॥ अस्थि और मज्जामें प्राप्त हुआ कुष्ठ हो तब नासिका गलकर भंग होजाय, नेत्र अति लाल रहे, जहां छोटाभी घाव हो वहां कृमि पैदा हों और स्वर बिगड जाय ॥ ३९ ॥ वीर्यमें प्राप्त हुआ कुष्ठ हो तब कौण्य (नष्टकारिता) हो, चलने फिरनेका सामर्थ्य न रहे, अंग फटने लगे और जो घाव हो वहीं फैलने लगे तथा पहले जो त्वचासे लेकर मज्जापर्यंत धातुओंमें प्राप्त कुष्ठके लक्षण कहे वेभी हों ॥ ४० ॥

मातृज पितृज कुष्ठ।

स्त्रीपुंसयो कुष्ठदोषा दुष्टशोणितशुक्रयो ॥
यदपत्य तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥ ४१ ॥

जिन स्त्री तथा पुरुषोंके कुष्ठ होता है उनका शोणित और वीर्य कुष्ठदोषसे दूषित होता है इससे उनसे उत्पन्न हुए संतानकोभी कुष्ठयुक्तही समझना चाहिये (प्रायः कुष्ठियोंकी संतानकोभी काल पाकर कुष्ठ होही जाता है) ॥ ४१ ॥

कुष्ठकी साध्यासाध्यता।

कुष्ठमारभवत साध्य त्वग्रक्तपिशिताश्रितम् ॥
मेदोगत भवेद्याप्यमसाध्यमतं उत्तरम् ॥ ४२ ॥

जितेंद्रिय ओर हित पथ्य करनेवाले मनुष्यका त्वचा, रक्त और मांसगत कुष्ठभी साध्य होता है और मेदोगत कुष्ठ याप्य होता है और इससे ऊपर अर्थात् अस्थि, मज्जा और शुक्रगत कुष्ठ सर्वथा असाध्यही होता है ॥ ४२ ॥

ब्रह्मस्त्रीसज्जनवधपरस्वहरणादिभि ॥ कर्मभि पापरोगस्य प्राहु-
कुष्ठस्य संभवम् ॥ ४३ ॥ म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातेपि गच्छ-
ति ॥ नातं कष्टतरो रोगो यथा कुष्ठ प्रकीर्त्तितम् ॥ ४४॥

ब्राह्मण, स्त्री, सज्जन (महात्मा) ऐसे मनुष्योंके मारने तथा पराया द्रव्य हरलेना इत्यादि पापोंसे तथा अन्य पापरोगोंके कर्मो करके शरीरमें कुष्ठरोग उत्पन्न होता-है ऐसे ऋषि वर्णन करते हैं ॥ ४३ ॥ यदि कोई मनुष्य कुष्ठरोगसे मर जाता है तो दूसरे जन्म लेनेपरभी उसके संग जाता है और उसके शरीरमें होजाता है इस कारण जैसा कठिन (दुःसाध्य अतिकष्टदायक बुरा) कुष्ठका रोग है उससे अधिक कोई रोगभी कष्टतर (अति कष्टदायक बुरा) नहीं है (अर्थात् कुष्ठ रोगके

(श्लो० ४२) [illegible] ॥

परमाणु ऐसे स्थिर हो जाते हैं कि आत्मासे सम्बद्ध हो दूसरे जन्ममेंभी पापपुण्यकी भांति लग जाते हैं क्योंकि यह व्याधि प्रायः उग्र पापोंसे होतीहै इससे जन्मान्तर तक लग रहती है) ॥ ४४ ॥

आहाराचारयोः प्रोक्तामास्थाय महतीं क्रियाम् ॥ औषधानां विशिष्टानां तपसश्च निषेवणात् ॥ यस्तेन मुच्यते जन्तुः स पुण्यां गतिमाप्नुयात् ॥ ४५ ॥

आहार, विहार और आचार तथा विशेष औषधोंकी यथोक्त महती क्रियाओंको धारण करके (अर्थात् यथोक्त बडी २ चिकित्साकी क्रिया और पथ्यादि करके) तथा तप (दान पुण्य, ईश्वराराधन आदि) के सेवन करनेसे जो इस कुष्ठरोगसे छूट जाय वह पुण्यगतिको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥

कुष्ठादिका सङ्क्रामकत्व ।

प्रसंगाद्गात्रसंस्पर्शान्निश्वासात्सहभोजनात् ॥ सहशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥ ४६ ॥ कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च ॥ औपसर्गिकरोगाश्च सङ्क्रामन्ति नरान्नरम् ॥ ४७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

प्रसंग करनेसे, शरीरका स्पर्श करनेसे, रोगीके श्वासकी वायु लग जानेसे, साथ भोजन करनेसे, एक खाट तथा बिछौनेपर सोनेसे, एक आसनपर बैठनेसे, रोगीके पहनेहुए वस्त्र, माला आदिके पहरनेसे तथा रोगीका उच्छिष्ट चंदनादि लगानेसे कुष्ठका रोग तथा एक प्रकारका ज्वर और शोष (शरीर सूखनेका रोग), नेत्रका अभिष्यंद रोग और औपसर्गिक रोग (शीतलारोग, मसूरिका आदि) ये एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यमें प्रवेश कर जातेहैं(अर्थात् दूसरों के भी होजातेहैं) ४६।४७॥

कुष्ठको सामान्यतासे डाक्टरीमें लेपरा (Leprosy) और यूनानीमें जुजाम कहते हैं इनके यहां और २ प्रकारसे इनके भेद है जिसपका डाक्टरीमें एग्जिमा और यूनानीमें सुर्खबाद कहते हैं दादको डा० हरपीज और यूनानीमें कोबा तथा पामाको डा० में खेज और यू० हमफ कहतेहैं तथा किलास श्वित्र (श्वेत) कुष्ठको कहतेहैं और यू० बरस कहतेहैं इत्यादि ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मा० सुश्रुत० भा० टी० निदानस्थाने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्याय ६

अथातः प्रमेहनिदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे प्रमेहके निदानकी व्याख्या करते हैं ॥

दिवास्वप्नाव्यायामालस्यप्रसक्त शीतस्निग्धमधुरमद्यद्रवान्नपानसेविन पुरुष जानीयात्प्रमेही भविष्यतीति॥ १॥ तस्य चैव प्रवृत्तस्यापरिपक्वा एव वातपित्तश्लेष्माणो यदा मेदसा सहैकत्वमुपेत्य मूत्रवाहिस्रोतास्यनुसृत्याधो गत्वा वस्तेर्मुखमाश्रित्य निर्भिद्यते तदा प्रमेहाञ्जनयंति ॥ २ ॥

दिनको सोनेवाले, परिश्रम (शारीरिक मेहनत) न करनेवाले, अत्यत आलस्यमें आसक्त होनेवाले तथा शीतल, चिक्कना, मधुर पदार्थ अत्यत खानेवाले, अधिक मद्य (तथा नशेकी वस्तु खाने) पीने वाले ओर अधिक पतले पदार्थही विशेप भोजन करनेवाले तथा पतले शरबत दुग्ध तक्रादि अधिक नित्य पान करनेवाले पुरुषको जान लेना चाहिये कि यह प्रमेहरोगसे रोगी होगा॥ १॥ऊपर लिखे जैसे आहार विहारमें प्रवृत्त मनुष्यके विना परिपाके हुएही वायु, पित्त, कफ जब मेद धातुके सग मिल जातेहै तव मूत्रवाही स्रोतों (मूत्र उतारनेवाली शिराओं) में अनुसरण करके नीचे जाकर वस्तिके मुखमे समाश्रित होकर बाहर निकलने लगतेहैं तव प्रमेह रोग उत्पन्न करते है ॥ २ ॥

तेपा तु पूर्वरूपाणि हस्तपादतलदाह स्निग्धपिच्छलगुरुता गात्राणा मधुरशुक्लमूत्रता तन्द्रा साद. पिपासा दुर्गन्धश्च श्वासस्तालुगलजिह्वादन्तेपु मलोत्पत्तिर्जटिलीभाव केशानां वृद्धिश्च नखानाम् ॥ ३ ॥ तत्राविलप्रभूतमूत्रलक्षणा सर्व एव प्रमेहा । सर्व एव सर्वदोपसमुत्था सह पिडकाभि ॥ ४ ॥

प्रमेहोंके पूर्वरूप ये होतेहै हथेली और तलवे गरम रहें और शरीरमें चिकनापन, गाढापन, भारीपन हो मूत्र मधुर और सुपेद हो, तंद्रा (आंखें झपीसी रहे) और साद (थकानसी रहे) तथा तृषा विशेष हो और श्वास दुर्गंधयुक्त हो तथा तालु, गला, जीभ, दांत इनमें मैल अधिक पैदा हो और बाल (मैल और उलझेसे हों) तथा नाखून बहुत बढे ॥ ३ ॥ और मलिन (गँदला) तथा अतिमूत्र होना सब प्रमेहोंका मुख्य लक्षण है और सारेही प्रमेह सब दोषोंसे उत्पन्न हुए तथा पिडिकाओंसे युक्त होतेहैं (जैसे कुष्ठ सभी सर्वदोषज होकर जिसकी उत्कटता होती है वह उसीके नामसे प्रसिद्ध होता है वैसेही इसेभी समझो) ॥ ४ ॥

(पाठ २) निर्भिद्य नि [illegible] ([illegible]) ॥

तत्र कफादुदकेक्षुसुरासिकताशनैर्लवणपिष्टसान्द्रशुक्रफेनमेहा दश साध्या दोषदूष्याणां समक्रियत्वात् ॥५॥ पित्तान्नीलहारिद्राम्लक्षारमंजिष्ठाशोणितमेहाः षट् याप्या दोषदूष्याणां विषमक्रियत्वात् ॥ ६ ॥ वातात्सर्पिर्वसाक्षौद्रहस्तिमेहाश्चत्वारो साध्यतमा महात्ययिकत्वात् ॥ ७ ॥

तहां कफसे उत्पन्न हुए उदकप्रमेह, इक्षुप्रमेह, सुराप्रमेह, सिकताप्रमेह, शनैःप्रमेह, लवणप्रमेह पिष्टप्रमेह, सांद्रप्रमेह, शुक्रप्रमेह,और फेनप्रमेह, ये दश साध्य है क्योंकि इनमे दोष (कफ) और दूष्य (वसादि) की क्रिया (चिकित्सा) सम अर्थात् सीधी है (कफप्रमेहमें कफनाशक रूक्षक्रिया ठीक वसा आदिकी नाशक होती है)॥५॥पित्तसे उत्पन्न हुए नीलप्रमेह,हारिद्रप्रमेह,अम्लप्रमेह,क्षारप्रमेह,मंजिष्ठाप्रमेह और शोणितप्रमेह ये छः याप्य है क्योंकि दोष (पित्त) और दूष्य (वसाआदि) की क्रियामें विषमता है अर्थात् जो क्रिया (शीतक्रिया) पित्तको शांत करनेवाली हो वह वसा आदिको बढानेवाली होतीहै ॥ ६ ॥ वायुसे उत्पन्न हुए सर्पिःप्रमेह, वसाप्रमेह, क्षौद्रप्रमेह और हस्तिप्रमेह ये चार अत्यंत असाध्य है क्योंकि इनकी क्रियामें अत्यंत कठिनता है अर्थात् प्रधान दोष (वायु) के नाशकी स्निग्धक्रिया प्रमेहवर्द्धिनी स्वभावहीसे होती है तथा प्रमेहनाशक रूक्षक्रिया वायुको बढानेवाली होतीहै इसीसे ये असाध्य हैं ॥ ७ ॥

तत्र वातपित्तमेदोभिरन्वितः श्लेष्मा श्लेष्मप्रमेहाञ्जनयति वातकफशोणितमेदोभिरन्वितं पित्तं पित्तप्रमेहान्कफपित्तवसामज्जमेदोभिरन्वितो वायुर्वातप्रमेहान् ॥ ८ ॥

इनमेंसे वायु, पित्त और मेदसे मिलाहुआ कफ (प्रधान होकर) कफके प्रमेहोंको उत्पन्न करता है । और वायु, कफ, रुधिर और मेदसे मिला हुआ पित्त (प्रधान होकर) पित्तके प्रमेहोंको उत्पन्न करता है तथा कफ, पित्त, वसा, मज्जा और मेदसे मिला हुआ वायु (प्रधान होकर) वायुके प्रमेहोंको उत्पन्न करता है ॥ ८ ॥

(गद्य ५ । ६ । ७) प्रमेहेष्वपि कुष्ठवत् मतान्तरे कृतनिमाणोचम् । तथाह चरकः—उदकमेहश्चेक्षुवालिकारसमेहश्च सान्द्रमेहश्च सान्द्रप्रसादमेहश्च शुक्रमेहश्च शुक्रमेहश्च शीतमेहश्च सिकतामेहश्च शनैर्मेहश्च लालामेहश्चेति दश कफजाः । पित्तजास्तु क्षारमेहः कालमेहो नीलमेहो लोहितमेहो मांजिष्ठमेहो हारिद्रमेहश्चेति षट् । वातजास्तु वसामेहो मज्जमेहो हस्तिमेहो मधुमेहश्चेति चत्वारः ॥ दोषदूष्यानाभिर्य प्रमेहे कफपित्तानिलो दोषाः रक्तमांसमेदोमज्जशुक्रौजः अम्बुरसो दूष्या ॥

तत्र श्वेतमवेदनमुदकसदृशमुदकमेही मेहति । इक्षुरसतुल्यमिक्षुमेही सुरामेही सुरातुल्यम् । सरुजं सिकतानुविद्धं सिकतामेही । शनैः सकफं मृल्पं शनैर्मेही । विशदं लवणतुल्यं लवणमेही । हृष्टरोमा पिष्टरसतुल्यं पिष्टमेही । आविलं सान्द्रं सान्द्रमेही । शुक्रतुल्यं शुक्रमेही । स्तोकं स्तोकं सफेनं फेनमेही मेहति ॥ ९ ॥

(कफके जो १० प्रमेह है) उनमेंसे सुपेद, विना पीडाके जलतुल्य मूत्र होनेसे १ उदकप्रमेह होता है । २ इक्षुप्रमेहवालेका मूत्र इक्षु (ऊख) के रसके तुल्य होता है । ३ सुराप्रमेहके रोगीका मूत्र सुरा (मदिरा) के समान होता है । ४ सिकताप्रमेहवालेका मूत्र पीडा सहित और छोटी २ सिकतामें मिला हुआ उतरता है । ५ शनैः प्रमेहवालेका मूत्र थोडा २ कई वार और गँदला उतरता है । ६ लवणप्रमेहवालेका मूत्र लवणके जलके तुल्य और उज्ज्वल होता है । ७ पिष्टप्रमेहवालेके शरीरपर रोमांच होते है और उसका मूत्र पिट्ठीके जलके समान होता है । ८ सांद्रप्रमेहवालेका गँदला और गाढा मूत्र होता है । ९ शुक्र प्रमेहवालेके मूत्रमें शुक्रके तुल्य पदार्थ होता है । १० फेनप्रमेहवालेका मूत्र फेन (झागयुक्त) होता है और थोडा २ उतरता है ॥ ९ ॥

अत ऊर्द्ध्वं पित्तनिमित्तान्वक्ष्यामः ॥ १० ॥

यहांसे अगाडी पित्तजनित प्रमेहोंके लक्षण कहते है ॥ १० ॥

सफेनमच्छं नीलं नीलमेही मेहति । सदाहं हरिद्राभं हरिद्रामेही । अम्लरसगन्धमम्लमेही । स्रुतक्षारप्रतिमं क्षारमेही । माञ्जिष्ठोदकप्रकाशं माञ्जिष्ठमेही । शोणितप्रकाशं शोणितमेही मेहति ॥ ११ ॥

नीलप्रमेहवालेका मूत्र झागयुक्त, स्वच्छ, नील वर्ण होता है । और हरिद्राप्रमेहवालेका मूत्र हल्दीके तुल्य (पीला) होता है और उसमें दाह भी होता है अर्थात् मूत्र जलनयुक्त होता है । अम्लप्रमेहवालेके मूत्रमें अम्लरस (खट्टापन) होता है और खटाईकीसी गंध होती है । क्षारप्रमेहवालेका मूत्र घुले हुए क्षारके तुल्य होता है और मांजिष्ठप्रमेहवालेका मूत्र मँजीठके क्वाथके तुल्य लाल होता है । और शोणित प्रमेहवालेका मूत्र रुधिरके तुल्य अति लाल होता है (अथवा शोणितही मूत्रमें आता है) ॥ ११ ॥

अत ऊर्द्ध्वं वातनिमित्तान्वक्ष्यामः ॥ १२ ॥

यहांसे अगाडी वातजनित प्रमेहोंके लक्षण कहते है ॥ १२ ॥

सर्पिःप्रकाशं सर्पिर्मेही मेहति। वसाप्रकाश वसामेही। क्षौद्रसवर्णं क्षौद्रमेही। मत्तमातंगवदनुप्रबद्ध हस्तिमेही मेहति ॥१३॥

घृतके तुल्य सर्पिःप्रमेहवालेका मूत्र होता है। और वसाप्रमेहवालेका वसा (चरबीका स्नेह) जैसा मूत्र होता है। और क्षौद्रप्रमेहवालेका मूत्र शहतके वर्णका होता है और उसमे शहततुल्यही रस (माधुर्य) होता है। हस्तिप्रमेहवालेका मूत्र मदोन्मत्त हाथीके मदके समान होता है॥ १३॥

कफप्रमेहके उपद्रव।

मक्षिकोपसर्पणमालस्यं मांसोपचय. प्रतिश्यायः शैथिल्यारोचकाविपाका. कफप्रसेकच्छर्दिनिद्राकासश्वासाश्चेति श्लेष्मजानामुपद्रवा ॥ १४॥

मूत्रपर मक्षिका (मक्खियां) आकर बैठना, आलस्य, मांसकी वृद्धि, प्रतिश्याय, शिथिलता, अरुचि, भोजनका परिपाक न होना, मुँहसे राल बहना, वमन होना, निद्रा अधिक आना, खाँसी होना, श्वास होना ये कफप्रमेहके उपद्रव है॥१४॥

पित्तप्रमेहके उपद्रव।

वृषणयोरवदरण वस्तिभेदो मेढ्रतोदो हृदि शूलमम्लीकाज्वरातीसारारोचका वमथु परिधूमायन दाहो मूर्च्छा पिपासा निद्रानाश पाण्डुरोग. पीतविण्मूत्रत्व चेति पैत्तिकानाम्॥ १५॥

वृषणोंमे फूटन, वस्तिस्थानमें भेदनकीसी पीडा, मेढ्र इंद्रियमें दरद, हृदयमे शूल, खट्टी डकारें आना, तप, अतिसार, अरुचि, वमन, भीतर धूवांसा उठना, दाह, मूर्च्छा, तृषा, निद्रा नहीं आना, पांडुरोग तथा मलमूत्रका पीला होना ये पित्तप्रमेहके उपद्रव हैं॥ १५॥

वातप्रमेहके उपद्रव।

हृद्ग्रहो लौल्यमनिद्रा स्तंभ कंप शूल बद्धपुरीषत्व चेति वातजानाम्॥ १६॥

हृदय जकडासा रहना, चपलता, निद्रा न आना, शरीर अकड्जाना, शरीर कांपना, शूल होना और मलका बद्ध होजाना ये वातप्रमेहके उपद्रव है॥ १६॥

एवमेते विंशति. प्रमेहा. सोपद्रवा व्याख्याता ॥ १७॥

इस प्रकार ये वीस प्रमेह उपद्रवोंसहित वर्णन किये गये है॥ १७॥

प्रमेहपिडका।

तत्र वसामेदोभ्यामभिपन्नशरीरस्य त्रिभिर्दोषैरनुगतधातोः प्रमेहिणो दश पिडका जायते । तद्यथा शराविका सर्षपिका कच्छपिका जालिनी विनता पुत्रिणी मसूरिका अलजी विदारिका विद्रधिका चेति ॥ १८ ॥

इन प्रमेहवालोमेंसे जिनका शरीर वसा ओर चरबीसे व्याप्त (व्यापन्न) ह और जिनकी धातु तीनो दोषोंके अनुगत होरही हो उनके दश प्रकारकी प्रमेहपिडका उत्पन्न होजाती हे जैसे १ शराविका, २ सर्षपिका, ३ कच्छपिका, ४ जालिनी, ५ विनता, ६ पुत्रिणी, ७ मसूरिका, ८ अलजी, ९ विदारिका, १० विद्रधिका ॥ १८॥

प्रमेहपिडकाके लक्षण।

शरावमात्रा तद्रूपा निम्नमध्या शराविका ॥ गौरसर्षपसंस्थाना तत्प्रमाणा च सर्षपी ॥ १९ ॥ सदाहा कूर्मसंस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधै ॥ जालिनी तीव्रदाहा तु मांसजालसमावृता ॥ २० ॥ महती पिडका नीला पिडका विनता स्मृता ॥ महत्यल्पान्विता ज्ञेया पिडका सा तु पुत्रिणी ॥ २१ ॥ मसूरसमसंस्थाना ज्ञेया सा तु मसूरिका ॥ रक्ता सिता स्फोटवती दारुणा त्वलजी भवेत् ॥२२॥ विदारीकंदवद्वृत्ता कठिना च विदारिका ॥ विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया विद्रधिका बुधै ॥ २३ ॥

शरावेके समान और शरावेके आकार बीचमेंसे नीची ऐसी पिडकाको शराविका कहते हे, सुपेद सरसोंके आकार और उसीके प्रमाण सर्षपिका होती है ॥ ॥ १९ ॥ जो दाहयुक्त हो और कछुवेके समान हो उसे कच्छपिका कहते है, और जिसमें तीक्ष्ण दाह हो और मांसके जालसे आच्छादित हो उसे जालिनी कहते है ॥ २० ॥ जो पिडका बडी हो, नीलवर्ण हो वह विनता नाम पिडका होती है । तथा जो एक बडी पिडका हो और उसके आस पास छोटी छोटी अनेक हों तो वह पुत्रिणी कहलाती है ॥ २१ ॥ जो मसूरके समान हो वह मसूरिका कहलाती है । तथा जो लाल सुपेद फफोलेवाली दारुण पिडका हो उसे अलजी कहते हैं ॥ २२ ॥ जो विदारीकंदके समान फैली हुई गोल हो, कडी हो वह विदारिका है । तथा जिसमें विद्रधिके लक्षण हों वह वैद्योंने विद्रधिका नाम पिडका कही है २३॥

ये यन्मयाः स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु तन्मयाः ॥ २४ ॥

जिनको जिस २ प्रधान दोषका प्रमेह होता है उनको उसही दोषकी ये प्रमेह-पिडका होती है जैसे कफप्रमेहमें कफपिडका और पित्तप्रमेहमें पित्तपिडका ऐसेही वातप्रमेहमें वातपिडका होती हैं ॥ २४ ॥

पिडकाकी असाध्यता ।

गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्माणि चोत्थिता ॥

सोपद्रवा दुर्बलस्य पिडका परिवर्जयेत् ॥ २५ ॥

गुदा, हृदय, शिर, बाहुमूल, पीठ तथा अन्य मर्मस्थानोंमें उठी हुई प्रमेहपिडका और उपद्रवोंसहित दुर्बल मनुष्यकी पिडका त्यागने योग्य (असाध्य) हैं ॥ २५ ॥

वातप्रमेहकी असाध्यता ।

कृत्स्नं शरीरं निष्पीड्य मेदोमज्जवसायुतः ॥

अधः प्रक्रमते वायुस्तेनासाध्यास्तु वातजाः ॥ २६ ॥

समस्त शरीरको निचोडकर मेद, मज्जा और वसासहित वायु नीचे (मूत्रमार्गकी ओर) सक्रमण करता है इस कारण वातजनितप्रमेह असाध्य होते हैं ॥ २६ ॥

प्रमेहका परिज्ञान ।

प्रमेहपूर्वरूपाणामाकृतिर्यत्र दृश्यते ॥ किंचिचाप्यधिकं मूत्रं तं प्रमेहिणमादिशेत् ॥ २७ ॥ कृत्स्नान्यर्द्धानि वा यस्मिन् पूर्वरूपाणि मानवे ॥ प्रवृत्तमूत्रमत्यर्थं तं प्रमेहिणमादिशेत् ॥ २८ ॥

जिस मनुष्यके प्रमेहके पूर्वरूपोंकी आकृति (दंतादिपर मल, हथेली, तलवे जलना आदि) दीखे और कुछभी अधिक मूत्र उतरने लगे तो उस मनुष्यको प्रमेहका रोगी जानलेना चाहिये ॥२७॥ जिस मनुष्यमें समस्त पूर्वरूपके लक्षण हों अथवा आधे ही लक्षण हों परन्तु अधिक मूत्र आवे तो उस मनुष्यको प्रमेहका रोगी जानना चाहिये ॥ २८ ॥

पिडकापीडितं गाढमुपसृष्टमुपद्रवैः ॥ मधुमेहिनमाचष्टे स चासाध्यः प्रकीर्तितः ॥ २९ ॥ स चापि गमनात्स्थानं स्थानादासनमिच्छति ॥ आसनाद्वृणुते शय्यां शयनात्स्वप्नमिच्छति ॥ ३० ॥

(श्लो० २४) "[illegible] ॥" (इति माधवः) ॥

(श्लो० २५) सोपद्रवा इति-"[illegible] । [illegible] पिडका- [illegible] ॥" (इति [illegible]) ॥

जो पुरुष पिडकासे अतिपीडित हो और प्रमेहके उपद्रवोंसे व्याप्त हो उसे मधुमेह होगा ऐसा जानना और यह मधुप्रमेह असाध्य होता है ॥ २९ ॥ प्रमेहका रोगी चलनेकी अपेक्षा ठहरनेकी इच्छा किया करता है और ठहरने (खडे होने) से बैठजानेकी वांछा किया करता है और बैठे रहनेसे लेटना चाहता है और लेटनेसे फिर सो जानेकी इच्छा रखता है ॥ ३० ॥

यथा हि वर्णानां पञ्चानामुत्कर्षापकर्षकृतेन संयोगविशेषेण शबलबभ्रुकपिलकपोतमेचकादीनां वर्णानामनेकेषामुत्पत्तिर्भवति एवमेव दोषधातुमलाहारविशेषेणोत्कर्षापकर्षकृतेन संयोगविशेषेण प्रमेहाणां नानाकारणं भवति ॥ ३१ ॥ भवति चात्र–

जैसे पांच मुख्य रंगो (सुपेद, हरे, काले, पीले और लाल) के बहुत ओर थोडे मिलानेसे शबल (चितकबरा), बभ्रु (नकुलई), कपिल (सुनहरा), कपोत (फाकतई) और मेचक (सुरमई) इत्यादि अनेक प्रकारके रंगोंकी उत्पत्ति होजातीहै इसी भांति दोष (वायु, पित्त, कफ) धातु (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) और मल तथा आहारविशेषके अधिक न्यूनादिक संयोग होनेसे प्रमेहोंके भी अनेक प्रकारके कारण (रूप और भेद आदि) होजाते हैं ॥ ३१ ॥ इस विषयमें श्लोक है–

सर्वे एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः ॥
मधुमेहत्वमायान्ति तदासाध्या भवन्ति हि ॥ ३२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सबही प्रमेह प्रतिक्रिया (उपाय) नहीं करनेवाले पुरुषोंके बहुत समयतक रहनेसे मधुप्रमेह होजाते हैं और उस अवस्थामें वे असाध्य होजाते है। (यूनानी इल्ममें इसे "जिरयान" कहतेहैं और डाक्टर "डायबीटीज़"कहते हैं)॥ ३२ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवैद्यवि० सुश्रुतसं० भा० टी० निदानस्थाने षष्ठोऽध्याय ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

अथात उदराणां निदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे आगाडी उदररोगोंके निदानकी व्याख्या करतेहैं।

धन्वन्तरिर्धर्मभृतां वरिष्ठो राजर्षिरिन्द्रप्रतिमो यभूव ॥
ब्रह्मर्षिपुत्रं विनयोपपन्नं शिष्यं शुभं सुश्रुतमन्वशासत् ॥ १ ॥

राजर्षि, धार्मिकोंमे श्रेष्ठ ऐसे श्रीभगवान् धन्वंतरिजी जो इन्द्रके समान प्रतापी हुए वे विनयसे प्राप्त हुए ब्रह्मर्षि (विश्वामित्रके) पुत्र अपने शिष्य सुश्रुतको (इस-प्रकारके उदररोगोंके विषयमे) शिक्षा देते भये ॥ १ ॥

उदररोगोकी संख्या और हेतु ।

पृथक्समस्तैरपि चेह दोषैः प्लीहोदरं बद्धगुदं तथैव ॥ आग-
तुकं सप्तममष्टमं च दकोदरं चेति वदंति तानि ॥ २ ॥ सुदुर्व-
लाग्नेरहिताशनस्य सशुष्कपूत्यन्ननिषेवणाद्वा ॥ स्नेहादिमिथ्या
चरणाद्धि जंतोर्वृद्धिं गतो कोष्ठमभिप्रपन्ना ॥ गुल्माकृतिव्यंजि-
तलक्षणानि कुर्वंति घोराण्युदराणि दोषा ॥ ३ ॥

उदररोग ८ प्रकारका होता है जैसे पृथक् २ दोषोसे (यथा १ वातोदर, २ पित्तोदर, ३ कफोदर, तथा समस्त दोषो (सन्निपात) से ४ सन्निपातोदर, ५ प्लीहोदर, ६ बद्धगुदोदर, ७ आगतुक (क्षतोदर परिस्राव्युदर) और ८ आठवां दकोदर (जलोदर) इसप्रकार इनको उदररोग (अथवा जठररोग) कहतेहै॥२॥ अत्यत दुर्बल जठराग्निवाला मनुष्य जो अहित भोजन करे अथवा सूखा वासी, सड़ा अन्न भोजन करे अथवा अयोग्य रीतिसे स्नेहपान, वमन, रेचनादिका आच-रण करे तो उससे मनुष्यके कोष्ठ (उदर)में वात आदि दोष वढकर गुल्मके-आकार और प्रगट लक्षणवाले ऐसे घोर उदररोगो (वातोदर, प्लीहोदर, जलो-दरादि) को उत्पन्न करतेहै ॥ ३ ॥

कोष्ठादुपस्नेहवदन्नसारो निःसृत्य दुष्टोऽनिलवेगनुन्न ॥
त्वचः समुन्नम्य शनैः समंताद्विवर्द्धमानो जठरं करोति ॥ ४ ॥

उपस्नेहकी भांति (जैसे नये घडेमेंसे चिकनाई बाहरकी तरफ झिर आतीहै तैसे) कोष्ठ (आमाशय) से निकला हुआ दुष्ट अन्नका सार वायुकरके प्रेरित हुआ बाहरकी त्वचाको नम्र करके धीरे धीरे सब ओरसे बढकर उदररोग उत्पन्न करताहै ॥ ४ ॥

उदररोगोंका पूर्वरूप ।

तत्पूर्वरूपं बलवर्णकांक्षा वलीविनाशो जठरे हि राज्यः ॥ जीर्णा-
परिज्ञानविदाहवत्यो वस्तौ रुजः पादगतश्च शोफः ॥ ५ ॥

(श्लो० ४) उपस्नेहवदिति न्यायतः उपस्नेह यथा नूतन घटोऽभिवर्द्धते ... इव प्रकाश बाहर आते हुए ... अन्नसारो ... दुष्टोऽनिलवेगनुन्न ... जठररोगं करोति (इति शल्यः) ॥

उदररोगोका पूर्वरूप यह है कि, बल और वर्णकी कांक्षा (अर्थात् नाश) हो और उदरपरसे त्रिवली (सलवटे) जाती रहें अर्थात् पेट तनजाय और रोमोंकी पंक्ति उभर आवे और भोजन पचा या नहीं पचा इसका ज्ञान जाता रहे और विदाह हो तथा बस्तिस्थानमें पीडा हो और पावोंपर शोथ होजाय ॥ ५ ॥

वातोदर।

सशूलं पार्श्वोदरपृष्ठनाभीर्विवर्द्धते कृष्णशिरावनद्धम्॥

सशूलमानाहवदुग्रशब्दं सनोदभेदं पवनात्मकं तत्॥ ६॥

जिसमें पँसवाडे, पेट, पीठ और नाभि जकडेसे रहें और पेट फूले इसपर काली नसे चमकें और शूल, अफरा हो, पेटमें शब्द (गुड २) बहुत हो और दरद तथा भेदनकीसी पीडाके साथ बढे उसे वातोदर कहतेहै ॥ ६ ॥

पित्तोदर।

यच्चोषतृष्णाज्वरदाहयुक्तं पीतं शिरा यत्र भवन्ति पीताः॥

पीताक्षिविण्मूत्रनखाननस्य पित्तोदरं तत्त्वचिराभिवृद्धि॥७॥

जो चोष, तृषा, ज्वर और दाहसे युक्त हो पेटकी फूलनहमें पीलापन हो और उसमें नसेंभी पीली पीलीही चमकें तथा नेत्र, विष्ठा, मूत्र, नाखून और मुख पीले हो और शीघ्रही बढ जाय उसे पित्तोदर कहतेहैं ॥ ७ ॥

कफोदर।

यच्छीतलं शुक्लशिरावनद्धं स्थिरं सितं शुक्लनखाननस्य॥

स्निग्धं महच्छोफयुतं ससादं कफोदरं तच्चिरभिवृद्धि॥ ८॥

जिसका उदर शीतल हो और उसके फूलनपर सुपेद नसे चमकें, कडा हो, सुपेद रंग हो, उसके नख तथा मुखभी सुपेदही हो तथा स्निग्ध हो और अति शोथयुक्त हो, अंगोमे ग्लानि हो और जो बहुत दिनोंमे वृद्धिको प्राप्त हो उसे कफोदर कहतेहै ॥ ८ ॥

सन्निपातोदर।

स्त्रियोऽन्नपानं नखरोममूत्रविडार्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः॥ यस्मै प्रय-च्छन्त्यरयो गराँश्च दुष्टाम्बुदूषीविषसेवनाद्वा॥ ९ ॥ तेनाशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः कुर्वन्ति घोरं जठरं त्रिलिंगम्॥ तच्छीतवाते भृशदुर्दिने च विशेषतः कुप्यति दह्यते च॥ १० ॥ स चातुरो

(श्लो० ८) [illegible] ॥ (श्लो० ९।१०।११) [illegible]

मूर्च्छति संप्रसक्तं पाडुः कृशः शुष्यति तृष्णया च ॥ प्रकीर्तितं दूष्योदरं तु घोरं प्लीहोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ ११ ॥

मूर्ख स्त्री अथवा खोटे पुरुष या शत्रु किसीको भोजनादिमें मिलाकर नाखून या किसी जीवका रोम या मूत्र या विष्ठा या आर्तवरक्त आदि खिलादे उससे अथवा शत्रु गर(कृत्रिमविष) खिलादें उससे अथवा निकम्मा जल पीनेसे तथा दूषीविष सेवन करनेसे ॥ ९ ॥ शीघ्रही रक्त तथा वातादि दोष कुपित हो जाते है ये तीनो दोषोके लक्षणवाला घोर जठररोग उत्पन्न करते है । वह शीत, वायु और बादलोके होने- पर विशेष कोप करता है और विदाहको प्राप्त होता है ॥ १० ॥ यह रोगी निरतर मूर्च्छाको प्राप्त होता है, शरीर पीला पडजाता है और दुबला होजाता है तथा तृषाके मारे (कठ) सूखने लग जाता है । इसे घोर दूष्युदर तथा सन्निपातोदर कहते है । अब इसके अगाडी प्लीहोदरका कीर्तन किया जाता है उसे सुनो और समझो ॥ ११ ॥

प्लीहोदर ।

विदाह्यभिष्यन्दिरतस्य जंतोः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक् कफश्च ॥ प्लीहा- भिवृद्धिं सततं करोति प्लीहोदरं तत्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ १२ ॥ वामे च पार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चातुरोऽत्र ॥ मन्दज्वराग्निः कफपित्तलिङ्गैरुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपाण्डुः ॥ १३ ॥ सव्येतरस्मिन् यकृति प्रदुष्टे ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरं तदेव ॥ १४ ॥

जो मनुष्य विदाही (दाहजनक) तथा अभिष्यन्दी (रसवहा शिराओका रोक कर गुरुता करनेवाले) भोजन अधिक करते है उनका रुधिर तथा कफ अत्यन्त दूषित होकर प्लीहा (तिल्ली) को अत्यन्त बढा देते है इसे विद्वान् वैद्य प्लीहोदर कहते है ॥ १२ ॥ यह (तिल्ली) बांए पसवाडेमें बढती है और इस रोगमें रोगी विशेष कर कुम्हलायासा रहता है तथा मन्दज्वरभी रहता है और जठराग्नि भी मन्द पडजाता है । इसमें विशेषतासे कफपित्तके उपद्रव रहते है, बलक्षीण हो- जाता है और शरीर अत्यन्त पीला पडजाता है ॥ १३ ॥ जैसे बांई ओर प्लीहा बढजाती है उसी तरह दाहिनी तरफ यकृत्(जिगर) दूषित होकर बढजाता है इसे यकृद्दाल्युदर अर्थात यकृद्वृद्धि कहते है ॥ १४ ॥

—[illegible] । गरः कृत्रिमविषम् [illegible] । दूष्युदरमिव-सन्निपातोदरं [illegible] [illegible] (इति निबन्धसंग्रह) ॥ ([illegible]) [illegible]

बद्धगुदोदर।

यस्यान्त्रमन्नैरुपलेपिभिर्वा बालाश्मभिर्वा सहितैः पृथग् वा ॥ सञ्चीयते यत्र मल. सदोपः क्रमेण नाड्यामिव सङ्करो हि ॥१५॥ निरुध्यते चास्य गुदे पुरीष निरेति कृच्छ्रादपि चाल्पमल्पम् ॥ हृन्नाभिमध्ये परिवृद्धिमेति यच्चोदर विट्समगंधिक च ॥ प्रच्छर्दयन् बद्धगुदी विभाव्यस्तत. परिस्राव्युदरं निबोध ॥ १६ ॥

जिस मनुष्यकी अन्त्र (आंत) पिच्छल अन्नादिसे लिपायमान होजाय अथवा बाल, मिट्टी, राख आदिसे मिले अन्नका मल अथवा पृथक् दोष (वातादि) युक्त मलही सचय होकर नालीमें इकट्ठा हो ॥ १५ ॥ और वह गुदामें पुरीष (मल) को रोकदे तब बहुत कष्ट करनेसे भी थोडा थोडासा मल उतरे और हृदय, नाभिके बीचमें वृद्धिको प्राप्त हो और उदरमें मलकीसी दुर्गंध आवे तथा कभी वमन भी हो तो उसे बद्धगुदोदर रोग कहते हैं। अब इससे अगाडी परिस्राव्युदर अर्थात् आगतुक क्षतोदरके लक्षण सुनो ॥ १६ ॥

आगन्तुक क्षतोदर (परिस्राव्युदर)।

शल्य यदन्नोपहित तदन्त्र भिनत्ति यस्यागतमन्यथा वा ॥ तस्मात्स्रुतान्त्रात्सलिलप्रकाश. स्राव स्रवेद्वै गुदतस्तु भूय. ॥ १७ ॥ नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धि निस्तुद्यतेऽतीव विदह्यते च ॥ एतत्परिस्राव्युदर प्रदिष्ट दकोदर कीर्तयतो निबोध ॥१८॥

अन्नमें मिलाहुआ शल्य (सुई आदि) अथवा और तरहसे पेटमें घुसजाय और आंतको चीरदे या छेद करदे जिससे उस आंतमेंसे पानीके तुल्य स्राव होकर बार बार गुदाद्वारा निकले ॥ १७ ॥ और नाभिके नीचे पेट बढजाय (फूलजाय) और पीडा हो तथा दाह हो उसे परिस्रावी उदररोग अर्थात् आगतुक क्षतोदर कहते हैं। इससे अगाडी जलोदरका वर्णन किया जाता है उसे सुनो ॥ १८ ॥

जलोदर।

यः स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा वान्तो विरिक्तोऽप्यथवा निरूढः ॥ पिबज्जलं शीतलमाशु तस्य स्रोतांसि दूष्यन्ति हि तद्वहानि ॥ १९ ॥ स्नेहोपलिप्तेष्वथवापि तेषु दकोदरं पूर्ववदभ्युपैति ॥

(श्लो० १५) उ[illegible] [illegible] ॥ [illegible] ॥

स्निग्ध महत्सपरिवृत्तनाभिभृशोन्नतं पूर्णमिवांबुना च ॥ यथा धृतिः क्षुभ्यति कंपते च शब्दायते चापि दकोदरं तत् ॥२०॥

जो मनुष्य स्नेहपान करनेके पीछे तथा अनुवासनवस्तिकर्मके पीछे, वमन करनेके पीछे, विरेचनके पीछे और निरूहणवस्तिके पीछे तत्कालही ठंडा जल पीले (अथवा क्षुधित जल पीले) तो उदकवाहिनी नाडियां दूषित होजातीहैं ॥ १९ ॥ अथवा वे उदकवाहिनी नाडी चिकनाईसे लिपायमान हो तब भी शीतल जल पीनेसे (दूषित होजातीहैं) और पहलेकी भांति जलोदर उत्पन्न होजाताहै । (जलोदरके लक्षण ये हैं कि) नाभिके चारोंतरफ पेट फूलजाय और चिकनापन मालूम हो और पेट पानीसे भरासा मालूम हो । जैसे पानीसे भरी मशक थलथलाती और हिलतीहै और पानीका शब्द होताहै (वैसे जलोदरीके पेटमें होताहै) इसे दकोदर अर्थात् जलोदर कहते है ॥ २० ॥

सब उदररोगोंके सामान्य चिह्न ।

आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाग्निता ॥ शोफः सदनमंगानां सङ्गो वातपुरीषयोः ॥ दाहस्तृष्णा च सर्वेषु जठरेषु भवति हि॥२१॥

पेट फूलना, चलनेकी शक्ति न रहना, दुर्बलता तथा जठराग्नि मंद पडजाना, शोथ होना और अंग शिथिल होजाना, अधोवायु और दस्त खुलकर न होना, दाह होना, तृषा अधिक लगना ये लक्षण प्रायः सभी उदररोगोंमें हुआ करतेहैं ॥ २१ ॥

अंते सलिलभावं तु भजते जठराणि च ॥
सर्वाण्येव परीपाकात्तदा तानि विवर्जयेत् ॥ २२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सब उदररोग अंत (परिपाक) दशामें जलभावको प्राप्त होजातेहैं और उस अवस्थामें त्यागने योग्य अर्थात् असाध्य होजातेहैं (चिकित्साके योग्य नहीं रहते) २२

इनमेंसे प्लीहोदरको डाक्टरीमें "इन्लारजिमेंट ऑफदी इस्पीलीन" कहतेहैं और यूनानीमें "तिहाल" कहतेहैं और यकृत्को डा० "इनलारजिमेंट ऑफदीलिवर" तथा "हैपटिक डिजीज" और यूनानीमें "अमरात जिगर" कहतेहैं इनके यहां इसके बहुत भेद हैं। जलोदरको डाक्टरीमें "एसाइटिस" कहतेहैं और किसी एक अंतडीमें पानी भराहो तो उसे "ड्रापसी" कहतेहैं तथा यूनानीमें "इसतिसका" कहतेहैं इत्यादि ॥

(वक्तव्य) हमने वैद्यक और यूनानी तथा डाक्टरीके अनुसार रोगोंके नाम लक्षणादिमें एकता करनेका बहुत कुछ परिश्रम किया तोभी अनेक विद्वानोंकी रीति

(श्लो० २०) स्नेहोत्क्लिष्टेषु इति–स्नेहादिपानादिना क्लिन्नेषु [illegible] सर्वे । पूर्ववदिति [illegible] (इति [illegible]) ॥

और क्रममें बडाही अन्तर है इससे हरेक रोगका निदान और उत्पत्तिका कारण प्राय एक दूसरेसे नहीं मिलता, हां जोजो मोटी मोटी बातें और जिस रोगमें जितना उचित प्रतीत हुआ वह थोड़ा २ लिखा जाता है, विशेष देखना हो तो उन २ विद्याओंकी पुस्तकें देखो जैसे यूनानियोंने जिगरके बहुत रोग लिखेहैं, जैसे जिगरमें गरमी, सरदी आदि तथा जिगरकी निर्बलता, जिगरका सुद्दा, जिगरका शोथ, जिगरकी शर्करा इत्यादि ये वैद्यकमें इसभांति नहीं मिलते और वातोदर, पित्तोदर, क्षतोदरादि जैसे वैद्यकमें कहेहैं वैसे यूनानी आदिमें नहीं मिलते ॥

इति प० मुरलीधरशर्मनि० सुश्रुतसं० भा० टी० निदानस्थाने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्याय. ८

अथातो मूढगर्भनिदानं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे आगाडी मूढगर्भके निदानकी व्याख्या करते हैं ।

ग्राम्यधर्मयानवाहनाध्वगमनप्रस्खलनप्रपतनप्रपीडनधावनाभिघातविषमशयनासनोपवासवेगाभिघातातिरूक्षकटुतिक्तभोजनशाकातिक्षारसेवनातिसारवमनविरेचनप्रेंखोलनाजीर्णगर्भशातनप्रभृतिभिर्विशेषैर्बंधनान्मुच्यते गर्भः फलमिव वृंतबंधनादभिघातविशेषैः ॥ १ ॥

ग्राम्यधर्म (मैथुन) करनेसे, घोडे आदिपर चढने और गाडी आदिमें बैठकर चलनेसे, पैरोंसे सफर करने, प्रस्खलन (औंधा होकर चलने, नीचा झुककर चलने), ऊपरसे गिरने, मिचजाने, भागने, चोट लगने, विषम सोने तथा विषम आसन बैठने, (या विषम भोजन करने), लंघन करने, वेग (दस्त, मूत्रादि) को रोकने, अति रूखा भोजन करने, कटु (चरपरा), तिक्त (कडवा) भोजन करने, अति शाक खाने, खारी वस्तु अति खानेमें तथा दस्त लगजानेमें, वमन होनेमें, विरेचन लेनेसे, प्रेंखोलन (हिंडोले आदि झूलने) में, अजीर्णसे, गर्भशातन (गर्भपातकी क्रिया करने) इत्यादिसे गर्भ अपने बंधनसे छूट जाताहै जैसे चोट आदिके प्रहारसे वृन्त (नाकू) के बंधनसे फल छूट जाताहै ॥ १ ॥

स विमुक्तबंधनो गर्भाशयमतिक्रम्य यकृत्प्लीहान्त्रविवरैरवस्रंसमानः कोष्ठसंक्षोभमापादयति तस्या जठरसंक्षोभाद्वायुरपानो मूढः पार्श्व

(गद्य १) मूढगर्भ इति–मूढो विगुणगतिगर्भः मूढगर्भः तदुक्तम्–"[illegible] [illegible] । [illegible] मूढगर्भोऽभिधीयते" (इति [illegible]) । [illegible] । प्रेंखोलनं हिंडो[illegible] । गर्भशातनं [illegible] ॥

वस्तिशीर्षोदरयोनिशूलानाहमूत्रसङ्गानामन्यतममापाद्य गर्भं व्यापादयति ॥ २ ॥

वह गर्भाशयके बंधसे छुटा हुआ गर्भ गर्भाशयसे निकलकर यकृत्, प्लीहा और आंतोंके द्वारोंसे झिरता हुआसा होजाता है और समान वायु उसके उदरको क्षुभित करदेता है फिर उसके उदरके सक्षोभसे अपानवायु विरुद्ध गति होकर पँसवाडे और वस्तिका शिर, उदर और योनिमें शूल तथा अफरा, मूत्रावरोध इत्यादि व्याधियोंमेंसे किसी एक या अधिकको उत्पन्न करके गर्भको व्यापादित अर्थात् पीडित करता है ॥२॥

तरुण शोणितस्रावेण तमेव कदाचिद्विवृद्धमसम्यगागतमपत्यपथमनुप्राप्तमनिरस्यमानमपानवैगुण्यसमोहितं गर्भं मूढगर्भमित्याचक्षते ॥ ३ ॥

अति रक्तस्रावहोंसे कभी अधिक बढकर अयोग्य रीतिसे आकर संतानके मार्ग (भगद्वार) पर प्राप्त हो और बाहर नहीं निकले अपानवायुकी विगुणतासे निरुद्ध गति हो जाय ऐसे गर्भको मूढगर्भ कहते है ॥ ३ ॥

ततः स कील. प्रतिखुरो बीजक परिघ इति। तत्र ऊर्द्ध्वबाहुशिर'पादो यो योनिमुख निरुणद्धि कील इव स कीलः। निसृतहस्तपादशिरा कायसङ्गी प्रतिखुर'। यस्तु निर्गच्छत्येकशिरोभुज स बीजक। परिघ इव योनिमुखमावृत्य तिष्ठेत्स परिघ। इति चतुर्विधो भवतीत्येके भाषन्ते ॥ ४ ॥

वह मूढगर्भ १ कील, २ प्रतिखुर, ३ बीजक और ४ परिघ ऐसे (चार प्रकारका) होताहै। जिसमें हाथ, शिर और पैर ऊपरको होकर योनिके मार्गको कीलकी भांति रोक दे वह "कील" संज्ञक है। जिसमें हाथ या पांव या शिर निकलआवें और शरीर रुक जाय वह "प्रतिखुर" है। जिसका एक शिर और हाथही निकले वह "बीजक" है। जो वज्रके समान योनिके मुखको रोककर स्थित होजाय वह "परिघ" है। ऐसे चार प्रकारका मूढगर्भ होता है यह कई आचार्य कहते हैं॥४॥

तत्तु न सम्यक् कस्मात् स यदा विगुणानिलप्रपीडितोऽपत्यपथमनेकधा प्रतिपद्यते तदा सख्या हीयते ॥ ५ ॥

ऊपर कहा हुआ चारही प्रकारका मूढगर्भ होताहै ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि जब वह विगुण अपानवायु करके पीडित हुआ गर्भ अनेक प्रकारसे अपत्यमार्ग (योनि) को प्राप्त हो जाता है तब इसमें संख्याका नियम नहीं रह सकता ॥ ५ ॥

तत्र कश्चित् द्वाभ्या सक्थिभ्या योनिमुख प्रतिपद्यते। कश्चिदाभुग्नैकसक्थिरेकेन। कश्चिदाभुग्नसक्थिशिर स्फिग्देशेन तिर्यगागत। कश्चिदुर पार्श्वपृष्ठानामन्यतमेन योनिद्वारं पिधायावतिष्ठते। अत.पार्श्वापवृत्तशिरा कश्चिदेकेन बाहुना। कश्चिदाभुग्न शिरा बाहुद्वयेन। कश्चिदाभुग्नमध्यो हस्तपादशिरोभि। कश्चिदेकेन सक्थ्ना योनिमुखमभिप्रतिपद्यतेऽपरेण पायुमित्यष्टविधा मूढगर्भगतिरुद्दिष्टा समासेन ॥ ६ ॥

१ तिनमे कोई मूढगर्भ तो दोनो साथलोसे योनिके मुखमे प्राप्त होता है। २ कोई एक साथल सकुचितकर एकही साथलसे प्राप्त होताहै। ३ कोई साथल और शिरको सकुचित करके कूलोंसे योनिद्वारमें प्राप्त होताहै और टेढा होताहै। ४ कोई पेट, पसँली, पीठ इनमेंसे किसीके बल योनिद्वारको रोक स्थित होताहै। ५ कोई शिरको पँसवाडेमें झुकाकर एक साथही निकाल देताहै। ६ कोई शिरको सकुचित करके दोनो हाथ निकालताहै। ७ कोई मध्यभागको सकुचित करके हाथ, पांव तथा शिरसे योनिद्वारपर प्राप्त होताहै। ८ कोई एक साथलसे योनिद्वारपर प्राप्त होताहै और दूसरी साथल गुदाकी तरफ प्रवृत्त होतीहै। ऐसे सक्षेपमे मूढगर्भकी गति आठ प्रकारकी वर्णन कीगई ॥ ६ ॥

तत्र द्वावन्त्यावसाध्यौ मूढगर्भौ शेषानपि विपरीतेंद्रियार्थाक्षेपकयोनिभ्रंशसंवरणमक्कल्लश्वासकासभ्रमनिपीडितान्परिहरेत् ॥ ७ ॥

भवंति चात्र—

इनमेसे अतके दो मूढगर्भ असाध्य होतेहै और शेषभी जिनमे इन्द्रियोंका ज्ञान विपरीत होजाय अथवा आक्षेपक वायुरोग हो। अथवा योनि बाहर निकल आवे या योनि बहुतही सुकडजाय तथा मक्कल्ल नाम प्रसूतशूल तीक्ष्ण हो, श्वास, खांसी और भ्रम इन करके निपीडित हो अर्थात् जिनके ये उपद्रव हों उन्हेंभी त्यागदे ॥ ७ ॥ इस विषयमे श्लोक है—

कालस्य परिणामेन मुक्त वृंतयथा फलम् ॥ प्रपतेत् स्वभावेन नान्यथो पेनितु फलम् ॥ ८ ॥ एव कालप्रकर्षेण मुक्तो नाडीविर्बधनात् ॥ गर्भाशयस्थो यो गर्भो जननाय प्रपद्यते ॥ २ ॥

जैसे कालके परिणामसे वृन्त (ममयबन्धन) से छूटकर स्वभावसे फल गिरपडता

है अन्यथा नहीं गिर पडता ॥ ८ ॥ ऐसेही समय पूरा होनेपर गर्भाशयका गर्भभी नाडियोंके बंधसे छूटकर जन्म लेनेके लिये प्रवृत्त होताहै ॥ ९ ॥

कृमिवाताभिघातैस्तु तदेवोपद्रुतं फलम् ॥ पतत्यकालेपि यथा तथा स्याद्गर्भविच्युतिः ॥ १० ॥ आचतुर्थात्ततो मासात्प्रस्रवेद्गर्भविच्युतिः ॥ ततः स्थिरशरीरस्य पातः पंचमषष्ठयोः ॥ ११ ॥

जैसे कीडेके खाने, वायु लगने, चोट लगने आदि उपद्रवोंसे फल अकालमें (बे समय) भी गिरजाताहै वैसेही उपद्रवोंसे गर्भभी बे समय गिर पडताहै ॥ १० ॥ चार महीनेतक गर्भ गिरे तो उसे गर्भस्राव कहतेहैं, इससे पीछे शरीर स्थिर होजाताहै इससे पांचवें और छठे महीनेमें गिरे तो गर्भपात कहलाताहै ॥ ११ ॥

प्रविध्यति शिरो या तु शीतांगी निरपत्रपा ॥ नीलोद्धतशिरा हंति सा गर्भं स च तां तथा ॥१२॥ गर्भास्पंदनमावीनां प्रणाशः श्यावपांडुता ॥ भवत्युच्छ्वासपूतित्वं शूलं चांतर्मृते शिशौ ॥ १३ ॥ मानसागंतुभिर्मातुरुपतापैः प्रपीडितः ॥ गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च प्रपीडितः ॥ १४ ॥ जस्तमारत्रिपन्नाया कुक्षिः प्रस्पन्दते यदि ॥ तत्क्षणाज्जन्मकाले तं पाटयित्वोद्धरेद्भिषक् ॥ १५॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

जो स्त्री शिरको धुने और देह ठंडी पडजाय, लज्जा जाती रहे, नीली नसें चमकें तो वह गर्भके बालकको मार देतीहै तथा मरा बालक उसे मार देताहै॥१२॥ जिसके गर्भमें बालक फिरे नहीं और आवी (प्रसववेदना) जाती रहे, शरीर, काला, पीला पडजाय और श्वासमें मुरदेके समान दुर्गंध आवे और शूल हो तो जानो कि बालक पेटमें मरगया ॥ १३ ॥ माताके मानसिक और आगन्तुक उपतापोंसे पीडित हुआ तथा व्याधियोंसे पीडित हुआ बालक कुक्षिमें मरजाताहै ॥१४॥ गर्भगत बालकको शीघ्र मारनेवाली मृतास्त्रीकी कुक्षि यदि फरके (तो बालक अभी जीताहै ऐसा जाने) और शीघ्रही मृत स्त्रीकी कुक्षको फाडकर जीते बालकको सुज्ञ वैद्य निकाले ॥ १५ ॥

इति प०मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० निदानस्थानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९

अथातो विद्रधीनां निदानं व्याख्यास्यामः ।

इसके अगाडी अब विद्रधि (फोडे) के निदानको व्याख्या करते हैं ॥

सर्वामरगुरु श्रीमान्निमित्तान्तरभूमिप ॥ शिष्यायोवाच निखिलमिदं विद्रधिलक्षणम् ॥ १ ॥ त्वग्रक्तमांसमेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिता ॥ दोषाः शोफं शनैर्घोरं जनयन्त्युच्छ्रिता भृशम् ॥ २ ॥ महामूलं रुजावन्तं वृत्तं चाप्यथवायतम् ॥ तमाहुर्विद्रधिं धीरा विज्ञेयः षड्विध स च ॥ ३ ॥

सम्पूर्ण देवताओंके गुरु निमित्तांतरसे काशीके भूपति (राजा) श्रीमान धन्वन्तरि महाराज अपने शिष्य सुश्रुत महर्षिके प्रति विद्रधियोंके सम्पूर्ण लक्षण वर्णन करते भये ॥ १ ॥ त्वचा, रक्त, मांस, मेद इन्हे दूषितकर अस्थि (हड्डी) मे प्राप्त हुए वात आदि दोष धीरे २ घोररूप ऊंचे (विद्रधिके कारणभूत) शोथको उत्पन्न करते है ॥ २ ॥ फिर अतिशूल और दरदवाला, गोल अथवा फैला हुआ (फोडा) हो उसे विद्रधि कहते है, वह छःप्रकारका होता है ॥ ३ ॥

विद्रधिकी सम्प्राप्ति और भेद ।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च क्षतेनाप्यसृजा तथा ॥ षण्णामपि हि तेषां तु लक्षणं संप्रवक्ष्यते ॥ ४ ॥

पृथक् २ एक एक दोष अर्थात् वायुसे, पित्तसे, कफसे और चौथे समस्त दोष अर्थात सन्निपातसे, पांचवें क्षत (चोट लगने) से, छठे रक्तसे इस भांति छः ६ प्रकारसे विद्रधि होताहै इन छहो प्रकारके विद्रधियोंके लक्षण वर्णन किये जातेहै ॥४॥

विद्रधियोंके लक्षण ।

कृष्णोरुणो वा परुषो भृशमत्यर्थवेदन.॥चित्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसंभव ॥५॥पक्वोदुंबरसंकाश श्यावो वा ज्वरदाहवान्॥क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधि. पित्तसंभव ॥६॥ शरावसदृश पांडु शीत स्तब्धोल्पवेदन ॥ चिरोत्थानप्रपाकश्च सकंडुश्च कफोत्थित. ॥७॥

जो काला तथा लाल हो, खरदरा हो, जिसमें चीस अधिक हो तथा जिसके उठने और पकनेमें विच विचित्रता हो वह वायुका विद्रधि है ॥ ५ ॥ जो पके गूलरफलके तुल्य हो, रूखा हो, जिसमें कभी ज्वर और दाह भी हो तथा शीघ्रही उठे और शीघ्रही पकजाय वह पित्तका विद्रधि है ॥ ६ ॥ जो सरावेके आकार हो, पीला

(श्लो० १) सर्वामरगुरुरिति–[illegible] । निमित्तान्तरभूमिप इति–निमित्तान्तरेण [illegible] । [illegible] (इति डल्हण) ॥

हो, उठा हो, कड़ा हो, जिसमें पीड़ा भी स्वल्प हो तथा देरसे उठे और देरहीसे पके तथा खाजभी हो तो वह कफका विद्रधि है ॥ ७ ॥

तनुपीतसिताश्चैषामास्रावाः क्रमशः स्मृताः ॥ नानारूपरुजास्रावो घटालो विषमो महान् ॥ विषमं पच्यते वापि विद्रधिः सान्निपातिकः ॥८॥ तैस्तैर्भावैरभिहते क्षते चापथ्यसेविनः ॥ क्षतोष्मा वायुविसृतः सरक्तं पित्तमीरयेत् ॥ ९ ॥ ज्वरस्तृष्णा च दाहश्च जायते तस्य देहिनः ॥ एष विद्रधिरागन्तुः पित्तविद्रधिलक्षणः ॥ १० ॥ कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजाज्वरः ॥ पित्तविद्रधिलिंगस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते ॥ ११ ॥

वायुमें थोडा, पित्तमें पीला, कफमें सुपेद इसक्रमसे स्राव होता है तथा नाना प्रकारके रूप, पीडा और स्राव हो, जिसके ऊपर गोठसी पडजाय अति विषम हो और विषमताहीसे पके वह सन्निपातका विद्रधि होता है ॥ ८ ॥ और उनही भावो (पतन, प्रहारादि) करके अभिहत जो घाव हो उसमें अपथ्य आहार विहार करे तब वायु करके प्रेरित घावकी गरमी रक्तसहित पित्तको दूषित कर देती है ॥ ९ ॥ ज्वर, तृषा तथा दाह उत्पन्न होजाते हैं ऐसा फोडा आगन्तुक कहलाता है और इसमें पित्तविद्रधिके लक्षण होते हैं ॥ १० ॥ जो कृष्ण रंगका तीव्र दाह और पीडावाला विद्रधि हो और उसके आसपास काली फुंसियां हों तथा ज्वर हो आवे और उसमें पित्तविद्रधिके लक्षण हों तो वह रक्तविद्रधि कहलाता है ॥ ११ ॥

उक्ता विद्रधयो ह्येते तेष्वसाध्यस्तु सर्वजः ॥
आभ्यन्तरानतस्तूर्द्ध्वं विद्रधीन्परिचक्ष्महे ॥ १२ ॥

ये ऊपर छः प्रकारके विद्रधि (फोडे) वर्णन किये तिनमें सन्निपातका विद्रधि असाध्य होता है । इनके अगाडी अब अंतर्विद्रधियोंको वर्णन करते हैं ॥ १२ ॥

अंतर्विद्रधि ।

गुर्वसात्म्यविरुद्धान्नशुष्कसंक्लिन्नभोजनात् ॥ अतिव्यवायव्यायामवेगाघातविदाहिभिः ॥ १३ ॥ पृथक् संभूय वा दोषाः कुपिता गुल्मरूपिणम् ॥ वल्मीकवत्समुन्नद्धमन्तः कुर्वन्ति विद्रधिम् ॥१४॥

(श्लो० ८) घटाव इति—कर्णमाणो महान् वस्त न घटन ॥ (श्लो० ९) [illegible] -[illegible]प्रहारादिभिः अभिहते । (इति टि० ६०) ॥

गरिष्ठ भोजनसे, प्रतिकूल तथा विरुद्ध भोजनसे, सूखे तथा क्लेदित भोजन करनेसे, अति मैथुन करनेसे, शारीरक श्रम न करनेसे, मलमूत्रादि वेगोंके रोकनेसे, विदाही वस्तुके खानेसे ॥ १३ ॥ वातादि दोष पृथक् २ अथवा समस्त कुपित होकर गुल्मके रूपवाले तथा बमईके समान ऊपरको उठे हुए अतर्विद्रधि (भीतरी फोडे) पैदा करदेते है ॥ १४ ॥

अतर्विद्रधिके स्थान ।

गुदे वस्तिमुखे नाभ्या कुक्षौ वंक्षणयोस्तथा ॥ वृक्कयो॰ प्लीहि यकृति हृदये क्लोम्नि वा तथा ॥ १५ ॥ तेषा लिंगानि जानीयाद्बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ आमपक्वैषणीयेन पक्वापक्वं विनिर्दिशेत्॥१६॥

गुदा, वस्तिका मुख, नाभि, कूख, वक्षण (जघाकी संधि) तथा वृक्क (गुरदो), प्लीहा (तिल्ली), यकृत् (जिगर) तथा हृदय और क्लोम इन स्थानोंमें भाप अतर्विद्रधि होते है ॥ १५ ॥ इनके चिह्न बाह्यविद्रधिके लक्षणोंसे जान लेने चाहिये तथा आमपक्वैषणीय नामक अध्यायमें कहेहुए लक्षणोंसे पका या विन पका है ऐसा देख लेना चाहिये ॥ १६ ॥

अधिष्ठानविशेषेण लिंग शृणु विशेषत ॥ गुदे वातनिरोधस्तु वस्तौ कृच्छ्राल्पमूत्रता ॥ १७ ॥ नाभ्यां हिक्का तथाटोप॰ कुक्षौ मारुतकोपनम् ॥ कटीपृष्ठग्रहस्तीव्रो वंक्षणोत्थे तु विद्रधौ ॥१८॥ वृक्कयोः पार्श्वसकोच॰ प्लीह्न्युच्छ्वासावरोधनम् ॥ सर्वांगप्रग्रहस्तीव्रो हृदि शूलश्च दारुणः ॥ १९ ॥ श्वासो यकृति तृष्णा च पिपासा क्लोमजेऽधिका ॥ २० ॥

अब स्थानविशेषकरके विद्रधियोंके विशेष लक्षण सुनो । गुदामें भीतर विद्रधि हो तो खुलकर वायु नहीं निकले और वस्तिमें हो तो कष्टसे थोडा २ मूत्र उतरे॥ १७॥ नाभिमें अतर्विद्रधि हो तो हिचकी आवे और पेट फूल जाय तथा कूखके भीतर विद्रधि हो तो वायुका कोप हो और वक्षण(नलों)में हो तो कमर और पीठ अत्यत जकड जावें ॥ १८ ॥ वृक्क (गुरदों) में फोडा हो तो पँसवाडा सुकड जाय और प्लीहामें हो तो रुककर श्वास आवे और हृदयमें हो तो सब शरीर जकड जाय और हृदयमें दारुण शूल हो ॥ १९ ॥ यकृत् (जिगर) पर फोडा हो तो श्वास और तृषा हो तथा क्लोमस्थानमें हो तो बहुत अधिक प्यास हो ॥ २० ॥

(श्लो० १५) [illegible] ([illegible]) । [illegible] [illegible] । (इति [illegible]) [illegible] ॥

आमो वा यदि वा पक्वो महान्वा यदि चेतरः॥ सर्वो मर्मोत्थितश्चापि विद्रधिः कष्ट उच्यते ॥२१॥ नाभेरुपरिजाः पक्वा यान्त्यूर्द्ध्वमितरे त्वधः ॥ जीवेत्यधो निस्रुतेषु स्रुतेषूर्ध्वं न जीवति ॥ २२ ॥ हृन्नाभिवस्तिवर्ज्या ये तेषु भिन्नेषु वाह्यतः ॥ जीवेत्कदाचित्पुरुषो नेतरेषु कदाचन ॥ २३ ॥

कच्चा हो चाहे पका हो, बडा हो या छोटा सब विद्रधि मर्मस्थानमें हुआ कष्टसाध्य होता है ॥ २१ ॥ नाभिसे ऊपरके विद्रधि पककर ऊपरको गमन करते और अन्य नीचेको गमन करते (झिरते) है। नीचेको झिरनेवाले नीचेहीको झिरे तो मनुष्य जीवे और जो (नीचेको झिरनेवाले) कदाचित् ऊपरको झिरने लगें तो मनुष्य जीवे नहीं ॥ २२ ॥ हृदय, नाभि और वस्तिके सिवायका अतर्विद्रधि बाहरको फूट निकले तो शायद मनुष्य जीवेभी परन्तु इतर (हृदय, नाभि, वस्ति)के अंतर्विद्रधि बाहरको फूट निकले तो मनुष्य कदाचित् नहीं जीवे ॥ २३ ॥

स्त्रीणामपप्रजातानां प्रजातानां तथाऽहितैः ॥ ज्वरदाहकरो घोरो जायते रक्तविद्रधिः ॥२४॥ अपि सम्यक्प्रजातानामसृक्स्रावादनिःसृतम् ॥ रक्तजं विद्रधिं कुर्यात्कुक्षौ मक्कल्लसंज्ञितम् ॥सप्ताहान्नोपशान्तश्चेत्ततोऽसौ सम्प्रपच्यते ॥ २५ ॥

जिनके गर्भपात होजाताहै उनके तथा जिनके पूरा बालक होताहै उन स्त्रियोंके कुपथ्य करनेसे ज्वर और दाह करनेवाला घोर रक्तका विद्रधि होजाताहै ॥ २४ ॥ तथा जिन स्त्रियोंके अच्छे प्रकार प्रसूत (बालक) हो लेताहै परन्तु शरीरसे रुधिर ठीक २ नहीं निकलता तो उनकी कुक्षिमें मक्कल्ल संज्ञक रक्तका विद्रधि होजाताहै और जो वह मक्कल सात दिनमें शांत नहीं हो तो फिर पकजाताहै ॥ २५ ॥

विशेषमथ वक्ष्यामि स्पष्टं विद्रधिगुल्मयोः ॥ तुल्यदोषसमुत्थानाद्विद्रधेर्गुल्मकस्य च ॥ २६ ॥ कस्मान्न पच्यते गुल्मो विद्रधिः पाकमेति च ॥ गुल्माकाराः स्वयं दोषा विद्रधिर्मांसशोणिते ॥ २७ ॥ विवरानुचरो ग्रन्थिरप्सु बुद्बुदको यथा ॥ एवं प्रकारो गुल्मस्तु तस्मात्पाकं न गच्छति ॥२८॥ मांसशोणितबाहुल्यात्पाकं गच्छति विद्रधिः ॥ मांसशोणितहीनत्वाद्गुल्मः पाकं न गच्छति ॥ २९ ॥

गुल्मस्तिष्ठति दोषे स्वे विद्रधिर्मांसशोणिते ॥ विद्रधिः पच्यते तस्माद्गुल्मश्चापि न पच्यते ॥ ३० ॥

इसके अगाडी विद्रधि और गुल्मका विशेष स्पष्ट भेद कहतेहैं, कि समान दोषोंसे उत्पन्न हुए विद्रधि और गुल्ममेंसे गुल्म क्यों नहीं पकताहै और विद्रधि क्यों पकजाताहै (इस प्रश्नका उत्तर) यह है कि, गुल्ममें स्वय वातादि दोषही गुल्मके आकार होजाते है और विद्रधि मांस ओर रुधिरमे होताहै ॥२६॥ २७ ॥ जेसे जलमे बुलबुला, ऐसे खाली स्थानमे विचरनेवाला गुल्म होताहै इसलिये नहीं पक्ता ॥२८॥ अथवा मांस और रुधिरकी अधिकतासे विद्रधि पकजाताहै और मांस, रक्त करके हीन होनेसे गुल्म नहीं पकता॥२९॥गुल्म अपने दोषो (वायु, पित्त, कफादि) में स्थित रहताहै और विद्रधि मास और रुधिरमें रहताहै इसलिये विद्रधि पकजाताहै और गुल्म नहीं पकता है ॥ ३० ॥

हृन्नाभिबस्तिजः पक्वो वर्ज्यो यश्च त्रिदोषजः ॥ अथ मज्जपरीपाको घोरः समुपजायते॥३१॥सोऽस्थिमांसनिरोधेन द्वारं न लभते यदा ॥ ततः स व्याधिना तेन ज्वलनेनेव दह्यते ॥ ३२ ॥ अस्थिमज्जोष्मणा तेन शीर्यते दह्यमानवत्॥ विकारः शल्यभूतोयं क्लेशयेदातुरं चिरम् ॥३३॥अथास्य कर्मणा व्याधिर्द्वारं तु लभते यदा॥ ततो मेदःप्रभं स्निग्धं शुक्लं शीतमथो गुरु ॥ ३४ ॥ भिन्नेस्थ्नि स्रवेत्पूयमेतदस्थिगतं विदुः ॥ विद्रधिं शास्त्रकुशलाः सर्वदोषरुजावहम् ॥ ३५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने नवमोध्यायः ॥ ९ ॥

हृदय, नाभि और वस्ति इनका अंतर्विद्रधि जो पक जाय तो वह त्याज्य है तथा सन्निपातका विद्रधि भी वर्ज्य (असाध्य) होताहै । और यदि मज्जामें परिपाक हो तो घोर होताहै यदि वह अस्थि और मांसके अवरोधसे द्वार न पावे तो पीडासे अग्निके समान जला करताहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ फिर वह अस्थि और मज्जाकी गरमीसे जले हुए (अग्निदग्ध) की तरह खिल जाताहै । मज्जागत शल्यभूत यह विकार रोगीको बहुत क्लेश देताहै (बहुत दिन दुःख देताहै) ॥ ३३ ॥ और जो कर्म (शस्त्रकर्म) करके व्याधिद्वारभी पावे तो उसमेंसे मेद (चरबी) के समान चिकना, सुपेद, शीतल और भारी (राध) निकलताहै ॥ ३४ ॥ अस्थिके भेदन होनेपर जिससे पूय निकले उसे अस्थिगत विद्रधि शास्त्रकुशल वैद्य जानें । यह सब

दोषो और सब प्रकारकी पीडाओंका करनेवाला होताहै । (विद्रधि (फोडा) को डाक्टरीमें 'एनसस' या "वाइलस" कहतेहैं और यूनानीवाले 'दुबीले' कहते हैं)॥३५॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० निदानस्थान नवमोऽध्याय ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

अथातो विसर्पनाडीस्तनरोगनिदान व्याख्यास्यामः ।

इससे अगाडी विसर्प, नाडी, स्तनरोग इनके निदानकी व्याख्या करते है ॥

विसर्पकी सम्प्राप्ति ।

त्वङ्मांसशोणितगताः कुपितास्तु दोषाः सर्वाङ्गसारिणमिहास्थितमात्मलिङ्गम् ॥ कुर्वन्ति ये विसृतमुन्नतमाशु शोफं तं सर्वतो विसरणाच्च विसर्पमाहुः ॥ १ ॥

त्वचा, मांस और रुधिरमें प्राप्त हुए कुपित वातादि दोष समस्त शरीरमे फैलनेवाला, एक जगह स्थित न होनेवाला, वातादिके लक्षणोंवाला, विस्तारयुक्त कुछ २ ऊपरको उठा हुआ ऐसा शोथ उत्पन्न करतेहै जिसे सारे शरीरमे फैलनेसे विसर्प कहतेहै॥१॥

विसर्पके लक्षण ।

वातात्मकोऽसितमृदुः परुषोऽङ्गमर्दसंभेदतोदपवनज्वरलिङ्गयुक्तः ॥ गंडैर्यदा तु विषमैरतिदूषितत्वाद्युक्तः स एव कथितः खलु वर्जनीयः ॥ २ ॥ पित्तात्मको द्रुतगतिर्ज्वरदाहपाकस्फोटप्रभेदबहुलः क्षतजप्रकाशः ॥ दोषप्रवृद्धिहतमांसशिरो यदा स्यात्स्रोतोजकर्दमनिभो न तदा स सिध्येत् ॥ ३ ॥

वायुका विसर्प काला, पतला, खरदरा होता है, अंगडाई बहुत आती है, भेदनकेसी पीडा और दर्द होता है तथा वातज्वरकेसे चिह्न होते है और जिसमें दुष्ट-केसे गडे विषम पडजायँ ऐसे दूषित होनेसे यह विसर्प (वातविसर्प) त्यागने योग्य (असाध्य) होता है ॥ २ ॥ पित्तका विसर्प शीघ्र फैलनेवाला होता है और इसमें ज्वर तथा दाह होता है और पक जाता है तथा फुंसियोंमें विदीर्णता अधिक होती-है तथा क्षतज धापरक्षा रूप होता है और जिसमें दोषोंकी वृद्धिता और मांस तथा रगोंका नाश हो जाय तथा अञ्जनकी कीचडके समान जो हो जाय यह पित्त-विसर्प सिद्ध नहीं होता (असाध्य है) ॥ ३ ॥

(श्लो० २) [illegible] । [illegible] दूषितत्वात् अथवा [illegible] दूषितत्वात् (नि० सं०) । (श्लो० ३) [illegible] (इति शेषः) ॥

श्लेष्मात्मकः सरति मंदमशीघ्रपाक स्निग्ध. सितश्वयथुरल्पगुरुश्चकंडू ॥ सर्वात्मकस्त्रिविधवर्णरुजोवगाढः पक्वो न सिध्यति च मासशिराप्रणाशात् ॥ ४ ॥ सद्य क्षतव्रणमुपेत्य नरम्यं पित्तं रक्तं च दोषबहुलस्य करोति शोफम् ॥ श्यावं सलोहितमतिज्वरदाहपाक स्फोटै कुलत्थसदृशैरसितैश्च कीर्णम् ॥ ५ ॥

कफका विसर्प मन्दगतिसे फैलता है, बहुत दिनमे पकता है, चिकना, सुपेद शोथ होताहै और थोडा मोटा होताहै तथा अधिक खाज होती है। ओर सन्निपातका विसर्प तीनो भांतिके रग ओर वेदनावाला होताहै ओर अवगाढ (जडवाला) होताहै। यह पके पीछे सिद्ध नहीं होता क्योंकि मास और रगोंको नाश कर देताहै ॥ ४ ॥ पाचवा क्षतज (चोट लगेमें) विसर्प होजाताहै वह इस भांति कि सद्य घावमें पित्त ओर रक्त अतिदोषयुक्त मनुष्यके कुपित होजाते है ओर चोटके घावमे काला, लाल शोथ उत्पन्न करते है, अत्यन्त ज्वर ओर दाह पेदा होजाताहै, घाव पक जाताहै तथा घावके आसपास कुलथी जैसी काली २ फुसियां बहुतसी होजाती है॥ ५॥

सिध्यंति वातकफपित्तकृता विसर्पा सर्वात्मक क्षतकृतश्च न सिद्धिमेति ॥ पैत्तानिलावपि च दर्शितपूर्वलिंगौ सर्वे च मर्मसु भवति हि कृच्छ्रसाध्या ॥ ६ ॥

वायु और कफ तथा अकेले पित्तके विसर्प सिद्ध होजाते है परन्तु सन्निपातका, क्षतज (घाव) का विसर्प सिद्ध नहीं होता तथा केवल पित्तका और वायुकाभी जो पहले असाध्य कर दिये वे सिद्ध नहीं होते (जैसे वातविसर्प दग्धकेसे गंडोंवाला और पित्तका मांसशिरा नष्ट करनेवाला, कर्दमको पीचमा ये पहलेही असाध्य करदिये) तथा मर्मस्थानोंमें हुए सभी प्रकारके विसर्प कष्टसाध्य हैं विसर्पको डाक्टरीमें 'एरीसिपलिस' और यूनानीमें 'सुरखवादा' कहतेहै ॥ ६ ॥

(वक्तव्य) इस विसर्प रोग और कुष्ठांतर्गत विसर्पका भेद कुष्ठाध्यायगत विसर्पकी टिप्पणीमें देखो ॥

अथ नाडी ।

शोफं न पक्वमतिपक्वमुपेक्षते यो यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्त ॥ अभ्यंतरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य स्थानानि पूर्वविहितानि ततः स पूयः ॥ ७ ॥ तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरित्यतश्च नाडीव

यद्वहति तेन मता तु नाडी ॥ दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशश्च संमूर्च्छितैरपि च शल्यनिमित्ततोऽन्या ॥ ८ ॥

जो फोडेका शोथ बहुत दिनतक पक्के ही नहीं और कच्चा विदीर्ण करदे अथवा बहुत दिनतक पके पीछेभी नहीं फूटे (और इसे चीराभी लगाकर न निकाले) अथवा अत्यंत राधवाले कुटिल व्रणमें कुपथ्य करे तो वह पीवसहित पार पर्यन्त (त्वचादि) स्थानोंको विदीर्ण करके भीतरको प्रविष्ट होजाताहै ॥ ७ ॥ यह व्रण अत्यंत बहनेसे इधर उधर गतिवाला होकर नाडी (नाली) की तरह बहता रहताहै इससे इसे नाडी (नाडीव्रण अर्थात् नासूर) कहतेहैं । यह नाडी ८ प्रकारकी होतीहै, तीनो पृथक् २ दोषोंसे जैसे १ वायुसे, २ पित्तसे, ३ कफसे और सम्मूर्च्छित अर्थात दो दो दोषोंसे जैसे ४ वातपित्त, ५ पित्तकफ, ६ कफवातसे, ७ सन्निपातसे और ८ शल्यसे ॥ ८ ॥

नाडीव्रणके लक्षण ।

तत्रानिलात्परुषसूक्ष्ममुखी सशूला फेनानुविद्धमधिकं स्रवति क्षपायाम् ॥ तृट्तापतोदसदनज्वरभेदहेतु पीतं स्रवत्यधिकमुष्णमहःसु पित्तात् ॥ ९ ॥ ज्ञेया कफाद्बहुघनार्जुनपिच्छलास्रा रात्रिस्रुति स्तिमितरुक्कठिना सकण्डू ॥ दोषत्रयाभिहितलक्षणदर्शनेन तिस्रो गतीर्व्यतिकरप्रभवास्तु विद्यात् ॥ १० ॥

इनमें वायुकी नाडी खरदरी, छोट मुहवाली, शूलयुक्त होतीहै, झागमें मिला मल विशेष रात्रिको स्रवताहै । पित्तकी नाडी तृषा, ताप (जलन), दर्द, सदन (ग्लानि), ज्वर और भेदन इनका हेतु होतीहै और पीला तथा गरम मल दिनको अधिक स्रवताहै ॥ ९ ॥ कफकी नाडीमें बहुत गाढा सुपेद मलिन मल रात्रिमें अधिक स्रवताहै तथा धीमी २ पीडा होतीहै कठिनता और खाज होतीहै । और जिनमें दो दोषके लक्षण हों वे द्वंद्वजनाडी जाननी । ये गतिके व्यतिकर(भेद)से द्वंद्वजभी तीन प्रकारकी होतीहै १ वातपित्त, २ वातकफ, ३ कफपित्त ॥ १० ॥

दाहज्वरश्वसनमूर्च्छनवक्त्रशोषा यस्यां भवन्त्यभिहितानि च लक्षणानि ॥ तामादिशेत्पवनपित्तकफप्रकोपाद्घोरामसुक्षयकरीमिव

(श्लो० ८) [illegible] इति । [illegible] । [illegible] इति [illegible] यथा-[illegible] [illegible] । (श्लो० ११) [illegible] [illegible] ॥

कालरात्रिम् ॥ ११ ॥ नष्टं कथंचिदणुमात्रमुदीरितेषु स्थानेषु शल्यमचिरेण गतिं करोति ॥ सा फेनिलं मथितमच्छमसृग्विमिश्रमुष्णं करोति सहसा सरुजा च पित्तम् ॥ १२ ॥

सन्निपातकी नाडीमें दाह, ज्वर, श्वास और मूर्च्छा तथा मुँहमें शुष्कता ये लक्षण होतेहैं यह कालरात्रिकी भाँति प्राण हरनेवाली और दारुण दुःख देनेवाली होती है । इसे वायु, पित्त और कफ इन तीनोंके कोपसे जानो ॥११॥ उदीरित जो त्वचा आदि स्थान उनमें कदाचित् अणुमात्रभी शल्य(कांटा, लोहा, पत्थर, शिला आदि) हो तो शीघ्रही व्रणमें गति उत्पन्न करताहै और इसमेंसे फेनयुक्त, मथितसा, स्वच्छ, रुधिरसे मिला हुआ, गरम मल तथा पित्त कष्टके साथ निकलताहै ॥ १२ ॥

स्तनरोग ।

यावन्त्यो गतयो येश्च कारणैः संभवन्ति हि ॥ तावन्त एव स्तनरोगाः स्युः स्त्रीणां तैरेव हेतुभिः ॥ १३ ॥ धमन्यः संवृतद्वाराः कन्यानां स्तनसंश्रिताः ॥ दोषाविसरणात्तासां न भवन्ति स्तनामयाः ॥ १४ ॥ तासामेव प्रजातानां गर्भिणीनां तु ताः पुनः ॥ स्वभावादेव विवृता जायन्ते संभवन्त्यतः ॥ १५ ॥

जितने हेतुओंसे जितनी गति होतीहैं (अर्थात् १ वायु, २ पित्त, ३ कफ, ४ सन्निपात, ५ अभिघातज) उतनेही प्रकारके स्तनरोग स्त्रियोंको उन्हीं उन्हीं कारणोंसे होतेहैं ॥ १३ ॥ कन्याओं (लडकियों) के स्तनोंकी नाडियोंके द्वार बंद होतेहैं इससे उनमें दोषोंका विसरण न होनेसे उनके स्तनोंमें रोग नहीं होते ॥ १४ ॥ और जब स्त्री युवा होतीहै तब गर्भवती होनेकी दशामें अथवा प्रसूता होनेकी दशामें ये स्तनकी नाडियोंके द्वार स्वभावहीसे खुले होतेहैं इस हेतु तब स्तनके रोगभी होतेहैं ॥ १५ ॥

रसप्रसादो मधुरः पक्काहारनिमित्तजः ॥ कृत्स्नदेहात्स्तनौ प्राप्तः स्तन्यमित्यभिधीयते ॥ १६ ॥ विशस्तेष्वपि देहेषु यथा शुक्रं न दृश्यते ॥ सर्वदेहाश्रितत्वाच्च शुक्रलक्षणमुच्यते ॥ १७ ॥ तद्देव चेष्टयुवतेर्दर्शनात्स्मरणादपि ॥ शब्दसंश्रवणात्स्पर्शात्संहर्षाच्च प्रव-

(श्लो० १२) [illegible] । (श्लो० १३) [illegible] । (श्लो० १५) [illegible] ॥

र्तते ॥ १८ ॥ सुप्रसन्नं मनस्तत्र हर्षणे हेतुरुच्यते ॥ आहाररसयो-
निर्त्वादेवं स्तन्यमपि स्त्रिया. ॥ १९ ॥ तदेवापत्यसंस्पर्शाद्दर्श
नात्स्मरणादपि ॥ ग्रहणाच्च शरीरस्य शुक्रवत्संप्रवर्त्तते ॥ स्नेहो
निरंतरस्तत्र प्रस्रवे हेतुरुच्यते ॥ २० ॥

आहारके परिपाकसे उत्पन्न हुआ जो शुद्ध और मधुर समस्त शरीरव्यापी रसका सार है वह जब सम्पूर्ण शरीरसे स्तनों (चूचियों) में प्राप्त होता है तब (श्वेत-भावको प्राप्त हुआ) दुग्ध कहलाता है ॥ १६ ॥ विशस्तदेह अर्थात् मृतशरीरमें जैसे शुक्र नहीं दीखता है (इसी प्रकार मृतशरीरके चीरनेसे दुग्धभी किसी एक जगह स्तन आदिमें नहीं पाया जाता) इसीसे दुग्धभी समस्त शरीरके आश्रय होनेसे शुक्रके लक्षणवाला (शुक्रकी भांति) कहा जाता है अथवा कई 'विशस्त'की जगह 'विसृत' ऐसा पाठांतर मानते हैं कि, जैसे सर्वत्र फैले हुए शरीरमें शुक्र नहीं दीखता वैसेही दुग्धभी इत्यादि परन्तु पहिला अर्थ ठीक है ॥ १७॥ वह सर्व शरीरवर्ती शुक्र प्यारी स्त्रीके दर्शनसे, ध्यानसे, शब्द सुननेसे, स्पर्शमें हर्षित होकर प्रवृत्त होता-है (शुक्रधरा कलामें आता है) ॥ १८ ॥ हर्षित होनेमें प्रसन्नमनही कारण होता-है (जैसे अभीष्ट स्त्रीके दर्शन स्पर्शादिमें पुरुषके सब शरीरसे निचुडकर शुक्र शुक्रधरा कलामें प्राप्त होता है तब पुरुषको चैतन्यता, मदमें स्थूलता और कठोरता आजाती है (ऐसेही आहारके रससे उत्पन्न होनेके कारणसे स्त्रियोंका दुग्धभी सब शरीरमें निचुड २ कर स्तनोंमें आता है (तब स्तन स्थूल और भारी होजाते हैं) ॥ ॥ १९ ॥ वह (स्त्रियोंका दुग्ध) संतानके स्पर्शसे, दर्शनसे, स्मरणसे, शरीरके ग्रह-णसे, शुक्रकी भांति (जैसे शुक्र वीर्यधराकलामें आजाता है वैसे) स्तनोंमें दुग्ध आजाता है और निरंतर अधिक जो स्नेह है वही इसके झिरने, टपकने या निक-लनेका कारण होता है ॥ २० ॥

दूषित स्तन्यके लक्षण ।

तत्कषायं भवेद्वातात् क्षिप्तं च प्लवतेम्भसि ॥ पित्तादम्लं च कटुकं
राज्योम्भसि च पीतिका ॥ २१ ॥ कफाद्धनं पिच्छिलं च जले
चाप्यवसीदति ॥ सर्वदुष्टे सर्वलिंगमभिघाताच्च दुष्यति ॥ २२ ॥

जो स्त्रीका दुग्ध कसैला हो और पानीमें बूँद डालनेसे ऊपरही तिरता फिरे उसे वायुसे दूषित जानों तथा जो स्वादमें अम्लता लिये हो या चरपराहट युक्त हो और जलमें डालनेसे पीली लकीरसी दीखे तो उस दुग्धको पित्तदूषित जानों ॥२१॥ कफसे दूषित दुग्ध भारी और गाढा होता है तथा जलमें बूँद डालनेसे डूब जाता-

है और जिसमे सब लक्षण हो वह तीनो दोषोंसे दूषित होता है और अभिघात (चोट लगने) या मर्दन करने आदिसे भी दुग्ध दूषित होजाता है ॥ २२ ॥

शुद्ध स्तन्यके लक्षण । -

यत्क्षीरमुदके क्षिप्तमेकीभवति पांडुरम् ॥
मधुरं चाविवर्णं च प्रसन्नं तद्विनिर्दिशेत् ॥ २३ ॥

जो दुग्ध जलमे डालनेसे एक जगह होजावे और कुछ २ पीलापन लिये हो तथा स्वादसे मीठा हो और दूषित वर्णवाला (नीला, पीला, गुलाबी आदि) न हो उसे निर्दोष जानो ॥ २३ ॥

सक्षीरौ वाप्यदुग्धौ वा प्राप्य दोषः स्तनौ स्त्रियाः ॥ रक्तं मांसं च संदूष्य स्तनरोगाय कल्पते ॥ २४ ॥ पञ्चानामपि तेषां तु हित्वा शोणितविद्रधिम् ॥ लक्षणानि समानानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ २५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दुग्धयुक्त या विना दुग्धके स्त्रीके स्तनोमे जब वातादि कोई दोष प्राप्त हो तब रुधिर तथा मांसको दूषित करके स्तनरोगका कारण होजाता है ॥ २४ ॥ रक्तकी विद्रधिको छोडकर इन पांचोके लक्षण बाह्यविद्रधिके लक्षणोंके तुल्य होते है (नाडीव्रणको यूनानीमें ' फुरह ' या ' नासूर ' कहते है और डाक्टरीमें 'सैनसया क्रानिक अलसर' कहते है) ॥ २५ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा०टी० निदानस्थाने दशमोऽध्याय ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११

अथातो ग्रन्थ्यपच्यर्बुदगलगंडानां निदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी ग्रंथि, अपची, अर्बुद और गलगंड इन रोगोंके निदानका व्याख्यान करते है ॥

ग्रंथिनिदान ।

वातादयो मांसमसृक् प्रदुष्टाः संदूष्य मेदश्च कफानुविद्धम् ॥
वृत्तोन्नतं विग्रथितं तु शोफं कुर्वन्त्यतो ग्रंथिरिति प्रदिष्टः ॥ १ ॥

दुष्ट हुए वातादिक दोष मांसको तथा रुधिरको और कफसे मिश्रित मेदको दूषित करके फैला हुआ तथा ऊँचा और गांठके तुल्य शोथ (ऊँचाई) पैदा कर देते है इससे इसे ग्रंथिरोग (गांठ) कहते है ॥ १ ॥

(श्लो० १) कफानुविद्धं कफोद्धतम् । [illegible] ([illegible]) ।

आयम्यते व्यथ्यत एति तोदं प्रत्यस्यते कृत्यत एति भेदम् ॥
कृष्णो मृदुर्वस्तिरिवाततश्च भिन्नः स्रवेच्चानिलजोऽस्रमच्छम् ॥२॥
दंदह्यते धूप्यति चातिमात्रं पापच्यते प्रज्वलतीव चापि ॥ रक्तः
सपीतोऽप्यथवापि पित्ताद्भिन्नः स्रवेदुष्णमतीव चास्रम् ॥ ३ ॥
शीतो विवर्णोऽल्परुजोऽतिकण्डूः पाषाणवत्संहननोपपन्नः ॥ चिराभि
वृद्धिश्च कफप्रकोपाद्भिन्नः स्रवेच्छुक्लघनं च पूयम् ॥ ४ ॥

जो ग्रंथि (गांठ) फूले, व्यथितसी हो, जिसमें चीस हो तथा चमचमाट हो, विदीर्णसी होती हो, फटीसी जाती हो, सांवला रंग हो, कर्कश हो, मशककी थैली हो और टूटनेपर (या नश्तर लगानेपर) स्वच्छ, सुरख रुधिर निकले वह वातग्रंथि है ॥ २ ॥ जिसमें दाह हो, संताप अधिक हो, पकाईसी जाती हो, अति प्रज्वलित (गरम) सी हो और लाल, पीला रंग हो, फूटनेपर गरम और अधिक रक्त निकले वह पित्तग्रंथि है ॥ ३ ॥ जो छूनेमें शीतल हो, जिसका वर्ण अपना न हो (त्वचाके रंग हो), जिसमें स्वल्प पीडा हो, खाज अधिक हो और पत्थर जैसी कडी हो, मलने या दबानेसे चैन मालूम हो, बहुत समयमें बढे और फूटनेपर सुपेद, गाढी राध निकले वह कफकी ग्रंथि है ॥ ४ ॥

शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिः स्निग्धो महानल्परुजोऽतिकण्डूः ॥ मेदः
कृतो गच्छति चातिभिन्ने पिण्याकसर्पिःप्रतिमं तु मेदः ॥ ५ ॥
व्यायामजातैरबलस्य तैस्तैराक्षिप्य वायुर्हि शिराप्रतानम् ॥
संपीड्य संकोच्य विशोष्य वा पि ग्रंथिं करोत्युन्नतमाशु वृत्तम् ॥६॥

जो ग्रंथि शरीरकी वृद्धि और क्षयके अनुसार बढती घटती रहे, बहुत स्निग्ध हो, जिसमें पीडा अल्प हो, खाज अधिक हो और जिसको अधिक भेदन करनेमें तिलकी पिट्ठी, घृत इनके समान मेदसा निकले तो वह मेदकी ग्रंथि है ॥ ५ ॥ यदि दुर्बल मनुष्य अति व्यायाम (परिश्रम) करे तो उन्हीं व्यायामोंसे कुपित

(श्लो० २) आयम्यते यन्त्रेणाकर्षणेन दीर्घ इव क्रियते। प्रत्यस्यते घूर्णते। (श्लो० ३) अग्निना धूप्यमान इव ... (इति डल्हन)। (श्लो० ४) पाषाणवत्कठिनः ... संहननम् ... (श्लो० ६) ... यथा—"अतिव्यायामशीलस्य ... ॥" (इति ...)।

वायु नसोंके जालको इकट्ठा करके अथवा दबाकर या सकोडकर या शोषित करके ऊँची, फैली हुई, ग्रंथि शीघ्र उत्पन्न करता है (वह शिरा अर्थात् नसोंकी ग्रंथि है) ॥६॥

ग्रंथिः शिराजः स तु कृच्छ्रसाध्यो भवेद्यदि स्यात्सरुजश्चलश्च ॥
अरुक् स एवाप्यचलो महांश्च मर्मोत्थितश्चापि विवर्जनीय ॥७॥

वह शिराकी ग्रंथि (नसोंकी गांठ) यदि पीडायुक्त हो तथा सरकती हो तो कष्टसाध्य होती है और यदि उसमे कुछ भी दर्द न हो और स्थिर हो, बडी हो तथा मर्मस्थानमे हो तो यह ग्रंथि त्याग करने योग्य (असाध्य) है ॥ ७ ॥

अपचीनिदान ।

हन्वस्थिकक्षाक्षकबाहुसंधिमन्यागलेषूपचितं तु मेदः ॥ ग्रंथिं स्थिरं वृत्तमथायतं वा स्निग्धं कफश्चाल्परुजं करोति ॥ ८ ॥ तं ग्रंथिभिश्चामलकास्थिमात्रैर्मत्स्यांडजालप्रतिमैस्तथान्यैः ॥ अनन्यवर्णैरुपचीयमानं चयप्रकर्षादपचीं वदंति ॥ ९ ॥

ठोढीके अस्थि, कांख, नेत्रके कोये, भुजाकी संधि, कनपटी और गला इन स्थानोंमे मेद और कफ (दूषित हो) स्थिर, गोल, चाडी, फली, चिकनी, अल्प पीडा वाली ग्रंथि उत्पन्न करते है ॥ ८ ॥ आमलेकी गुठली जसी गांठो करके तथा मछलीके अंडोके जाल जैसी त्वचाके वर्णकी अन्य गांठों करके उपचीयमान (संचित) होती है इससे चय (संचय) की उत्कर्षतासे इसे अपची कहते है ॥ ९ ॥

कंड्यतेऽल्परुजः प्रभिन्नाः स्रवंति नश्यंति भवन्ति चान्ये ॥
मेदःकफाभ्यां खलु रोग एष सुदुस्तरो वर्षगणानुबन्धः ॥ १० ॥

यह अपची रोग खाजयुक्त होता है और अल्पपीडा होती है इनमेंसे कोई तो फूटकर बहने लगजाते है और कोई स्वय नाश होजाते है यह रोग मेद और कफमे होता है यदि यह कई वर्षोंका होजाय तो नहीं जाता ॥ १० ॥

अर्बुद ।

गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषाः संमूर्छिता मांसमभिप्रदूष्य ॥ वृत्तं स्थिरं मंदरुजं महांतमनल्पमूलं चिरवृद्ध्यपाकम् ॥ कुर्वंति मांसोपचयं च शोफं तदर्बुदं शास्त्रविदो वदंति ॥ ११ ॥

(श्लो० १०) वर्षगणानुबंध सुदुस्तरः इति—सुदुस्तर उभयो दुस्तरम् । (श्लो० ११) [illegible] [illegible] । महांतं मध्ये [illegible] । (इति भावमिश्र) ॥

शरीरके किसी प्रदेशमें मूर्च्छित हुए वातादि दोष मांसको दूषित करके गोल, स्थिर, अल्प पीडावाले, बडे और फैली जडवाले तथा बहुत दिनमें कुछ २ बढने वाले, पककर नहीं फूटनेवाले ऐसे मांसके पिंडमें तथा शोथ उत्पन्न करतेहैं उन्हें शास्त्रज्ञ अर्बुद अर्थात् रसोली कहतेहैं ॥ ११ ॥

वातेन पित्तेन कफेन चापि रक्तेन मांसेन च मेदसा वा ॥
तज्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रंथेः समानानि सदा भवंति॥१२॥

वायुसे, पित्तसे, रुधिरसे, कफसे तथा मांससे अथवा मेदसे यह जो अर्बुदरोग होता है उसके लक्षण सदैव ग्रंथिके समान होतेहैं ॥ १२ ॥

दोषः प्रदुष्टो रुधिरं शिरास्तु संपीड्य संकोच्य गतस्तु पाकम् ॥
सास्रावमुन्नह्यति मांसपिंडं मांसांकुरैराचितमाशुवृद्धिम् ॥ १३ ॥
स्रवत्यजस्रं रुधिरं प्रदुष्टमसाध्यमेतद्रुधिरात्मकं स्यात् ॥ रक्तक्षयो-
पद्रवपीडितत्वात्पांडुर्भवेदर्बुदपीडितस्तु ॥ १४॥

दूषित हुआ (पित्त) दोष रुधिर और शिराओंको पीडित करके तथा संकुचित करके जब कभी पाकको प्राप्त हो तब स्रावयुक्त मांसपिंडको तथा मांसके अंकुर-युक्त मांसवृद्धिको उत्पन्न करताहै ॥१३॥ उसमें दूषित हुआ रुधिर बहुत निकलता-है। यह रक्तार्बुद असाध्य है क्योंकि इसमें रक्तक्षयके उपद्रवोंसे पीडित होनेके कारण रक्तार्बुद रोगवाला पीला पडजाताहै (या उसे पांडुरोग होजाताहै) ॥ १४ ॥

मांसार्बुद ।

मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेंगे मांसं प्रदुष्टं प्रकरोति शोफम् ॥ आवे-
दनं स्निग्धमनन्यवर्णमपाकमश्मोपममप्रचाल्यम् ॥ १५ ॥ प्रदुष्ट-
मांसस्य नरस्य बाढमेतद्भवेन्मांसपरायणस्य ॥ मांसार्बुदं त्वेतद
साध्यमुक्तं साध्येष्वपीमान्युपवर्जयेत्तु ॥१६॥ संप्रस्रुतं मर्मणि यच्च
जातं स्रोतःसु वा यच्च भवेदचाल्यम् ॥ यज्जायतेऽन्यत्खलु पूर्व-

(श्लो० १२) [illegible] (श्लो० १३।१४) दोषस्य [illegible] । [illegible] (श्लो० १५) मुष्टिप्रहार [illegible] (श्लो० १६) [illegible] ([illegible]) । [illegible]

जाते ज्ञेयं तदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः ॥ यद्द्वन्द्वजातं युगपत्क्रमाद्वा द्विरर्बुदं तच्च भवेदसाध्यम् ॥ १७ ॥

पीडित शरीरमें मुष्टि अथवा काष्ठादिके प्रहार आदिसे दूपित हुआ मांस ऐसे शोथको पैदा करता है जिसमें वेदना न रहे, स्निग्ध हो, त्वचाके वर्णका ही हो, पककर फूटे नहीं, कडा पत्थरसा हो तथा चलायमान नहीं हो (उसे मांसार्बुद कहते हैं) (यहां आदि शब्दके कथनसे प्रहारके सिवाय दबजाने कुचला जाने इत्यादि कारणों तथा अन्य कारणोंसेभी मांसार्बुद हो सकता है) ॥ १५ ॥ प्राय मांसार्बुद मांसभोजी मनुष्योंके जब मांस दूषित होता है तब विशेष करके होता है। और यह मांसार्बुद असाध्य कहा है तथा साध्य वातादिके अर्बुदोंमेंसेभी आगे कहे हुए अर्बुदोंको (असाध्य जानके) त्याग देना चाहिये ॥ १६ ॥ जो सदा झिरता हो अथवा जो मर्मस्थानोंमें हो अथवा जो स्रोत अर्थात् द्वारोंमें हो तथा चलायमान न हो और जो पहले अर्बुद हो उसीके समीप और अन्य अर्बुद उत्पन्न हो जाय तो उसे वैद्य अध्यर्बुद कहते हैं। अथवा दो दोषोंसे एकही वार पास पास दो अर्बुद पैदा हो तो वे द्विरर्बुद होते हैं और येभी असाध्य हैं ॥ १७ ॥

न पाकमायान्ति कफाधिकत्वान्मेदोधिकत्वाच्च विशेषतस्तु ॥
दोषस्थिरत्वाद्ग्रथनाच्च तेषां सर्वार्बुदान्येव निसर्गतस्तु ॥ १८ ॥

ये अर्बुद इस हेतुसे पाकको प्राप्त नहीं होते कि इनमें अधिकी अपेक्षा कफका भाग बहुत अधिक होता है और विशेष करके मेदका भाग तो बहुतही अधिक होता है तथा दोषकी स्थिरता हो जाती है और गांठसी बँध जाती है जिससे स्वभावहीसे सब अर्बुद प्राय नहीं पकते ॥ १८ ॥

गलगड।

वातः कफश्चैव गले प्रवृद्धौ मन्ये तु संसृत्य तथैव मेदः ॥ कुर्वन्ति गण्डं क्रमशः स्वलिङ्गैः समन्वितं तं गलगण्डमाहुः ॥ १९ ॥ तोदान्वितः कृष्णशिरावनद्धः कृष्णोऽरुणो वा पवनात्मकस्तु ॥ मेदोन्वितश्चोपचितश्च कालाद्भवेत्प्रवृद्धश्च गले रुजश्च ॥ २० ॥

यदि बढेहुए वायु और कफ गले (की नसादि) में स्थित होकर तथा मेदमें स्थित होकर अपने अपने लक्षणों सहित यथाक्रम गड अर्थात् फोडा पैदा करें तो

(श्लो० १८) [illegible] । (श्लो० १९) [illegible] । [illegible] ।
(श्लो० २०) [illegible] ।

उसको गलगंड रोग कहतेहैं ॥ १९ ॥ जो गलगंड पीडायुक्त हो, काली नसोंसे धरित हो, रंग काला अथवा रक्त हो वह वायुका गलगंड होता है और इसमें देरसे भेदका संचय होता है, गलेके लिप्त होनेपर पीडा होती है ॥ २० ॥

वातजगलगंडके लक्षण।

पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्ध्यपाको यदृच्छया पाकमियात्कदाचित् ॥ वैरस्यमास्यस्य च तस्य जंतोर्भवेत्तथा तालुगलप्रशोषः ॥ २१ ॥

जो कठोरतायुक्त हो बहुत दिनमें बढे और पककर फूटे नहीं तथा कदाचित् अपनी इच्छासे पक (फूट) भी जाय और उस मनुष्यके मुँहमें विरसता हो तथा तालु और गलेमें खुश्की हो (तो वायुका गलगंड हो) ॥ २१ ॥

कफजगलगंडके लक्षण।

स्थिरः सवर्णोऽल्परुजोग्रकंडूः शीतो महांश्चापि कफात्मकस्तु॥चिराभिवृद्धिं कुरुते चिराद्वा प्रपच्यते मंदरुजः कदाचित् ॥ माधुर्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रलेपः ॥ २२ ॥

जो स्थिर हो, पके वर्णका हो, जिसमें थोडी पीडा हो, खाज अधिक हो, (स्पर्शमें) शीतल हो, स्थूल हो,बहुत दिनोंमें बढे और बहुतही दिनोंमें पके भी और मंद २ पीडा हो और उस मनुष्यके मुखमें मीठापन हो तथा तालु और गलेमें लेपसा हो तो कफका गलगंड है ॥ २२ ॥

मेदोजगलगंडके लक्षण।

स्निग्धो मृदुः पांडुरनिष्टगंधो मेदःकृतो नीरुगथातिकंडूः ॥ प्रलंबतेऽलाबुवदल्पमूलो देहानुरूपक्षयवृद्धियुक्तः ॥ स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जंतोर्गलेन शब्दं कुरुते च नित्यम् ॥ २३ ॥

जो चिकना हो, पीला हो, जिसमें बुरी बास आवे, पीडा नहीं हो, खाज विशेष हो और जो घीया तोंबीके तुल्य लटके और जडमेंसे कुछ पतला हो तथा शरीरकी वृद्धि और क्षयके अनुसार छोटा बडा हो और उस मनुष्यका मुँह चिकना हो तथा नित्य गलेमें शब्द करता हो उसे मेदकी अधिकताका गलगंड जानो ॥ २३ ॥

गलगंडकी असाध्यता।

कृच्छ्राच्छ्वसंतं मृदुसर्वगात्रं संवत्सरातीतमरोचकार्तम् ॥ क्षीणं च वैद्यो गलगंडिनं तं भिन्नस्वरं चैव विवर्जयेत्तु ॥२४॥

(श्लो० २१) वातात्मकस्तत्र भवेच्च तालुर्गले पिपासा ......

जो गलगडका रोगी मनुष्य कष्टसे श्वास लेवे और सब गात्र कोमल होजावें तथा एक वर्षसे अधिकका गलगड हो, अरुचि हो, क्षीण होजाय तथा जिसका स्वर भग होजाय ऐसे गलगडके रोगीको वैद्य त्याग देवे ॥ २४ ॥

निबंद्ध श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लम्बते गले ॥
महान्वा यदि वा ह्रस्वस्तं गडमिति निर्दिशेत्॥ २५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

जिसके गलेमें नियमित शोथ हो और वह वृषणकी तरह लटके, बडा हो या छोटा हो उसको गलगड कहते है ॥ २५ ॥

परिशिष्ट ।

भावप्रकाशोक्त–गडमालालक्षण ।

श्लोक–कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागलवङ्क्षणेषु ॥
मेदःकफाभ्यां चिरमन्दपाकैः स्याद्गडमाला बहुभिश्च गडैः ॥ १ ॥

अर्थ–छोटे या बडे बेर तथा आंवलेके प्रमाण कांख, कांध और गलेसे पीछेकी मोटी नसे तथा गलेके वक्षण अर्थात् हाथोंकी संधि (हँसलीके नीचे) मे यदि मेद और कफसे उत्पन्न हुए बहुत दिनोंमें मन्द मन्द पकनेवाले बहुतसे गड होजावें तो उन्हे गडमाला कहते हैं ॥ १ ॥

गडमालाको डाक्टरीमें 'इस्काफ्यूला' कहते है और यूनानी हकीम अर्बुदको 'सलआ' कहतेहैं और ग्रंथिको 'अकद' कहतेहैं और गलगडको भी इसीका भेद कहतेहैं॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा०टी० निदानस्थाने एकादशोऽध्याय ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२

अथातो वृद्ध्युपदंशश्लीपदानां निदानं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी वृद्धि (अण्डवृद्धि), उपदंश, श्लीपद इन रोगोंके निदानकी व्याख्या करते हैं ॥

अण्डवृद्धि ।

वातपित्तश्लेष्मशोणितमेदोमूत्रान्त्रनिमित्ताः सप्त वृद्धयः । तासां मूत्रान्त्रनिमित्ते वृद्धी वातसमुत्थे केवलमुत्पत्तिहेतुरन्यतमः ॥ १ ॥

(गद्य १) वृद्धि अण्डवृद्धि । मूत्रान्त्रनिमित्ते वृद्धी वातसमुत्थे केवलमुत्पत्तिहेतुरन्यतमः । [illegible] मूत्रनिमित्ता वृद्धिः अन्त्रनिमित्ता वृद्धिश्च द्वे वातसमुत्थे एव केवलमुत्पत्तिहेतुरन्यः यथा मूत्रवृद्धेः उत्पत्ति [illegible] ॥

अथ प्रकुपितोऽन्यतमो हि दोष फलकोशवाहिनीरभिप्रपद्य धमनी फलकोशयोर्वृद्धिं जनयति ता वृद्धिमित्याचक्षते ॥ २ ॥

वायु, पित्त, कफ, रुधिर, मेद, मूत्र तथा अन्त्र (अँतडी) इन कारणोंसे वृद्धि (अण्डवृद्धि) रोग सात प्रकारका होताहै। इनमेंसे मूत्रज और अंत्रज वृद्धिका निमित्तभी वायुहीसे उत्पन्न होताहै, केवल उत्पत्तिका हेतुमात्र और होताहै (अर्थात् मूत्रवृद्धि और अन्त्रवृद्धिकी उत्पत्तिके हेतु क्रमसे मूत्र और अन्त्र हैं अथवा मूत्रसधारण मूत्रजवृद्धिका अन्य हेतु और भारहरण (बोझ उठाना) अन्त्रजवृद्धिका अन्य हेतु होजाताहै)॥ १ ॥ नीचे वस्तिस्थानमें कुपित हुआ कोईसा (वातादि) दोष अंडकोशवाहिनी धमनीमें प्राप्त होकर अंडकोशोंमें वृद्धि उत्पन्न करदेताहै उसे वृद्धिरोग कहतेहैं ॥ २ ॥

वृद्धिका पूर्वरूप ।

तासां भविष्यतीनां पूर्वरूपाणि वस्तिकटीमुष्कमेढ्रेषु वेदना । मारुतनिग्रह । फलकोशयो शोफश्चेति ॥ ३ ॥

जब अण्डवृद्धि होनेवाली होतीहै तब उसके ये पूर्वरूप होतेहैं। वस्ति, कमर, वृषण, लिंग इनमें पीडा हो, अधोवायुका निरोध हो तथा अंडकोशमें सूजन होनेलगे॥३॥

तत्रानिलपरिपूर्णां वस्तिमिवाततां परुषामनिमित्तानिलरुजं वातवृद्धिमाचक्षते। पक्वोदुंबरसंकाशां ज्वरदाहोष्मवतीं चाशुसमुत्थानपाकां पित्तवृद्धिम् । कठिनामल्पवेदनां शीतां कंडूमतीं श्लेष्मवृद्धिम् । कृष्णस्फोटावृतां पित्तवृद्धिलिंगां रक्तवृद्धिम् । मृदुस्निग्धां कंडूमतीमल्पवेदनां तालफलप्रका[illegible]

मूत्रसंधारणशीलस्य मूत्रवृद्धिर्भवति सा [illegible]

क्षुभ्यति मूत्रकृच्छ्रवेदना वृषणयो श्वयथु [illegible]

मूत्रवृद्धिं विद्यात् ॥ ५ ॥

इनमेंसे जो वायुसे भरी म[illegible] कर्ण हो, [illegible]
वायुकी पीडा हो तो उसे वायुवृ[illegible] । जिसमें [illegible]
हो, मनुष्यको ज्वर, दाह और गर[illegible] तथा शी[illegible]
उसे पित्तकी अण्डवृद्धि कहते हैं । [illegible] हो, अ-

हो, खाज विशेष हो वह कफकी अडवृद्धि है। जिसमें वृषणोंपर काली २ बहुतसी फुन्सियां हो और प्राय. पित्तवृद्धिके लक्षण हो वह रुधिरकी अडवृद्धि है। जिसमें वृषण कोमल हो, चिकनाई हो, खाज हो, पीडा अल्प हो, तालफलके तुल्य दीखे उसे मेदकी अडवृद्धि कहतेहैं ॥४॥ जो मनुष्य मूत्रको रोके प्राय उसके मूत्रज अडवृद्धि होती है वह चलते हुए पानीसे भरी मशककी तरह थलथलाती है और मूत्र कठिनतासे आता है तथा वृषणों और वृषणकोश (थेलियो) मे शोथ पैदा कर देतीहै उसे मूत्रकी अडवृद्धि जानना चाहिये ॥ ५ ॥

भारहरणबलवद्विग्रहवृक्षप्रपतनादिभिरायासविशेषैर्वायुरतिप्रवृद्ध प्रकुपितश्च स्थूलान्त्रस्येतरस्य चैकदेशं द्विगुणमादायाधो गत्वा वक्षणसधिमुपेत्य ग्रथिरूपेण स्थित्वाऽप्रतिक्रियमाणे च कालांतरेण फलकोश प्रविश्य मुष्कशोफमापादयत्याध्मातो वस्तिरिवाततः प्रदीर्घ शोफो भवति। सशब्दमवपीडितश्चोर्द्ध्वमुपैति विमुक्तश्च पुनराधमति तामन्त्रवृद्धिमसाध्यामित्याचक्षते ॥६ ॥

बोझा उठानेसे, बलवान्‌के साथ लडने (कुश्ती करने) से, वृक्षसे गिरने आदि विशेष कष्टोसे वायु अत्यत बढकर और कुपित होकर मोटी आंतोंमेंसे अथवा अन्य पतली आंतोंमेंसे किसीके एकदेशको दोहरा करके नीचेको पहुँचा वृषणोंकी सधिमें लाके ग्रथिरूपसे स्थित होता है और यदि उसकी प्रतिक्रिया नहीं कीजाय तो यह समय पाकर अडकोशमें प्रविष्ट होजाता है और वृषणोंमे सूजन उत्पन्न करता है ओर फूलीहुई मशककी तरह फैला हुआ बडा शोथ होता है और ऊपरको दबानेसे शब्दके साथ ऊपरको चढ जाता है औरछोड देनेसे फिर उतर आता है उसे अन्त्र (अँतडीकी) अडवृद्धि कहतेहै और इसको असाध्य कहते हैं (अडवृद्धिको डाक्टरीमें 'इन्फल्मेशन ओफदी टिमटीक्लिस' कहते हैं और यूनानीमें 'तार्जीमुल अर्नासैन' कहते हैं) ॥ ६ ॥

उपदशनिदान।

तत्रातिमैथुनादतिब्रह्मचर्याद्वा तथा ब्रह्मचारिणीं चिरोत्सृष्टा रजस्वला दीर्घरोमा कर्कशरोमा सकीर्णरोमा निगूढरोमामल्पद्वारां महाद्वारामप्रियामकामामचोक्ष्यसलिलप्रक्षालितयोनिमप्रक्षालितयोनिं योनिरोगोपसृष्टा स्वभावतो वा दुष्टयोनिं वियोनिं वा नारीमत्यर्थमुपसेवमानस्य तथा करजदशनविषशूकनिपातनादर्दनाद्-

स्ताभिघाताच्चतुष्पदीगमनाद्दुष्टसलिलप्रक्षालनाद्दन्तपीडनाच्छुक्रमूत्रवेगविधारणान्मैथुनान्ते वाप्रक्षालनादिभिर्मेढ्रमागम्य कुपिता दोषाः क्षतेऽक्षते वा श्वयथुमुपजनयति तमुपदंशमित्याचक्षते ॥ ७ ॥ स पञ्चविधस्त्रिभिर्दोषैः पृथक्समस्तैरसृजा चैकः ॥ ८ ॥

अति मैथुनसे, अति ब्रह्मचर्यमें तथा ब्रह्मचारिणी, बहुतदिनकी छुटी हुई, रजस्वला, बडे रोमोंवाली, कडे रोमोंवाली, सकीर्ण रोमोंवाली स्त्रीके साथ संग करनेसे तथा जिसके भीतरको वाल घुसे हों उस स्त्रीके संगमें तथा जिसकी योनि तंग हो या जिसकी बडी हो उसके संगसे तथा जो अप्रिय हो, जो मैथुनकी इच्छा न करे या जिसने मलिन जलसे योनि धोई हो या जिसने (बहुत दिनसे) योनि धोई नहीं हो या जिसकी योनिमें कोई व्रणादि रोग हो या स्वभावहीसे जिसकी योनि दूषित (अस्थ्यादि युक्त) हो या जिसके योनि होही नहीं (अर्थात् हीजडी हो जिसके छोटासा मूत्रमार्ग होताहै) ऐसी स्त्रियोंके साथ संग करनेसे या विशेष स्त्रियोंके पास रहनेसे तथा नाखून, दांत लगनेसे, विष, तिनका गिरनेसे, दबानेमें, हाथसे मर्दनसे, पशुगमनसे, मैले जलसे लिंग धोनेसे, मसलनेसे, वीर्य और मूत्रके वेग रोकनेसे, मैथुनांतमें न धोने इत्यादिसे कुपित हुए वातादि दोष लिंगमें प्राप्त होकर घावमें या विना घावही शोथ पैदा करते हैं इसे उपदंश कहते हैं ॥७॥ यह उपदंश पांच प्रकारका होता है १ वातसे, २ पित्तसे, ३ कफसे, ४ सन्निपातसे और ५ पांचवां रक्तदोषसे होता है ॥ ८ ॥

तत्र वातिके पारुष्यं त्वक्परिपुटनं स्तब्धमेढ्रता परुषशोफता विविधाश्च वातवेदनाः। पैत्तिके ज्वरः श्वयथुः पक्वोदुम्बरसंकाशस्तीव्रदाहः क्षिप्रपाकः पित्तवेदनाश्च । श्लैष्मिके श्वयथुः कण्डूमान् कठिनः स्निग्धः श्लेष्मवेदनश्च । रक्तजे कृष्णस्फोटप्रादुर्भावोऽत्यर्थमसृक्प्रवृत्तिः पित्तलिंगानि चात्यर्थं ज्वरदाहौ शोषश्च याप्यश्च कदाचित् । सर्वजे सर्वलिंगदर्शनमवदरणं शेफसः क्रिमिप्रादुर्भावो मरणं चेति ९

इनमेंसे वातके उपदंशमें खरदरापन होताहै, लिंगकी चमडीमें तरेड होजाती है, इंद्रिय कडी होजातीहै और स्परशमें सोजा होताहै तथा अनेक प्रकारकी वातजनित वेदना होतीहै । पित्तके उपदंशमें ज्वर हो, शोथ हो, पके गूलरके समान लाल वर्ण हो, बहुत जलन हो, शीघ्र पके तथा पित्तकी वेदना हो । कफके उपदंशमें खाजसे

(पाठ ९) [illegible]॥

युक्त, कडा, चिकना और कफकी वेदनावाला सोजन (शोथ) हो। रक्तके उपदंशमें काली २ फुन्सियां पैदा हो, अधिक रुधिर निकले, पित्तकेसे लक्षण हों, विशेष कर ज्वर हो, दाह हो, शोष (खुश्की) हो, कभी कभी यह रक्तोपदंश याप्य होजाताहै सन्निपातके उपदंशमें सबके लक्षण होतेहैं, लिंगमें दारुण जखम पड़जातेहै, उनमें कीड़े पड़जातेहै तथा मृत्यु होजातीहै ॥ ९ ॥

अथ परिशिष्ट।

फिरंगरोगोत्पत्ति।

यद्यपि चरक, सुश्रुत, वाग्भट, हारीत आदि सनातन संहिताओंमें फिरंगरोग नही लिखा केवल उपदंशही लिखाहै परंतु इस समय जो रोग आतशक (गरमी) के नामसे विख्यात है और बहुत फैला है वह पूर्वलिखित उपदंशसे विलक्षणही प्रतीत होताहै। चरक, सुश्रुतादिमें जो इसे पृथक् नहीं लिखा इससे जाना जाताहै कि उस समय भारतभूमिमें यह दारुण रोग फिरंग नहीं था परंतु प्रकृतिविरुद्ध अन्यदेशीय मनुष्योंका यहीं अधिक समागम हुआ तो उनके संगसे इसका प्रादुर्भाव हुआ और भावमिश्रके समयमें इस फिरंगरोगका यहां प्रादुर्भाव होगयाथा इसीसे अपने भावप्रकाश ग्रंथमें भावमिश्रने इस रोगको उपदंशसे पृथक् लिखाहै देखो भावप्रकाशमें लिखाहै कि-

श्लोक-फिरंगसंज्ञके देशे बाहुल्येनैव यद्भवेत् ॥ तस्मात्फिरंग इत्युक्तो व्याधिर्व्याधिविशारदैः ॥ १ ॥ फिरंगिणोऽङ्गसंसर्गात्फिरंगिण्याः प्रसंगतः ॥ व्याधिरागंतुजो ह्येष दोषाणामत्र संक्रमः ॥ २ ॥

अर्थ-फिरंग आदि ठंडे देशोंमे यह रोग विशेषतासे होताहै इस कारणसे इसका नाम वैद्योंने फिरंगरोगही कहाहै ॥ १ ॥ फिरंगी (फिरंगरोगवाले) के अंगके संसर्गसे अथवा फिरंगिणी (फिरंगरोगवाली) स्त्रीके प्रसंगसे यह आगंतुक व्याधि पैदा (हुई और) होतीहै इसमें दोषोंकी संक्रामकता प्रसंगसे होतीहै ॥ २ ॥

श्लोक-फिरंगस्त्रिविधो ज्ञेयो बाह्य आभ्यंतरस्तथा ॥ बहिरंतर्भवश्चापि तेषां लिंगानि च ब्रुवे ॥ ३ ॥ तत्र बाह्यफिरंगः स्याद्विस्फोटसदृशोऽल्परुक् ॥ स्फुटितो व्रणवद्वैद्यैः सुखसाध्योपि स स्मृतः ॥ ४ ॥ संधिष्वाभ्यंतरः स स्यादामवात इव व्यथाम् ॥ शोथं च जनयेदेष कष्टसाध्यो बुधैः स्मृतः ॥ ५ ॥ कार्श्यं बलक्षयो नासाभंगो वह्नेश्च मंदता ॥ रक्तदोषोऽस्थिपन्नत्व फिरंगोपद्रवा अमी ॥ ६ ॥

अर्थ-फिरंगरोग तीन प्रकारका होताहै। १ बाह्य, २ आभ्यंतर, ३ बाह्याभ्यंतर उनके लक्षण कहतेहैं ॥ ३ ॥ इनमेंसे बाह्य (बाहरी) फिरंगमें फुन्सियांसी होतीहै, कष्टभी अल्प होताहै, फूट जानेपर व्रणकी भांति वैद्योंने सुखसाध्य कहाहै ॥ ४ ॥ आभ्यंतर (भीतरी) फिरंग आमवातरोगकी तरह संधियोंमें व्यथा और शोथ पैदा

करता है यह वैद्योंने कष्टसाध्य कहा है ॥ ५ ॥ इस रोगके ये उपद्रव है-कृशता, बलकी क्षीणता, नाक भग होजाना, अग्निकी मदता, रक्तदोष (खून बिगडजाना), अस्थियोंका टेढा होना। (कई 'रक्तदोष' की जगह 'अस्थिशोष' ऐसा पाठांतर मानते है) ॥ ६ ॥

(वक्तव्य) सुश्रुतपाठी वैद्य "योनिरोगोपसृष्टामुपसेवमानस्य" इस सुश्रुतवचनानुसार फिरंगरोगका भी उपदंशमेंही अतर्भाव करते है इसी कारण फिरंगयोनि रोगवाली स्त्रीके साथ सग करनेसे इसकी उत्पत्ति भी मानते है और यहांपर "शुक्रमूत्रवेगविधारणात्" ऐसा भी लिखा है जिससे वर्तमान समयके सुजाकरोग (कृच्छ्र) का भी अतर्भाव होसकता है परच भावप्रकाशके अनुसार उपदंश और फिरंगकी औषध और चिकित्सामे अन्तर होनेसे तथा फिरंगमें आमवातकेसी व्यथा और नासाभगादि उपद्रवोंके अन्तरसे अवश्य यह पृथक्ही सिद्ध होता है। डाक्टरोंमें इसे "सिफलिस" और यूनानी हकीम "बादफरंग" या "आतशक" कहते है ॥

इति वर्धिनिदानम्।

श्लीपदनिदान।

कुपितास्तु दोषा वातपित्तश्लेष्माणोऽधः प्रपन्ना वक्षणोरुजानुजघास्ववतिष्ठमाना कालांतरेण पादमाश्रित्य शनैः शोफ जनयंति नत् श्लीपदमित्याचक्षते॥१०॥तच्चित्रिविध वातपित्तकफनिमित्तमिति॥११॥

कुपित हुए वायु, पित्त, कफ दोष नीचेको प्राप्त होकर वंक्षण (पांवोंकी कमरकी सधि), साथल, जानु और जघा इन स्थानोंमे स्थित हुए समय पाकर पैरों (पिंडलियो) मे प्राप्त होकर धीरे धीरे शोथ उत्पन्न करते है (पैरको मोटा स्थूल करदेते है) इसे श्लीपद (फील्पाय रोग) कहते हैं ॥१०॥ यह तीन प्रकारका होता है वायुका, पित्तका और कफका ॥ ११ ॥

तत्र वातज खरं कृष्ण परुषमनिमित्तानिलरुजं परिस्फुटति च बहुशः। पित्तज तु पीतावभासमीषन्मृदु ज्वरदाहप्रायश्च। श्लेष्मजं तु श्वेत स्निग्धावभासं मंदवेदन भारिकमिति महाग्रंथिक कंटकैरुपचित च॥१२॥ तत्र संवत्सरातीतमतिमहत्[illegible]मीकजात प्रस्रुतमिति वर्जनीयम्॥ १३ ॥ भवन्ति चात्र-

(पाठ १२) [illegible]

वायुके श्लीपदमें पांव खरदरा, साँवला, कडा होता है तथा विना हेतु वायुके विकार होते हैं और विशेष करके पाँवका शोथ फटने लगता हे (लकीरसी होतीहै) पित्तका श्लीपद हो तो पाँवके शोथमे पीली चमक मालूम हो, कुछ २ कोमल हो तथा प्रायः ज्वर और दाह हो। कफके श्लीपदमें सोजा सुपेद हो, चिकनी चमक हो, मद पीडा हो, भारीपन अधिक हो, बडी गाँठसी हों तथा मांसके अकुरोंसे व्याप्त हो ॥१२॥ इनमेंसे जो एक वर्षसे अधिक पुराना होवे, जो साँपोंकी वँबईके समान होगया हो तथा जो नित्य झिरता हो तो (असाध्य जान) त्यागने योग्य हे ॥१३॥ इस विषयमे श्लोक है-

त्रीण्येतानि विजानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात् ॥
गुरुत्व च महत्त्व च यस्मान्नास्ति विना कफात् ॥ १४ ॥

ये तीनोंही प्रकारके श्लीपद कफकी उल्बणतासे होते हैं क्योंकि कफके विना भारीपन और मोटापन नहीं हो सक्ता(इससे इस रोगमे प्रधान कफही है)॥१४॥

पुराणोदकभूयिष्ठाः सर्वर्तुषु च शीतलाः ॥ ये देशास्तेषु जायते श्लीपदानि विशेषतः ॥ १५ ॥ पादयोर्हस्तयोश्चापि श्लीपद जायते नृणाम् ॥ कर्णाक्षिनासिकौष्ठेषु केचिदिच्छन्ति तद्विद ॥ १६ ॥

इति सुश्रुतसहितायां निदानस्थाने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

जिन देशोंमे बहुत करके पुराना (कई वर्षोंका भरा) जल हो और वे देश सब ऋतुओंमे शीतलही हों ऐसे देशोंमें विशेष करके श्लीपद रोग अधिक होताहै (जैसे विहार, अवध, बगाल प्रांतके अनूपदेशोंमे यह अधिक होताहै) ॥ १५ ॥ मनुष्योंके पैरोंमें तथा किसीके हाथोंमेभी यह श्लीपद रोग होताहीहै परन्तु कई आचार्य ऐसाभी कहते है कि यह श्लीपद कान, नेत्र, नासिका और होठ (तथा लिंग)मेंभी हो सक्ताहै (श्लीपदको डाक्टरोंमे "इन्फ्लेमेशन ऑफदीलेग" कहतेहैं और यूनानी-वाले "पीलपाँव" कहतेहैं) ॥ १६ ॥

इति पण्डितमुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० निदानस्थाने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३

अथातः क्षुद्ररोगाणा निदान व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे आगाडी क्षुद्ररोगोंके निदानकी व्याख्या करते हैं ।

समासेन चतुश्चत्वारिंशत् क्षुद्ररोगा भवन्ति तद्यथा ॥ १ ॥ अज-गल्लिका यवप्रख्याऽन्धालजी विवृता कच्छपिका वल्मीकमिन्द्रवृद्धा

पनसिका पाषाणगर्दभो जालगर्दभ कक्षा विस्फोटकोऽग्निरो-
हिणी चिप्प कुनखोऽनुशयी विदारिका शर्करार्बुद पामा विचर्चि
का रकसा पाददारिका कदरमलसेंद्रलुप्तौ दारुणकोऽरुंपिका पलितं
मसूरिका यौवनपिडका पद्मिनीकंटको जतुमणिर्मशकश्चर्मकील-
स्तिलकालको न्यच्छं व्यंग परिवर्तिकाऽवपाटिका निरुद्धप्रकाशः
निरुद्धगुदोऽहिपूतन वृषणकच्छ्वर्गुदभ्रंशश्चेति ॥ २ ॥

संक्षेपतासे चवालीस ४४ क्षुद्ररोग होते हैं जैसे ॥ १ ॥ १ अजगल्लिका, २ यव-प्रख्या, ३ अंधालजी, ४ विवृता, ५ कच्छपिका, ६ वल्मीक, ७ इन्द्रवृद्धा, ८ पनसिका, ९ पाषाणगर्दभ, १० जालगर्दभ, ११ कक्षा, १२ विस्फोटक, १३ अग्निरोहिणी, १४ चिप्प, १५ कुनख, १६ अनुशयी, १७ विदारिका, १८ शर्करार्बुद, १९ पामा, २० विचर्चिका, २१ रकसा, २२ पाददारिका, २३ कदर, २४ अलस, २५ इन्द्रलुप्त, २६ दारुणक, २७ अरुंषिका, २८ पलित, २९ मसूरिका ३० यौवनपिडिका, ३१ पद्मिनीकंटक, ३२ जतुमणि, ३३ मशक, ३४ चर्मकील, ३५ तिलकालक, ३६ न्यच्छ, ३७ व्यंग, ३८ परिवर्तिका, ३९ अवपाटिका, ४० निरुद्धप्रकाश, ४१ निरुद्धगुद, ४२ अहिपूतन, ४३ वृषणकच्छु तथा ४४ गुदभ्रंश ऐसे ये ४४ क्षुद्र इनके लक्षण चिह्नादि अगाडी लिखते हैं ॥ २ ॥

क्षुद्ररोगोंके लक्षण।

स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसन्निभा ॥
कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका ॥ ३ ॥

जो चिकनी, त्वचाके वर्णकी ग्रथित मूँगके समान, पीडारहित बालकोंके फुन्सी होती है उसे " अजगल्लिका ' कहते हैं यह कफ और वायुसे होती है ॥ ३ ॥

यवाकारा सुकठिना ग्रथिता मांससंश्रिता ॥ पिडका श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्येति सोच्यते ॥ ४ ॥ घनामवक्त्रां पिडकामुन्नतां परिमंडलाम् ॥ अंधालजीमल्पपूयां तां विद्यात्कफवातजाम् ॥५॥ विवृतास्यां महादाहां पक्वोदुंबरसन्निभाम् ॥ विवृतामिति तां विद्यात्पित्तोत्थां परिमंडलाम् ॥ ६ ॥ ग्रथिताः पंच वा षट् वा दारुणाः कच्छपोन्नताः ॥ कफानिलाभ्यामुद्भूतां विद्यात्तां कच्छपीमिति ॥ ७ ॥

जो फुन्सी यव (जो) के आकार हो, बहुत कठिन हो, गांठसी पड़गई हो, जिसपर मांस आच्छादित हो उसे " यवप्रख्या " कहते है यह कफ और वायुसे उत्पन्न होती है ॥ ४ ॥ जो फुन्सी कड़ी हो, जिसमें मुख न हो, ऊपरको उठी हुई हो या नीचे फैली हो, उसमें अल्प पीव हो उसे "अन्धालजी" कहते है यह भी कफ, वायुसेही उत्पन्न होतीहै ॥५॥ जिसका मुँह फैला हुआ हो, अत्यंत दाह हो तथा जो पके गूलरके समान हो, फैली हो वह "विवृता" है यह पित्तसे उत्पन्न होती है ॥ ६ ॥ जिसमें पांच या छः ग्रंथि दारुण हों और कछुवेकी भांति ऊपरको उठी हो वह "कच्छपी" है, यह कफ और वायुसे होती है ॥ ७ ॥

पाणिपादतले संधौ ग्रीवायामूर्द्धजत्रुणि ॥ ग्रंथिर्वल्मीकवद्यस्तु शनैः समुपचीयते ॥ ८ ॥ तोदक्लेदपरीदाहकंडूमद्भिर्व्रणैर्वृतः ॥ व्याधिर्वल्मीक इत्येष कफपित्तानिलोद्भवः ॥ ९ ॥

जो हाथकी हथेली, पावोंके तलवे, संधि, ग्रीवा (गरदन) तथा ऊर्द्धजत्रु (हंसलीके ऊपर) इन स्थानोंमें धीरे धीरे बढकर बँबईके आकार होजाय, दरद और क्लेदना तथा दाह और खाजवाले व्रणोंसे व्याप्त हो तो वह " वल्मीक " नामक रोग है यह कफ, पित्त और वायुसे होता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

पद्मपुष्करवन्मध्ये पिडकाभिः समाचिताम् ॥ इन्द्रवृद्धां तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थितां भिषक् ॥ १० ॥ कर्णोपरि समंताद्वा पृष्ठे वा पिडकोग्ररुक् ॥ शालूकवत्पनसिकां तां विद्यात्कफवातजाम् ॥ ११ ॥

जो बीचमें कमलकी कर्णिकाकी भांति फुन्सियोंसे व्याप्त हो वह फुन्सी " इन्द्रवृद्धा " है, इसे वैद्य वात, पित्तसे उत्पन्न जाने ॥ १० ॥ जो कानपर आस पास या पीठपर शालूककी तरह उग्रपीडावाली फुन्सी हो उसे " पनसिका " जाने यह कफ, वायुसे होती है ॥ ११ ॥

हनुसंधौ समुद्भूतं शोफमल्परुजं स्थिरम् ॥ पाषाणगर्दभं विद्याद्बलासपवनात्मकम् ॥ १२ ॥ विसर्पवत्सर्पति यः शोफस्तनुः ॥ अपाकः श्वयथुः पित्तात्स ज्ञेयो जालगर्दभः ॥ १३ ॥

जो हनु (ठोडी) की संधिमें उत्पन्न हुआ, अल्प पीडावाला और स्थिर सोजा हो उसे " पाषाणगर्दभ " जाने (इसे देशभाषामें " कनेर " और डाक्टरीमें

(श्लो० ११) [illegible] ([illegible]) ॥

" परोटा इटिस' कहते हैं) यह भी कफ और वायुसे होता है ॥१२॥ जो अग्नि के भांति फैले, दाह और ज्वर पैदा करे, हलका हो और पके नहीं ऐसा गोगा पित्तसे उपजा " जालगर्दभ " कहलाता है ॥ १३ ॥

बाहुपार्श्वांसकक्षासु कृष्णस्फोटां सवेदनाम् ॥ पित्तप्रकोपात्संभूता कक्षामिति विनिर्दिशेत् ॥ १४ ॥ अग्निदग्धनिभाः स्फोटाः सज्वरा रक्तपित्ततः ॥ क्वचित्सर्वत्र वा देहे स्मृता विस्फोटका इति ॥ १५ ॥ कक्षाभागेषु ये स्फोटा जायते मांसदारुणा ॥ अंतर्दाहज्वरकरा दीप्ता पावकसंनिभाः ॥ ॥ १६ ॥ सप्ताहाद्वादशाहाद्वा पक्षाद्वा घ्नति मानवम् ॥ तांम ग्निरोहिणीं विद्यादसाध्या सन्निपाततः ॥ १७ ॥

जो भुजा, पँसवाडा, स्कन्ध और कांखके स्थानमें वेदनायुक्त काली फुन्सी हो उसे "कक्षा" (काँखलाई) कहते हैं यह पित्तके कोपसे होती है ॥ १४ ॥ जो अग्निसे जलेके समान स्फोट (फफोले) किसी शरीरके एक भागमें या सारे शरीरमें हो, ज्वरभी हो तो उन्हें "विस्फोटक" कहतेहैं ये रक्त और पित्तसे होतेहैं ॥ १५ ॥ जो कांखके प्रदेशमें मांसको दारुण करनेवाले, अंतर्दाह और ज्वर करनेवाले, अग्निके समान जलनेवाले ऐसे फोडे हों उन्हें "अग्निरोहिणी" कहतेहैं ये सन्निपातसे होते हैं और असाध्य होते हैं तथा सात दिनमें अथवा दश दिनमें अथवा पन्द्रह दिनमें मनुष्यको मारदेते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

नखमांसमधिष्ठाय वाते पित्त च वेदनाम् ॥
करोति दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्पमादिशेत् ॥
तदेव क्षतरोगाख्य तथोपनखमित्यपि ॥ १८ ॥

जो नखूनके मांसमें वायु और पित्त प्राप्त होकर वेदना तथा दाह और पाक उत्पन्न करे तो उसे "चिप्प" कहते हैं और इसेही "क्षतरोग" तथा "उपनख" भी कहते हैं ॥ १८ ॥

अभिघातात्प्रदुष्टो यो नखो रूक्षोऽसितः खरः ॥ भवेत्तं कुनखं विद्यात्कुलीनमिति संज्ञितम् ॥ १९ ॥ गंभीरामल्पसंरंभां सवर्णां

(क्षे० १६।१७) ...

सुपरिस्थिर्तीम् ॥ कफादत:प्रपाकांतां विद्यादनुशयीं भिषक् ॥२०॥ विदारीकंदवद्वृत्तां कक्षावक्षणसंधिषु ॥ रक्तां विदारिकां विद्यात्सर्वजां सर्वलक्षणाम् ॥ २१ ॥

चाट आदि लगनेसे दूषित हुआ जो नख रुक्ष और काला तथा खरदरा हो-जाय तो उसे "कुनख" कहते हैं और इसेही "कुलीन" संज्ञकभी जानो ॥ १९ ॥ जो फोडा गहरा हो, आरभमें थोडासा दीखे, ऊपरसे त्वचाके रगहीका हो (भीतर चक्रदार हो) और भीतरहीसे पकता आवे उसे वैद्य " अनुशयी " कहतेहैं यह कफसे उत्पन्न जानो ॥ २० ॥ जो विदारीकदके समान गोल, फैला हुआ, कांख तथा नलोंके ऊपर लालरगका फोड़ा हो उसे "विदारिका" कहतेहैं यह विदारिका संनिपातसे होतीहै और इसमें सब दोषोंके लक्षण होतेहैं ॥ २१ ॥

प्राप्य मांसशिरास्नायु श्लेष्मा मेदस्तथाऽनिलः॥ग्रंथिं कुर्वंति भिन्नोऽसौ मधुसर्पिर्वसानिभम् ॥ २२ ॥ स्रवत्यास्रावमत्यर्थं तत्र वृद्धिंगतोऽनिलः ॥ मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्करां जनयेत्पुनः ॥ २३ ॥ दुर्गंधं क्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः शिराः ॥ स्रवंति सहसा रक्तं तद्विद्याच्छर्करार्बुदम् ॥ २४ ॥

मांस और शिरा तथा स्नायुमें कफ, मेद तथा वायु प्राप्त होकर ग्रंथि पैदा करते-हैं । यह जब फूटे या चीरीजाय तब उसमेंसे शहत, घृत, चर्बी जैसा मल अधिक झिरताहै फिर वृद्धिको प्राप्त हुआ वायु उसमें मांसको शुष्क करके ग्रथियुक्त शर्करा (रेतासा) उत्पन्न करदेताहै । फिर दुर्गंधयुक्त क्लिन्न (क्लेदित) नाना प्रकारके वर्णका रक्त अत्यत शिराओंमेंसे एकाएक निकलने लगजाताहै तो इसे " शर्करा-र्बुद" कहतेहैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

पामाविचर्च्यौ कुष्ठेषु रकसा च प्रकीर्तिता॥ २५॥परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूक्षयोः॥पादयोः कुरुते दारीं सरुजां तलसंश्रिताम्॥२६॥

" पामा" (गीली खुजली), " विचर्ची " (च्योंची) तथा "रकसा" (सूखी खाज) इनके लक्षण कुष्ठोंके लक्षणोंमें वर्णन होचुके हैं ॥ २५ ॥ बहुत फिरनेवाले मनुष्योंके अतिरूखे पांवोंके नीचे पीडावाली दारी (बिवाई) रोगको वायु उत्पन्न करता है उसे "पाददारी" कहतेहैं ॥ २६ ॥

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभिः॥ मेदोरक्तानुगैश्चैव दोषै-र्वा जायते नृणाम् ॥ २७ ॥ सकील: कठिनो ग्रन्थिर्निम्नमध्यो ऽन्नतोपि वा ॥ कोलमात्र सरुक् स्रावी जायते कदरस्तु सः ॥२८॥ क्लिन्नांगुल्यन्तरौ पादौ कण्डूदाहरुगन्वितौ ॥ दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसं तं विनिर्दिशेत् ॥ २९ ॥

जब छोटी २ कंकरियोंसे कुचले हुए पांवोंमें या कांटे आदिसे घाव हुएमें मेद और रुधिरके अनुगत दोष हो जाते हैं तब मनुष्योंके पांवोंमें कीलयुक्त कड़ी, नीची, मध्यम, अथवा ऊपरको उठी हुई बड़े बेरके समान पीड़ावाली, गांठ पड़जाती है यह "कदर" नामक क्षुद्ररोग कहलाता है (इसे भाषामें ठेल कहते हैं) ॥ २७ ॥ २८ ॥ जो भीगे हुए पैरोंकी अंगुलियोंके बीचमें खाज, दाह, चीसयुक्त पीड़ा, दुष्ट कीचडके स्पर्शसे होती है उसे "अलस" (पा सार) कहते हैं ॥ २९ ॥

रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्च्छितम् ॥ प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः ॥ ३० ॥ रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोऽन्येषाम संभवः ॥ तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं रुज्येति च विभाव्यते ॥ ३१ ॥

जब रोमकूपके अनुगत पित्त होता है और वायुसे मिलकर मूर्च्छित होजाता है तब रोमों (बालों) को गिरा देता है फिर रक्तसे मिला कफ रोमकूप (रोमोंके छिद्रों) को रोक देता है जिससे फिर और बाल नहीं आते इस रोगको "इन्द्र-लुप्त" और "खालित्य" रोग कहते हैं (इसे भाषामें 'गुरा' या 'गंज' कहते हैं) ॥ ३० ॥ ३१ ॥

दारुणा कण्डुरा रूक्षा केशभूमिः प्रजायते ॥ कफवातप्रकोपेण विद्याद्दारुणकं तु तम् ॥ ३२ ॥ अरूंषि बहुवक्त्राणि बहुक्लेदानि मूर्द्धनि ॥ कफासृक्कृमिकोपेन नृणां विद्यादरूंषिकाम् ॥ ३३ ॥

जिसमें बालोंकी जमीनमें दारुण खाज चलै, रूक्षता हो उसे "दारुणक" कहते हैं यह कफ और वायुके कोपसे होता है ॥ ३२ ॥ जिसमें अनेक मुखवाली बहुत गीली शिरमें फुंसियां हों उसे "अरूंषिका" रोग कहते हैं। यह कफ, रक्त और कृमि (जू) के विकारसे होता है ॥ ३३ ॥

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः ॥ पित्तं च केशान् पचति पलितं तेन जायते ॥३४॥ ग्रीवास्कन्धांसदेशेषु वातश्लेष्मा ....

टाः सपीतकाः ॥ गात्रेषु वदने चान्तर्विज्ञेयास्ता मसूरिकाः ॥३५॥ शाल्मलीकण्टकप्रख्याः कफमारुतशोणितैः ॥ जायते पिडका यूनां वक्त्रे या मुखदूषिका ॥ ३६ ॥ कण्टकैराचितं वृत्तं कण्डूमत्पाण्डुमण्डलम् ॥ पद्मिनीकण्टकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम् ॥ ३७ ॥

जब क्रोध, शोक और परिश्रम करनेसे शरीरकी गरमी और पित्त शिरमें प्राप्त होकर बालोंको सुपेद करते हैं तब "पलित" नामक रोग होजाता है ॥ ३४ ॥ जो दाह, ज्वर और पीडावाली सुरख, पीलापन युक्त शरीरमें तथा मुँहके भीतर (मसूर समान) फुन्सियां हों उन्हें "मसूरिका" कहते हैं। (हिन्दी भाषामें इसे 'शीतला' और उरदूमें 'चेचक' कहते हैं) यह रुधिर और पित्तकी प्रधानतासे होती है ॥ ३५ ॥ जो सम्भलके कांटेके तुल्य तरुण मनुष्योंके मुँहपर छोटी २ फुसियां होती हैं उन्हें "मुखदूषिका" तथा "यौवनपिडका" कहते हैं ये कफ, वायु और रुधिरसे होती हैं (भाषामें इन्हें 'मुहांसा' कहते हैं) ॥३६॥ जो अंकुरोंसे व्याप्त, गोल, खाजवाली, पीली जडवाली, कमलिनीके कांटोंकी भांति फुन्सियां हों उन्हें "पद्मिनीकण्टक" कहते हैं यह कफ और वायुसे उत्पन्न होतीहैं॥३७॥

नीरुजं सममुत्पन्नं मण्डलं कफरक्तजम्॥सहजं रक्तमीषच्च श्लक्ष्णं जतुमणिं विदुः ॥ ३८ ॥ अवेदनं स्थिरं चैव यस्य गात्रेषु दृश्यते॥ माषवत्कृष्णमुत्सन्नमनिलान्मशकं दिशेत्॥३९॥कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि च ॥ वातपित्तकफोद्रेकात्तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ ४० ॥

जो चकत्ता पीडारहित, समान हो, मण्डलसा हो, कुछ लाल (ऊदा) हो, खरदरा न हो, जन्मसेही हो यह कफरक्तज "जतुमणि" (लशुन) कहाता है ॥३८॥ जो वेदनारहित, स्थिर मापके तुल्य, उभरा हुआ, काला शरीरपर हो उसे "मशक" (मसा) कहते हैं। यह वायुसे होता है ॥ ३९ ॥ जो छोटे २ तिलके समान काले छीटेंसे, वेदनारहित शरीरपर होते हैं उन्हें "तिलकालक" (तिल) कहतेहैं ये वात, पित्त, कफके उद्रेकसे होते हैं ॥ ४० ॥

मण्डलं महदल्पं वा श्यामं वा यदि वा सितम्॥सरुजं नीरुजं गात्रे न्यच्छमित्यभिधीयते ॥ ४१ ॥ समुत्थाननिदानाभ्यां चर्मकीलं प्रकीर्तितम् ॥४२॥ क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः ॥ सहसा

मुखमागम्य मंडलं विसृजेत्ततः ॥ नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यंगं तमादिशेत् ॥ ४३ ॥

जो शरीरपर छोटे या बडे, काले या सुपेद, पीडारहित, जन्मसे मस्से हों उन्हें 'न्यच्छ' (चकत्ते) कहते है (यह रक्त और पित्तसे होते है) ॥ ४१ ॥ लक्षण और निदानसे " चर्मकील " रोग जानना चाहिये अर्थात् वात आदि दोषसे जैसा और जिस स्थानमें हो उसीसे जाने ॥ ४२ ॥ जब क्रोध तथा श्रमसे कुपित हुआ वायु पित्तसे मिलकर एकाएक मुखकी बहिर्गत त्वचामें प्राप्त होकर मण्डल (चन्द) पैदा करता है तब पीडारहित कुछ २ काले चकत्तेसे मुखपर होजाते है उसे 'व्यंग' अर्थात् झाईं कहते है ॥ ४३ ॥

मर्दनात्पीडनाच्चापि तथैवाप्यभिघाततः ॥ मेढ्रचर्म यदा वायुर्भजते सर्वतश्चरः ॥ ४४ ॥ तदा वातोपसृष्टं तु चर्म प्रतिनिवर्तते ॥ मणेरधस्तात्कोशश्च ग्रन्थिरूपेण लम्बते ॥ ४५ ॥ सवेदनः सदाहश्च पाकं च व्रजति क्वचित् ॥ मारुतागन्तुसम्भूतां विद्यात्तां परिवर्तिकाम् ॥ सकण्डूः कठिना चैव सैव श्लेष्मसमुत्थिता ॥ ४६ ॥

जब लिंग इन्द्रियको मसलने, अति दबानेसे तथा चोट आदिलगनेमें मेढ्रकी चर्मको वायु चारोंतरफसे उस चर्मको नीच करदेताहै ॥ ४४ ॥ तब वायुसे नीचे उतराहुआ चर्म फिर ऊपरको नहीं चढता और अग्रभागके नीच चर्मका लोथ्या ग्रंथिरूपसे स्थित होजाताहै ॥ ४५ ॥ इसमें पीडा होतीहै, दाह होताहै, कभी कभी पकभी जाताहै । यह आगन्तुककारण और वायुसे होताहै इसे " परिवर्तिका " रोग जानो यदि इसमें अति खाज हो और कडापन हो तो इसे कफसे उपजा जानना चाहिये ॥ ४६ ॥

अल्पीयःखां यदा हर्षाद्बालां गच्छेत्स्त्रियं नरः ॥ हस्ताभिघातादथवा चर्मण्युद्वर्तिते बलात् ॥ ४७ ॥ मर्दनात्पीडनाद्वापि शुक्रवेगविघाततः ॥ यस्यावपाट्यते चर्म तां विद्यादवपाटिकाम् ॥ ४८ ॥

जो पुरुष अक्षत योनि अवस्थावाली बालक स्त्रीसे काम हर्षके कारण गमन करे अथवा किशोर अवस्थाका पुरुष हाथसे चर्मको ऊपर चढावे ॥ ४७ ॥ अथवा

(श्लो० ४७) [illegible] (इति पाठान्तरम्) ।

लिंगके चर्मको बहुत मले अथवा दबावे या वीर्यका वेग रुक जाय इन कारणोंसे यदि लिंगके ऊपरका चर्म फट जाय तो उसे "अवपाटिका" कहते हैं॥४८॥

वातोपसृष्टमेवं तु चर्म संश्रयते मणिम्॥मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च॥ ४९ ॥ निरुद्धप्रकशे तस्मिन् मन्दधारमवेदनम्॥ मूत्रं प्रवर्तते जन्तोर्मणिर्न च विदीर्यते ॥ निरुद्धप्रकशं विद्यादरूढां चावपाटिकाम् ॥ ५० ॥

जिसके वायुसे उपसृष्ट चर्म लिंगके अग्रभागको आच्छादन करले तब मणि अर्थात् लिंगका अग्रभाग (सुपारी) चर्मसे ढक जाय और मूत्रके द्वारको रोक दे ॥ ४९ ॥ फिर उस निरुद्धप्रकाशवाले स्थानमेंसे वेदना रहित पतली धारसे मूत्र आवे और अग्रभाग उघडेही नहीं तो इसे "निरुद्धप्रकाश" कहते हैं यह अवपाटिकाके नहीं उघडनेसेभी होता है (या इसे अरूढ अवपाटिकाभी कहते हैं) ॥ ५० ॥

वेगसंधारणाद्वायुर्विहतो गुदमाश्रितः ॥ निरुणद्धि महत्स्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च ॥ ५१ ॥ मार्गस्य सौक्ष्म्यात्कृच्छ्रेण पुरीषं तस्य गच्छति ॥ सन्निरुद्धगुदं व्याधिमेनं विद्यात्सुदुस्तरम् ॥५२॥

जब मलका वेग रोकनेसे रुका हुआ वायु गुदामें प्राप्त होकर मलके निकलनेके बडे द्वारको निरोध करके मार्गको तंग करदेता है ॥ ५१ ॥ तब मल निकलनेका रास्ता तंग होनेसे मल कष्टसे निकलता है इसे "सन्निरुद्धगुद" रोग कहते हैं यह दुस्तर (कष्टसाध्य) रोग है ॥ ५२ ॥

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत् ॥ स्विन्नस्यास्नाप्यमानस्य कण्डूरक्तकफोद्भवा ॥ ५३ ॥ कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटाः स्रावश्च जायते ॥ एकीभूतं व्रणैर्घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ ५४ ॥

जब बालकको विष्ठामूत्रसे भरे हुए, बिनाधोये अपान वायु होताहै तथा पसीना नित्य आया करे और स्नान नहीं कराया जाय तो उस बालकके रक्त और कफसे उपजी खाज होतीहै ॥ ५३ ॥ फिर विशेष खुजानेमें शीघ्रही फुन्सियां होकर झिरने लगतीहै और व्रणोंमें एकरूप घोर उत्पन्नमा होजाताहै इसे "अहिपूतन" जानो ॥ ५४ ॥

(श्रा० ४९।५०) [illegible] ॥

स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंश्रितः ॥ प्रक्लिद्यते यदा स्वेदात्स कंडूं जनयेत्तदा ॥ ५५ ॥ तत्र कंडूयनात्क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते ॥ प्राहुर्वृषणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ॥ ५६ ॥

जो मनुष्य न्हाने धोने और मैल उतारनेसे हीन हो उनके वृषणोंमें आश्रित हुआ मैल जब पसीने आकर क्लेदित होताहै तब खाज पैदा करताहै ॥ ५५ ॥ फिर वहां खुजानेसे शीघ्रही फुन्सियां होतीहैं, पसीना निकलने लगताहै इसे " वृषणकच्छू " कहतेहैं यह कफ और रुधिरके कोपसे होताहै ॥ ५६ ॥

प्रवाहणातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं यदि ॥
रूक्षदुर्बलदेहस्य तं गुदभ्रंशमादिशेत् ॥ ५७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अतिप्रवाहण (धिनकने) से तथा अतिसारसे जब रूक्ष और दुर्बल मनुष्यकी गुदा (कांच) बाहर निकले तो उसे "गुदभ्रंश" रोग कहतेहैं (यह वायुसे होताहै)५७

इति पं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० निदानस्था० त्रयोदशोऽध्याय ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्याय १४

अथातः शूकदोषनिदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी शूकदोषके निदानकी व्याख्या करतेहैं ।

लिंगवृद्धिमिच्छतामक्रमप्रवृत्तानां शूकदोषनिमित्ता दश चाष्टौ च व्याधयो जायंते तद्यथा सर्षपिका अष्ठीलिका ग्रथितं कुम्भीका अलजी मृदितं संमूढपिडका अवमन्थः पुष्करिका स्पर्शहानि उत्तमा शतपोनकः त्वक्पाकः शोणितार्बुदं मांसार्बुदं मांसपाकः विद्रधिः तिलकालकश्चेति ॥ १ ॥

(गद १) [illegible]

जो पुरुष अयोग्य क्रमसे लिंगकी वृद्धि (तथा स्थूलता, कठोरता आदि) की इच्छामें प्रवृत्त होते है (अर्थात् अयोग्य मूढ लोगोंकी बताई औषध तिले, पट्टी, लेप आदिसे लिंगकी वृद्धि आदिके लिये यत्न करते हैं) उनको शूकदोषके कारणसे अठारह प्रकारकी व्याधियां होतीहै वे ये है-१ सर्पपिका, २ अष्ठीलिका, ३ग्रथित,४ कुम्भिका, ५ अलजी, ६ मृदित, ७ समूढपिडका, ८ अवमथ, ९ पुष्करिका, १० स्पर्शहानि, ११ उत्तमा, १२ शतपोनक, १३ त्वक्पाक, १४ शोणितार्बुद १५ मांसार्बुद, १६ मांसपाक, १७ विद्रधि, १८ तिलकालक ॥ १ ॥

सर्षपिकादिलक्षण ।

गौरसर्षपतुल्या तु शूकदुर्भग्नहेतुका ॥ पिडका कफरक्ताभ्या ज्ञेया सर्षपिका बुधै ॥ २ ॥ कठिना विषमैरंतैर्मारुतस्य प्रकोपतः ॥ शूकैस्तु विषसयुक्तै पिडकाष्ठीलिका भवेत् ॥ ३ ॥

जो सुपेद सरसोंके तुल्य छोटी २ फुन्सियां कफ और रक्तसे हो उन्हे "सर्पपिका" कहते है ये शूक (नामक लिंगवृद्धिकारक कृमि) के दुर्भग होने (ठीक न होने) के दोषसे होती है॥२॥ जो कडी और भीतरसे विषम ऐसी वायुके कोपसे पिडिका होवह "अष्ठीलिका" है यह विषयुक्त शूकोंसे होतीहै ॥ ३ ॥

शूकैर्यत्पूरितं शश्वद्ग्रथितं तत्कफोत्थितम् ॥ कुंभीका रक्तपित्तोत्था जांववास्थिनिभा सिता ॥ ४ ॥ अलजीलक्षणैर्युक्तामलजीं च वितर्कयेत् ॥५॥ मृदितं पीडितं यत्तु सरब्ध वायुकोपत ॥ पाणिभ्या भृशसमूढे समूढपिडका भवेत् ॥ ६ ॥ दीर्घा बह्वयश्च पिडका दीर्यते मध्यतस्तु या ॥ सोवमथं कफासृग्भ्या वेदना-रोमहर्षकृत् ॥ ७ ॥

जो बहुतसे शूकोंसे निरतर पूरित रहे उसे कफसे उपजा "ग्रथित" राग जाने तथा रक्त और पित्तसे उपजी जामुनकी गुठली जैसी काली कुंभीकाके सदृश जो

(श्लो० २) दुर्भगाः शूका यत्र योगे तद्धेतुका ॥ (श्लो०३) भवे भवेत् (इति नि० स०)॥

(श्लो० ४) शूकैर्यत्पूरितमिति-बहुभिः शूकैः शश्वत् यत् पूरितं तद्ग्रथितं भवति । [illegible] पूर्णं ग्रथनमिवोच्छ्रितं [illegible] निम्नाधित[illegible] ग्रथितनामा व्याधिर्भवति । "कुंभीके"ति कुंभीकास्थिव भवन्ति कुम्भकारचक्रतोऽधः भवति । (इति डल्हणः) ॥ (श्लो० ६) शूकदोषे सति पीडितं च यद्धस्तेन तदा भवति तद् मृदितम् । शूकदोषे पाणिभ्यां भृशसमूढे [illegible] पिडका भवति भवति [illegible] इत्यनुवर्तते (इति भावमिश्रः) ॥ (श्लो० ७) अवमंथोपि [illegible] शूक-[illegible] ॥

स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंश्रित.॥ प्रक्लिद्यते यदा स्वेदात्स कंडूं जनयेत्तदा॥ ५५ ॥ तत्र कडूयनात्क्षिप्र स्फोट॰ स्रावश्च जायते॥प्राहुर्वृषणकच्छू तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ॥५६॥

जो मनुष्य न्हाने धोने और मैल उतारनेसे हीन हो उनके वृषणोमे आश्रित हुआ मैल जब पसीने आकर क्लेदित होताहै तब खाज पैदा करताहै ॥ ५५ ॥ फिर वहां खुजानेसे शीघ्रही फुन्सियां होतीहै, पसीना निकलने लगताहै इसे " वृषणकच्छू " कहतेहै यह कफ और रुधिरके कोपसे होताहै ॥ ५६ ॥

प्रवाहणातिसाराभ्या निर्गच्छति गुदं बहि ॥
रूक्षदुर्बलदेहस्य तं गुदभ्रंशमादिशेत् ॥ ५७ ॥

इति सुश्रुतसहितायां निदानस्थाने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३॥

अतिप्रवाहण (किनछने) से तथा अतिसारसे जब रूक्ष और दुर्बल मनुष्यकी गुदा (कांच) बाहर निकले तो उसे "गुदभ्रंश" रोग कहतेहैं (यह वायुसे होताहै)५७

इति प० मुरलीधरशर्मनि० सुश्रुतस० भा० टी० निदानस्थाने त्रयोदशोऽध्याय ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४

अथात शूकदोषनिदान व्याख्यास्याम ।

अब यहांसे अगाडी शूकदोषके निदानकी व्याख्या करतेहै।

लिंगवृद्धिमिच्छतामक्रमप्रवृत्ताना शूकदोषनिमित्ता दश चाष्टौ च व्याधयो जायते तद्यथा सर्षपिका अष्ठीलिका ग्रथितं कुम्भीका अलजी मृदित समूढपिडका अवमन्थ पुष्करिका स्पर्शहानि उत्तमा शतपोनक त्वक्पाक. शोणितार्बुद मासार्बुदं मासपाक विद्रधि. तिलकालकश्चेति ॥ १ ॥

(गद्य १) शूक: [illegible] पुरा [illegible] कामिनो जना [illegible] यथा—"[illegible] ॥ १ ॥" [illegible] (इति भावमिश्र) [illegible] ॥

जो पुरुष अयोग्य क्रमसे लिंगकी वृद्धि (तथा स्थूलता, कठोरता आदि) की इच्छामें प्रवृत्त होते है (अर्थात् अयोग्य मूढ लोगोंकी बताई औषध तिले, पट्टी, लेप आदिसे लिंगकी वृद्धि आदिके लिये यत्न करते हैं) उनको शूकदोषके कारणसे अठारह प्रकारकी व्याधियां होतीहैं वे ये है–१ सर्षपिका, २ अष्ठीलिका, ३ग्रथित, ४ कुंभिका, ५ अलजी, ६ मृदित, ७ समूढपिडका, ८ अवमथ, ९ पुष्करिका, १० स्पर्शहानि, ११ उत्तमा, १२ शतपोनक, १३ त्वक्पाक, १४ शोणितार्बुद १५ मांसार्बुद, १६ मांसपाक, १७ विद्रधि, १८ तिलकालक ॥ १ ॥

सर्षपिकादिलक्षण ।

गौरसर्षपतुल्या तु शूकदुर्भग्नहेतुका ॥ पिडका कफरक्ताभ्या ज्ञेया सर्षपिका बुधै ॥ २ ॥ कठिना विषमैरन्तैर्मारुतस्य प्रकोपत. ॥ शूकैस्तु विषसयुक्तै पिडकाष्ठीलिका भवेत् ॥ ३ ॥

जो सुपेद सरसोंके तुल्य छोटी २ फुन्सियां कफ और रक्तसे हों उन्हे "सर्षपिका" कहते है ये शूक (नामक लिंगवृद्धिकारक कृमि) क दुर्भग्न होने (ठीक न होने) केदोषसे होती है॥२॥ जो कडी और भीतरसे विषम ऐसी वायुके कोपसे पिडिका हो वह "अष्ठीलिका" है यह विषयुक्त शूकोंसे होतीहै ॥ ३ ॥

शूकैर्यत्पूरितं शश्वद्ग्रथितं तत्कफोत्थितम् ॥ कुंभीका रक्तपित्तोत्था जाववास्थिनिभाऽसिता ॥ ४ ॥ अलजीलक्षणैर्युक्तामलजीं च वितर्कयेत् ॥५॥ मृदितं पीडितं यत्तु सरब्धं वायुकोपत ॥ पाणिभ्या भृशसमूढे समूढपिडका भवेत् ॥ ६ ॥ दीर्घा बह्व्यश्च पिडका दीर्यंते मध्यतस्तु या ॥ सोवमथः कफासृग्भ्या वेदना रोमहर्षकृत् ॥ ७ ॥

जो बहुतसे शूकोंसे निरंतर पूरित रहे उसे कफसे उपजा "ग्रथित" रोग जाने तथा रक्त और पित्तसे उपजी जामुनकी गुठली जैसी काली कुंभीफल सदृश जो

(श्लो० २) दुर्भग्नाः शूका यत्र योग वर्धका ॥ (श्लो० ३) अंते पतिताः (इति नि० व०)॥
(श्लो० ४) शूकैर्यत्पूरितमिति—बहुभि शूकै प्रचुरम् यत् पूरितं तत्कफेन ग्रथितं भवति । कुंभिकारक्तपित्ताभ्यां जाम्बवास्थिनिभासिता निष्पावस्थूलाकारा पिडका । तत्स्वरूपमाह । "कुंभीके"ति कुंभीफलमिव अवयवे पुष्करमध्यकर्णिकावत् भवति । (इति वाग्भट) ॥ (श्लो० ६) मृदितमिति पीडितं च पश्चात् सरब्धं भवति तन्मृदितम् । समूढपिडकेति पाणिभ्यां भृशसमूढे लिंगे पिडका समूढपिडका भवति अथवा पाणिभ्यां मर्दने इत्यर्थः (इति भावमिश्र) ॥ (श्लो० ७) अवमंथ इति दीर्घत्वं तत्र कर्मांतरमेव ज्ञेयः ॥

फुसी लिंगपर होती है उसे " कुंभीका " या कुंभिका कहते है यहभी दुष्ट शूकके अवचारणसे होतीहै ॥ ४ ॥ जो अलजी प्रमेहपिडिकाओंमें वर्णन होचुकी है उसके लक्षणोंसे युक्त फुन्सी हो तो उसे "अलजी" जानना चाहिये ॥५॥ (शूककी पीडा होनेपर) जो लिङ्ग मसला या दवाया जाय तो वायुके कोपसे "मृदित" नाम रोग होता है तथा (शूकदोष होनेपर) वारवार हाथ लगानेसे " संमूढपिडिका " रोग हो जाता है ॥ ६ ॥ जिसमें बडी २ बहुतसी फुंसियां बीचसे फटीसी होजावैं उसे " अवमंथ" कहते है यह कफ और रक्तसे होता है । यह रोग वेदना तथा रोमहर्ष करनेवाला होता है ॥ ७ ॥

पित्तशोणितसंभूता पिडका पिडकाचिता ॥ पद्मपुष्करसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिकेति सा ॥८॥ जनयेत्स्पर्शहानिं तु शोणितं शूकदूषितम् ॥९॥ मुद्गमाषोपमा रक्ता पिडका रक्तपित्तजा ॥ उत्तमेषा तु विज्ञेया शूकाजीर्णनिमित्तजा ॥ १० ॥

जिसमें पित्त और रक्तसे उपजी हुई फुन्सीसे फुन्सी मिलकर कमलकी कर्णिकाके तुल्य हो उसे " पुष्करिका" जानो ॥ ८ ॥ जिसके शूकदोषसे दूषित हुआ रुधिर स्पर्शकी हानि उत्पन्न कर दे उसे "स्पर्शहानि ' रोग जानो ॥ ९ ॥ जो मूँग और उड़दके वरावर लाल फुसी रक्त, पित्तसे उपजी हो उसे " उत्तमा " नाम रोग कहते है, यह शूकके जीर्ण नही होनेसे होताहै ॥ १० ॥

छिद्रैरणुमुखैर्यत्तु चितं मेढ्रं समन्ततः ॥ वातशोणितजो व्याधिर्विज्ञेयः शतपोनकः ॥११॥ पित्तरक्तकृतो ज्ञेयस्त्वक्पाको ज्वरदाहवान् ॥१२॥ कृष्णस्फोटैः सरक्तैश्च पिडकाभिश्च पीडितम् ॥ यस्य वस्तिरुजश्चोग्रा ज्ञेयं तच्छोणितार्बुदम् ॥ १३ ॥ मांसदोषेण जानीयादर्बुदं मांससंभवम् ॥ १४ ॥

छोटे२ मुखवाले छिद्रोंसे लिंग इन्द्रिय चारोंतरफसे व्याप्त हो तो इसे "शतपोनक" नाम शूकरोग कहतेहै यह व्याधि वायु और रक्तसे होतीहै ॥ ११ ॥ यदि लिंगकी

(श्लो० ८) पद्मपुष्करं कमलकर्णिका तद्वत् संस्थानमाकृतिर्यस्याः सा ॥ (श्लो० ९) शुक्रदूषितं शूकेन दुष्टतां नीतं शोणितम् ॥ (श्लो० १०) शूका न जीर्णीभूता यत्र तन्निमित्तजा रक्तपित्तजन्या उत्तमा ज्ञेया ॥ (श्लो० ११) शतपोनकः शूकदूषितवातशोणितजः ॥ (श्लो० १२) त्वक्पाकः शूकदूषितपित्तरक्तजः ॥ (श्लो० १३) शोणितार्बुदं शूकदूषितरक्तेन भवति ॥ (श्लो० १४) मांसार्बुदं शूकदूषितमांसेन भवति ॥

त्वचा पित्त और रक्तके विकारसे पकजाय और ज्वर तथा दाह हो तो इसे "त्वक्पाक" कहतेहै ॥ १२ ॥ जिसके काली और लाल अथवा रक्तसहित पिडकाओंसे इंद्रिय पीडित हो तथा वस्तिमें दारुण पीडा हो तो उसके "शोणितार्बुद" रोग जानो॥१३॥ और मांसके दोषसे इसी भांति "मांसार्बुद" होताहै ॥ १४ ॥

शीर्यंते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च वेदनाः ॥ विद्यात्तं मांसपाकं तु सर्वदोषकृतं भिषक् ॥ १५ ॥ विद्रधिं सन्निपातेन यथोक्तमभिनिर्दिशेत् ॥ १६ ॥ कृष्णानि चित्राण्यथवा शूकानि सविषाणि च ॥ पातितानि पचत्याशु मेढ्रं निरवशेषत ॥ १७ ॥ कालानि भूत्वा मांसानि शीर्यंते यस्य देहिनः ॥ सन्निपातसमुत्थानं तं विद्यात्तिलकालकम् ॥ १८ ॥

जिसका मांस गलकर विखरने लगे तथा सब दोषोंकी वेदना हो उसे सन्निपातसे उपजा "मांसपाक" वैद्यको जानना चाहिये ॥ १५ ॥ "विद्रधि" को सन्निपातसे उपजी यथोक्त लक्षणोंसे जाने (विद्रधिके लक्षण पहले कह आये है) इसी भांति लक्षण सब दोषोंके जाने ॥ १६ ॥ जो काले और कबरे विषयुक्त शूकोंको योगमे डालते हैं तो वे शीघ्रही समस्त मेढ्रको पका देते हैं और मांस काला होकर विखर जाता है इसे सन्निपातसे उपजा "तिलकालक" रोग जानो ॥ १७ ॥ १८ ॥

तत्र मांसार्बुदं यच्च मांसपाकश्च यः स्मृतः ॥
विद्रधिश्च न सिध्यन्ति ये च स्युस्तिलकालकाः ॥ १९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इनमेंसे जो मांसार्बुद हो तथा मांसपाक हो तथा विद्रधि और जो तिलकालक रोग होजाय तो ये सिद्ध नहीं होते अर्थात् असाध्य है तथा इनके सिवाय साध्यहै॥१९॥

(वक्तव्य) इस समय लिंगवृद्धि और पुष्टि आदिके लिये शूकनामक कृमिके वरतावका प्रचार नहीं है इससे ऐसे शूकदोष नहीं होते परंतु हां, इस समय भी कई मूढ तीक्ष्ण लिंगपट्टी आदिका वर्ताव अयोग्य करते हैं उससे अनेक उपद्रव होतेही है ॥ १९ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्म० सुश्रु० भा० टी० निदानस्थाने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

(श्लो० १५) [illegible] सर्वदोषकृतं [illegible] । (श्लो० १६) [illegible] [illegible] ॥ (श्लो० १७।१८) [illegible] ॥

पंचदशोऽध्याय. १५

अथातो भग्नानां निदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी भग्न (शरीरका अवयवभग होने) के निदानकी व्याख्या करतेहै ॥

पतनपीडनप्रहाराक्षेपणव्यालमृगदशनप्रभृतिभिराभिघातविशेषैरनेकविधमस्थ्नां भगमुपदिशंति तत्तु भगजातमनुसार्य्यमाणं द्विविधमेवोत्पद्यते संधिमुक्त कांडभग्नं च ॥ १ ॥

ऊपरसे गिरने, दबजाने, चोट लगने तथा कूदने (फलाँकने) से तथा व्याल (हिंसक पशु) और मृग (पशुमात्र) के काटने (मुँहसे पकडकर खींचने चबाने) आदिके अभिघातोंसे अनेक प्रकारसे अस्थि आदिका भग होना वर्णन करतेहै । वह भग हुआ स्थान अनुसरणके योग्य दोही प्रकारसे प्रतिपादन किया जासकताहै १ संधिमुक्त (किसी जोड परसे अलग होगयाहो), २ कांडभग्न (बीचसे अस्थि-भंग होगयाहो) ॥ १ ॥

संधिमुक्त ।

तत्र संधिमुक्तमुत्पिष्टं विश्लिष्टं विवर्तितमवक्षिप्तमतिक्षिप्तं तिर्यक्क्षिप्तमिति षड्विधम् ॥ २ ॥

इनमेंसे संधिमुक्त ६ छः प्रकारका होताहै १ उत्पिष्ट (जो दोनों भाग रगडे या पीसे गयेहों), २ विश्लिष्ट (जो ढहलगयाहो–अलग होगयाहो), ३ विवर्तित (संधि बराबर हटजाय), ४ अवक्षिप्त (दोनो ओर संधि हटजाय), ५ अतिक्षिप्त (संधि और अस्थि दोनों हटजाये), ६ तिर्यक्क्षिप्त (संधिअस्थि टेढा होजाये)

तत्र प्रसारणाकुंचनविवर्तनाक्षेपणाऽशक्तिरुग्ररुजत्वं स्पर्शासहत्वं चेति सामान्यं संधिमुक्तलक्षणमुक्तम् ॥ ३ ॥

तिसमें पसारने, सिकोडने, हिलाने (ढठाने), रखने (टिकाने) की शक्ति न रहे और दारुण पीडा हो तथा स्पर्श सहा नहीं जाय ये संधिमुक्तके सामान्य लक्षण वर्णन किये गये है ॥ ३ ॥

विशेषेणोत्पिष्टे संधावुभयतः शोफो वेदनाप्रादुर्भावो विशेषतश्च नानाप्रकारा वेदना रात्रौ प्रादुर्भवति ॥ ४ ॥ विश्लिष्टेऽल्पशोफो

(गद्य १) [illegible] (गा० टि०)। [illegible] [illegible] । [illegible] ([illegible]) ॥

वेदनासातत्य सधिविक्रिया च ॥ ५ ॥ विवर्तिते तु सधि-पार्श्वापगमनाद्विपमागता वेदना च ॥ ६ ॥ अवाक्षिप्ते संधिविश्ले पस्तीव्ररुजत्वं च ॥ ७ ॥ अतिक्षिप्ते द्वयो संध्यस्थ्नोरतिकाततता वेदना च ॥८॥ तिर्यक्क्षिप्ते त्वेकास्थिपार्श्वापगमनमत्यर्थं वेदना चेति ॥ ९ ॥

विशेष फरक "उत्पिष्ट" मे दोनो तरफ सधिमे शोथ होता है और पीडा होती है ओर रात्रिमे अधिक पीडा उत्पन्न होती है ॥ ४ ॥ "विश्लिष्ट" मे थोडा शोथ होता है ओर निरतर वेदना होती है और सधिमें विक्रिया हो अर्थात् सधि काम न दे ॥ ५ ॥ "विवर्तित" में सधि पार्श्वकी तरफ चली जानेसे अग टेढा होजाता है आर पीडा होती हे ॥ ६ ॥ "अवक्षिप्त" में सधि दूर टल जाती है और तीव्र वेदना होती है ॥ ७ ॥ "अतिक्षिप्त" मे दोनो सधियो और अस्थियोंमें अन्तराय होजाता हे और पीडा होती हे ॥ ८ ॥ तथा "तिर्यक्क्षिप्त" में एकतरफका अस्थि टेढा होकर पार्श्वकी तरफ चला जाता है इससे अधिक वेदना होती है ॥ ९ ॥

काण्डभग्नमत ऊर्द्ध्वं वक्ष्याम ।

यहांसे अगाडी काण्डभग्न (बीचसे अस्थिभग) को कहते है ।

कर्कटकमश्वकर्ण चूर्णित पिच्चितमस्थिच्छलित काण्डभग्न मज्जानुगतमतिपातित वक्र छिन्नं पाटितं स्फुटितमिति द्वादशविधम्॥१०॥

काण्डभग्न बारह प्रकारका होता है १ कर्कटक, २ अश्वकर्ण, ३ चूर्णित, ४ पिच्चित, ५ अस्थिच्छलित, ६ काण्डभग्न, ७ मज्जानुगत, ८ अतिपातित, ९ वक्र, १० छिन्न, ११ पाटित, १२ स्फुटित ॥ १० ॥

श्वयथुबाहुल्य स्पदनविवर्तनस्पर्शासहिष्णुत्वमवपीड्यमाने शब्द-स्तस्तागता विविधवेदनाप्रादुर्भाव सर्वास्ववस्थासु न शर्मलाभ इति समासेन काण्डभग्नलक्षणमुक्तम् ॥ ११ ॥

शोथ अधिक हो, फडकने, फिरने और स्पर्श (छूने) की सहिष्णुता (बरदाश्त) नहीं हो, दबानेमें शब्द हो, अग शिथिल होजावे, नाना प्रकारकी वेदना उत्पन्न हो, सब प्रकार चैन नहीं पडे । संक्षेपतासे ये काण्डभग्नके लक्षण कहे है ॥ ११ ॥

विशेषतस्तु संमूढमुभयतोऽस्थिमध्यभग्नं ग्रथिरिवोन्नतं कर्कटकम् ॥ १२ ॥ अश्वकर्णवदुद्गतमश्वकर्णम् ॥ १३ ॥ चूर्णितमस्थि तत्तु शब्दस्पर्शाभ्या बोद्धव्यम् ॥ १४ ॥ पिच्चित पृथुतां गतमनल्पशोफम् ॥ १५ ॥ पार्श्वयोरस्थि हीनोद्गतमस्थिच्छलितम् ॥ १६ ॥ खल्लितप्रकपमान काडभग्नत्वम् ॥ १७ ॥ अस्थ्यवयवोस्थिमध्यमनुप्रविश्य मज्जानमुन्नह्यतीति मज्जानुगतम् ॥ १८ ॥ अस्थि निःशेपतश्छिन्नमतिपातितम् ॥ १९ ॥ आभुग्नमाविमुक्तास्थि वक्रम् ॥ २० ॥ अन्यतरपार्श्वावशिष्ट छिन्नम् ॥ २१ ॥ पाटितमणु बहुविदारित वेदनावच्च ॥ २२ ॥ शूकपूर्णमिवाध्मात विपुलं विस्फुटीकृतं स्फुटितमिति ॥ २३ ॥

इनके विशेपतासे लक्षण कहते हैं—जो दोनों तरफसे अस्थि उठा हुआ बीचसे भग हो, गांठकी भांति उभरा हो इसे "कर्कटक" कहते हैं इसका आकार कर्कट (ककेडे) कासा होनेसे कर्कटक कहलाता है ॥ १२ ॥ जो टूटा अस्थि घोडेके कानकी भांति ऊँचा होजाय उसे "अश्वकर्ण" कहते हैं ॥ १३ ॥ जो अस्थिका चूर्ण होगया हो तो उसे "चूर्णित" कहते है इसको शब्द और स्पर्श (छूने) से जान सक्ते हैं ॥ १४ ॥ जो चौडा होजाय और बहुत शोथवाला हो उसे "पिच्चित" कहते हैं ॥ १५ ॥ जो अस्थि एकतरफ नीचा होजाय और दूसरा टूटा भाग ऊँचा हो तो उसे "अस्थिच्छलित" कहते हैं ॥ १६ ॥ जो हिलानेसे चलायमान हो (टूटा मालूम दे) उसे कांडभग्न (हड्डीका डडा टूटा ऐसा) जाने ॥ १७ ॥ जो अस्थिका भाग दूसरे अस्थिमें प्रवेश होजाय और अस्थिके भीतरकी मज्जाको बाहर निकाले तो उसे "मज्जानुगत" कहते हैं ॥ १८ ॥ जो नि शेष अस्थि कटजाय तो उसे "अतिपातित" कहते हैं ॥ १९ ॥ जो अस्थि टेढा होजाय परतु टूटे नहीं उसे "वक्र" कहते हैं ॥ २० ॥ जो एक ओरसे कट जाय या टूट जाय और एक तरफमे शेप रहे अर्थात् एक पार्श्वमेंसे कुछ बाकी रह उसे "छिन्न" कहते हैं ॥ २१ ॥ जो थोडा या बहुत विदारित (फटा) हो और उसमें वेदना हो उसे "पाटित" कहते हैं ॥ २२ ॥ जो धान्यसे भराहुआसा फूला हो, स्फुट न हो उसे "स्फुटित" कहते हैं ॥ २३ ॥

तेषु चूर्णितछिन्नातिपातितमज्जानुगतानि कृच्छ्रसाध्यानि कृशवृद्धबालाना क्षतक्षीणकुष्ठश्वासिना सन्ध्युपगत च॥२४॥भवति चात्र—

इनमेंसे चूर्णित, छिन्न और अतिपातित तथा मज्जानुगत नामक काण्डभग्न कृच्छ्रसाध्य होते है और दुबले, वृद्ध, बालक तथा क्षतक्षीण मनुष्योंके तथा कुष्ठरोगवाले और श्वासरोगवालेंके भी कांडभग्न कष्टसाध्य होताहै तथा जो कांडभग्न संधिके समीप या संधिमें हो वहभी कष्टसाध्यही होताहै (अथवा कृशादिकोंके संधिगत भग्नभी असाध्य होताहै) ॥ २४ ॥ इस विषयमें श्लोक है-

भिन्नं कपाल कट्या तु संधिमुक्त तथा च्युतम् ॥ जघनं प्रतिपिष्टञ्च वर्जयेत्तच्चिकित्सक ॥ २५ ॥ असश्लिष्ट कपाल तु ललाटे चूर्णित च यत् ॥ भग्न स्तनांतरे शंखे पृष्टे मूर्ध्नि च वर्जयेत् ॥२६॥

कपालका अस्थि टूट गयाहो (तथा कमरका बांस टूट गयाहो) अथवा कमरकी संधि अलग होगई हो या छूट गईहो तथा जांघ पिसगई हो तो इन्हें चिकित्सक त्यागदे (क्योंकि ये असाध्य है) ॥ २५ ॥ कपालके अस्थि अलग होजायँ तथा मस्तकका चूर्ण होजाय तथा चूचियोंका बीच (छाती) फटजाय अथवा कनपटी फटजायँ तथा पृष्ठवंश भग्न होजाय, मूर्द्धा (दिमाग) भग्न होजाय तो इन्हे भी त्यागदे॥२६॥

आदितो यच्च दुर्जातमस्थि संधिरथापि वा ॥ सम्यक् संहितमप्यस्थि दुर्न्यासाद्दुर्निबंधनात् ॥ २७ ॥ संक्षोभाद्वापि यद्गच्छेद्विक्रियां तत्तु वर्जयेत् ॥ २८ ॥

जो आरम्भहीसे अयोग्य पैदा हुएहो, अस्थि और संधि तथा ठीक ठीक जोडे हुए अस्थिभी अनुचित रखनेसे या अनुचित बंधनसे अथवा क्षोभसे जो विकिया (बिगार और खराबी) को प्राप्त होजायँ तो इन्हेंभी त्यागदे ॥ २७ ॥ २८ ॥

मध्यस्य वयसोवस्थास्तिस्रो याः परिकीर्तिताः ॥
तत्र स्थिरो भवेज्जंतुरुपक्रांतो विजानता ॥ २९ ॥

मध्यम आयुवाले (१६ से ४० पर्यंतक) मनुष्यकी तीन अवस्था वृद्धि, यौवन, संपूर्णता वर्णन की है इन अवस्थाओंमें मनुष्य स्थिर होताहै, इन्हीं अवस्थाओंमें भग्नकी चिकित्सा योग्य ठीक होता है ॥ २९ ॥

तरुणास्थीनि नम्यते भज्यते नलकानि तु ॥
कपालानि विभिद्यते स्फुटंति रुचकानि च ॥ ३० ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

तरुण अस्थि अर्थात् नासिका, कर्ण, नेत्र इनके अस्थि तो नयजाया करते है (नीचे होजाते है) तथा नल्का (शाखाके अस्थि) टूट जाया करते हैं तथा कपाल (नितम्ब, कनपटी, तालु, ललाटके अस्थि) फटजाया करते है और रुचक सज्ञक अस्थि (दांत) उखड या टूट या झड जाया करते हैं और श्लोकमे ' च ' शब्दके ग्रहणसे वलय सज्ञक अस्थि भी टूटतेही हैं । यह अस्थियोंकी जातिके अनुसार भग्न वर्णन किया है । अस्थि पांचही ५ प्रकारके होते है-तरुण, नलक, कपाल, रुचक और वलय (इन्हे शारीरकस्थानमें देखो) ॥ ३० ॥

इति पं०मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० निदानस्थाने पञ्चदशोऽध्याय ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६

अथातो मुखरोगाणां निदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी मुखरोगोंके निदानकी व्याख्या करते है ॥

मुखरोगाः पञ्चषष्टिः सप्तस्वायतनेषु । तत्रायतनानि ओष्ठौ दन्तमूलानि दंताः जिह्वा तालु कंठः सर्वाणि चेति । तत्राष्टावोष्ठयो । पंचदश दंतमूलेषु । अष्टौ दन्तेषु । पञ्च जिह्वायाम् । नव तालुनि । सप्तदश कंठे । त्रयः सर्वेष्वायतनेषु ॥ १ ॥

मुखके सातो स्थानोमे सब पैंसठ ६५ प्रकारके रोग होते है । ये सात स्थान ये हैं १ होठ, २ दंतमूल (मसूढे), ३ दांत, ४ जिह्वा, ५ तालु, ६ कंठ, ७ सम्पूर्णमुख इनमेंसे होठोंमें आठ रोग होते है और दांतोंकी जड (मसूढोंमे) पन्द्रह तथा दांतोंमें आठ और जिह्वामे पांच, तालूमें नव तथा कंठमें सत्रह और सम्पूर्ण मुखमें तीन प्रकारके रोग होतेहै ऐसे सब मिलकर ६५ हुए इनके लक्षण कहतेहैं ॥ १ ॥

ओष्ठरोग ।

तत्रोष्ठप्रकोपा वातपित्तश्लेष्मसन्निपातरक्तमांसमेदोऽभिघातनिमित्ता ॥ २ ॥

इनमें ओष्ठप्रकोप (होठके रोग) वायु, पित्त, कफ, सन्निपात, रुधिर, मांस, मेद और अभिघात निमित्तवाले होते है ॥ २ ॥

कर्कशौ परुषौ स्तब्धौ कृष्णौ तीव्ररुगन्वितौ ॥ दाल्येते परिपुटयेते ओष्ठौ मारुतकोपत ॥ ३ ॥ आचितौ पिडकाभिस्तु सर्पपा

(मन्त्र २) वृद्धवाग्भटे ओष्ठरोगेषु [illegible] यथा—"[illegible] इति ॥

कृतिभिर्भृशम् ॥ सदाहपाकसस्रावौ नीलौ पीतौ च पित्तन ॥४॥ सवर्णाभिस्तु चीयेते पिडकाभिरवेदनौ ॥ कडूमनौ कफाच्छूनौ पिच्छलौ शीतलौ गुरू ॥ ५ ॥

खरदरे हो, कडे हो, ठिठरायेसे हो, काले हो, तीव्र पीडा हो, विदीर्णसे होंतहो फूटनसी हो तो जाने कि वातसे ओष्ठरोग है ॥ ३ ॥ बहुतसी सरसो जैसी फुन्सियोंसे व्याप्त हो, दाह, पाक और स्राव युक्त हो, नीले या पीले हों तो पित्तका ओष्ठरोग जानो ॥४॥ त्वचाके वर्णकी फुन्सियोंसे व्याप्त हों, वेदना अति न हो, खाज हो, शोथ हो, मोटे हो, शीतल और भारी होठ हो तो कफकी व्याधि है ॥ ५ ॥

सकृत् कृष्णौ सकृत् पीतौ सकृच्छ्वेतौ तथैव च ॥ सन्निपातेन विज्ञेयावनेकपिडकाचितौ ॥ ६ ॥ खर्जूरफलवर्णाभिः पिडकाभिः समाचितौ ॥ रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवतः शोणितप्रभौ ॥ ७ ॥ मांसदुष्टौ गुरू स्थूलौ मांसपिंडवदुद्गतौ ॥ जन्तवश्चात्र मूर्च्छन्ति सृक्स्योभयतो मुखात् ॥ ८ ॥

कभी एकवार काले होठ होजायँ, कभी पीले और कभी सुपेद तथा अनेक भांतिकी फुन्सियोंसे व्याप्त हों तो सन्निपातका ओष्ठरोग जानो ॥ ६ ॥ खजूरके फलके रंगकी फुन्सियोंसे व्याप्त हो और जिनमें रक्तकी चमक हो तथा रुधिर झिरै तो रुधिरका ओष्ठरोग है ॥ ७ ॥ जो होठ भारी हो और मोटे हों तथा मांसके पिंडकी भांति ऊपरको उठे हो और मुखसे दोनो तरफके ओष्ठभागोंपर (घेडंनेमे) जन्तु मूर्च्छित होजावें तो इसे मांसदुष्टजनित ओष्ठरोग जानो ॥ ८ ॥

मेदसा घृतमंडाभौ कडूमतौ स्थिरौ मृदू ॥ अच्छस्फटिकसंकाशमास्रावं स्रवतो गुरू ॥ ९ ॥ क्षतजाभौ विदीर्येते पाट्येते चाभिघातत ॥ ग्रथितौ च समाख्यातावोष्ठौ कंडूसमन्वितौ ॥ १० ॥

जो घृत तथा मंडके वर्णके हों, खाज हो, स्थिर हों, कोमल हों और इनमेंसे सुपेद स्फटिक जैसा पीव झिरे और भारी हों तो मेदोदुष्टजनित ओष्ठरोग होताहै ॥ ९ ॥ चोट लगीसी मालूम हो, विदारणसे होगयेहो, फटगयेसे हो, गांठसी पडगई हो तथा खाजयुक्त हों तो यह अभिघात (चोट आदिके लगने) से ओष्ठरोग कहाहै ॥१०॥

(पाठा०) मुख्य मेदसा [illegible] ([illegible]) ॥

दंतमूल (मसूढ़ों) के रोग ।

दंतमूलगतास्तु शीतादो दंतपुप्पुटको दंतवेष्टकः शौपिरो महाशौपिर· परिदर उपकुशो दंतवैदर्भो वर्द्धनोऽधिमांसो नाड्यः पंचेति ११॥

दंतमूलगत १५ रोग इस प्रकार है-१ शीताद, २ दंतपुप्पुट, ३ दंतवेष्टक, ४ शौपिर, ५ महाशोपिर, ६ परिदर,७ उपकुश, ८ दंतवेदर्भ,९वर्द्धन,१०अधिमांस और इनके सिवाय ५ नाड़ी है (नाडीरोगोंकी उत्पत्ति जैसे पहले दशवे अध्यायमें वात, पित्त, कफ, सन्निपात और शल्यसे कह चुकेहैं वैसेही यहां दंतमूलमभी ५ प्रकारके नाडीरोग जानो इसको दन्तनाडी अर्थात् नासूर कहतेहैं)॥ ११ ॥

शोणितं दंतवेष्टेभ्यो यस्याकस्मात्प्रवर्तते ॥ दुर्गंधीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि मृदूनि च ॥१२॥ दंतमांसानि शीर्यंते पचंति च परस्परम् ॥ शीतादो नाम स व्याधि कफशोणितसंभव· ॥ १३ ॥

जिसके मसूढोंमे अकस्मात् रुधिर निकले और मसूढे दुर्गंध युक्त हों, काले पड़ जायँ, क्लेदित रहें और नरम हो जायँ ॥ १२ ॥ तथा दांतोकी जडका मांस गिरने लगे तथा परस्पर मसूढे पकने लगे तो यह कफ और रक्तसे उपजा " शीताद " नाम रोग कहलाता है ॥ १३ ॥

दंतयोस्त्रिषु वा यस्य श्वयथु सरुजो महान् ॥ दंतपुप्पुटको ज्ञेयं कफरक्तनिमित्तज ॥ १४ ॥ स्रवंति पूयरुधिर चला दंता भवंति च ॥ दंतवेष्ट स विज्ञेयो दुष्टशोणितसंभव ॥ १५ ॥ श्वयथुदंतमूलेषु रुजावान् कफरक्तज ॥ लालास्रावी स विज्ञेय· कंडूमाञ्छौपिरो गद ॥ १६ ॥

जिसके दांतो, मसूढों अथवा तालु सहित तीनों स्थानोंमें पीडा सहित महाशोथ हो उसके कफ और रक्तसे उपजा "दंतपुप्पुट"रोग जानना ॥ १४॥ यदि मसूढोंमे पीव और रुधिर झिरे और सब दाँत हिलजायँ तो यह दुष्ट रुधिरसे उपजा " दंतवेष्टक" रोग जानना चाहिये ॥१५॥ मसूढोंमें पीडा एवं शोथ हो, खाजभी हो तथा मुँहसे लार गिरे तो कफ और रुधिरसे उपजा " शौपिर " नाम रोग जानने योग्य है ॥ १६ ॥

दंताश्चलंति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते ॥ दंतमांसानि पच्यंते मुखं च परिपीड्यते ॥ यस्मिन्स सरुजो व्याधिर्महाशौपिरसंज्ञक·॥

॥ १७ ॥ दन्तमांसानि शीर्यंते यस्मिन्ष्ठीवति चाप्यसृक् ॥ पित्ता-
सृक्कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरो हि सः ॥ १८ ॥

जिसके दांत मसूढोंमेंसे हिलकर गिरने लगे और तालु विदीर्ण हो(फट) जाय और मसूढे पक जायँ तथा मुखमें अतिपीडा हो तो यह सन्निपातसे उपजी "महा॰ शौषिर" नाम व्याधि कहलाती है ॥ १७ ॥ जिसके मसूढे विदीर्ण होजायँ और थूकनेमें खून आवे तो पित्त, कफ और रुधिरसे उपजी हुई "परिदर" नाम व्याधि जाननी चाहिये ॥ १८ ॥

वेष्टेषु दाह पाकश्च तेभ्यो दन्ताश्चलन्ति च ॥आघट्टिता प्रस्रवति
शोणितं मन्दवेदना. ॥ १९ ॥ आध्मायते स्रुते रक्ते मुखं पूति
प्रजायते ॥ यस्मिन्नुपकुशः स स्यात्पित्तरक्तकृतो गदः ॥ २० ॥
घृष्टेषु दन्तमूलेषु संरम्भो जायते नृणाम् ॥ भवंति च चला दंता
स वैदर्भोऽभिघातज ॥ २१ ॥

मसूढोंमें दाह हो पकजायँ और दांत हिलकर मसूढोंसे गिरने लगें और बिना दबाये रगडे उनमेंसे रक्त निकले और मंद २ वेदना हो ॥ १९ ॥ और यदि रक्त नहीं निकले तो मसूढे फूल जायँ और मुखमे दुर्गंध आवे यह पित्त और रुधिरसे उपजा "उपकुश" रोग है ॥ २० ॥ दांतोंकी जडको रगडनेसे संरभ (शोथ) उत्पन्न होजाने और दांत हिलजावे तो अभिघात (रगडने) से उपजा "वैदर्भ" रोग जानो ॥ २१ ॥

मारुतेनाधिको दंतो जायते तीव्रवेदनः॥ वर्द्धनः स मतो व्याधि
र्जाते रुक् च प्रशाम्यति ॥ २२॥ हानव्ये पश्चिमे दंते महाशोथो
महारुज ॥ लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयः सोऽधिमांसकः॥ २३ ॥
दन्तमूलगता नाड्यः पंच ज्ञेया यथेरिता ॥ २४ ॥

यदि वायुसे तीव्र वेदना युक्त और अधिक दांत (मसूढोंमें) पैदा होजाय तो उसे "वर्द्धन" कहते हैं इसमें अधिक दांत उत्पन्न होनेमें तो वेदना होतीहै और निकल आये पीछे वेदना शांत हो जाती है ॥ २२ ॥ हनु (ठोडी) के पिछली तरफके दंत (मूल) में भारी शोथ और पीडा होय, मुँहमें लार गिरे तो कफका

(श्लो० २१) अभिघातज धकका (चोट लगना) (श्लो० २२) वर्द्ध, उत्पन्न ।

किया हुआ यह "अधिमांस" जानना चाहिये ॥ २३ ॥ मसूड़ोंकी जड़में पाँच प्रकारकी नाडी (नासूर) होती है जैसे दशमाध्यायमें नाडीरोग कहा है-वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और शल्यज वैसेही यहांभी जानों ।(देशभाषामें इस नाडीको जाड़िया कहते हैं) ॥ २४ ॥

दंतरोग।

दंतगतास्तु दालन क्रिमिदंतको दंतहर्षो भंजनक शर्करा कपालिका श्यावदंतको हनुमोक्षश्चेति ॥ २५ ॥

दंतगत (दांतोंके) ८ रोग इस प्रकार होते हैं-१ दालन, २ क्रिमिदंत, ३ दंतहर्ष, ४ भंजनक, ५ शर्करा, ६ कपालिका, ७ श्यावदंतक, ८ हनुमोक्ष ॥ २५ ॥

दाल्यंते बहुधा दंता यस्मिंस्तीव्ररुगन्विता. ॥ दालन स इति ज्ञेयः सदागतिनिमित्तजः ॥२६॥ कृष्णश्छिद्री चल स्रावी ससंरंभो महारुज. ॥ अनिमित्तरुजो वाताद्विज्ञेयः कृमिदंतक. ॥ २७ ॥ दशना. शीतमुष्णं च सहते स्पर्शनं न च ॥ यस्य त दन्तहर्षं तु व्याधिं विद्यात्समीरणात् ॥ २८ ॥ वक्रं वक्त्रं भवेद्यस्मिन् दंतभंगश्च तीव्ररुक् ॥ कफवातकृतो व्याधि स भंजनकसंज्ञित.॥ २९ ॥

जिसमें दांत विदारणसे होतेहो और तीव्र पीडा युक्त हो वह "दालन" नामक दंतरोग जानना यह सदैव गतिके कारणसे होताहै ॥ २६ ॥ जो दांत काला पड जाय, इसमें छिद्र हो हिलने लगजाय, उससे मल निकले, शोथयुक्त हो और वेदना अधिक हो और विना कारणके पीडा होजाय तो वायुसे यह "कृमिदंत" रोग जानना (अर्थात् दांतमें कीडा लगाहै ऐसा जानना) ॥ २७ ॥ जिसके दांत शीतल और गरम वस्तु तथा स्पर्शको नहीं सहसकें उसे वायुसे उपजी "दंतहर्ष" नाम व्याधि जानना ॥ २८ ॥ जिसमें मुँहका आकार टेढा होजाय और दांत टूटनेलगें तथा तीव्र वेदना हो वह कफ और वायुका किया हुआ "भंजनक" नामरोग होता है ॥ २९ ॥

शर्करेव स्थिरीभूतो मलो दंतेषु यस्य वै ॥ सा दंतानां गुणहरी तु विज्ञेया दंतशर्करा॥३०॥दलंति दंतवल्कानि यदा शर्करया सह ॥ ज्ञेया कपालिका सैव दशनानां विनाशिनी ॥३१॥ योऽसृग्मिश्रेण पित्तेन दग्धो दंतस्त्वशेषत ॥श्यावतां नीलतां वापि गत स श्याव

दन्तकः॥३२॥ वातेन तैस्तैर्भावैस्तु हनुसंधिर्विसंहतः ॥ हनुमोक्ष इति ज्ञेयो व्याधिरर्दितलक्षणः ॥ ३३ ॥

जिसके दांतोंमें शर्करा (पथरी) की तरह मल जमकर स्थिर होजाय वह दांतोंके गुण नाश करनेवाली " दन्तशर्करा " होती है ॥ ३० ॥ यदि उस जमी हुई शर्कराके साथ दांतोंकी फचटे गिरने लगें तो दांत नाश करनेवाली " कपालिका " नाम व्याधि जाननी चाहिये ॥ ३१॥ जो रुधिरसे मिले हुए पित्त करके सारा दांत भस्मसा होकर काला या नीला होजाय तो उसे " श्यावदन्त " कहते। है उन उन भावों (कठिन चर्वण, अतिजृंभा आदि) करके वायुसे ठोडीकी संधि बिगड जाय तो उसे " हनुमोक्ष " रोग कहते है इसमें अर्दित वायुकेसे लक्षण होते है (यह व्याधि दांतोंमे पीडा करनेवाली और दांतोंके समीप होनेसे दन्तरोगमें कही है) ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

जिह्वारोग।

जिह्वागतास्तु कण्टकास्त्रिविधास्त्रिभिर्दोषैरलास उपजिह्विका चेति॥३४॥

जिह्वाके ५ रोग इस प्रकार है-कण्टक तीन प्रकारके तीनों दोषोंसे जैसे १ वातकण्टक, २ पित्तजकण्टक, ३ कफजकण्टक, ४ अलास, ५ उपजिह्विका ॥ ३४ ॥

जिह्वानिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा ॥ पित्तेन पीता परिदह्यते च चिता सरक्तैरपि कण्टकैश्च ॥३५॥ कफेन गुर्वी बहुला चिता च मांसोद्गमैः शाल्मलिकण्टकाभैः ॥ जिह्वातले यः श्वयथुः प्रगाढः सोऽलाससंज्ञः कफरक्तमूर्तिः ॥ जिह्वां स तु स्तम्भयति प्रवृद्धो मूले तु जिह्वा भृशमेति पाकम् ॥३६॥ जिह्वाग्ररूपः श्वयथुर्हि जिह्वामुन्नम्य जातः कफरक्तयोनिः ॥ प्रसेककण्डूपरिदाहयुक्ता प्रकथ्यतेऽसावुपजिह्विकेति ॥ ३७ ॥

(श्लो० ३३) वाग्भटेन भाषितमेतत् यत् हनुमोक्षः दन्तरोगेषु न पठितः किन्तु वातव्याधौ [illegible] पठिता एवं वाग्भटे दश दन्तरोगाः सन्ति तेषां लक्षणानि यथा—"दन्तभेदे [illegible] । [illegible] ॥" [illegible]—"[illegible]" इति ॥

(श्लो० ३५) शाकः वृक्षविशेषो महापत्रस्तत्पत्रतुल्यम् । (श्लो० ३६) [illegible] (इति निबंधसंग्रह) ॥

वायुके दोषसे (कटक) हो तो जिह्वा फटी हुई और सांई हुईसी अर्थात् सुन्नसी तथा शाकके पत्ते जैसी (खरदरी और पतली) मालूम होती है। पित्तके दोषसे कटक हों तो जिह्वा पीली होती है और उसमें दाह होता है और रक्त युक्त कटको (मांसांकुरों) से व्याप्त होती है ॥ ३५ ॥ कफके दोषसे कटक हो तो जिह्वा भारी, मोटी और सिंभलके कांटे जैसे मांसांकुरोंसे व्याप्त होती है॥ और जो जिह्वाके नीचे मोटा सोजा हो तो कफ और रक्तकी मूर्त्ति अलास नामक जिह्वारोग जानों यह रोग बढकर जिह्वाको स्तंभित करदेता है और जडमेंसे जिह्वा पाकको प्राप्त होजाती है ॥ ३६ ॥ जिसके जिह्वाके अग्रभागमें सोजा हो और जिह्वाको ऊपरको नवादेवे, मुँहसे लार गिरे, खाज और दाहसे युक्त हो तो कफ और रुधिरसे उपजा इसे " उपजिह्विका " नामक रोग कहते हैं ॥ ३७ ॥

तालुरोग।

तालुगतास्तु गलशुंडिका तुंडकेर्य्यध्रुषो मांसकच्छपोऽर्बुदं मांस-संघातस्तालुपुप्पुटस्तालुशोषस्तालुपाक इति ॥ ३८ ॥

तालुके ९ रोग इस भांति होते है-१ गलशुंडिका, २ तुंडिकेरी, ३ अध्रुष, ४ मांसकच्छप, ५ अर्बुद, ६ मांससंघात, ७ तालुपुप्पुट, ८ तालुशोष और ९ तालुपाक ॥ ३८ ॥

श्लेष्मासृग्भ्यां तालुमूलात्प्रवृद्धो दीर्घः शोफोध्मातबस्तिप्रकाशः ॥ तृष्णाकासश्वासकृत्संप्रदिष्टो व्याधिर्वैद्यैः कंठशुंडीति नाम्ना ॥ ३९ ॥ शोफः स्थूलस्तोददाहप्रपाकः प्रागुक्ताभ्यां तुंडिकेरी मता तु ॥ शोफः स्तब्धो लोहितस्तालुदेशे रक्ताज्ज्ञेयः सोऽध्रुषो रुग्ज्वराढ्यः ॥ ४० ॥

जो कफ, रक्तसे उपजा हुआ तालुकी जडमें ऐंकर दीर्घ सोजा होता है और भरी मशककी तरह तालु फूल जाता है, तृषा अधिक होती है तथा खांसी और श्वास पैदा कर देता है वैद्योंने उस व्याधिको " कंठशुंडी " (गलशुंडी) नामसे कहा है ॥ ३९ ॥ जिसके तालुमें सोजा हो, तालु भारी हो, पीडा, दाह और पाक हो तो पूर्वोक्त कफ और रुधिरसे उपजा " तुंडिकेरी " नाम रोग जानो ॥ और जिसमें कडा सोजा हो और तालुप्रदेशमें रक्तता अधिक हो, दर्द और ज्वर करके युक्त हो उसे रुधिरविकारसे उपजा " अध्रुष " नाम रोग जानना ॥ ४० ॥

कूर्म्मोत्सन्नोऽवेदनो शीघ्रजन्माऽरक्तो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणा स्यात् ॥ पद्माकारं तालुमध्ये तु शोफं विद्याद्रक्तादर्बुदं प्रोक्तलिं-

गम्॥४१॥दुष्टं मांसं श्लेष्मणा नीरुजं च तालुन्यस्थं मांससंघात-माहुः॥ नीरुक् स्थायी कोलमात्रः कफात्स्यान्मेदोयुक्तात्पुप्पुट-स्तालुदेशे ॥ ४२ ॥

जो कछुवेकी भांति ऊपरको उठा हो, वेदना रहित हो, बहुत दिनोंमें पैदा हो, लाल वर्ण नहीं हो तो कफसे उपजा " कच्छप " नाम रोग जानना। जो कमलके आकार तालुके मध्यमें सोजा हो और उसमें पूर्वोक्त ग्यारहवें अध्यायमें कहेहुए रक्तार्बुदके लक्षण हो तो रक्तसे उपजा " अर्बुद " रोग जानना ॥ ४१ ॥ और यदि तालुमें कफसे मांस दूषित हो, वेदना रहित हो तो "मांससंघात" कहते है। तथा बडे बेरके समान स्थिर और वेदना रहित ग्रंथिसी हो तो मेदयुक्त कफसे उपजा " तालुपुप्पुट " रोग जानना चाहिये ॥ ४२ ॥

शोषोऽत्यर्थं दीर्यते चापि तालु श्वासो वातात्तालुशोषः सपित्तात् ॥ पित्तं कुर्यात्पाकमत्यर्थघोरं तालुन्येनं तालुपाकं वदंति ॥ ४३ ॥

जिसमें अत्यन्त शोष (तालुमें खुश्की) हो और तालु विदीर्णसा होता हो और श्वास हो तो पित्तयुक्त वायुसे उपजा " तालुशोष " रोग होता है। और यदि पित्त तालुप्रदेशमें अत्यन्त घोररूप पाक पैदा करे तो उसे " तालुपाक " कहते है ॥ ४३ ॥

कंठरोग।

कंठगतास्तु रोहिण्यः पंच कंठशालूकमधिजिह्वो वलयो बलास एकवृंदो वृंदः शतघ्नी गिलायुर्गलविद्रधिर्गलौघः स्वरघ्नो मांसतानो विदारी चेति ॥ ४४ ॥

कंठके १७ रोग इस प्रकारसे होते है–५ प्रकारकी रोहिणी (१ वातरोहिणी, २ पित्तरोहिणी, ३ श्लेष्मरोहिणी, ४ सन्निपातरोहिणी, ५ रक्तरोहिणी), ६ कण्ठशालूक, ७ अधिजिह्व, ८ वलय, ९ बलास, १० एकवृंद, वृंद ११ शतघ्नी, १२ गिलायु, १३ गलविद्रधि, १४ गलौघ, १५ स्वरघ्न, १६ मांसतान और १७ विदारी ॥४४॥

गलेऽनिल पित्तकफौ च मूर्च्छितौ पृथक् समस्ताश्च तथैव शोणि-तम् ॥ प्रदूष्य मांसं गलरोधिनोंऽकुरान् सृजंति यान् सा गुहरा तु

(गल ४४) [illegible] (श्लो० ४५) [illegible] ॥

रोहिणी ॥ ४५ ॥ जिह्वा समन्तात्भृशवेदना ये मांसांकुराः कण्ठनिरोधिनः स्युः ॥ तां रोहिणीं वातकृतां वदंति वातात्मकोपद्रवगाढयुक्ताम् ॥ ४६ ॥ क्षिप्रोद्भवा क्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तत. स्यात् ॥ स्रोतोनिरोधिन्यपि मन्दपाका गुर्वी स्थिरा सा कफसम्भवा वै ॥ ४७ ॥

गलप्रदेशमें वायु अथवा पित्त अथवा कफ तथा तीनों दोष अथवा रक्त मूर्च्छित होकर मांसमें दूषण उत्पन्न करके गलेके रोकनेवाले मांसके अंकुर पैदा कर देते हैं उसे रोहिणी कहते हैं-यह रोहिणी शीघ्र मृत्युकारिणी है ॥४५॥ जो जिह्वाके आस पास दारुण वेदनावाले और कण्ठके रोक देनेवाले और वायुके उपद्रवोंसे युक्त मांसके अंकुर हों तो इसे वायुकी रोहिणी कहते हैं ॥ ४६ ॥ यदि शीघ्र उत्पन्न होने वाले और शीघ्रही विदाह (जलन) को प्राप्त होने वाले तथा शीघ्रही पकनेवाले अंकुर हों और तीक्ष्ण ज्वर भी हो तो पित्तकी रोहिणी है । यदि गल आदि मार्ग रोकनेवाली, मंद पकनेवाली, भारी और स्थिर हो तो कफकी रोहिणी जानना ॥ ४७ ॥

गंभीरपाकाऽप्रतिवार्यवीर्या त्रिदोषलिंगा त्रयसंभवा स्यात् ॥ स्फोटाचिता पित्तसमानलिंगाऽसाध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मकेयम् ॥४८॥

जिसका पकाव गहरा हो तथा उसका बल निवारण करने योग्य न हो, (तीक्ष्ण पीडा हो) और तीनों दोषोंके लक्षण हों तो त्रिदोषसे उपजी रोहिणी होती है ॥ तथा जिसमें बहुतसी फुन्सियां हों और पित्तकी रोहिणीके समान लक्षण हों तो उसे रुधिरकी रोहिणी समझनी चाहिये और यह असाध्य होती है ॥ ४८ ॥

कोलास्थिमात्रः कफसंभवो यो ग्रंथिर्गले कंटकशूकभूतः ॥ खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कंठशालूकमिति ब्रुवंति॥४९॥जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफात्तु जिह्वाप्रबंधोपरि रक्तमिश्रः ॥ ज्ञेयोधिजिह्वः खलु रोग एष विवर्जयेदागतपाकमेनम् ॥५०॥ बलास एवायतमुन्नतं च शोफं करोत्यन्नगतिं निवार्य॥ नं सर्वथैवाऽप्रतिवार्यवीर्यं विवर्जनीयं वलयं वदन्ति ॥ ५१ ॥

यह बेरकी गुठलीके बराबर कफसे उपजी ग्रंथि जो गलेमें हो और यह कांटे और तिनके जैसोंसे छाई हुईसी हो खरदरी या कड़ी और स्थिर हो तथा शस्त्र (नश्तर आदि) के व्यवहारसे साध्य होने योग्य हो (अर्थात् इतनी कड़ी और

स्थिर हो कि शस्त्रके विना स्वय नहीं फूटे) उसे "कण्ठशालूक" कहते हैं ॥ ४९ ॥ जिसमें जिह्वाके अग्रमे कफसे सोजा हो और जिह्वाके प्रबन्ध (मूल) पर रुधिरसे मिला हुआ रक्तवर्णका सोजा हो तो इसको "अधिजिह्व" नाम रोग जाने और जब यह पकजाय तब त्यागने योग्य होता है ॥ ५० ॥ जब कफ (बढकर) फैला हुआ और ऊँचा सोजा पैदा करे और अन्नके भीतर जानेकी गतिको रोकदे तो उसे सर्वथा प्रतिकारके योग्य नहीं और त्यागने योग्य ऐसा "वलयरोग" कहते हैं ॥५१॥

गले च शोफं कुरुतः प्रवृद्धौ श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नम्॥ संमर्मच्छिद् दुस्तरमेनमाहुर्वलाससंज्ञं निपुणा विकारम् ॥ ५२ ॥ वृत्तोन्नतो यः श्वयथुः सदाहः कण्ड्वन्वितोऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च॥ नाम्नैकवृन्दः परिकीर्तितोऽसौ व्याधिर्बलासक्षतजप्रसूतः ॥ ५३ ॥ समुन्नतं वृत्तममन्ददाहं तीव्रज्वरं वृन्दमुदाहरन्ति ॥ तं चापि पित्तक्षतजप्रकोपाद्विद्यात्सतोदं पवनास्रजं तम् ॥ ५४ ॥

कफ और वायु बढकर गलेमें शोथ पैदा करे और श्वासयुक्त हो तथा मर्मका छेदन करनेवाला हो तो निपुण वैद्य दुस्तर "बलास" संज्ञक रोग उसे कहते हैं ॥५२॥ जो गलेमे फैला हुआ और ऊंचा दाहयुक्त, खाजसहित, विना पकनेवाला, मृदु (कड़ा) और भारी ऐसा सोजा हो तो इस व्याधिको "एकवृन्द" नाम रोग कहते हैं और यह कफ और क्षतज (चोट लगने आदिसे रक्त) से उत्पन्न होता है ॥ ५३ ॥ यदि उठा हुआ और फैला हुआ, तीक्ष्ण दाह युक्त हो और तीव्रज्वरभी हो तो उसे "वृन्द" कहते हैं इसे पित्त और क्षतज(चोट आदि) से उपजा जानना चाहिये और यदि इसमें चीस या दरद हो तो इसे वायु और रक्तसे उपजा जानना चाहिये ॥ ५४ ॥

वर्तिर्घनो कण्ठनिरोधिनी या चिताऽतिमात्रं पिशितप्ररोहैः ॥
नानारुजोच्छ्रायकरी त्रिदोषाज्ज्ञेया शतघ्नीव शतघ्न्यसाध्या ॥५५॥
ग्रंथिर्गले त्वामलकास्थिमात्रः स्थिरोऽल्परुक् स्यात्कफरक्तमूर्तिः ॥
संलक्ष्यते सक्तमिवाशनं च स शस्त्रसाध्यस्तु गिलायुसंज्ञः ॥५६॥
सर्वं गलं व्याप्य समुत्थितो यः शोफो रुजो यत्र च संति सर्वाः ॥
स सर्वदोषो गलविद्रधिस्तु तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजस्य ॥ ५७ ॥

(श्लो० ५६) कठिन वर्धनहि(उन्मुख?) ... ॥

जो कठिन कठोर करनेवाली गहरी बत्तीसी हो और मांसके अंकुरोंसे अत्यंत आच्छादित हो, नाना प्रकारकी वेदना और उभार करने वाली हो तो उसे "शतघ्नी" कहते हैं यह शतघ्नीकी भांति (जो लोहेकी तोप होती है उसके तुल्य) होती है और त्रिदोषसे उपजती है तथा असाध्य होती है ॥ ५५ ॥ गलेमें जो आँवलेकी गुठलीके बराबर स्थिर और थोडी पीडा करनेवाली ग्रंथि हो और ऐसा मालूम हो जैसे गलेमें भोजनका ग्रास अटका हो तो उसे कफ और रक्तकी मूर्ति "गिलायु" रोग जानना और यह गिलायु शस्त्रसे साध्य होने योग्य होता है ॥ ५६ ॥ जो समस्त गलेमें फैलकर सोजा उपजे और वेदना उसमें तीनों दोषोंकी हो तो त्रिदोषसे उपजा "गलविद्रधि" नाम रोग होताहै यह गलविद्रधि पर्यंत त्रिदोष विद्रधिके तुल्य होता है ॥ ५७ ॥

शोफो महानन्नजलावरोधी तीव्रज्वरो वातगतेर्निहन्ता॥कफेन जातो रुधिरान्वितेन गले गलौघः परिकीर्त्यतेऽसौ॥ ५८ ॥ योऽतिप्रताम्यन् श्वसिति प्रसक्तं भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकण्ठः ॥ कफोपदिग्धेष्वनिलायनेषु ज्ञेयः स रोगः श्वसनात्स्वरघ्नः ॥ ५९ ॥

जो गलेमें अन्न और जलको रोकनेवाला बडा शोथ हो, ज्वर युक्त हो तथा (उदान) वायुकी गतिका अवरोध करे तो रुधिरसे मिले हुए कफसे उपजा यह "गलौघ" नाम रोग वर्णन किया है ॥ ५८ ॥ जिसमें श्वास लेते समय अंधेरासा आवे और निरंतर स्वर भिन्न हो तथा कंठ सूखजाय और विमुक्तकण्ठ अर्थात् कण्ठ खुलासा होजाय अथवा भोजन निगलनेमें स्वाधीन नहीं रहे और पवनके मार्गोमें कफ उपलिप्त हो तो श्वास वायुसे उपजा यह "स्वरघ्न" रोग जानना चाहिये ॥ ५९ ॥

प्रतानवान् यः श्वयथुः सुकष्टो गलोपरोधं कुरुते क्रमेण ॥ स मांसतानः कथितोऽवलम्बी प्राणप्रणुत्सर्वकृतो विकारः ॥ ६० ॥ सदाहतोदं श्वयथुं सरक्तमन्तर्गले पूतिविशीर्णमांसम् ॥ पित्तेन विद्याद्वदने विदारीं पार्श्वे विशेषात्स तु येन शेते ॥ ६१ ॥

(श्लो० ५८) वातगतेर्निहन्ता इति-उदानवातगतेरवरोधक (इति भाषाभि०) । कफेन च अन्न पानोपरोधिनिरन्तेति यथेति ॥ (श्लो० ५९) अतिप्रताम्यन् तमःप्रविशन् । प्रसक्तं निरन्तरं (इति डल्हण) । शुष्कविमुक्तकण्ठः शुष्को विमुक्तो अवरोधित कण्ठो यस्य स वाते निगलितुमक्षम इत्यर्थः । अनिलायनेषु कफोपदिग्धेषु इति वायुवाहेषु कफोपलिप्तेषु । श्वसनात् श्वासात् ॥

औ फैला हुआ सोजा कष्टसाध्य रूप गलेमें होकर गलेको क्रमसे बदकरे और अवलम्बनशील हो तो त्रिदोषसे उपजा हुआ "मांसतान" नामक विकार कहाहै और यह प्राणोंका प्रेरक (दूर करनेवाला) है ॥ ६० ॥ गलेके भीतर दाह और दर्दयुक्त तथा रक्तयुक्त सोजा हो और गलेमें दुर्गंधियुक्त मांस विखरासा होजाय तो इसे पित्तसे उपजी मुखमें विदारी जानो और यह विदारीरोग जिस करवट मनुष्य अधिक सोताहै उस तरफ मुखमें विशेषतासे होतीहै ॥ ६१ ॥

सर्वमुखके रोग।

सर्वसरास्तु वातपित्तकफशोणितनिमित्ता ॥ ६२ ॥

सपूर्ण मुखमें होनेवाले रोग वायु, पित्त, कफ और रक्त निमित्तवाले होते है ॥ ६२ ॥

स्फोटैः सतोदैर्वदनं समंताद्यस्याचितं सर्वसरः स वातात् ॥ रक्तैः सदाहैस्तनुभिः सपीतैर्यस्याचितं चापि स पित्तकोपात् ॥ ६३ ॥ कण्डूयुतैरल्परुजैः सवर्णैर्यस्याचितं चापि स वै कफेन॥ रक्तेन पित्तोदित एव एवं कैश्चित्प्रदिष्टो मुखपाकसंज्ञः ॥ ६४ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

जिसका समस्त मुख पीडायुक्त फालकोंसे व्याप्त हो तो वह वायुका मुखरोग (मुखपाक) है। यदि लाल वर्णके, दाहयुक्त, पतले, पीले वर्णवाले फालके हों तो पित्तका मुखपाक है ॥ ६३ ॥ जो खाजयुक्त, थोडी पीडा वाले, सवर्ण (सुफेद) फालकोंसे व्याप्त हो तो कफका मुखपाक है। और किसीने रक्तका भी मुखपाक एक कहाहै उसमें पित्तहीके अनुसार सब जानना (धन्वतरिजी वात, पित्त और कफका ही मुखपाक कहते है) ॥ ६४ ॥

इन सबके डाक्टरी और यूनानीमें ठीक २ नाम प्राय नहीं मिलते किसीका नाम मिलता या किसीका ठीक २ नहीं मिलता इसीसे नहीं लिखे इन दरणकी तशखीश और इलाज औरही प्रकारसे है ॥

(वक्तव्य) निदानस्थानमें जितने रोगोंका निदान वर्णन हुआ उससे यह नहीं समझना चाहिये कि सुश्रुतसंहितामें इतने थोडेहीमे रोगोंका निदान है—क्योंकि जिन बहुतसे रोगोंका निदान यहां वर्णन नहीं हुआ है उन सबका निदान चिकित्सित स्थान तथा उत्तरतंत्रमें यथायोग्य वर्णन होगा। और हम जो रोगोंके निदानके साथ २ प्राय डाक्टरी तथा यूनानीके मतसे नाम आदि लिखतेहैं उसमें गडबड यह रहती है कि उनकी अपनी रीतिपर सख्या और रोगके लक्षणादि और हो और उनमें है

इससे कहीं २ किसी किसी रोगका लक्षणसहित ठीक नाम मिलजाता है, किसीका किसी औरहीके साथ संबंध या अंतर्भाव समझा जाताहै तो जिसके लक्षणोंमेंसे कुछ मिलताहै कुछ नहीं या सभी नहीं मिलता या किसीके लक्षणोंमें बहुत भेद है या किसीके वर्णन करनेमें लेखबाहुल्य बहुतही होता है तो ऐसी अवस्थामें उन्हें छोड दिया है यदि उनका ठीक २ वर्णन देखना हो तो उनकी पुस्तकोंमें देखो ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० निदानस्थाने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

पूर्ति. ।

श्लोक-श्रीमन्मालवभूमिपालतिलकः शैलाननाधीश्वरो विद्याप्रेमनिधिर्विनीति निपुणः प्राज्ञो यशस्वी नृपः ॥ नित्यं वृद्धिमियाद्यदाश्रितभिषग्वर्येण पूर्तिं गतं टीकायां मुरलीधरेण विदुषा स्थानं निदानं शुभम् ॥ १ ॥

अर्थ-श्रीयुक्त मालवप्रांतके राजाओंमें तिलकरूप शैलानन (सैलाना) के महाराज जोकि विद्याप्रेमके निधि और नीतिमें निपुण तथा विद्वान् हैं और यशस्वी अर्थात् जिनका नाम श्री १०८ यशवंतसिंह बहादुर हैं वे नित्य वृद्धिको प्राप्त हों कि जिनके समाश्रित राजवैद्य पं० मुरलीधरशर्म्मासे यह सुश्रुतसंहिताकी टीकामें सुंदर निदानस्थान पूर्ण हुआ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां पं० मुरलीधरशर्मविरचितसान्वयसटिप्पणीकसपरिशिष्ट-
भाषाटीकायां निदानस्थानं समाप्तम् ॥ २ ॥

॥ समाप्तमिदं निदानस्थानम् ॥

॥ श्री. ॥

अथ सुश्रुतसंहिता ।

सान्वयभाषाटीकासहिता ।

शारीरस्थानम् ३.

प्रथमोऽध्यायः १

अथात सर्वभूतचिंताशारीर व्याख्यास्याम ॥

निदानस्थानके अनतर अब शारीरस्थान वर्णन किया जाता है । इस शारीरक स्थानके आरभमें सब भूतो (प्राणियो) (अथवा पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) की चिंता (चिंतन अर्थात् ये कैसे पैदा हुए, इनके क्या २ कार्य है इत्यादि) शारीरकका प्रथम व्याख्यान करते है ॥

सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगत सभवेहेतुरव्यक्त नाम तदेक बहूना क्षेत्रज्ञानामधिष्ठान समुद्र ईवोदकानां भावानाम् ॥ १ ॥

(गद्य १) सर्वभूतानामिति–पृथिव्यादीनाम् [illegible] ॥

सम्पूर्ण भूतों (पृथिवी,अप,तेज,वायु, आकाश अथवा प्राणियों) का कारण सत्व, रज, तम (गुणत्रय) के लक्षणवाला तथा अष्टधा प्रकृतिरूप अव्यक्त नाम (मूल प्रकृति) अथवा (ब्रह्म) समस्त जगत्की उत्पत्तिका हेतु है और वह अव्यक्त स्वयं अकारण है अर्थात् उसका कोई कारण नहीं है किन्तु वही सबका कारण है। वह एक अद्वितीय ब्रह्म असंख्य क्षेत्रज्ञों (जीवों) का आश्रय है जैसे असंख्य नदी तथा नालोंका अधिष्ठान समुद्र है अथवा " औदकानां भावानाम्" का अर्थ कई मत्स्य, शंख, पद्मादि ऐसा करतेहैं अर्थात् जैसे मत्स्य, पद्मादिका अधिष्ठान समुद्र है तैसे जीवोंका अधिष्ठान अव्यक्त समुद्र है। तात्पर्य यह है कि "अद्वैतवादी" जो जीव और ब्रह्मको एक (सजातीय) मानतेहैं वे तो औदकभाव समुद्रके सजातीय नदी, नाले ऐसा अर्थ करतेहैं और " द्वैतवादी" जो जीव और ब्रह्मको पृथक् (विजातीय) मानतेहैं वे मत्स्य, शंखादि ऐसा अर्थ करतेहैं ॥ १ ॥

तस्मादव्यक्तान्महानुत्पद्यते तल्लिङ्ग एव तल्लिङ्गाच्च महतस्तल्लिङ्ग एवाहङ्कार उत्पद्यते स च त्रिविधो वैकारिकस्तैजसो भूतादिरिति॥२॥

उस अव्यक्त (क्षेत्रज्ञोंके अधिष्ठान) से उसीके (सत्त्वरजस्तमोमय) लक्षणोंवाला महत्तत्त्व (निश्चयात्मक बुद्धितत्त्व) उत्पन्न हुआ और उस अव्यक्तलिंग महत्तत्त्व (निश्चयात्मक बुद्धितत्त्वसे) अव्यक्तलिंग (सत्त्वरजस्तमःस्वभाववाला) अहंकार (अहमिति अर्थात् मैं हू ऐसा अस्त्यात्मक ज्ञान) उत्पन्न हुआ वह तीन प्रकारका है१ वैकारिक (प्रकृतिका विकृतरूप विकारवाला), २ तैजस (तेजोमय स्वप्रकाश), ३ भूतादि (भूतोंका आदिकारण) और इसका यहभी अर्थ करते हैं कि वैकारिकादि संज्ञा अहंकारकी पूर्व आचार्योंने व्यवहारके अर्थ की है अर्थात् यह अहंकार सात्विक, राजस और तामस ऐसे तीन प्रकारका होताहै जहां वैकारिक(सात्विक), तैजस (राजस) और भूतादि (तामस) ऐसे जानना ॥ २ ॥

तत्र वैकारिकादहङ्कारात्तैजससहायात्तल्लक्षणान्येवैकादशेन्द्रियाण्युत्पद्यन्ते । तद्यथा श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाग्घस्तोपस्थपायुपा-

---

(सूत्र २) तस्मादित्यादि–अव्यक्तात् [illegible] महान् [illegible] बुद्धि [illegible] ॥ [illegible] ॥ [illegible] वैकारिक [illegible], तैजस [illegible] भूतादि [illegible] पूर्वे [illegible] ([illegible]) ॥

दैमनांसीति" । तत्र पूर्वाणि पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि इतराणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि उभयात्मकं मनः ॥ ३ ॥

तहां तैजसकी सहायता युक्त वैकारिक (सात्त्विक) अहंकारसे सात्त्विकलक्षणवाली या प्रकाशलक्षणवाली एकादश ११ इंद्रियां उत्पन्न हुई वे ११ इंद्रिय इस प्रकार हैं कि श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण तथा वाणी, हाथ, लिंग, गुदा और पांव, तथा मन इनमें पहलेकी पांच ज्ञानेंद्रिय कहलाती हैं और इनके पिछाडीकी पांच कर्म इंद्रियें हैं और उभयात्मक (दोनोंका अधिष्ठाता) ग्यारहवां मन है ॥ ३ ॥

भूतादेरपि तैजससहायात् तल्लक्षणान्येव पञ्चतन्मात्राण्युत्पद्यन्ते । तद्यथा—शब्दतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रं रूपतन्मात्रं रसतन्मात्रं गन्धतन्मात्रमिति तेषां विशेषाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धास्तेभ्यो भूतानि व्योमानिलानलजलोर्व्यः।एवमेषा तत्त्वचतुर्विंशतिर्व्याख्याता ॥४॥

तैजस (रजोगुण) युक्त भूतादि (तामस) अहंकारसे तामसलक्षणवाली (मोहलक्षणवाली) पांच तन्मात्रा उत्पन्न हुई जैसे शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा और गन्धतन्मात्रा और इनके विशेष (अनुभवयोग्य स्थूल विषय) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यथाक्रम होते हैं (जैसे शब्दतन्मात्रामें शब्द और स्पर्शतन्मात्रामें स्पर्श इत्यादि) (तन्मात्रा अतिसूक्ष्म होते हैं और इनके विषय स्थूल होते हैं) और इन्हीं तन्मात्राओंसे यथाक्रमसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी उत्पन्न हुए (शब्दतन्मात्रासे आकाश तथा स्पर्शतन्मात्रासे वायु, रूपतन्मात्रासे तेज, रसतन्मात्रासे जल और गंधतन्मात्रासे पृथ्वी ऐसे उत्पन्न हुए) इन्होंका चौबीस तत्त्व वर्णन किया है (तन्मात्राओंमेंसे एक एककी वृद्धिमें आकाशादिकी उत्पत्ति हुई ऐसा भाष्यकारका मत है जैसे—शब्दतन्मात्रासे शब्दगुणवाला आकाश उत्पन्न हुआ । और शब्दतन्मात्रा सहित स्पर्शतन्मात्रासे शब्द—स्पर्श गुण-

(गद्य ३) [illegible] । [illegible] ([illegible]) । [illegible] ॥

(गद्य ४) [illegible] ([illegible])॥

वाला वायु । और शब्द-स्पर्श-तन्मात्रा सहित रूपतन्मात्रासे शब्द-स्पर्श-रूप गुणवाला तेज (अग्नि) उत्पन्न हुआ । तथा शब्द-स्पर्श-रूप तन्मात्रा सहित रसतन्मात्रासे शब्द-स्पर्श-रूप-रस गुणोंवाला जलतत्त्व उत्पन्न हुआ । ऐसेही शब्द-स्पर्श-रूप-रस तन्मात्रा सहित गंधतन्मात्रासे शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध गुणोंवाली पृथ्वी उत्पन्न हुई) ॥ ४ ॥

तत्र बुद्धीन्द्रियाणां शब्दादयो विषयाः । कर्मेन्द्रियाणां यथासंख्यं वचनादानानन्दविसर्गविहरणानि ॥५॥ अव्यक्तं महानहंकारः पंच तन्मात्राणि चेत्यष्टौ प्रकृतयः शेषाः षोडशविकाराः ॥ ६ ॥

इनमें ज्ञानेंद्रियोंके तो शब्दादिक विषय हैं (जैसे श्रोत्रका विषय शब्द । त्वचाका विषय स्पर्श । चक्षुका विषय रूप । जिह्वा (रसना) का विषय रस । घ्राणका विषय गंध है) और कर्मेंद्रियोंके विषय क्रमसे वचन, ग्रहण, आनन्द, मलत्याग और गमन ये हैं (जैसे वाणीका विषय बोलना । हाथोंका विषय पकडना । लिंगका विषय मैथुन करना । गुदाका विषय मल और वायु त्यागना, तथा पैरोंका विषय चलना है) ॥ ५ ॥ " अष्टधा प्रकृतिः " अव्यक्त, महत्तत्त्व और अहंकार तथा पांचो तन्मात्रा अर्थात् शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा और गंधतन्मात्रा ये आठ प्रकृति हैं (अर्थात् कारणभूत हैं) और शेष सोलह अर्थात् ग्यारह इंद्रिय और पांच पृथिव्यादि महाभूत ये विकार हैं (जैसे पूर्वोक्त श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण तथा वाणी, हाथ, लिंग, गुदा और चरण तथा मन ये ग्यारह इंद्रिय और पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश ये पंचमहाभूत हैं सब मिलकर १६ सोलह विकार हैं ऐसे सब २४ तत्त्व हुए) ॥ ६ ॥

स्वः स्वश्चैषां विषयोऽधिभूतं स्वयमध्यात्ममधिदैवतं च यथा बुद्धेर्ब्रह्मा । अहंकारस्येश्वरः । मनसश्चन्द्रमाः । दिशः श्रोत्रस्य । त्वचो वायुः । सूर्यश्चक्षुषोः । रसनस्यापः । पृथिवी घ्राणस्य । वचसोऽग्निः । हस्तयोरिन्द्रः । पादयोर्विष्णुः । पायोर्मित्रम् । प्रजापतिरुपस्थस्येति ॥७॥

(गद्य ६) अव्यक्तमित्यादि [illegible] कारणभूताः । [illegible] (इति [illegible])। [illegible] । [illegible] पंच महाभूतानि एकादशेन्द्रियाणि [illegible] । (गद्य ७) [illegible] । [illegible] ॥

इन बुद्ध्यादिकके अपने अपने विषय अधिभूत कहलाते हैं और ये बुद्ध्यादिक स्वयं अध्यात्म कहलाते हैं और इनके अधिदैवत ब्रह्माको आदि लेके इसप्रकार हैं- बुद्धि (महत्तत्त्व) का अधिदैवत ब्रह्मा है और अहंकारका शिव । मनका चन्द्रमा । श्रोत्र (कर्ण) का दिशा । त्वचाका वायु । चक्षुका सूर्य । जिह्वाका जल । घ्राण (नासिका)का पृथ्वी । वाणीका अग्नि । हाथोंका इन्द्र । पैरोंका विष्णु । गुदाका मित्र और लिंगका अधिदैवत प्रजापति है । (इन सबके अधिभूत और अध्यात्म तथा अधिदैवत इस भांति जानने चाहिये कि बुद्धि अध्यात्म, बोद्धव्य अधिभूत और ब्रह्मा अधिदैवत । अहंकार अध्यात्म, अहंकर्त्तव्य अधिभूत, और शिव अधिदैवत । मन अध्यात्म संकल्पविकल्प कर्त्तव्य अधिभूत और चंद्रमा अधिदैवत । श्रोत्र अध्यात्म, श्रोतव्य अधिभूत और दिशा अधिदैवत । त्वचा अध्यात्म, स्पर्शनीय अधिभूत और वायु अधिदैवत । चक्षु अध्यात्म, द्रष्टव्य अधिभूत और सूर्य अधिदैवत । रसन अध्यात्म, रसनीय अधिभूत और जल अधिदैवत । घ्राण अध्यात्म, घ्रातव्य अधिभूत और पृथ्वी अधिदैवत । वाणी अध्यात्म, वक्तव्य अधिभूत और अग्नि अधिदैवत । हाथ अध्यात्म, आदातव्य (ग्रहण करने योग्य) अधिभूत और इन्द्र अधिदैवत । पैर अध्यात्म, गतव्य अधिभूत और विष्णु अधिदैवत । गुदा अध्यात्म, विसर्जन (मलत्याग) अधिभूत और मित्र नामक देवता अधिदैवत । लिंग अध्यात्म, आनन्दनीय अधिभूत और प्रजापति नामक देवता अधिदैवत) ॥ ७ ॥

तत्र सर्व एवाचेतन एष वर्गः पुरुषः पंचविंशतितमः स च कार्य्यकारणसंयुक्तश्चेतयिता भवति सत्यप्यचैतन्ये प्रधानस्य पुरुषकैवल्यार्थं प्रवृत्तिमुपदिशंति क्षीरादींश्च हेतूनुदाहरंति ॥ ८ ॥

तहां समस्त यह वर्ग (अव्यक्तादि २४ तत्त्व) चेतनासे रहित है और चेतनावान् पचीसवाँ "पुरुष" (जीवात्मा) है वह पुरुष कार्य (पंचमहाभूत पृथिव्यादिक और एकादश इन्द्रिय) तथा कारण (अव्यक्तादिक अष्ट प्रकृति) से संयुक्त होकर चेतन करनेवाला होता है और प्रकृति अचैतन्य है तोभी पुरुष (जीवात्मा) मोक्षार्थ उसकी (अव्यक्त) की प्रवृत्ति होती है ऐसे आचार्य उपदेश करते हैं और अचेतनकी प्रवृत्ति क्योंकर होसकती है इसमें दुग्धादिककी प्रवृत्तिका हेतुका

(गद्य ८) तत्र सर्व एवादि— [illegible] ॥

वाला वायु। और शब्द-स्पर्श-तन्मात्रा सहित रूपतन्मात्रासे शब्द-स्पर्श-रूप गुण वाला तेज (अग्नि) उत्पन्न हुआ। तथा शब्द-स्पर्श-रूप तन्मात्रा सहित रसतन्मात्रासे शब्द-स्पर्श-रूप-रस गुणोंवाला जलतत्त्व उत्पन्न हुआ। ऐसेही शब्द-स्पर्श-रूप-रस तन्मात्रा सहित गंधतन्मात्रासे शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध गुणोंवाली पृथ्वी उत्पन्न हुई) ॥ ४ ॥

तत्र बुद्धीन्द्रियाणां शब्दादयो विषयाः। कर्मेन्द्रियाणां यथासंख्यं वचनादानानन्दविसर्गविहरणानि ॥५॥ अव्यक्तं महानहंकारः पंच तन्मात्राणि चेत्यष्टौ प्रकृतयः शेषाः षोडशविकाराः ॥ ६ ॥

इनमें ज्ञानेंद्रियोंके तो शब्दादिक विषय है (जैसे श्रोत्रका विषय शब्द। त्वचाका विषय स्पर्श। चक्षुका विषय रूप। जिह्वा (रसना) का विषय रस। घ्राणका विषय गंध है) और कर्मेंद्रियोंके विषय क्रमसे वचन, ग्रहण, आनन्द, मलत्याग और गमन ये है (जैसे वाणीका विषय बोलना। हाथोंका विषय पकडना। लिंगका विषय मैथुन करना। गुदाका विषय मल और वायु त्यागना, तथा पैरोंका विषय चलना है) ॥ ५ ॥ " अष्टधा प्रकृतिः " अव्यक्त, महत्तत्त्व और अहंकार तथा पांचो तन्मात्रा अर्थात् शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्राऔर गंधतन्मात्रा ये आठ प्रकृति है (अर्थात् कारणभूत है) और शेष सोलह अर्थात् ग्यारह इंद्रिय और पांच पृथिव्यादि महाभूत ये विकार है (जैसे पूर्वोक्त श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण तथा वाणी, हाथ, लिंग, गुदा और चरण तथा मन ये ग्यारह इंद्रिय और पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश ये पंचमहाभूत ये सब मिलकर १६ सोलह विकार है ऐसे सब २४ तत्त्व हुए) ॥ ६ ॥

स्वः स्वश्चैषां विषयोऽधिभूतं स्वयमध्यात्ममधिदैवतं च यथा बुद्धेर्ब्रह्मा। अहंकारस्येश्वरः। मनसश्चन्द्रमाः। दिशः श्रोत्रस्य। त्वचो वायुः। सूर्यश्चक्षुषोः। रसनस्यापः। पृथिवी घ्राणस्य। वचसोऽग्निः। हस्तयोरिन्द्रः। पादयोर्विष्णुः। पायोर्मित्रम्। प्रजापतिरुपस्थस्येति॥७॥

(गद्य ६) [illegible] कारणभूता। [illegible] (इति [illegible])। [illegible] (गद्य ७) [illegible] ॥

इन बुद्ध्यादिकके अपने अपने विषय अधिभूत कहलाते हैं और ये बुद्ध्यादिक स्वयं अध्यात्म कहलाते हैं और इनके अधिदैवत ब्रह्माको आदि लेके इस प्रकार हैं बुद्धि (महत्तत्त्व) का अधिदैवत ब्रह्मा है और अहंकारका शिव। मनका चन्द्रमा। श्रोत्र (कर्ण) का दिशा। त्वचाका वायु। चक्षुका सूर्य। जिह्वाका जल। घ्राण (नासिका) का पृथ्वी। वाणीका अग्नि। हाथोंका इन्द्र। पैरोंका विष्णु। गुदाका मित्र और लिंगका अधिदैवत प्रजापति है। (इन सबके अधिभूत और अध्यात्म तथा अधिदैवत इस भांति जानने चाहिये कि बुद्धि अध्यात्म, बोद्धव्य अधिभूत और ब्रह्मा अधिदैवत। अहंकार अध्यात्म, अहङ्कर्त्तव्य अधिभूत, और शिव अधिदैवत। मन अध्यात्म संकल्पविकल्प कर्त्तव्य अधिभूत और चन्द्रमा अधिदैवत। श्रोत्र अध्यात्म, श्रोतव्य अधिभूत और दिशा अधिदैवत। त्वचा अध्यात्म, स्पर्शनीय अधिभूत और वायु अधिदैवत। चक्षु अध्यात्म, द्रष्टव्य अधिभूत और सूर्य अधिदैवत। रसन अध्यात्म, रसनीय अधिभूत और जल अधिदैवत। घ्राण अध्यात्म, घ्रातव्य अधिभूत और पृथ्वी अधिदैवत। वाणी अध्यात्म, वक्तव्य अधिभूत और अग्नि अधिदैवत। हाथ अध्यात्म, आदातव्य (ग्रहण करने योग्य) अधिभूत और इन्द्र अधिदैवत। पैर अध्यात्म, गन्तव्य अधिभूत और विष्णु अधिदैवत। गुदा अध्यात्म, विसर्जन (मलत्याग) अधिभूत और मित्र नामक देवता अधिदैवत। लिंग अध्यात्म, आनन्दनीय अधिभूत और प्रजापति नामक देवता अधिदैवत) ॥ ७ ॥

तत्र सर्व एवाचेतन एष वर्गः पुरुषः पञ्चविंशतितमः स च कार्य्य कारणसंयुक्तश्चेतयिता भवति सत्यप्यचैतन्ये प्रधानस्य पुरुषकैवल्यार्थं प्रवृत्तिमुपदिशन्ति क्षीरादींश्च हेतूनुदाहरन्ति ॥ ८ ॥

तहां समस्त यह वर्ग (अव्यक्तादि २४ तत्त्व) चेतनासे रहित है और चेतनावाला पच्चीसवाँ "पुरुष" (जीवात्मा) है वह पुरुष कार्य (पंचमहाभूत पृथिव्यादिक और एकादश इंद्रिय) तथा कारण (अव्यक्तादि अष्ट प्रकृति) से संयुक्त होकर चेतन करनेवाला होता है और प्रकृति अचैतन्य है तौभी पुरुष (जीवात्मा) मोक्षके अर्थ उसकी (अव्यक्त) की प्रवृत्ति होती है ऐसे आचार्य उपदेश करते हैं और अचेतनकी प्रवृत्ति क्योंकर होसकती है इसमें दुग्धादिककी प्रवृत्तिक हेतुका

(सू० ८) तत्र [illegible] ... [illegible] तत्का [illegible] पुरुषस्य कैवल्यार्थं प्रधानस्य [illegible] ... [illegible] ॥

वाला वायु । और शब्द-स्पर्श-तन्मात्रा सहित रूपतन्मात्रासे शब्द-स्पर्श-रूप गुणवाला तेज (अग्नि) उत्पन्न हुआ । तथा शब्द-स्पर्श-रूप तन्मात्रा सहित रसतन्मात्रासे शब्द-स्पर्श-रूप-रस गुणोंवाला जलतत्त्व उत्पन्न हुआ । ऐसेही शब्द-स्पर्श-रूप-रस तन्मात्रा सहित गंधतन्मात्रासे शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध गुणोंवाली पृथ्वी उत्पन्न हुई) ॥ ४ ॥

तत्र बुद्धीन्द्रियाणां शब्दादयो विषया । कर्मेन्द्रियाणां यथासंख्य वचनादानानंदविसर्गविहरणानि ॥५॥ अव्यक्तं महानहंकार पंच तन्मात्राणि चेत्यष्टौ प्रकृतय शेषा. षोडशविकारा ॥ ६ ॥

इनमें ज्ञानेंद्रियोंके तो शब्दादिक विषय हैं (जैसे श्रोत्रका विषय शब्द । त्व
चाका विषय स्पर्श । चक्षुका विषय रूप । जिह्वा (रसना) ... विषय रस । घ्राणका
विषय गंध है) और कर्मेंद्रियोंके विषय क्रमसे वचन ... लेना ... उत्सर्ग ...
और गमन ये हैं (जैसे वाणीका विषय बोलना । हाथों ...
विषय मैथुन करना । गुदाका विषय मल और वायु ...
चलना है) ॥ ५ ॥ " अष्टधा प्रकृति. " अव्यक्त, ...
पांचों तन्मात्रा अर्थात् शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, ...
गंधतन्मात्रा ये आठ प्रकृति है (अर्थात् कारणभू...
ग्यारह इंद्रिय और पांच पृथिव्यादि महाभूत ये ...
त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण तथा वाणी, हाथ, ...
ये ग्यारह इंद्रिय और पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आ...
कर १६ सोलह विकार हैं ऐसे सब २४ तत्त्व ...

...त्वं स्वेष्वेषां विषयोऽधिभूतं स्वयमध्...
...ब्रह्मा । अहंकारस्येश्वर । मनसश्चन्...
...वायु । सूर्यश्चक्षुषोः । रसनस्याप ...
...हस्तयोरिन्द्र । पादयोर्विष्णु । पायो...

(गग ६) [illegible] ...
...[illegible] (इति ...)।
...[illegible]...
...[illegible]...
...[illegible]...
...[illegible]...
...[illegible]...

... यह इस प्रकार है। ...
और दोनों ही अलिङ्ग (...
दोनों ही अपर हैं अर्थात् ...
तो इनमें समानधर्मत्व ...

एका तु नष्ट ...
...व्यस्थधर्मिणी ...
...जधर्मि ...

(गग १) उभौ प्रकृतिपुरुषौ अ...
...न परो वाम्या इति । ...
महतिरेका शून्यमया । त्रिगुणा सत्त्वर...
...नावस्थिता बीजधर्मिणीत्युच्यते ।
...धर्मिणी सैव त्रिगुणा त्रिगुणा पुरुष...
चराचरस्य जगत प्रकृति ...त्वात् प्रसवधर्मि...
...गिनी न तु सुखदुःखभोगादुदासीना (इति ...
पुरुषा जीवात्मत्वेनाख्याता परमात्मत्वेन ...
महाप्रलये महदादिनिकारणा ...विरतस्मि...
तथाचोक्तं सांख्यतत्त्वकौमुद्याम्-"तस्मात्तु विपय...
कर्तृभावाच्च" (इति निबन्धसंग्रह) ॥

शास्त्रमें रोगनाशके प्रति) वर्णन कियागया है इसीसे चिकित्सित (चिकित्साविषय) में भूतों (पंचमहाभूत पृथिवी, अप, तेज, वायु, आकाश और इनके कार्य्यों)से परे अव्यक्त (अदृष्ट) आदिकी चिंता (विचार और मीमांसा) नहीं है अर्थात् नहीं हो सक्ती है ॥ १४ ॥

यतोऽभिहित तत्संभवद्रव्यसमूहो भूतादिरुक्त. । भौतिकानि चेंद्रियाण्यायुर्वेदे वर्ण्यते तथेंद्रियार्था ॥ १५ ॥ भवति चात्र-

उस अव्यक्तसे उत्पन्न हुआ द्रव्यसमूह (महदादि-बुद्ध्यादि और व्योमादि) ही भूतादि वर्णन किया है इससे वैद्यकशास्त्रमे वही महदादिक (महत्तत्त्व, अहंकार, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश और सत्त्व, रज, तम) ही अभिहित (वर्णित) है। तथा भौतिक इंद्रिय (श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, रसन और घ्राण) तथा इंद्रियार्थ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) इनका वर्णन होता है॥१५॥इस विषयमें श्लोक है-

इंद्रियेणेन्द्रियार्थं तु स्वंस्वं गृह्णाति मानव ॥
नियत तुल्ययोनित्वान्नान्ये नान्यमिति स्थिति. ॥ १६ ॥

मनुष्य इन्द्रियसे नियत उसी उसके अर्थको समानयोनि होनेसे ग्रहण करता है अर्थात् श्रोत्र इन्द्रियसे उसके तुल्ययोनित्व करके नियत शब्दको ग्रहण करता है और त्वचासे स्पर्शको चक्षुसे रूपको, रसनासे रसको और घ्राणसे गंधको ग्रहण करताहै क्योंकि आकाशकी इन्द्रिय श्रोत्र है और गुण शब्द है । इसी तरह वायुकी इन्द्रिय त्वचा और गुण स्पर्श है तथा तेजकी इंद्रिय चक्षु और गुण रूप है तथा जलकी इन्द्रिय रसना और गुण रस है और पृथ्वीकी इंद्रिय घ्राण और गुण गंध है इसीसे सजातीय अपने सजातीयको ग्रहण करता है और अपसे अन्यको ग्रहण नहीं करता यही सिद्धांत है ॥ १६ ॥

न चायुर्वेदशास्त्रेषूपदिश्यन्ते सर्वगता क्षेत्रज्ञा नित्याश्च असर्वगतेषु च क्षेत्रज्ञेषु नित्येषु पुरुषव्यापकान्हेतूनुदाहरंति ॥ १७ ॥ आयुर्वेदशास्त्रेष्वसर्वगता क्षेत्रज्ञा नित्याश्च तिर्यग्योनिमानुषदेवेषु

(गद्य १५) [illegible] (बुद्ध्यादि) [illegible] आयुर्वेदे भौतिकानीन्द्रियाणि [illegible]

(श्लो० १६) [illegible] ॥ (गद्य १७) [illegible] ॥

(वैद्यक शास्त्रमें तो) स्वभावको, ईश्वरको, कालको, यदृच्छाको और नियतिको तथा परिणामको दीर्घदर्शी विद्वान् लोग ऐसे छः प्रकार प्रकृति मानते हैं अर्थात् कोई स्वभावहीको प्रकृति मानते हैं कि जो जिसका स्वभाव है वह वैसाही होता है । और कोई ईश्वरहीको मुख्य मानते हैं कि ईश्वरही सबका कारण है । और कोई कालहीको मानते हैं कि काल पाकरही संसार पैदा होताहै और काल पाकरही नष्ट होता है । और कोई यदृच्छा (होनहार) हीको मानते हैं कि जैसा भवितव्य हो वैसाही होता है । और कोई नियति अर्थात् पूर्वजन्मार्जितादि शुभाशुभ कर्मोंहीको मानते हैं कि जैसा कर्म होता है उसीके अनुसार सब कुछ होताहै तथा कोई परिणामहीको मुख्य मानतेहैं कि अव्यक्तादि सब परिणाम पाकरही जगत्के कारणरूप होतेहैं॥ १२॥

तन्मयान्येव भूतानि तद्गुणान्येव चादिशेत्॥ तैश्च तल्लक्षणः कृत्स्नो भूतग्रामो व्यजायत ॥१३॥ तस्योपयोगोऽभिहितश्चिकित्सा प्रति सर्वदा॥ भूतेभ्यो हि परं यस्मान्नास्ति चिन्ता चिकित्सिते ॥१४॥

भूत, आकाश आदि तन्मय अर्थात् प्रकृतिके परिणाम (उष्ण, द्रव, शीत, घन, खर, मृदु आदि) मय हैं और तद्गुण (उसीके गुणवाले) हैं अर्थात् सत्त्व, रज और तमोगुणवाले हैं (जैसे सत्त्वबहुलमाकाशं तमोबहुला पृथ्वी इत्यादि) इससे समस्त भूतग्राम (स्थावर-जंगम-रूप संपूर्ण जगत्) उन (शीत, उष्ण, द्रव, घन आदि तथा सत्त्व, रज, तम) लक्षणोंसे युक्तही उत्पन्न होता है ॥ १३ ॥ उस पंचमहाभूतारब्ध भूतग्रामका उपयोग (प्रयोजन) ही चिकित्साके प्रति (इस चिकित्सा-

---

–मित्यूचु तथाहि–"कः कण्टकानां प्रकरोति तैक्ष्ण्यं चित्रं विचित्रं मृगपक्षिणां च । माधुर्यमिक्षौ कटुता मरीचे स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तम् ॥" इति । ईश्वरवादिनस्त्वाहुः–ईश्वर एव [illegible] स्वर्गनरकादेश्च कारणम् इति । केचित्त्वाहुः कालवादिनः–काल एव [illegible] । यदृच्छावादिनस्त्वाहुः–यो यतो भवति [illegible] । नियतिवादिनस्तु [illegible] जन्मार्जितौ धर्माऽधर्मौ नियतिः सैव सर्वस्य कारणमिति नियतिवादिनः । केचित्त्वाहुः–अव्यक्तमहदहङ्कार-[illegible] परिणामवादिनः । [illegible] कारणभूता तथापि [illegible] स्वभावादीनां [illegible] । [illegible] (इति निबन्धसंग्रहः) ॥

(श्लो० १३) [illegible] । [illegible] । (नि० सं०)॥

(श्लो० १४) [illegible] । [illegible] । [illegible]

शास्त्रमें रोगनाशके प्रति) वर्णन कियागया है इसीसे चिकित्सित (चिकित्साविषय) में भूतों (पंचमहाभूत पृथिवी, अप, तेज, वायु, आकाश और इनके कार्यों)से परे अव्यक्त (अदृष्ट) आदिकी चिंता (विचार और मीमांसा) नहीं है अर्थात् नहीं हो सकती है ॥ १४ ॥

यतोऽभिहितं तत्संभवद्रव्यसमूहो भूतादिरुक्तः । भौतिकानि चेंद्रियाण्यायुर्वेदे वर्ण्यंते तथेंद्रियार्थाः ॥ १५ ॥ भवति चात्र-

उस अव्यक्तसे उत्पन्न हुआ द्रव्यसमूह (महदादि-बुद्ध्यादि और व्योमादि) ही भूतादि वर्णन किया है इससे वैद्यकशास्त्रमें यही महदादिक (महत्तत्त्व, अहंकार, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश और,सत्त्व, रज, तम) ही अभिहित (वर्णित) हैं । तथा भौतिक इंद्रिय (श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, रसन और घ्राण) तथा इंद्रियार्थ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) इनका वर्णन होता है॥ १५॥इस विषयमें श्लोक है-

इंद्रियेणेन्द्रियार्थं तु स्वंस्वं गृह्णाति मानवः ॥
नियतं तुल्ययोनित्वान्नान्येनान्यमिति स्थितिः ॥ १६ ॥

मनुष्य इन्द्रियसे नियत उसी उसके अर्थको समानयोनि होनेसे ग्रहण करता है अर्थात् श्रोत्र इन्द्रियसे उसके तुल्ययोनित्व करके नियत शब्दको ग्रहण करता है और त्वचासे स्पर्शको चक्षुसे रूपको, रसनासे रसको और घ्राणसे गंधको ग्रहण करताहै क्योंकि आकाशकी इन्द्रिय श्रोत्र है और गुण शब्द है । इसी तरह वायुकी इन्द्रिय त्वचा और गुण स्पर्श है तथा तेजकी इन्द्रिय चक्षु और गुण रूप है तथा जलकी इन्द्रिय रसना और गुण रस है और पृथ्वीकी इन्द्रिय घ्राण और गुण गंध है इसीसे सजातीय अपने सजातीयको ग्रहण करता है और अन्यसे अन्यको ग्रहण नहीं करता यही सिद्धांत है ॥ १६ ॥

न चायुर्वेदशास्त्रेषूपदिश्यन्ते सर्वगताः क्षेत्रज्ञा नित्याश्च असर्वगतेषु च क्षेत्रज्ञेषु नित्येषु पुरुषस्यापकान्हेतूनुदाहरंति ॥ १७ ॥ आयुर्वेदशास्त्रेऽसर्वगताः क्षेत्रज्ञा नित्याश्च तिर्यग्योनिमानुषदेवेषु

(गद्य १५) तत्संभवद्रव्यसमूहो महदादि (बुद्ध्यादि) [illegible] भूतादिरुक्त [illegible] आयुर्वेदे भौतिकानीन्द्रियाणि इन्द्रियार्थाश्च वर्ण्यन्ते । [illegible]
[illegible] ॥

(श्लो० १६) [illegible] ॥

संचरंति धर्माधर्मनिमित्तम्॥१८॥ते एते ऽनुमानग्राह्याः परमसूक्ष्मा श्चेतनावंतः शाश्वता लोहितरेतसोः संनिपातेष्वभिव्यज्यंते ॥१९॥ यतोऽभिहितं पंचमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इति स एव कर्मपुरुषश्चिकित्साधिकृतः ॥ २० ॥

आयुर्वेदके शास्त्रोंमें क्षेत्रज्ञों (जीवों) को सर्वगत (सर्वव्यापी) नहीं कहते (क्योंकि जो जीव सर्वव्यापी होता तो एकको सुख, दुःख सबको होता ऐसा नहीं होनेसे जीव सर्वव्यापी नहीं है) परन्तु नित्य कहते हैं असर्वगत (एकदेशी एक शरीरव्यापी) जीवोंमें नित्य पुरुष स्थापक (कहानेवाले) हेतुओंको दिखाते हैं ॥ ॥ १७ ॥ आयुर्वेद शास्त्रके मतमें असर्वगत (एकदेशीय) जीव नित्य हैं ये धर्म और अधर्मका निमित्त पाकर तिर्यग्योनि (पशुकीटादि) तथा मनुष्यदेह तथा देवशरीरोंमें विचरते हैं ॥ १८ ॥ ये परम सूक्ष्म जीवात्मा अनुमानसे ग्रहण किये जाते हैं (प्रत्यक्षतासे ग्रहण नहीं किये जासकते) ये चेतनावाले (चैतन्य) हैं, शाश्वत अर्थात् नित्य हैं और माता पिताके रजवीर्यके संयोगसे प्रगट होते हैं॥१९॥ इसीसे पंचमहाभूत और शरीरी (आत्मा) के संयोगको पुरुष कहा गया है और यही कर्मपुरुष चिकित्सामें अधिकार किया गया है (चिकित्सामें ग्रहण किया है) ॥ २० ॥

तस्य सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नः प्राणापानावुन्मेषनिमेषौ बुद्धिर्मनः संकल्पो विचारणा स्मृतिर्विज्ञानमध्यवसायो विषयोपलब्धिश्च गुणाः ॥ २१ ॥

इस कर्मपुरुषके ये १६ गुण हैं १ सुख, २ दुःख, ३ इच्छा, ४ द्वेष, ५ प्रयत्न, ६ प्राण (श्वासलेना), ७ अपान (अधोवायुनिःसारण), ८ उन्मेष निमेष (नेत्रोंका खोलना मीचना), ९ बुद्धि, १० मन (इन्द्रियोंकी प्रेरणा करशक्ति),

(गया १९) [illegible] ॥ (गया २०) पंचमहाभूत[illegible] ॥ [illegible]

(गया २१) [illegible]

११ सङ्कल्प (कल्पना), १२ विचारणा (सोचना), १३ स्मृति (याद रखना), १४ विज्ञान (चातुर्य), १५ अध्यवसाय (व्यवसाय), १६ विषयोपलब्धि (शब्द, स्पर्श आदिका ग्रहण करना) ॥ २१ ॥

सात्त्विक राजस और तामस (जीवोंके) मनके गुण ।

सात्त्विकास्तु आनृशंस्यं संविभागरुचिता तितिक्षा सत्य धर्म आस्तिक्य ज्ञान बुद्धिर्मेधा स्मृतिर्धृतिरनभिषङ्गश्च ॥२२॥ राजसास्तु दुःखबहुलताऽटनशीलताऽधृतिरहङ्कार आनृतिकत्वमकारुण्य दम्भो मानो हर्ष काम क्रोधश्च ॥२३॥ तामसास्तु विषादित्व नास्तिक्यमधर्मशीलता बुद्धेर्निरोधोऽज्ञान दुर्मेधस्त्वमकर्मशीलता निद्रालुत्व च ॥ २४ ॥

सात्त्विक (सत्त्वगुणप्रधान जीवोंके) मनके ये गुण हैं—आनृशंस्य (निर्दयता न होना) और संविभागरुचिता (औरोंको अवश्य देना चाहे आप पदार्थ ले या न ले), तितिक्षा (क्षमा), सत्यता, धर्माचरण, आस्तिकता (ईश्वरादिका अस्तित्व मानना), ज्ञान (विचारशक्ति), बुद्धि, मेधा (धारणाशक्ति), स्मृति (याद रखना), धृति (धैर्य), अनभिषङ्ग (निरपेक्ष शुभ कर्म करना) ॥ २२ ॥ राजस (रजोगुणप्रधान जीवोंके) मनके ये गुण हैं—विशेष दुःखी रहना, एक जगह स्थिरभाव न होना अर्थात् फिरना, धैर्य न होना, अभिमान करना, झूठ बोलना, दया न रखना, पाखण्ड करना, मान (मद या घमण्ड रखना), हर्ष (आनन्द बहुत मानना), काम (विशेष कामना रखना), क्रोध (जल्द गुस्सा होजाना) ॥ २३ ॥ तामस (तमोगुणप्रधान जीवोंके) मनके ये गुण हैं—विषाद रखना, नास्तिकता (ईश्वरादिमें विश्वास न करना), अधर्मशील होना, बुद्धिकी रुकावट रहना, अज्ञान तथा दुर्मेधस्त्व (धारणाशक्ति अच्छी न होना), अकर्मशीलता (कोई काम करनेकी चित्त न चाहना, अर्थात् आलस्य) और निद्रा अधिक आना ॥ २४॥

पञ्चमहाभूतोंके गुण ।

आन्तरिक्षास्तु शब्द शब्देन्द्रिय सर्वच्छिद्रसमूहो विविक्तता च । वायव्यास्तु स्पर्श स्पर्शेन्द्रिय सर्वचेष्टासमूह सर्वशरीरस्पन्दन लघुता च । तैजसास्तु रूप रूपेन्द्रिय वर्ण सन्तापो भ्राजि-

---

(गद्य २२) [illegible] ॥ (गद्य २३) [illegible] ॥

ष्णुता पक्तिरमर्पस्तैक्ष्ण्यं शौर्य्यं च । आप्यास्तु रसः रसनेंद्रियं सर्वद्रवसमूहो गुरुता शैत्यं स्नेहो रेतश्च । पार्थिवास्तु गंधो गंधेंद्रियं सर्वमूर्तिसमूहो गुरुता चेति ॥ २५ ॥

आकाशतत्त्वके गुण ये हैं-शब्द और शब्देंद्रिय अर्थात् श्रोत्र तथा सम्पूर्ण छिद्र (मुख, नासिका, कर्ण आदि) तथा विविक्तता (न्यारा न्यारा होना)। वायुतत्त्वके गुण ये हैं-स्पर्श और स्पर्शेंद्रिय अर्थात् त्वचा और सम्पूर्ण चेष्टाओंका समूह (हिलना, चलना आदि) और सारे शरीरमें फैलाने (सिकोडनेकी शक्ति) तथा हलकापन । अग्नितत्त्वके गुण ये हैं-रूप (देखना) और रूपेंद्रिय अर्थात् चक्षु तथा वर्ण (सौंदर्य), संताप (गरमाई), भ्राजिष्णुता (दीप्ति), पक्ति (आहारका पकना), अमर्ष (क्रोध), तैक्ष्ण्य (तेजी) और शूरवीरता । जलतत्त्वके गुण ये हैं-रस और रसनेंद्रिय (जिह्वा) तथा सम्पूर्ण द्रवसमूह अर्थात् पतले पदार्थ और भारीपन, शीतलता, चिकनाई और वीर्य । पृथिवीतत्त्वके गुण ये हैं-गंध और गंधेंद्रिय (घ्राण) तथा सम्पूर्ण मूर्तिसमूह (कठिन पदार्थ अस्थि आदि) तथा गुरुता (भारीपन) ॥ २५ ॥

तत्र सत्त्वबहुलमाकाशम् । रजोबहुलो वायुः । सत्त्वरजोबहुलोऽग्निः । सत्त्वतमोबहुला आपः ।तमोबहुला पृथिवीति॥२६॥श्लोकौ चात्र भवतः

इनमेंसे सत्त्वगुणकी विशेषतावाला आकाशतत्त्व है । और रजोगुणकी विशेषतावाला वायु है । सत्त्वगुण और रजोगुण दोनोंकी विशेषतावाला अग्नि है । सत्त्वगुण और तमोगुण इन दोनों गुणोंकी विशेषतावाला जल है । और केवल तमोगुणकी विशेषतावाली पृथ्वी है ॥ २६ ॥ इस विषयमें दो श्लोक हैं-

अन्योन्यानुप्रविष्टानि सर्वाण्येतानि निर्दिशेत् ॥ स्वे स्वे द्रव्ये तु सर्वेषां व्यक्तं लक्षणमिष्यते ॥२७॥ अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्ता विकाराः षोडशैव तु ॥ क्षेत्रज्ञश्च समासेन स्वतंत्रपरतंत्रयोः ॥ २८ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ये आकाशादि पांचों तत्त्व परस्पर सम्मिलित हैं अर्थात् एक दूसरेमें सब प्रविष्ट हो रहे हैं जैसे आकाशमें परमाणुरूपसे सब व्याप्त हैं और इसी प्रकार वायुमें परमाणुरूपसे सब व्याप्त हैं तथा अग्निमें भी परमाणुरूपसे सब रहते हैं इसी प्रकार जल और पृथ्वीमें भी सभी परमाणुरूपसे व्याप्त हैं परन्तु प्रगट नहीं होनेसे किन्तु अपने अपने स्थूलरूपमें इनके प्रगट लक्षण जाने जाते हैं ॥ २७ ॥ प्रधान (मूल

(मा० २५) [illegible] ([illegible]) ।

प्रकृति या शून्य), महत्तत्त्व, अहंकार तथा पञ्चतन्मात्रा (१शब्दतन्मात्रा,२ स्पर्शतन्मात्रा, ३ रूपतन्मात्रा, ४ रसतन्मात्रा, ५ गंधतन्मात्रा) ये आठ प्रकृति (कारणरूप) है। और श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण तथा वाणी, हाथ, पांव लिंग, गुदा और मन ये ग्यारह इंद्रिय और आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पांचो महाभूत ऐसे ये श्रोत्रादि सोलह १६ विकार कार्यरूप है। ये २४ तत्त्व और पचीसवां चैतन्यस्वरूप क्षेत्रज्ञ (पुरुष) स्वतंत्र (आयुर्वेद) और परतंत्र (सांख्यादि) मे संक्षेपसे वर्णन किये है ॥ २८ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मकृ० सुश्रुतसं० भा०टी० शारीरस्थाने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातः शुक्रशोणितशुद्धिनाम शारीरं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब शुक्र और शोणितकी शुद्धि नामक शारीरककी व्याख्या करतेहैं॥

वातपित्तश्लेष्मशोणितकुणपग्रंथिपूतिपूयक्षीणमूत्रपुरीषरेतसः प्रजोत्पादने न समर्था भवति ॥ १ ॥

जिनका वीर्य वायुसे, पित्तसे,कफसे,रक्तसे दूषित हो तथा कुणप (जिसमें मुरदेकी सी गंध हो), जिसमें गाँठें हो, दुर्गंधयुक्त हो या राधके समान हो अथवा जिन पुरुषोंका मूत्र, विष्ठा, मल तथा वीर्य क्षीण होगया हो अथवा क्षीणवीर्य या वीर्यमें मूत्र, विष्ठा हो वे संतान उत्पन्न करनेमे समर्थ नहीं होते (अर्थात् निरोग और दीर्घायु संतान उत्पन्न नहीं कर सक्ते) ॥ १ ॥

दूषितशुक्रलक्षण ।

तेषु वातवर्णवेदनं वातेन । पित्तवर्णवेदनं पित्तेन । श्लेष्मवर्णवेदनं श्लेष्मणा । शोणितवर्णवेदनं कुणपगंधमनल्पं रक्तेन । ग्रथितं श्लेष्मवाताभ्याम् । पूतिपूयनिभं पित्तश्लेष्मभ्याम् । क्षीणं प्रागुक्तं पित्तमारुताभ्याम् । मूत्रपुरीषगंधि सन्निपातेनेति ॥ २ ॥

इनमेंसे जिसके शुक्रमे वायुके वर्ण (लाल, कालापन) हों और वायुकी वेदना (तोदभेदादिक) हो वह वायुसे दूषित शुक्र है । तथा पित्तके वर्ण (पीत, नील)

(वाक्य० १) [illegible]

(वाक्य० २) [illegible]

और पित्तवेदना (दाहादि) हो तो पित्तसे दूषित । और कफका वर्ण (शुक्र) और कफकी वेदना (कंडू आदि) हो तो कफसे दूषित जाने। और रुधिरका वर्ण (लाल) और रुधिरकी वेदना (दाहादि) और कुणपगंधि (मुरदेकीसी गंध) और अल्प न होना ये रुधिरदूषित शुक्रमें होतेहै । और कफ, वायुसे शुक्रमें गांठें होजाती है । तथा दुर्गंधि और राधके तुल्य शुक्र पित्त,कफसे होता है । क्षीणशुक्रके लक्षण पहले सूत्रस्थानके पंद्रहवे अध्यायमें कह चुके है यह पित्त और वातसे होता है । तथा शुक्रमें मूत्रपुरीषता या मूत्रपुरीषगंधि सन्निपातसे होती है ॥ २ ॥

तेषु कुणपग्रन्थिपूतिपूयक्षीणरेतसः कृच्छ्रसाध्याः। मूत्रपुरीषरेतसस्त्वसाध्याः। शेषाः साध्याश्चेति ॥ ३ ॥

इनमेंसे कुणप (मुरदेकेसी गंधवाला) और दुर्गंधित तथा राधसदृश और क्षीणवीर्यवाले पुरुष कष्टसाध्य होतेहै और जिनके शुक्रमें मूत्र और विष्ठा हो वे असाध्य होते है और शेष साध्य है ॥ ३ ॥

आर्तवमपि त्रिभिर्दोषैः शोणितचतुर्थैः पृथग्द्वन्द्वैः समस्तैश्चोपसृष्टमबीजं भवति। तदपि दोषवर्णवेदनाभिर्विज्ञेयम् । तेषु कुणपग्रन्थिपूतिपूयक्षीणमूत्रपुरीषप्रकाशमसाध्यं साध्यमन्यद्भवति ॥ ४ ॥

भवति चात्र-

यदि पुरुषके शुक्रकी भांति स्त्रियोंका आर्तवभी वायु, पित्त, कफ इन तीनों दोषोंसे और चौथे रुधिर करके दूषित हो तथा न्यारे २ दोदो दोषोंसे तथा सन्निपातसे दूषित हो तो वहभी अबीज अर्थात् संतान उत्पन्न करने योग्य नहीं होता, इसेभी वातादि दोषोंके वर्ण और वेदना आदिसे जानलेना चाहिये (अर्थात् जिस एक या कई दोषोंका वर्ण और वेदना हो उन्हींसे दूषित आर्तव जाने) इनमेंसे कुणप(मुरदे) के समान गंधवाला, गांठोंसे युत, दुर्गंधित, राधसरीखा तथा क्षीण और मूत्र, पुरीष जैसा आर्तव असाध्य होताहै और शेष साध्य होते है ॥४॥ इस विषयमें श्लोक हैं-

दूषित शुक्र और शोणितकी शुद्धिका उपाय ।

तेष्वाद्यान्शुक्रदोषांस्त्रीन् स्नेहस्वेदादिभिर्जयेत् ॥ क्रियाविशेषैर्मतिमांस्तथा चोत्तरबस्तिभिः ॥ ५ ॥ पाययेन्नरं सर्पिर्भिषक् कुणपरेतसि ॥ धातकीपुष्पखदिरदाडिमार्जुनसाधितम् ॥ ६ ॥

(श्लो० ५) [illegible] ॥ (श्लो० ६) [illegible]

पाययेदथवा सर्पिः शालसारादिसाधितम् ॥ ग्रथिभूते शटीसिद्ध पालाशे वापि भस्मनि ॥ ७ ॥ परूपकैवटादिभ्या पूयप्रख्ये तु साधितम् ॥ प्रागुक्त वक्ष्यते यच्च तत्कार्यंक्षीणरेतसि ॥ ८ ॥ विट्प्रभे पाययेत्सिद्धं चित्रकोशीरहिंगुभिः ॥ ९ ॥

इन शुक्रदोषोंमेंसे आदिके तीन दोषोंको स्नेहपान, स्वेद और विरेचन, वमन तथा उत्तरवस्ति आदि क्रियाओंसे जीते अर्थात् वायुदूषित शुक्रमें स्नेहपान और स्वेद करावे। पित्तदूषितमें विरेचन तथा कफदूषितमें वमन करावे (यहां विरेचन और वमनका बोध आदि शब्दसे होता है) ॥ ५ ॥ और शुक्रमें कुणप (मुरदेकेसी गंध) हो तो धायके फूल, खदिर, अनार और कुहकी छालसे सिद्ध किया घृत पिलावे ॥ ६ ॥ अथवा शालसारादिसे सिद्ध किया घृत पिलावे और जो शुक्रमें गांठें पड़गई हों तो कचूरसे सिद्ध किया घृत पिलावे अथवा पलाशकी भस्मसे सिद्ध घृत पिलावे (एक आढक पलाशकी भस्ममें छः आढक जल गेर ओटावे जब चौथाई शेष रहे तब उतारे दृढ वस्त्रसे सातवार छाने फिर एक प्रस्थ घृत उस पलाशक्षारयुक्त जलमें मिलाकर अग्निपर चढावे जब घृतमात्र शेष रहे तब उतार ले) ॥ ७ ॥ जिसका वीर्य राधके सदृश हो उसे परूषक (फालसे) और सूत्रस्थानोक्त वटादि गण (न्यग्रोधादिगण) में सिद्ध किया घृत पिलावे और जिसका वीर्य क्षीण हो उसे पूर्वोक्त स्वयोनिवर्द्धन द्रव्य तथा जो अगाडी वाजीकरण अधिकारमें कहेंगे वे उपाय करने चाहिये ॥ ८ ॥ और जिसके शुक्रमें विष्ठाकीसी गंध हो या विष्ठा हो तो चित्रक, खस और हींगसे सिद्ध किया हुआ घृत पिलावे (यद्यपि यह विट्प्रभ शुक्र असाध्य है तोभी कई इसे साध्य कहते हैं इससे उपर्युक्त औषध उचित है। और मूत्रगंधवाला या मूत्रयुक्त शुक्र तो सर्वथा असाध्यही है) ॥ ९ ॥

स्निग्धं वान्तं विरिक्तं च निरूढमनुवासितम्।
योजयेच्छुक्रदोषार्तं सम्यगुत्तरबस्तिना ॥ १० ॥

—[illegible] ॥ १ ॥ [illegible] ॥ २ ॥ [illegible] ॥ ३ ॥ [illegible] ॥ [illegible] ॥ ५ ॥ [illegible]
(श्लो० १०) [illegible] ॥

शुक्रदोष युक्त मनुष्यको पहले यथोचित स्नेहपान कराके या वमन करावे या विरेचन करावे या निरूहण और अनुवासन वस्तिकर्म करके या सम्यक् रीतिसे उत्तरवस्ति करके पीछे अन्य औषधका उपयोग करे। (स्नेहपान, वमन, विरेचन, निरूहण वस्ति, अनुवासन वस्ति और उत्तरवस्ति इन सबकी विधि विस्तारपूर्वक अन्यत्र देखना) ॥ १० ॥

विधिमुत्तरबस्त्यन्तं कुर्यादार्तवशुद्धये ॥ स्त्रीणां स्नेहादियुक्तानां चतसृष्वार्तवार्तिषु ॥ ११ ॥ कुर्य्यात्कल्कान्पिचूंश्चापि पथ्यान्याचमनानि च ॥ ग्रन्थिभूते पिबेत्पाठां त्र्यूषणं वृक्षकानि च ॥ १२ ॥ दुर्गन्धे पूयसंकाशे मज्जतुल्ये तथार्तवे ॥ पिबेद्भद्रश्रियं क्वाथं चन्दनक्वाथमेव च ॥ १३ ॥ शुक्रदोषहराणां च यथास्वमवचारणम् ॥ दोषाणां शुद्धिकरणं शेषास्वप्यार्तवार्तिषु ॥ १४ ॥ अन्नं शालियवं मद्यं हितं मांसं च पित्तलम् ॥ १५ ॥

स्त्रियोंके वातज, पित्तज, कफज और रक्तज इन चार प्रकारके आर्तवदोषोंमें स्नेहपान, वमन, विरेचन, निरूहण, अनुवासन और उत्तरवस्ति पर्यंत क्रिया करे फिर आर्तवशुद्धिके लिये यथायोग्य कल्कोंका उपचार करे ॥ ११ ॥ तथा दोषोंके अनुसार औषधोंमें पिचु अर्थात् वस्त्र भिगोकर बत्ती बनाकर रक्खे या रुईका फोहा औषधों- में भिगोकर रक्खे अथवा आचमन अर्थात् उचित द्रव्योंके काथसे पिचकारी द्वारा या वैसेही योनि धोवे और यथायोग्य पथ्य करे। और जो आर्तवमें गांठ हों तो पाठा, त्र्यूषण (सोंठ, मिरच, पीपल), वृक्षक (कुडा) इनका काथ पीवे ॥ १२ ॥ जो आर्तवमें दुर्गंध हो या राध जैसा तथा मज्जा तुल्य आर्तव हो तो भद्रश्रिय (श्रीचंदन) तथा चन्दन (सुपेद चन्दन) का काथ पीवे (गयदासाचार्य यहां [illegible] ग्रहण करते हैं) ॥ १३ ॥ इन ऊपर लिखे दोषोंके सिवाय आर्तवमें और दोष हो तो शुक्रदोष दूर करनेके लिये जो जो क्रिया लिखी है उन्हींका उप- योग करे ॥ १४ ॥ इसमें शालि (चावल) और जौका भोजन तथा हितकारक यथोचित मदिरा पीना और पित्तकारक मांस भोजन करना पथ्य है ॥ १५ ॥

(श्लो० ११) [illegible] ॥ (श्लो० १२) [illegible] । ([illegible]) ॥ (श्लो० १३) [illegible] ॥

शुद्धशुक्रके लक्षण ।

स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगन्धि च ॥
शुक्रमिच्छन्ति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभं तथा ॥ १६ ॥

जो वीर्य (बिल्लौरके समान) सुपेद हो, पतला, चिकना, मधुर (मीठा) हो तथा शहतकेसी सुगंधयुक्त हो तो उसे शुद्ध जानना। कई आचार्य तेल तथा शहतके समान वीर्य शुद्ध होता है ऐसा कहते हैं ॥ १६॥

शुद्ध आर्तवके लक्षण।

शशासृक्प्रतिमं यत्तु यद्वा लाक्षारसोपमम् ॥
तदार्तवं प्रशंसन्ति यद्वासो न विरञ्जयेत् ॥ १७ ॥

जो शश (खरगोश) के रुधिरके समान हो अथवा लाखके रंगके सदृश हो और जिसमे रंगाहुआ वस्त्र सूखकर धोनेसे सुपेद हो जाय अथवा जिसका भराहुआ वस्त्र बदरंगा (पीला, काला आदि) न हो किंतु सुरखही रहे तो वह आर्तव शुद्ध (गर्भ धारणके योग्य) कहाता है ॥ १७ ॥

असृग्दर (रक्तप्रदर)

तदेवातिप्रसङ्गेन प्रवृत्तमनृतावपि ॥ असृग्दरं विजानीयादतोऽन्यद्रक्तलक्षणात् ॥ १८ ॥ असृग्दरो भवेत्सर्वः साङ्गमर्दः सवेदनः ॥ तस्यातिवृत्तौ दौर्बल्यं भ्रमो मूर्च्छा तमस्तृषा ॥ दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तन्द्रा रोगाश्च वातजाः ॥ १९ ॥

वह आर्तव अधिक प्रवृत्त हो और मासिक समयसे अन्यथा वहता हो और उपर्युक्त शुद्ध आर्तवसे विपरीत वर्णवाला हो तो उसे असृग्दर ([illegible]) जानना चाहिये ॥ १८ ॥ सम्पूर्ण असृग्दरोंमें अंगमर्द (अंग टूटनासा) और वेदना होती है और रक्तके अधिक जारी होनेमें दुबलापन, भ्रम, मूर्च्छा, तम (अँधेरीसी आना) और प्यास विशेष लगना तथा दाह और प्रलाप (बकवाद) तथा पाण्डु (पीलापन) और तन्द्रा (घुमेर) और वायुके रोग (जैसे कमर दूखना आदि) उत्पन्न होते हैं ॥ १९ ॥

(श्लो० १६) [illegible] (श्लो० १७) [illegible]
[illegible]
[illegible] (श्लो० १९) [illegible]
[illegible]
[illegible] ॥

अस्रुग्दरका यत्न ।

तरुण्यां हितसेविन्यामल्पोपद्रवं भिषक्॥
रक्तपित्तविधानेन यथावत्समुपाचरेत् ॥ २० ॥

जो यह तरुण अवस्थावाली, हित पदार्थ सेवनवाली स्त्री हो और उसमें थोडे उपद्रव हों तो उसे वैद्य रक्तपित्तके विधानसे यथोचित उपचार करे ॥ २० ॥

नष्टार्तव ।

दोषैरावृतमार्गत्वादार्तवं नश्यति स्त्रियाः ॥ तत्र मत्स्यकुलत्थाम्लतिलमाषसुरा हिताः ॥ पाने मूत्रमुदश्विच्च दधि शुक्तं च भोजनम् ॥ २१ ॥

वातादि दोषों करके जब रजोधर्मका मार्ग रुक जाताहै तब स्त्रियोंका आर्तव नष्ट होजाताहै अर्थात् मासिक रजोधर्म नहीं आता (दोषोंसे प्रयोजन यहां वायु और कफसे है क्योंकि पित्त और रक्तसे आर्तव नष्ट नहीं होताहै) यदि आर्तव नष्ट होगया हो तो मछलीका मांस कुल्थी, खट्टे पदार्थ, तिल, उडद तथा सुरा(मदिरा) सेवन करना हित है और गोमूत्र पान करना तथा उदश्वित्(दधिमें आधाजल मिला हुआ मट्ठा) तथा दही और शुक्त (सिरका) ये खाने चाहिये ([illegible] शुक्रका अर्थ [illegible] करतेहैं) ॥ २१ ॥

क्षीणे प्रागीरिते रक्ते सलक्षणचिकित्सितम् ॥
तथार्तवे निर्दिष्टं विधानं नष्टरक्तवत् ॥ २२ ॥

रक्त क्षीण होनेके लक्षण और चिकित्सा पहले सूत्रस्थानके पन्द्रह १५वें अध्यायमें वर्णन करचुके हैं । प्रकार (रक्तोनिर्हरण पदार्थोंसे) यहांभी नष्ट रक्तकी चिकित्सा विधान [illegible]ना चाहिये ॥ २२ ॥

एवमदुष्टशुक्रः शुद्धार्तवा च ऋतौ प्रथमदिवसात्प्रभृति ब्रह्मचारिणी दिवास्वप्नाञ्जनाश्रुपातस्नानानुलेपनाभ्यंगनखच्छेदनप्रधावनहसनकथनातिशब्दश्रवणावलेखनानिलायासान्परिहरेत् ॥ २३ ॥

ऐसे उपर्युक्त शुद्ध शुक्रवाला पुरुष और शुद्ध आर्तववाली स्त्री (होनेसे सुन्दर गर्भ होताहै) स्त्रीको चाहिये कि रजस्वला होनेके पहलेही दिनसे आदि [illegible]

(श्लो० २१) मूत्रमें [illegible] । उदश्वित् [illegible] । [illegible] ([illegible]) [illegible] ॥ [illegible] ॥
(गद्य २३) [illegible] ॥

(रजस्वलाकी अवधितक) ब्रह्मचारिणी रहे और दिनमें सोना, अंजन लगाना, अश्रुपात करना (रोना, स्नान करना, चन्दनादि लगाना या उबटन लगाना), तैलाभ्यंग करना, नाखून काटना, दौडके चलना, हँसना, बहुत बोलना, तीक्ष्ण शब्द सुनना, अवलेखन अर्थात् कंघीसे बालपट्टी बनाना या जमीन खुरेदना, तेज हवा खाना, परिश्रम करना इन सबको त्यागदे ॥ २३ ॥

किं कारणम् । दिवास्वपत्या स्वापशीलोऽञ्जनादधो रोदनाद्विकृतदृष्टिः स्नानानुलेपनाद्दुःखशीलस्तैलाभ्यङ्गात्कुष्ठी नखापकर्त्तनात्कुनखीप्रधावनाच्चचलो हसनाच्छ्यावदन्तौष्ठतालुजिह्वः प्रलापी चातिकथनादतिशब्दश्रवणाद्बधिरोऽवलेखनात्खलतिर्मारुतायासंसेवनादुन्मत्तो गर्भो भवतीत्येवमेतान्परिहरेत् ॥ २४ ॥

उपर्युक्त पथ्याचरणका कारण क्या है कि यदि रजस्वला अवस्थाके तीन दिनोंमें दिनमें सोवे तो (जो उसी ऋतुमें गर्भ रहे तो) बालक स्वापशील (बहुत सोने वाला) पैदा हो, और कज्जल लगानेसे अंधा, रोनेसे नेत्रविकारवाला और स्नान तथा अनुलेपन करनेसे दुःखशील, तैलाभ्यंग करनेसे कुष्ठी, नाखून कतरनेसे कुनखी (खराब नाखूनवाला), दौडकर चलनेसे चंचल, हँसनेसे काले दांतोंवाला तथा काले होंठ, तालु और जीभवाला हो, बहुत बोलनेसे प्रलापी (बकवादी), अतिशब्द सुननेसे बहिरा होता है तथा अवलेखन (शिरके बालोंमें कंघी करने) से गंजा और हवा अधिक खाने तथा कष्ट करनेसे मतवाला बालक पैदा होता है इससे इन कामोंको त्यागदे ॥ २४ ॥

दर्भसंस्तरशायिनीं करतलशरावपर्णान्यतमभोजनां हविष्यंत्र्यहं भर्त्तुः संरक्षेत् ॥ २५ ॥ ततः शुद्धस्नातां चतुर्थेऽहन्यहतवाससमलङ्कृतां कृतमंगलस्वस्तिवाचनां भर्तारं दर्शयेत् तत्कस्य हेतोः २६॥

रजस्वला स्त्रीको तीन दिन कुशाकी सन्थरपर सोना और हथेली या मिट्टीके बरतन या पत्तोंके पात्र इनमेंसे किसीमें रखकर हविष्यान्न (जौ, चावल आदि) अन्न खाना चाहिये और पुरुषसे बहुतही बचा रखना (दर्शन तक भी नहीं करना

(गद्य २४) [illegible] । [illegible] [illegible] ॥ (गद्य २५) [illegible] ([illegible]) [illegible] ॥ (गद्य २६) [illegible] ॥

चाहिये ॥ २५ ॥ फिर चौथे दिन शुद्ध स्नान कराके अहत (नवीन) वस्त्र पहना कर आभूषण धारण कराके मंगलपाठ स्वस्तिवाचन कराके प्रथम भर्ताका दर्शन करावे इसका कारण क्या है (सो अगले श्लोकमें कहते हैं) ॥ २६ ॥

पूर्वं पश्येदृतुस्नाता यादृशं नरमंगना ॥
तादृशं जनयेत्पुत्रं भर्तारं दर्शयेदतः ॥ २७ ॥

ऋतुसे शुद्ध स्नानकरके स्त्री जैसे पुरुषके पहले दर्शन करे उसके (यदि उस ऋतुमें गर्भ रहे तो) वैसाही (उसकीही आकृति) का पुत्र उत्पन्न होता है इससे भर्ताके दर्शन कराने चाहिये और कई " भर्तारं दर्शयेदतः " इस पदकी जगह " ततः पश्येत्पति प्रियम् " ऐसा पाठ मानते हैं इसका अभिप्राय यह है कि पतिके दर्शन करे अथवा " प्रियम् " जैसी आकृति, रूप आदि सन्तानका चाहिये वैसाही देवतादि या देवमूर्ति या सुन्दर पुरुषके प्रथम दर्शन करने चाहिये (यूरोप और अमेरिकाके विद्वान् भी इस बातको मानने लगे हैं और कईएक तजरबा करनेसे सिद्ध पाया है कि दर्शनका प्रभाव अवश्य होता है इसपर अमेरिकाके एक डाक्टर साहिबने स्त्रीसमाजमें इसपर बड़ा गम्भीर व्याख्यान दिया था और उसे छपाकर भी प्रसिद्ध किया था जिसका हिंदी अनुवाद (सन्तानके सुयोग्य करनेकी विधि) इस नामसे बाबू काशिनाथ सिरसा निवासीने किया है) ॥ २७ ॥

ततो विधानं पुत्रीयमुपाध्यायः समाचरेत् ॥
कर्मांते च क्रमं ह्येनमारभेतं निबद्धणे ॥ २८ ॥

तब उपाध्याय (पंडित) पुत्रकी कामनाके अर्थ विधान (पुत्रेष्टि यज्ञ) करावे

(श्लो० २७) [illegible]

(श्लो० २८) [illegible]

और इस पुत्रेष्टि-यज्ञके पीछे इस (वक्ष्यमाण) क्रमका (चतुर पुरुष) आरम्भ करे ॥ २८ ॥

ततोऽपराह्णे पुमान् मासं ब्रह्मचारी सर्पिःस्निग्धः सर्पिःक्षीराभ्यां शाल्योदनं भुक्त्वा मासं ब्रह्मचारिणीं तैलस्निग्धां तैलमाषोत्तराहारां नारीमुपेयाद्रात्रौ सामादिभिरभिविश्वास्य विकल्प्यैवं चतुर्थ्यां षष्ठ्यामष्टम्यां दशम्यां द्वादश्यां चोपेयादिति पुत्रकामः ॥२९॥

पुत्रेष्टि यज्ञ करके अपराह्ण कालमें महीने भरसे ब्रह्मचारी रहा हुआ पुरुष शरीरमें घृतका मर्दन तथा घृत और दूधके संग शालि (चावलों) के भातका भोजन करके और महीने भरसे ब्रह्मचारिणी रही हुई तथा शरीरमें तैलका मर्दन करके तैल और माष (उड़द) प्रधान भोजन किया है जिसने ऐसी स्त्रीके समीप रात्रिमें गमन करे (अर्थात् ऊपरके अनुसार पुरुष और स्त्री दोनों पथ्य करके प्रसंग करें) और पुरुष प्रेमके वचनोंसे स्त्रीकी तसल्ली करके विचारके रजस्वला होनेके दिनसे चौथी, छठी, आठवीं, दशवीं और बारहवीं रात्रिमें (पुत्रकी इच्छावाला पुरुष स्त्रीसंग करे ॥ २९ ॥

(वक्तव्य) पुरुष घृत मर्दन करे और घृतयुक्त आहार करे तथा स्त्री तैल मर्दन करे और तैलयुक्त आहार करे इसका अभिप्राय यह है कि वीर्यका पोषक सौम्य-पदार्थ घृत है जो पुरुषको उपयोग करना चाहिये और रजकी पुष्टि करनेवाला आग्नेय पदार्थ तैल है जिससे स्त्रीका शोणित पुष्ट होता है और सम तथा विषम रात्रियोंका हेतु यह है कि, विषम रात्रियोंमें स्त्रीका आर्तव बलिष्ठ होता है इससे कन्या होतीहै और समरात्रियोंमें सम होताहै तो पुरुषके वीर्यकी उत्कर्षतासे पुत्र होताहै।

एपूत्तरोत्तरं विद्यादायुरारोग्यमेव च ॥
प्रजासौभाग्यमैश्वर्यं बलं च दिवसेषु वै ॥ ३० ॥

इन चौथ, छठे, आठवें आदि दिनोंमें उत्तरोत्तर आयु, आरोग्य, सौभाग्य, ऐश्वर्य तथा बल संतानमें होता है ऐसा जानना चाहिये (अर्थात् रजस्वला होनेके दिनसे जितना जितना पीछे गर्भ धारण होगा उतनाही उतना अधिक आयु, आरोग्यता आदि संतानमें होगा) ॥ ३० ॥

(पाठा० २९) [illegible] (इति डल्हणः) ॥

अतः परं पञ्चम्यां सप्तम्यां नवम्यामेकादश्यां च स्त्रीकाम । त्रयोदशीप्रभृतयो निंद्या ॥ ३१ ॥

इसके सिवाय जिसकी वांछा पुत्रीकी हो वह पांचवी, सातवीं, नवीं और ग्यारहवीं रात्रिमें गमन करे। और तेरहवीं रात्रिसे परे निंदित है (इनमें सग करना उचित नहीं) (कई ऐसाभी कहते हैं कि शुक्रकी अधिकतासे पुत्र हो और रजके आधिक्यसे पुत्री)॥ १

तत्र प्रथमे दिवसे ऋतुमत्या मैथुनगमनादनायुष्यं पुंसां भवति यश्च तत्राधीयते गर्भः स प्रसवमानो विमुच्यते। द्वितीयेप्येवं सूतिकागृहे वा । तृतीये प्येवमसम्पूर्णांगोऽल्पायुर्वा भवति । चतुर्थे तु सम्पूर्णांगो दीर्घायुश्च भवति ॥ ३२ ॥

स्त्री जिस दिन रजस्वला हो उसी (प्रथम) दिन रजस्वला स्त्रीसे मैथुन करनेमें पुरुषोंकी आयुका नाश होता है और यदि उस दिन गर्भ रहजावे तो जन्मतेही बालक प्राण छोड़ देता है । दूसरे दिन भी रजस्वलाके सग मैथुन करनेमें पूर्वोक्त हानि (भर्ताकी आयुका नाश और जन्मतेही शिशुका मरण) हो अथवा सूतिकागृहमें (दशही दिनके भीतर) ही बालक मरजाय । तीसरे दिन रजस्वलाके साथ गमन करनेसे भी पूर्वोक्त हानि होती है तथा अधूरे अगका और अल्पायु बालक होताहै । चौथे दिन गमन करनेसे पूर्ण अगोंवाला और दीर्घ आयु बालक उत्पन्न होताहै ॥ ३२ ॥

(वक्तव्य) रजस्वलागमनमें भर्ताकी आयुका क्षय और सन्तानकी अल्पायुके सिवाय पतिको अनेक दारुण रोग भी होते है जैसे उपदंश (देखो निदानस्थानके १२ वे अध्यायमें उपदंशका कारण) और रक्तविकार, सुजाक आदि । इसीलिये रजस्वलाके लिये धर्मशास्त्रमें यों लिखा है कि " प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी । तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थे शुध्यति ॥ "

ऋतौ च प्रवर्तमाने रक्ते बीजं प्रविष्टं गुणकरं भवति यथा नद्यां प्रतिस्रोतः प्लाविद्रव्यं प्रक्षिप्तं प्रतिनिवर्तते नोर्ध्वं गच्छति तद्वदेव द्रष्टव्यं तस्मान्नियमवतीं त्रिरात्रं परिहरेत् । अतः परं मासादुपेयात् ॥ ३३ ॥

(वाक्य ३१) [illegible]
[illegible] ([illegible]) । (वाक्य ३२) [illegible]
[illegible]
(वाक्य ३३) [illegible]

रजस्वलासमयमें रक्तका प्रवाह होताही है और रक्तके प्रवृत्त होनेमें प्रविष्ट हुआ बीज (वीर्य) गुणकारक (शुद्धगर्भस्थितिकारक) नहीं होता जैसे नदीके बहते-हुए जलमें पडा हुआ द्रव्य बहजाता है तथा उपाघुटित होजाता है ऊपरको नहीं आता (उगकर उसका अंकुर ऊपरको नहीं आता) इसी तरह रजस्वलामें भी जानना चाहिये इस कारणसे नियमित तीन रात्रियोंमें रजस्वलाको त्याग दे इसके पीछे १ मास तक यथोचित रात्रियोंमें गमन करे ॥ ३३ ॥

लब्धगर्भाका कृत्य ।

लब्धगर्भायाश्चैतेष्वहःसु लक्ष्मणावटशुंगासहदेवाविश्वदेवानामन्यतमं क्षीरेणाभिषुत्य त्रींश्चतुरो वा बिंदून् दद्याद्दक्षिणे नासापुटे पुत्रकामायै न च तान्निष्ठीवेत् ॥ ३४ ॥

जब स्त्रीके गर्भ रहजावे तब इन दिनोंमें (तीन मास पहले) लक्ष्मणा और बडकी कोंपल,सहदेवा (पीले फूलकी कंघी) और विश्वदेवा(गंगेरण)इनमेंसे किसीको (बछडेवाली) गौके दूधमें पिसकर पुत्र चाहनेवाली स्त्रीकी नासिकाके दहिने नथनेमें तीन या चार बूंदें डाले और उन्हें थूकने न दे (अर्थात् स्त्रीसे कहदे कि थूकना नहीं)॥ ३४ ॥

गर्भके चार हेतु ।

ध्रुवं चतुर्णां सांनिध्यात् गर्भः स्याद्विधिपूर्वकः ॥ ऋतुक्षेत्राम्बुबीजानां सामग्र्यादंकुरो यथा ॥ ३५ ॥ एवं जाता रूपवन्तो महासत्त्वाश्चिरायुषः ॥ भवन्त्यृणस्य मोक्तारः सत्पुत्राः पुत्रिणे हिताः ॥ ३६॥

—कृष्यमिति शेषः । अर्वाग्गमनात्तु गर्भधारणिरोधेनैव स्यादिति गर्भः स्यादपी इति । गमपारेणरुजा [illegible] मासादूर्ध्वमुपेयादित्यर्थः । पूर्णमासार्वाक् तु मासादूर्ध्वमपि न गमनम् । यदि नारदत्नाथे गर्भस्थानं [illegible] यदा मासादर्वाक् द्वितीये [illegible] [illegible] म पाप । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उचितासु रात्रिषु इति ॥

(गर्भ ३४) लब्धगर्भाया एतेषु अहःसु [illegible] यदा गर्भग्रहणमेव पुंसवनार्थं [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] "[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥" इति । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (इति [illegible]) । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (नि० सं०) ॥

अतः परं पंचम्यां सप्तम्यां नवम्यामेकादश्यां च स्त्रीकामः । त्रयोदशीप्रभृतयो निंद्याः ॥ ३१ ॥

इसके सिवाय जिसकी वांछा पुत्रीकी हो यह पांचवी, सातवीं, नवीं और ग्यारहवी रात्रिमें गमन करे। और तेरहवीं रात्रिसे परे निंदित है (इनमें सग करना उचित नहीं) (कई ऐसाभी कहते है कि शुक्रकी अधिकतासे पुत्र हो और रजके आधिक्यसे पुत्री) ॥

तत्र प्रथमे दिवसे ऋतुमत्या मैथुनगमनादनायुष्यं पुंसां भवति यश्च तत्राधीयते गर्भः स प्रसवमानो विमुच्यते। द्वितीयेऽप्येवं सूतिकागृहे वा । तृतीयेऽप्येवमसंपूर्णांगोऽल्पायुर्वा भवति । चतुर्थे तु संपूर्णांगो दीर्घायुश्च भवति ॥ ३२ ॥

स्त्री जिस दिन रजस्वला हो उसी (प्रथम) दिन रजस्वला स्त्रीसे मैथुन करनेसे पुरुषोंकी आयुका नाश होता है और यदि उस दिन गर्भ रहजावे तो जन्मतेही बालक प्राण छोड़ देता है । दूसरे दिन भी रजस्वलाके सग मैथुन करनेसे पूर्वोक्त हानि (भर्ताकी आयुका नाश और जन्मतेही शिशुका मरण) हो अथवा सूतिकागृहमें (दशवीं दिनके भीतर) ही बालक मरजावे । तीसरे दिन रजस्वलाके साथ गमन करनेसे भी पूर्वोक्त हानि होती है तथा अधूरे अंगका और अल्पायु बालक होताहै । चौथे दिन गमन करनेसे पूर्ण अंगोपांग और दीर्घ आयु बालक उत्पन्न होताहै ॥ ३२ ॥

(वक्तव्य) रजस्वलागमनमें भर्ताकी आयुका क्षय और सन्तानकी अल्पायुके सिवाय पतिको अनेक दारुण रोग भी होते हैं जैसे उपदंश (देखो निदानस्थानके १२ में अध्यायमें उपदंशका कारण) और रक्तविकार, सुजाक इत्यादि । इसीलिये रजस्वलाके लिये धर्मशास्त्रमें यों लिखा है कि " प्रथमेऽहनि चांडाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी । तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थे शुद्ध्यति ॥"

ते चावर्तमाने रक्ते बीजं प्रविष्टं गुणकरं भवति यथा नद्यां प्रतिस्रोतः प्लाविद्रव्यं प्रक्षिप्तं प्रतिनिवर्तते नोर्ध्वं गच्छति तद्वदेव द्रष्टव्यं तस्मान्नियमवतीं त्रिरात्रं परिहरेत् । अतः परं मासादुपेयात् ॥ ३३ ॥

(श्लोक ३१) [illegible] (श्लो० ३२) [illegible]
[illegible]
(श्लो ३३) [illegible]

रजस्वलासमयमें रक्तका प्रवाह होताही है और रक्तके प्रवृत्त होनेमें प्रविष्ट हुआ बीज (वीर्य) गुणकारक (शुद्धगर्भस्थितिकारक) नहीं होता जैसे नदीके वहतेहुए जलमें पडा हुआ द्रव्य वहजाता है तथा व्याघुटित होजाता है ऊपरको नहीं आता (उगकर उसका अंकुर ऊपरको नहीं आता) इसी तरह रजस्वलामें भी जानना चाहिये इस कारणसे नियमित तीन रात्रियोंमें रजस्वलाको त्याग दे इसके पीछे १ मास तक यथोचित रात्रियोंमें गमन करे ॥ ३३ ॥

लब्धगर्भाका कृत्य।

लब्धगर्भायाश्चैतेष्वहःसु लक्ष्मणावटशुंगासहदेवाविश्वदेवानामन्यतमं क्षीरेणाभिषुत्य त्रींश्चतुरो वा बिंदून् दद्याद्दक्षिणे नासापुटे पुत्रकामायै न च तान् ष्ठीवेत् ॥ ३४ ॥

जब स्त्रीके गर्भ रहजावे तब इन दिनोंमें (तीन मास पहले) लक्ष्मणा और वडकी कोंपल, सहदेवा (पीले फूलकी कधी) और विश्वदेवा (गंगेरण) इनमेंसे किसीको (नउडेवाली) गौके दूधमें घिसकर पुत्र चाहनेवाली स्त्रीकी नासिकाके दहिने नथनेमें तीन या चार बूँदें डाले और उन्हें थूकने न दे (अर्थात् स्त्रीसे कहदे कि थूकना नहीं)॥ ३४॥

गर्भके चार हेतु।

ध्रुवं चतुर्णां सान्निध्यात् गर्भः स्याद्विधिपूर्वकः ॥ ऋतुक्षेत्राम्बुबीजानां सामग्र्यादंकुरो यथा ॥ ३५ ॥ एवं जाता रूपवंतो महासत्त्वाश्चिरायुषः ॥ भवत्यृणस्य मोक्षाय सत्पुत्राः पुत्रिणे हिताः ३६॥

—ऊर्ध्वमिति शेषः। अर्वाग्मासात्तु गर्भं [illegible] गर्भ स्थापयति इति। [illegible] मासादूर्ध्वमुपेयादित्यर्थः। [illegible] मासादूर्ध्वमपि न [illegible]। यदि [illegible] गर्भस्थापनं न भवे यदा मासादूर्ध्वं द्वितीये [illegible] इत्यर्थः। [illegible] दिनचतुष्टयं मासात् मास पर्यंतं [illegible] उचितासु रात्रिषु इति ॥

(गद्य ३४) [illegible] अः सु [illegible] पुत्र [illegible] ।अत्र [illegible] ।"[illegible] यथा—"पुत्रार्थं [illegible] ॥" इति। [illegible] [illegible] दद्यात् ([illegible])। [illegible] । सहदेवा [illegible] इति । विश्वदेवा [illegible] [illegible] दक्षिणे नासापुटे [illegible] [illegible] (नि० सं०)॥

निश्चय चार पदार्थोंके संयोगसे निर्विघ्नतासे गर्भ होता है । जैसे ऋतु (वसन्त) और क्षेत्र (दोषरहित संस्कृत पृथ्वी) और जल (जितना और जैसा चाहिये) तथा बीज (निर्दोष बीज) इन चारों सामग्रियोंके मिलनेसे जैसे अङ्कुर उत्पन्न होजाता है वैसेही ऋतु (गर्भका समय अर्थात् तरुण स्त्रीके रजस्वला होनेके दिनसे १६ दिनतक) और शुद्ध गर्भाशय तथा माताके भोजनका यथोचित रस और बीज (शुद्ध शुक्र) इनके संयोगसे गर्भ होता है ॥ ३५ ॥ ऐसे (यथायोग्य) चारों पदार्थोंके संयोगसे रूपवान् गम्भीर सत्त्ववाले दीर्घायु माता पिताके ऋणके छुडाने-वाले सत्पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ ३६ ॥

शरीरके वर्णका कारण ।

तत्र तेजोधातुः सर्ववर्णानां प्रभवः स यदा गर्भोत्पत्तावब्धातुप्रायो भवति तदा गर्भं गौरं करोति । पृथिवीधातुप्रायः कृष्णम् । पृथिव्याकाशप्रायः कृष्णश्यामम् । तोयाकाशधातुप्रायो गौरश्यामम् ॥ ३७ ॥ यादृग्वर्णमाहारमुपसेवते गर्भिणी तादृग्वर्णप्रसवा भवतीत्येके भाषते ॥ ३८ ॥

तेज (अग्नि) धातु ही गौरादि सम्पूर्ण वर्णोंका उत्पन्न करनेवाला है यह (शारीरक अथवा आर्तव अग्नि) यदि गर्भोत्पत्तिके समय जल धातुप्राय (अर्थात् जलके अधिकांश शुक्र) हो तो गौरवर्ण सन्तान उत्पन्न करता है । और यदि यह तेज धातु पृथ्वी धातुप्राय (पृथ्वीके अधिकांशयुक्त) हो तो गर्भस्थ बालकका वर्ण काला कर देता है । और यदि पृथ्वी और आकाशके अधिकांश युक्त हो तो कृष्ण-श्याम (कालापन लिये सांवला रंग) करता है और जो जल और आकाशके अधिकांश हो तो गौर-श्याम (गोरापन लिये हुए सांवला रंग) करता है ॥ ३७ ॥ कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि गर्भिणी जैसे वर्णका आहार सेवन करे वैसेही वर्ण (रंग) की सन्तान होती है ॥ ३८ ॥

(प्रश्न) वायुधातुप्राय हो तो उसका वर्ण कैसा हो यह क्यों नहीं लिखा इसका उत्तर यह है कि जब गर्भोत्पत्तिके समय तेज धातु वायुप्राय होता है तब वायुके रूक्षत्वादि होनेसे गर्भ स्थितही नहीं होता तो फिर उसका वर्ण क्या लिखें ॥

(सू० ३७) [illegible]

नेत्रोंका वर्ण।

तत्र दृष्टिभागमप्रतिपन्नं तेजो जात्यंधं करोति तदेव रक्तानुगं रक्ताक्षं पित्तानुगं पिंगाक्षं श्लेष्मानुगं शुक्लाक्षं वातानुगं विकृताक्षमिति ॥ ३९ ॥

गर्भगत बालकके दृष्टिभागमें यदि तेज धातु पहुँचेही नहीं तो बालक जन्मांध होता है और यदि रुधिरके अनुगत (संग) होकर दृष्टिभागमें जाता है तो लाल नेत्रवाला (जिसमें सुरखी अधिक हो) बालक होता है और पित्तके अनुगत होकर पहुँचे तो पीले नेत्रवाला हो और कफके अनुगत होकर पहुँचे तो सुपेद नेत्रवाला हो और वायुके अनुगत पहुँचे तो विकृताक्ष (चंचलाक्ष या नेत्रविकारवाला) होता है (गर्भके चतुर्थमासमें दृष्टिकी उत्पत्ति होती है इससे चतुर्थ मासमें रूपेद्रिय (दृष्टि) का हेतु तेजतत्त्व जिस प्रकार दृष्टिभागमें प्राप्त होता है, वैसेही नेत्र होते हैं) ॥ ३९ ॥

घृतपिंडो यथैवाग्निमाश्रितं प्रविलीयते ॥
विसर्पत्यार्तवं नार्यास्तथा पुंसा समागमे ॥ ४० ॥

जैसे अग्निके आश्रित होनेसे (आगपर या आगके पास रखनेसे) घृतका जमा हुआ पिंड घुल जाता है वैसेही पुरुषोंके समागम होनेसे स्त्रियोंका आर्तव शोणित भी चलायमान होता है अर्थात् गर्भाशयमें प्राप्त होकर शुक्रसे मिलकर गर्भका धारण होता है ॥ ४० ॥

(वक्तव्य) स्त्रियोंके मैथुन समय श्वेत वीर्यरूप द्रव पदार्थ भी द्रवता है परंतु वह शुक्रसे मिलकर गर्भका हेतु नहीं होता इसपर वृद्धवाग्भटका यह श्लोक है— " योषितोऽपि स्रवत्येव शुक्रं पुंसां समागमे । तन्न गर्भस्य किंचित्तु करोतीति न चिन्त्यते " ॥

बीजेऽन्तर्वायुना भिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षिमागतौ ॥
यमावित्यभिधीयेते धर्मेतरपुरःसरौ ॥ ४१ ॥

गर्भाशयमें प्राप्त हुआ वीर्य जब भीतरके वायुसे भिन्न (दो भागोंमें विभक्त) हो जाता है तब दो जीव (बालक) कुक्षिमें आजाते हैं (और उत्पन्न होते हैं)

(श्लोक ३९) [illegible] (श्लो० ४०) [illegible] (श्लो० ४१) [illegible] (इति डल्हणः) ॥

उन्हें यम वा यमल अर्थात् जोड़ला कहते हैं और ये यमेतर अर्थात् असमंजस होते हैं (यदि तीन या अधिक चार भागोंमें शुक्र विभक्त हो तो कदाचित् तीन या चार गर्भभी इकट्ठे हो सकते हैं परन्तु पूर्णावकाशके अभावसे वे जीते नहीं रह सकते) ॥ ४१ ॥

आसेक्यादिकी उत्पत्ति ।

पित्रोरत्यल्पवीर्यत्वादासेक्यः पुरुषो भवेत् ॥ स शुक्रं प्राश्य लभते ध्वजोच्छ्रायमसंशयम् ॥ ४२ ॥ यः पूतियोनौ जायेत स सौगन्धिकसंज्ञितः ॥ स योनिशेफसोर्गन्धमाघ्राय लभते बलम् ॥ ४३॥ स्वे गुदेऽब्रह्मचर्याद्यः स्त्रीषु पुंवत्प्रवर्तते ॥ कुम्भीकः स च विज्ञेय ईर्ष्यकं शृणु चापरम् ॥ ४४ ॥ दृष्ट्वा व्यवायमन्येषां व्यवाये यः प्रवर्तते ॥ ईर्ष्यकः स च विज्ञेयः षण्डकं शृणु पञ्चमम् ॥ ४५ ॥ यो भार्यायामृतौ मोहादङ्गनेव प्रवर्तते ॥ ततः स्त्रीचेष्टिताकारो जायते षण्डसंज्ञितः ॥ ४६ ॥ ऋतौ पुरुषवद्वापि प्रवर्तेताङ्गना यदि ॥ तत्र कन्या यदि भवेत् सा भवेन्नरचेष्टिता ॥ ४७ ॥

पिताका बहुतही अल्पवीर्य हो तो उससे आसेक्य संज्ञक (अल्पवीर्य) पुरुष उत्पन्न होता है यह अन्यके शुक्रको पीनेसे निःसन्देह ध्वजोच्छ्राय (इन्द्रियकी उन्नति) को प्राप्त होता है। यहां शुक्रसे यहां गजमाजारीय जो सुगंधित द्रव्य है उसके खानेसे पुरुषार्थी हो जाता है ऐसा समझते हैं और यास्करभी गजमाजारीय वीर्यका करनेवाला है। बहुतसे लोग "अकर" नामक सुगन्ध द्रव्यको गजमाजारीय मानते हैं और यथार्थमें अकर अति पुरुषार्थ देनेवाला है भी ॥ ४२ ॥ जो दुर्गंधितयोनिमें उत्पन्न होता है उसे सौगंधिकसंज्ञक (क्लीव) कहते हैं यह योनि और इन्द्रियकी बास सूंघनेसे पुरुषार्थी होता है (मैथुन योग्य होता है अर्थात् मैथुनपर चाहना होती है) ॥ ४३ ॥ जो पुरुष अब्रह्मचर्यसे निज गुदामैथुन कराके पर स्त्रियोंके संग मैथुनमें प्रवृत्त होता है उसे "कुम्भीक" कहते हैं यह माताकी विपरीत रति और पिताकी अल्पवीर्यतासे उत्पन्न होता है ॥ ४४ ॥ जो औरोंको मैथुन करते देखकर मैथुन करने योग्य होता है उसे ईर्ष्यक कहते हैं (यह गर्भस्थितिके समय ईर्ष्यायुक्त स्त्री-पुरुषोंके संगसे होता है) ॥ ४५ ॥ जो ऋतुके समय मोहवश स्त्रीके नीचे हो स्त्रीके समान पुरुषपर चढ़कर मैथुन करता है उससे स्त्रीकीसी चेष्टावाला (नामर्द जनना) पुत्र होता है उसे षण्ड कहते हैं ॥ ४६ ॥ और जो ऋतुके समय पुरुषके

स्त्री पुरुषके तुल्य उपरिगामिनी हो जावे तो उसके पुरुषके (आकार दाढी, मूछों-युक्त और पुरुषकेसी) चेष्टावाली कन्या उत्पन्न होती है ॥ ४७ ॥

आसेक्यश्च सुगंधी च कुंभीकश्चेर्ष्यकस्तथा ॥ सरेतसस्त्वमी ज्ञेया अशुक्रं पंढसंज्ञितः ॥ ४८ ॥ अनया विप्रकृत्या तु तेषां शुक्रवहा शिराः ॥ हर्षात्स्फुटत्वमायाति ध्वजोच्छ्रायस्ततो भवेत् ॥ ४९ ॥

आसेक्य, सौगंधिक, कुंभीक तथा ईर्ष्यक ये तो वीर्य युक्त होते हैं परन्तु पण्ढ संज्ञित (जनखे) वीर्य रहित होते हैं ॥ ४८ ॥ इन आसेक्यादि चारोंमें वीर्य युक्त होता है तो भी इन इन विक्रियाओं (वीर्यप्राशन, लिंग और भगका आघ्राण, गुद-मैथुन और परमैथुन देखना आदि) से उनकी शुक्रवहा शिरा हर्षके कारण जब स्फुटताको प्राप्त होतीहै (फूलतीहै) तब लिंगेंद्रियमें चैतन्यता होती है यही नपुंसकताहै ॥ ४९ ॥

आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ ॥ स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोपि तादृशः ॥ ५० ॥ यदा नार्य्यावुपेयातां वृषस्यन्त्यौ कथंचन ॥ मुंचन्त्यौ शुक्रमन्योन्यमनस्थिस्तत्र जायते ॥ ५१ ॥

जैसे जैसे आहार और विहार तथा चेष्टाओंसे युक्त स्त्रीपुरुष संगम करें वैसेही वैसे गुणोंवाला बालक उत्पन्न होताहै ॥ ५० ॥ यदि कदाचित् रतिकी इच्छा युक्त दो स्त्री आपसमें मैथुनकासा आचरण करें और परस्पर वीर्यपात करें (यदि उनमेंसे एकका श्वेत वीर्य और दूसरीका शोणित मिलकर किसी एकके गर्भाशयमें प्रविष्ट होजाय तो) उनसे अनस्थि अर्थात् विना हड्डीका गर्भ होजाता है (यह गर्भ केवल अस्थि और वीर्यादिसे शून्य होनेके कारण सजीव नहीं होसकता । डल्हनके मतमें अनस्थिका अर्थ कोमल हड्डीवाला होताहै) ॥ ५१ ॥

ऋतुस्नाता तु या नारी स्वप्ने मैथुनमाचरेत् ॥ आर्त्तवं वायुरादाय कुक्षौ गर्भं करोति हि ॥ ५२ ॥ मासि मासि विवर्द्धेत गर्भिण्या गर्भलक्षणम् ॥ कललं जायते तस्या वर्जितं पैतृकैर्गुणैः ॥ ५३ ॥ सर्पवृश्चिककूष्माण्डविकृताकृतयश्च ये ॥ गर्भास्त्वेते च स्त्रियाश्चैव ज्ञेयाः पापकृता भृशम् ॥ ५४ ॥

(श्लो० ५१) [illegible]

रजस्वला स्त्री शुद्ध स्नान करके यदि स्वप्नमे मैथुन करे तो वायु उसके आर्तव शोणितको ग्रहण करके कूखमे गर्भसा कर देताहै ॥ ५२ ॥ वह गर्भिणीके गर्भमे गर्भकेसे चिह्नोसे युक्त प्रति मासमें वृद्धिको प्राप्त होता है और फिर पिताके गुणो (अस्थिकेशादि) से रहित कल्ल (पिंडासा)उत्पन्न होता है ॥५३॥ इनके सिवाय किसी २ स्त्रीके सर्पके आकार, किसीके बिच्छूके आकार, किसीके कुम्हडेके आकार (पिंडासा), किसीके विकृत आकृतिवाले (शिरहीन, दो शिरवाले, न्यूनाधिक अंगवाले) गर्भ उत्पन्न होते हैं वे स्त्रीके पाप (दुराचरण)के करनेसे प्राय होतेहै॥५४॥

गर्भो वातप्रकोपेण दौहृदे चावमानिते ॥ भवेत्कुब्जः कुणिः पंगुर्मूको मिन्मिन एव च ॥ ५५ ॥ मातापित्रोस्तु नास्तिक्यादशुभैश्च पुराकृतैः ॥ वातादीनां च कोपेन गर्भो विकृतिमाप्नुयात् ॥५६॥

वायुके कोपसे तथा दोहृदके न मिलनेसे गर्भ (गर्भगतबालक) कुबडा, पंगुवा, कुणि (लूला अर्थात् हाथोंमे विकारवाला), गूँगा तथा मिन्मिना होजाताहै ॥५५॥ माता पिताके नास्तिकत्व (शास्त्रोक्त शुभाचरणपर श्रद्धा नहीं रखकर दुराचरण करनेसे) अथवा पूर्वकृत अशुभ कर्मोंसे तथा वातादिकके कोपसे गर्भगत बालक विकृति (अंगभंगता) को प्राप्त होता है) ॥ ५६ ॥

गर्भमे बालकके मलमूत्रादि न करने और न रोनेका हेतु ।

मलाल्पत्वादयोगाच्च वायोः पक्वाशयस्य च ॥ वातमूत्रपुरीषाणि न गर्भस्थः करोति हि ॥ ५७ ॥ जरायुणा मुखे छन्ने कण्ठे च कफवेष्टिते ॥ वायोर्मार्गनिरोधाच्च न गर्भस्थः प्ररोदिति ॥ ५८ ॥

मलके अति अल्प होनेसे तथा पक्वाशयके वायुका योग (अतियोग) न होनेसे गर्भस्थ बालक अधोवायु और मल मूत्र नहीं करता ॥ ५७ ॥ जरायु (झिल्ली)से मुँह ढका हुआ रहनेसे और कंठ कफाच्छादित होनेसे, वायुका अधिक आने जानेका मार्ग रुका होनेसे गर्भस्थ बालक नहीं रोसकता ॥ ५८ ॥

बालक गर्भमे श्वासादि कैसे लेता है ।

निश्वासोच्छ्वाससंक्षोभस्वप्नान्गर्भोऽधिगच्छति ॥
मातुर्निश्वसितोच्छ्वाससंक्षोभस्वप्नसंभवान् ॥ ५९ ॥

(श्लो० ५५) कुणि विकृतपाणि ॥ (श्लो० ५६) नास्तिक्यमिति—न अस्ति परलोक इत्यादि मतिर्येषां ते नास्तिकाः तेषां भावो नास्तिक्यम् (इति डल्हन)। मातापित्रोस्तु आगामिषु पुत्रादिकर्मसु अश्रद्धाबुद्धिर्नास्तिक्यमिति ॥ (श्लो० ५७) अयोगात् अल्पयोगात् अत्र नञ् स्वल्पार्थे ॥ (श्लो० ५८) वायोर्मार्गनिरोधात् इति—रोदनजनकस्य वायोर्मार्गनिरोधात् इत्यर्थः किंतु निश्वासादिरूपस्य वायोस्तु न सर्वथा मार्गं पश्यति मातुरुदराय जीवितमात्र एव भवति गर्भस्य (इति डल्हन) ॥

गर्भमें बालक श्वासलेना और बाहरको श्वास छोडना तथा चलना फिरना और सोना इन सब कार्योंको माताके श्वास लेने और छोडने तथा चलने फिरने और सोने आदिके अन्तर्भावसे करताहै (अर्थात् जो शरीरोपयोगी आहार विहार तथा चेष्टा आदि माता करतीहै गर्भ भी उनको प्राप्त करता है) ॥५९॥

सन्निवेशः शरीराणां दन्तानां पतनोद्भवौ ॥

तलेष्वसंभवो यश्च रोम्णामेतत्स्वभावतः ॥ ६० ॥

शरीरोंका सन्निवेश अर्थात् अंग और प्रत्यंगोंकी रचना और दांतोंका टूटना और निकलना, हाथोंकी हथेली और पावोंके तलवोंमें रोमो (बालो) का न होना यह सब स्वभावहीसे होजाताहै ॥६०॥

भाविताः पूर्वदेहेषु सततं शास्त्रबुद्धयः ॥ भवन्ति सत्त्वभूयिष्ठाः पूर्वजातिस्मरा नराः ॥ ६१ ॥ कर्मणा चोदितो येन तदाप्नोति पुनर्भवे ॥ अभ्यस्ताः पूर्वदेहे ये तानेव भजते गुणान् ॥ ६२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

जिन्होंने पूर्व जन्ममें निरंतर शास्त्रचिंतनमें बुद्धिभावित रक्खीहै वे मनुष्य सत्त्वगुण प्रधान होतेहैं और पूर्वजन्मकी स्मृतिवाले होतेहैं अर्थात् पूर्वाभ्यस्त विद्यादि उन्हें शीघ्रही थोडेसे पढने मात्रसे आजाती हैं ॥ ६१ ॥ जैसे कर्म करके मनुष्य प्रेरण किया जाताहै (अर्थात् जैसे शुभाशुभ कर्म मनुष्य करताहै उसीके अनुसार दूसरे जन्ममें प्राप्त होताहै) और जो पूर्वजन्ममें अभ्यास किये हुए गुण होतेहैं उन्हीं-को दूसरे जन्ममें धारण करता है ॥ ६२ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मकृ० सुश्रुतसं० भा० टी० शारीरस्थाने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३

अथातो गर्भावक्रान्तिशारीरं व्याख्यास्यामः ॥

यहांसे आगाडी अब हम गर्भावक्रान्ति अर्थात् गर्भका गर्भाशयमें आना इस विषयके शारीरका व्याख्यान करतेहैं ॥

सौम्यं शुक्रमार्तवमाग्नेयमितरेषामप्यत्र भूतानां सान्निध्यमस्त्यणुना विशेषेण परस्परोपकारात्परस्परानुग्रहात्परस्परानुप्रवेशाच्च ॥१॥

(पाठान्तर) [illegible] ॥ [illegible] ॥ [illegible]

गर्भोत्पत्तिमें वीर्य सौम्य और आर्तव आग्नेय है (क्योंकि अग्निसोमात्मक जगत् है) और इनके सिवाय अन्य महाभूतो (पृथ्वी, वायु और आकाश इन)का भी थोडा बहुत सांनिध्य है क्योंकि ये सब आपसमें उपकारक है तथा दूसरेका अनुग्रह करतेंहै इससे तथा सब आपस (एकदूसरे) में परमाणुरूपसे प्रविष्ट है इसकारण गर्भोत्पत्तिमें अग्नि और सोम तो मुख्य (प्रधान) है और शेष अणुरूपसे व्याप्त और सम्मिलित होतेंहै ॥ १ ॥

तत्र स्त्रीपुंसयोः संयोगे तेजः शरीराद्वायुरुदीरयति ततस्तेजोनिलसन्निपातात् शुक्रं च्युतं योनिमभिप्रतिपद्यते संसृज्यते चार्तवेन ततोऽग्निसोमसंयोगात् संसृज्यमानो गर्भो गर्भाशयमनुप्रतिपद्यते २॥

तहां स्त्री और पुरुषका संयोग होनेपर जो गरमाई उत्पन्न होती है वह शरीरमे वायुको उत्कट करती है फिर उस गरमाई और वायुके मिलनेसे पुरुषका वीर्य निकलकर स्त्रीकी योनिमें प्राप्त होता है और आर्तवके संग मिलता है फिर अग्नि (आर्तव) और सोम (वीर्य) का संयोग होनेसे उत्पन्न हुआ गर्भ गर्भाशयमे प्राप्त होता है ॥२॥

क्षेत्रज्ञो वेदयिता स्प्रष्टा घ्राता द्रष्टा श्रोता रसयिता पुरुषः स्रष्टा गंता साक्षी धाता वक्ता योसावित्येवमादिभिः पर्य्यायवाचकैर्नामभिरभिधीयते दैवसंयोगादक्षयोऽव्ययोऽचिंत्यो भूतात्मना सहान्वक्षं सत्त्वरजस्तमोभिर्दैवासुरैरपरैश्च भावैर्वायुनाऽभिप्रेर्यमाणो गर्भाशयमनुप्रविश्यावतिष्ठते ॥ ३ ॥

गर्भाशयमे शुक्र और शोणितका संयोग होनेपर वह क्षेत्रज्ञ जाननेवाला,(त्वगिंद्रियसे) स्पर्शका बोध करनेवाला,(घ्राणसे) सूंघनेवाला,(चक्षुसे)देखनेवाला, (कर्णेद्रियसे) सुननेवाला, (रसनासे) स्वाद लेनेवाला पुरुष स्रष्टा, गमनशील, साक्षी, धारण करनेवाला, बोलनेवाला (जीवात्मा) जो क्षेत्रज्ञादि पर्यायवाची नामोंसे बोला जाता है, दैवयोगसे वही अव्यय (अविनाशी), अचिंत्य (जो चिंतवनमें नहीं आसके), भूतात्मा (सूक्ष्म लिंगशरीर) के साथ सत्त्व, रज, तम इन गुणों करके और देवता, असुर आदि अनेक भावों करके युक्त तत्काल वायु करके प्रेरण किया हुआ गर्भाशयमें प्रविष्ट होकर स्थित होता है (अर्थात् कर्मवश वायुका प्रेरण किया हुआ गर्भभावको प्राप्त होता है) ॥ ३ ॥

(गद्य ३) दैवयोगात् इति–प्राक्तनजन्मकर्मणो धर्माधर्माभिधानस्य संबंधात्। भूतात्मना इति–भौतिकशरीरेण सूक्ष्मेन लिङ्गशरीरेणेत्यर्थः। अन्ये तु परमात्मना ॥ (इति नि० सं०) देवासुरैरपरैर्भावैरिति कदाचित्सुकर्मवशाद्देवो भूत्वा कदाचित्कुकर्मवशादसुरो भूत्वा कदाचित् कर्मवशात् मनुष्यतिर्यग्योनिषु भूत्वेत्यर्थः॥

तत्र शुक्रबाहुल्यात्पुमानार्तवबाहुल्यात्स्त्री साम्यादुभयोर्नपुंसकमिति ॥४॥ ऋतुस्तु द्वादशरात्रं भवति दृष्टार्तवः । अदृष्टार्तवोप्यस्तीत्येके भाषते ॥ ५ ॥ भवंति चात्र–

वहां (गर्भाशयमें) शुक्रकी बाहुल्यता होनेसे लडका होता है और आर्तव शोणितकी बाहुल्यतासे लडकी होती है तथा दोनोंके बराबर होनेसे नपुंसक संतान होतीहै ॥ ४ ॥ जब रजस्वला होनेका दर्शन हो तभीसे बारह रात्रि ऋतु (गर्भस्थितिका समय) कहलाता है । रजस्वलादर्शनसे १६ रात्रि ऋतु कहाता है जिसमें आदिकी तीन और अन्तकी एक त्याज्य है(तब बारह रहीं अथवा रजोदर्शनसे बारह रात्रिही ऋतु है क्योंकि पहले " त्रयोदशीप्रभृतयो निंद्याः ") ऐसा कह आये हैं और अदृष्टार्त्तवाभी कई ऋतुमती होती है ऐसा कहते हैं (अर्थात् कई ऐसा कहते हैं कि रजस्वला न होनेपरभी ऋतुकाल गर्भस्थितिका समय कभी कभी हो जाताहै जैसे बालक दूध पीता हो वह दूध छोड दे या दूध पीते बालककी मृत्यु होजाय या बालक गोदमें हो और बहुत दिनसे पतिके संगकी वांछा हो इत्यादि मौकोंपर बिना रजस्वला हुएभी गर्भस्थिति हो जाती है देशभाषामें ऐसे गर्भका इनामका गर्भ कहते हैं) ॥ ५ ॥ इस विषयमें श्लोक है–

ऋतुमतीस्त्रीके लक्षण ।

पीनप्रसन्नवदना प्रक्लिन्नात्ममुखद्विजाम् ॥ नरकामा प्रियकथां स्रस्तकुक्ष्यक्षिमूर्द्धजाम् ॥ ६ ॥ स्फुरद्भुजकुचश्रोणिनाभ्यूरुजघनस्फिचम् ॥ हर्षौत्सुक्यपरा चापि विद्यादृतुमतीमिति ॥ ७ ॥

जिस स्त्रीका मुख पुष्ट और प्रसन्न हो तथा शरीर, मुख और दंतवेष्ट (मसूडे) क्लिन्न (गन्धगंध युक्त) हों और उसको पुरुषकी अभिलाषा हो तथा मीठी प्यारी बातें करे और कुक्षि, नेत्र और बाल ढीले होजायँ ॥ ६ ॥ तथा हाथ, कुच, कमर, नाभि, जानु, जंघा और चूतड फडकने लगजायँ तथा हर्ष और आनन्दमें तत्पर हो तो उसको (बिना रजोदर्शनके भी) ऋतुमती जानना चाहिये ॥ ७ ॥

(वचन ४) तत्र शुक्रबाहुल्यादिति– [illegible] (१२ नि० सं०) ॥ (श्लो० ६ । ७) [illegible] (डी० नि० सं०) ॥

नियत दिवसेऽतीते संकुचत्यम्बुजं यथा ॥
ऋतौ व्यतीते नार्यास्तु योनिः संव्रियते तथा ॥ ८ ॥

जैसे दिनके व्यतीत होनेपर अवश्य कमल बंद होजाता है उसी तरह ऋतु (सोलह रात्रि) व्यतीत होजानेपर स्त्रीकी योनि (गर्भाशयका मुख) बन्द होजाता है ॥ ८ ॥

मासेनोपचित काले धमनीभ्या तदार्तवम् ॥ ईषत्कृष्ण विगंधं चँ वायुर्योनिमुखं नयेत् ॥ ९ ॥ तद्वर्षाद्द्वादशात्काले वर्तमानमसृक् पुन ॥ जरापकशरीराणा याति पचाशतः क्षयम् ॥ १० ॥

वह आर्तव जब एक महीने भरसे इकट्ठा होजाता है तब कुछ काला और दुर्गंध युक्त हुआ धमनियो करके योनिके मुखपर बाहर आजाता है (इसीको रजो दर्शन कहते हैं) ॥ ९ ॥ वह अनुमान १२ वर्षकी अवस्थासे पीछे स्त्रियोंके वर्तमान होता है और जब बुढापेसे शरीर पक जाता है तब पचास वर्षकी अवस्था होजानेपर क्षय होजाता है ॥ १० ॥

युग्मेषु तु पुमान् प्रोक्तो दिवसेष्वन्यथाऽबला ॥
पुष्पकाले शुचिस्तस्मादपत्यार्थी स्त्रियं व्रजेत् ॥ ११ ॥

सम दिनोंमें (रजकी प्रबलता न होनेसे) पुत्र होता है और अन्यथा अर्थात् विषम दिनोंमें (रजकी प्रबलता होनेसे) कन्या होती है इससे पुष्पकाल (ऋतुकाल) में सन्तानकी इच्छावाला पुरुष पवित्र होकर स्त्रीगमन करे ॥ ११ ॥

गर्भरहनेका तात्कालिक लक्षण ।

तत्र सद्योगृहीतगर्भाया लिंगानि।श्रमो ग्लानि पिपासा सक्थिसदन शुक्रशोणितयोरवबध स्फुरणं च योने. ॥ १२ ॥

तत्कालही गर्भधारण की हुई स्त्रीके ये चिह्न होते हैं-श्रम (थकान) और ग्लानि प्यास तथा साथलें थकी हुईसी होना और शुक्र, शोणितकी प्रवृत्ति न होना तथा योनिका फरकना ॥ १२ ॥

गर्भवती स्त्रीके लक्षण ।

स्तनयो. कृष्णमुखता रोमराज्युद्गमस्तथा ॥ अक्षिपक्ष्माणि चाप्यस्या संमील्यते विशेषत. ॥१३॥ अकामतश्छर्दयति गधादुद्विजते शुभात् ॥ प्रसेक' सदन चापि गर्भिण्या लिंगमुच्यते॥१४॥

(पाठ १४) प्रसेक गुरुगात्रम् ॥

दोनो चूँचियोंके मुखपर कालापन हो, रोमराजि (पेटपर बालोंकी सेली) उठीसी दीखे और नेत्रोंकी पलकें विशेष मिचे ॥ १३ ॥ तथा विना कारण वमन हो, और सुगंधभी बुरीलगे, मुँहमें थूक अधिक आवे और थकान हो तो जानना चाहिये कि यह स्त्री गर्भवती है ॥ १४ ॥

तदाप्रभृत्येव व्यायामं व्यवायमतर्पणमतिकर्षणं दिवास्वप्नं रात्रिजागरणं शोकं यानावरोहणं भयमुत्कटकासनं चैकान्ततः स्नेहादिक्रियां शोणितमोक्षणं चाकाले वेगविधारणं च न सेवेत ॥ १५ ॥

जबसे गर्भवती मालूम हो तभीसे आदि ले प्रसव पर्यंत व्यायाम (अति परिश्रम बोझ उठाना आदि), मैथुन और अतर्पण (जो तृप्तिकारक न हो किंतु दाहादिजनक पदार्थ) और अतिकर्षण (तेज वमन, विरेचन तथा कृश करनेवाले आहार विहार), दिनको सोना, रात्रिको जागना, शोक (फिकर), सवारी पर बैठना, डरना और उत्कटकासन अर्थात् जोरसे खांसना अथवा उत्कटक आसन (ऊँचे नीचे विशेष अंग करके या बहुत मोड तोडके या विषम आसनमें बैठना) तथा अकालमें नियमसे तैलाभ्यंगादि करना तथा रक्त निकलवाना और वेगोंको रोकना इन सब बातोंको स्त्री न करे (अकालमें तैलाभ्यंगादि न करे किंतु अष्टम और नवम मासमें तो तैलाभ्यंग योग्यही है) ॥ १५ ॥

दोषाभिघातैर्गर्भिण्या यो यो भागः प्रपीड्यते ॥
स स भागः शिशोस्तस्य गर्भस्थस्य प्रपीड्यते ॥ १६ ॥

वातादि दोषों करके अथवा अभिघात आदिसे गर्भिणी स्त्रीके जिस २ भागको पीडा पहुँचे उससे गर्भगत बालकके भी उसी उस भागको पीडा पहुँचती है ॥ १६ ॥

तत्र प्रथमे मासि कललं जायते ॥ १७ ॥ द्वितीये शीतोष्णानिलैरभिप्रपच्यमानानां महाभूतानां संघातो घनः संजायते यदि पिण्डः पुमान् स्त्री चेत्पेशी नपुंसकं चेदर्बुदमिति ॥ १८ ॥ तृतीये हस्तपादशिरसां पञ्च पिण्डका निर्वर्तन्ते अङ्गप्रत्यङ्गविभागश्च सूक्ष्मो भवति ॥ १९ ॥ चतुर्थे सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्ततरो भवति गर्भहृदयप्रव्यक्तभावाच्चेतनाधातुरभिव्यक्तो भवति

(वाक्य १५) [illegible] ([illegible]) ॥

कस्मात्तत्स्थानत्वात्तस्माद्गर्भश्चतुर्थे मास्यभिप्रायमिन्द्रियार्थेषु करोति द्विहृदयां च नारीं दौहृदिनीमाचक्षते ॥ २० ॥

उस गर्भका आकार पहले महीनेमें कलल (द्रवरूप शिंघाणकसा) होताहै ॥ ॥ १७ ॥ फिर दूसरे महीनेमें शीत ओर उष्ण तथा वायुसे परिपाक हुए पृथिव्यादिक महाभूतोंका कडा संघात होकर पिंडासा हो जाता है तब यदि वह गोल पिण्डासा हो तो पुत्रका गर्भ समझना चाहिये और जो कन्या हो तो पेशी लंबी मुट्ठीसी होती है और जो नपुंसक हो तो अर्बुद (रसोलीसा जैसे गोलफल आधा किया हुआ हो ऐसा) होता है ॥१८॥ तीसरे महीनेमें हाथ, पाँव और शिर इन पांचोंकी पांच शाखासी निकलने लगती हैं और थोडा २ अंग, प्रत्यंगका विभागसा प्रगट होने लगता है ॥ १९ ॥ चौथे महीनेमे सारे अंग, प्रत्यंगोंके विभाग प्रगट होते हैं और गर्भस्थका हृदय प्रगट हो जानेसे चैतन्य धातु (क्षेत्रज्ञ जीव) भी प्रगट प्रतीत होजाता है क्योंकि हृदय चेतनाका स्थान है। चेतना धातुके उत्पन्न होजानेसे चौथे महीनेमे गर्भस्थ जीव इन्द्रियोंके अर्थों (भोगो)मे रुचि करनेलगताहै चौथे मासमें गर्भवती स्त्रीके दोहृदय होते हैं एक उस स्त्रीका हृदय और दूसरा गर्भस्थ वालकका इससे उसे दौहृदिनी अर्थात् दो हृदयवाली कहते हैं ॥ २० ॥

दौहृद न मिलने और मिलनेके हानिलाभ ।

दौहृदविमाननात्कुब्जं कुणिं खञ्जं जडं वामनं विकृताक्षं वा नारी सुतं जनयति तस्मात्सा यद्यदिच्छेत्तत्तस्यै दापयेत् । लब्धदौहृदा हि वीर्यवन्तं चिरायुषं च पुत्रं जनयति ॥ २१ ॥

दौहृद (द्विहृदया स्त्रीका वांछित पदार्थ) उसे प्राप्त न होनेसे कूबडा, टूंटा, पाँगला,मूर्ख या बौना तथा विकारयुक्त नेत्रोंवाला बालक स्त्रीके पैदा होताहै इससे वह स्त्री जिस पदार्थकी इच्छा करे उसे वही वह पदार्थ अवश्य दिलवाना चाहिये (इस कारणसे कि) दौहृद प्राप्त होनेसे पराक्रमवाला, दीर्घायु, अच्छा बालक पैदा होताहै ॥ २१ ॥

इन्द्रियार्थांस्तु यान्यान्सा भोक्तुमिच्छति गर्भिणी । गर्भाबाधभयात्तांस्तान् भिषगाहृत्य दापयेत् ॥ २२ ॥ सा प्राप्तदौहृदा पुत्रं जनयेत गुणान्वितम् ॥ अलब्धदौहृदा गर्भे लभेतात्मनि वा भयम् ॥ २३ ॥ येषु येष्विन्द्रियार्थेषु दौहृदे वै विमानना ॥ प्रजायेत सुतस्यार्तिस्तस्मिंस्तस्मिंस्तथेन्द्रिये ॥ २४ ॥

जिन जिन इन्द्रियोंके अर्थों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि भोगों) को गर्भिणी स्त्री भोगनेकी इच्छा करे उन २ के न मिलनेसे गर्भमें बाधा होती है इस भयसे उन उन सब भोगोंको वैद्य दिलावे॥२२॥ (क्योंकि) जब स्त्रीको दौहृद मिल जाता है तो गुणयुक्त पुत्र (या पुत्री) पैदा करती है और उसे दौहृद न मिले तो गर्भगत बालकको अथवा आप गर्भिणीको भय रहता है (कि कुछ उपाधि न हो जाय) ॥ २३ ॥ जिन जिन इन्द्रियोंके भोगोंकी दौहृदमें प्राप्ति न हो उससे बालकके उन्हीं उन भोगोंको ग्रहण करनेवाली इन्द्रियोंमें हानि होती है ॥ २४ ॥

दौहृदके फल।

राजसंदर्शने यस्या दौर्हृदं जायते स्त्रियाः ॥ अर्थवंतं महाभागं कुमारं सा प्रसूयते ॥ २५ ॥ दुकूलपट्टकौशेयभूषणादिषु दौहृदात्॥ अलंकारैषिणं पुत्रं ललितं सा प्रसूयते ॥ २६ ॥

जिस स्त्रीका दौहृद (मन) राजाके दर्शनमें होता है उसके द्रव्यवान् बडे भागवाला लडका पैदा होता है ॥ २५ ॥ रेशमी पाटके और उसरके अच्छे २ वस्त्रों तथा आभूषणोंमें दौहृद (मन) होनेसे अलंकार (शृंगार) चाहनेवाला, ललित (शौकीन) पुत्र पैदा होता है ॥ २६ ॥

आश्रमे संयतात्मानं धर्मशीलं प्रसूयते ॥ देवताप्रतिमायां तु प्रसूते पार्षदोपमम् ॥ २७ ॥ दर्शने व्यालजातीनां हिंसाशीलं प्रसूयते ॥ गोधामांसाशने पुत्रं सुषुप्सुं धारणात्मकम् ॥ २८ ॥

जिस स्त्रीका मन महात्माओंके आश्रम (और तीर्थादि) में हो उसके धर्मशील बालक होवे और जिसका चित्त देवताओंकी प्रतिमा (मंदिर आदिमें हो) उसके सत्पात्र पार्षद जैसा पुत्र होवे ॥ २७ ॥ तथा जिसका चित्त सर्पादि हिंसकजीवोंके देखनेका चाहे उसके हिंसक बालक पैदा होवे और जिसका मन गोहका मांस खानेमें हो उसके निद्रालु, धारणशील (दीर्घसूत्री) बालक होवे ॥ २८ ॥

गवां मांसे च बलिनं सर्वक्लेशसहं तथा ॥ माहिषे दौहृदाच्छूरं रक्ताक्षं लोमसंयुतम् ॥ २९ ॥ वाराहमांसात्स्वप्नालुं शूरं संजनयेत्सुतम् ॥ मार्गाद्विक्रांतजंघालं सदा वनचरं सुतम् ॥ सृमराद्विभ्रमनसं नित्यभीतं च तैत्तिरात् ॥ ३० ॥

गोमांसका दौहृद हो तो बलवान् और सब क्लेशोंका सहनेवाला बालक हो और महिषमांस पर दौहृद हो तो शूरवीर लाल नेत्रवाला, रोमोंयुक्त बालक होवे ॥२९॥

वाराह (शूकर) के मांसपर दौहद हो तो सोनेवाला और शूरवीर बालक पैदा होवे तथा मार्ग चलनेपर मन हो तो बडी बडी जँघोवाला और सदैव वनका विचरनेवाला बालक होवे(अथवा " मार्गात् " मृगमांसपर दौहद होनेसे बडी जंघावाला, सदा वनचारी बालक होवे) तथा समर (साबर) के मांसपर चित्त हो तो उद्विग्न मनवाला बालक हो और तीतरके मांसपर चित्त होनेसे सदा डरनेवाला बालक होवे (कई "नित्यभीत"की जगह 'नित्यशील' पाठ मानकर तीतरके मांसपर मन होनेसे नित्य शीलवान् हो ऐसा अर्थ करतेहैं) ॥ ३० ॥

अतोनुक्तेषु या नारी समभिध्याति दौहृदम् ॥ शरीराचारशीलैः सा समानं जनयिष्यति ॥ ३१ ॥ कर्मणा चोदितं जन्तोर्भावितव्यं पुनर्भवेत् ॥ यथा तथा दैवयोगाद्दौहृदं जनयेद्धृदि ॥ ३२ ॥

इनके सिवाय जो अन्य बहुत दौहद नहीं कहेहै यदि उनपर दौहद होवे तो उनके शरीर, आचार और शीलके समान बालक पैदा होवे ऐसा जानना (पहले मांसाशी, वनवासी मनुष्य अधिक थे इसकारण उनके अनुसारही सुश्रुतजीने दोहद कह दिये परन्तु अनेक व्यंजन और फलादि, धान्यादि नहीं कहे इससे उनके गुण और प्रकृति आदिको देखकर उनके वेद्योंको विचार लेना चाहिये) ॥ ३१ ॥ कर्मका प्रेरण किया हुआ और भवितव्य जैसा होताहै दैवयोगसे वैसा वैसाही दौहद होताहै अर्थात् उसीके अनुसार स्त्रीका मन चलताहै ॥३२॥

पंचमे मनः प्रतिबुद्धतरं भवति षष्ठे बुद्धिः । सप्तमे सर्वांगप्रत्यंगविभागः प्रव्यक्ततरः ॥ ३३ ॥ अष्टमेऽस्थिरीभवत्योजस्तत्र जातश्चेन्न जीवेन्निरोजस्त्वान्नैर्ऋतभागत्वाच्च ततो बलिं मांसौदनमस्मै दापयेत् ॥ ३४ ॥ नवमदशमैकादशद्वादशानामन्यतमस्मिञ्जायते अतोन्यथा विकारी भवति ॥ ३५ ॥

पांचवें महीनेमें मनमें अधिक चैतन्यता हो जाती है और छठे महीनेमें बुद्धि उत्पन्न होती है। तथा सातवेंमें सम्पूर्ण अंग और सब प्रत्यंग स्पष्टरूपसे स्फुट होजाते है ॥ ३३ ॥ आठवें महीनेमें ओज स्थिर नहीं होता इससे आठवें महीनेमें पैदा हुआ बालक ओज रहित होनेके कारण और इन दिनों यह राक्षसोंका भाग होनेसे नहीं जीवता है इस लिये मांस और चावल राक्षसोंको बलिदान करना॥३४॥ और नव तथा दशवेंमें और कभी कभी ग्यारहवें, बारहवें महीनेमेंभी बालक जन्मताहै और कदाचित् बारहवें महीनेसेभी अधिक व्यतीत होजाय तो इस गर्भ न समझे किन्तु रक्तकारका विकार है ऐसा जाने ॥ ३५ ॥

गर्भकी पुष्टि।

मातुस्तु खलु रसवहायां नाड्यां गर्भनाभिनाडी प्रतिबद्धा सास्य मातुराहाररसवीर्यमभिवहति तेनोपस्नेहेनास्याभिवृद्धिर्भवति॥३६॥

माताके रस (भोजनके रस) की बहनेवाली नाडीमें गर्भस्थ बालककी नाभिनाडी (नाल) बंधी हुई अर्थात् लगी हुई है वह माताके किये हुए आहारके रस और वीर्यको प्राप्त करलेती है उसके सारभूत स्नेहसे गर्भस्थबालककी वृद्धि होतीहै॥ ३६ ॥

असञ्जाताङ्गप्रत्यङ्गविभागमानिषेकात्प्रभृति सर्वशरीरावयवानुसारिणीनां रसवहानां तिर्यग्गतानां धमनीनामुपस्नेहो जीवयति॥३७॥

और जबतक अंगप्रत्यंग नहीं पैदा होते हैं केवल कलल पिंडरूपही गर्भ होता- है तथा गर्भके नाभिनाडी भी नहीं होती तबसे अर्थात् गर्भस्थितिके समयहीसे लेकर इस अवस्थामें गर्भिणीके सारे शरीरमें अनुसरण करनेवाली, रस बहाने- वाली और तिर्यग्गमन करनेवाली धमनियोंका उपस्नेह (सारभूत द्रव) गर्भको जीवन (पोषण बढनादि) करता है ॥ ३७ ॥

गर्भका कौन अंग पहले हो इसका विवेचन।

गर्भस्य हि सम्भवतः पूर्वं शिरः सम्भवतीत्याह शौनकः शिरो मूलत्वाद्देहेन्द्रियाणाम् ॥ ३८ ॥ हृदयमिति कृतवीर्यो बुद्धेर्मनसश्च स्थानत्वात् ॥ ३९ ॥ नाभिरिति पाराशर्यस्ततो हि वर्द्धते देहो देहिनः ॥ ४० ॥ पाणिपादमिति मार्कण्डेयस्तन्मूलत्वाच्चेष्टाया. गर्भस्य ॥ ४१ ॥ मध्यशरीरमिति सुभूतिर्गौतमस्तन्निबद्धत्वात् सर्वगात्रसंभवस्य ॥ ४२ ॥

गर्भस्थ बालकके पहले शिर पैदा होता ऐसा शौनक कहते हैं क्योंकि देह इंद्रि- योंका मूल शिर है ॥ ३८ ॥ और कृतवीर्य ऐसा कहते हैं कि हृदय बुद्धि और मनका स्थान है इस कारणसे हृदयही पहले होता है ॥ ३९ ॥ और पराशरका ऐसा मत है कि नाभिसे प्राणियोंका देह बढता है (उसमेंही रसवहा शिरा द्वारा रस पहुँचकर शरीर बढता है) इससे नाभिही पहले होती है ॥ ४० ॥ मार्कण्डेय ऋषि ऐसा कहतेहैं कि चेष्टाके मूल हाथ, पाँव है और गर्भमें चेष्टा प्रगटही होतीहै इससे हाथ, पाँव पहले होतेहैं ॥ ४१ ॥ सुभूति गौतम ऐसा कहतेहैं कि मध्य शरीरमेंही सब गात्र संनिबद्ध हैं इससे मध्य शरीर (मदरा अर्थात् पेट) ही पहले होताहै ॥ ४२ ॥

([illegible]) [illegible]

तत्तु न सम्यक् । सर्वांगप्रत्यगानि युगपत्संभवंतीत्याह धन्वतरि· गर्भस्य सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यते वंशांकुरवच्चूतफलवच्चे । तद्यथा चूत फलेऽपरिपक्के केशरमासास्थिमज्जा न पृथग् दृश्यंते, कालप्रकर्षात्तान्येव तरुणेनोपलभ्यते सूक्ष्मत्वात्तेषा सूक्ष्माणा केशरादीना कालः प्रव्यक्तता करोति । एतेनैव वंशाकुरोपि व्याख्यात· । एव गर्भस्य तारुण्ये सर्वेष्वगप्रत्यगेषु सत्स्वपि सौक्ष्म्यादनुपलब्धि· तान्येव कालप्रकर्षात् प्रव्यक्तानि भवति ॥ ४३ ॥

अङ्गोकी उत्पत्तिमे शौनकादिका कथन यथार्थ नहीं है ऐसा धन्वतरिजी कहते है । श्री धन्वतरिजीका मत इस विषयमे यह है कि बालकके सब अग,प्रत्यग एक-साथही पैदा होतेहै वे गर्भके सूक्ष्म होनेके कारणसे जाने नहीं जातेहै जैसे बांसकी कोंपल अथवा जैसे आँवका फल । वह यूँ है कि कच्चे (बहुत छोटे) आंबके फलमें केसरे (सूत) और मांस अर्थात् गूदा और अस्थि अर्थात गुठली तथा मज्जा उसकी गिरी ये सूक्ष्म होनेसे न्यारे न्यारे नहीं मालूम होते और फिर कालके बढनेपर वेही पकावमें आनेसे प्रगट मालूम होने लगतेह इससे सिद्ध हुआ कि सूक्ष्म केसर आदिकी समयही प्रगटता कर देता है इसी तरह बांसके अकुरमें भी समय पाकर-ही पोरी आदि सब स्फुट होती है इसी प्रकारसे छोटेपनमें गर्भके सपूर्ण अंग,प्रत्यग उसमें है तो भी सूक्ष्मताके कारण दिखाई नहीं देते और वेही फिर समयके बढनेसे स्फुट (प्रगट) हो जातेहै ॥ ४३ ॥

गर्भके पितृज मातृज आदि अश ।

तत्र गर्भस्य पितृजमातृजरसजात्मजसत्त्वजसात्म्यजानि शरीर लक्षणानि व्याख्यास्याम ॥ ४४ ॥

उस गर्भस्थमें पितृज (पैतृक भाग)कौन २ है तथा मातृज क्या क्या है,रसज क्या है, आत्मज क्या है, सत्त्वज क्या है और सात्म्यज क्या २ भाग शरीरमें है इनके लक्षणोंकी व्याख्या करते हैं ॥ ४४ ॥

गर्भस्य केशश्मश्रुलोमास्थिनखदतशिरास्नायुधमनीरेत प्रभृतीनि स्थिराणि पितृजानि ॥ ४५ ॥

सतानके बाल, डाढी, मूछें, रोम, हाड, नाखून, दांत, शिरा (बारीक रगे), स्नायु

(वाक्य ४३) केशरादिमज्जा न पृथग् दृश्यंते [illegible] ॥

(नसे) और धमनी (नाडी) तथा वीर्य आदि स्थिर पदार्थ पितृज हैं (पितासे उत्पन्न होते हैं अर्थात् इनमें पैतृक अंश होता है) ॥ ४५ ॥

मांसशोणितमेदोमज्जहृन्नाभियकृत्प्लीहान्त्रगुदप्रभृतीनि मृदूनि मातृजानि ॥ ४६ ॥

मांस, रुधिर, मेद, मज्जा, हृदय, नाभि, यकृत् (जिगर), प्लीहा (तिल्ली) और अंत्र (अतडी) तथा गुदा आदि कोमल पदार्थ माताके अंशसे होते हैं॥ ४६ ॥

शरीरोपचयो बलं वर्णः स्थितिर्हानिश्च रसजानि । इन्द्रियाणि ज्ञानं विज्ञानमायुः सुखदुःखादिकं चात्मजानि । सत्त्वजान्युत्तरं वक्ष्यामः । वीर्यमारोग्यं बलवर्णौ मेधा च सात्म्यजानि ॥ ४७ ॥

शरीरका मुटापा, बल, वर्ण, स्थिति और हानि (क्षीणता) ये रससे (गर्भिणीके भोजनके रससे) होते हैं अर्थात् जैसा गर्भिणी भोजन करती है और जैसा उसका रस गर्भमें पहुंचता है वैसे होते हैं। इंद्रिय (ज्ञानेंद्रिय) तथा ज्ञान और विज्ञान, आयु, सुख, दुःख इत्यादिक आत्मज हैं (अर्थात् जीव जैसे शुभाशुभ कर्म पूर्वजन्ममें करता है उसके अनुसार आत्माके सान्निध्यसे होते हैं) । सत्त्वसे होनेवाले भाग अगाडी कहेंगे। और वीर्य, आरोग्यता, बल, वर्ण और मेधा ये सात्म्यज अर्थात् अपनी अनुकूलतासे होते हैं यदि इसमें यह शंका हो कि, वीर्य और बल, वर्ण ये दो दो बार वर्णन क्यों किये तो उत्तर यह है कि, वीर्य पैतृकभागसे तो होताही है पर सात्म्यसेभी होता है इसी तरह बल और वर्णभी गर्भिणीके भोजनके रससे तो होतेही हैं पर सात्म्यसेभी होते हैं) ॥ ४७ ॥

गर्भमें पुत्रपुत्री आदिकी परीक्षा ।

तत्र यस्या दक्षिणे स्तने प्राक् पयोदर्शनं भवति दक्षिणाक्षिमहत्त्वं च पूर्वं च दक्षिणसक्थ्युत्कर्षति बाहुल्याच्च पुन्नामधेयेषु द्रव्येषु दौर्हृदमभिध्यायति स्वप्नेषु चोपलंभने पद्मोत्पलकुमुदाम्रातकादीनि पुन्नामान्येवं प्रसन्नमुखवर्णा च भवति तां ब्रूयात् पुत्रमियं जनयिष्यतीति तद्विपर्यये कन्याम् ॥४८॥

जिस गर्भवतीके दाहिने स्तनमें पहले दूध दिखलाई देवे और दाहिनी आंख कुछ भारी जान पडे तथा पहले दाहिनी सांथलमें भारीपन हो और विशेषनामसे पुरुषवाचक द्रव्योंको दौहृदमें चाहै तथा स्वप्नमें कमल, कुमुद, आमडा आदि पुरुषनामवाले पदार्थोंको प्राप्त करे और मुख तथा रूप सुंदर हो तो कहना चाहिये कि इसके पुत्र उत्पन्न होगा और जो इससे विपरीत हो तो कन्या होगी ऐसे कहना चाहिये ॥४८॥

यस्याः पार्श्वद्वयमुन्नतं पुरस्तान्निर्गतमुदरं प्रागभिहितलक्षणं च तस्य नपुंसकमिति विद्यात् ॥ ४९ ॥ यस्या मध्ये निम्नं द्रोणीप्रभूतमुदरं सा युग्मं प्रसूत इति ॥ ५० ॥ भवन्ति चात्र–

जिसके दोनों पँसवाडे ऊँचे हों और पेट आगेको निकलासा हो तथा पूर्वोक्त दोनोके मिले हुएसे लक्षणहों तो उसके नपुसक बालक होगा ऐसा जानना चाहिये॥४९॥ और जिसके उदरके बीचमें नीचापन और गोणकी भांति उदर दोनो तरफसे उभरा हो उस स्त्रीके दो बालक होगे ऐसा जानना चाहिये ॥५०॥ इस विषयमे श्लोक है–

गर्भके अंगप्रत्यंगोकी सुंदरता, असुंदरता ।

देवताब्राह्मणपरा शौचाचारहिते रता॥ महागुणान् प्रसूयंते विपरीतास्तु निर्गुणान् ॥५१॥ अंगप्रत्यंगनिर्वृत्तिः स्वभावादेव जायते॥ अंगप्रत्यंगनिर्वृत्तौ ये भवंति गुणागुणाः ॥ ते ते गर्भस्य विज्ञेया धर्माधर्मनिमित्तजाः ॥ ५२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३॥

जो गर्भिणी स्त्री गर्भके समय देवता तथा ब्राह्मणादिके सेवनादिमें तत्पर हो तथा शौच, आचार और परोपकारमे रत हो तो अच्छे गुणवाला सन्तान उत्पन्न होवे और इसके विपरीत हो अर्थात् देवता आदिकी निंदा करे, शौच न रक्खे तो गुणोंसे रहित सन्तान पैदा होवे ॥ ५१ ॥ अंग, प्रत्यंगोंका उत्पन्न होना यह स्वभावहीसे होता है परंतु तो भी अंग, प्रत्यंगके उत्पन्न होते समय जो जो गुण और दोष गर्भिणी स्त्रीके होते है वेही वे धर्माधर्मके अनुकूल बालकके भी होतेहैं है अर्थात् जैसा धर्माधर्म जीवका होता है उसके अनुसारही गर्भिणी स्त्री गर्भके अंग, प्रत्यंग होते समय गुण, अगुण करती है और उसीके अनुकूल बालकके पूर्ण अंग, प्रत्यंग सुंदर होते है या पगु, कूबडा आदि होता है। गर्भिणी शुभ गुणोंका आचरण करे तो सुंदर अंग, प्रत्यंग हो और अयोग्य आचरणोंसे विकारयुक्त अंग, प्रत्यंग होते हैं ॥५२॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी०शारीरस्थाने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

अथातो गर्भव्याकरणं नाम शारीरं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी गर्भके व्याकरण अर्थात् विवेचन नामक शारीरका व्याख्यान करते है ॥

(भाष्य) गर्भव्याकरणं गर्भविवरणमित्यर्थ ।

अग्निः सोमो वायुः सत्त्वं रजस्तमः पञ्चेन्द्रियाणि भूतात्मेति प्राणाः ॥ १ ॥

अग्नि (पाचकादिरूप शारीरोष्मा), सोम (कफ, रस, शुक्रादि द्रवत्वविशिष्टादि शीत), वायु (प्राणोदानादि भेदसे जो पांच प्रकारका है) तथा सत्त्व, रज और तम ये तीनो गुण और पांच इंद्रिय (श्रोत्र, त्वक, चक्षु, जिह्वा, घ्राण) और भूतात्मा (पंचभूतात्मक जीवात्मा जो शुभाशुभ कर्मों करके ग्रहण किया हुआ कर्मपुरुष कहलाता है) ये सब प्राण अर्थात् जीव कहलाते हैं (अर्थात् प्राणोंको पोषण करते हैं इससे ये प्राणही है) ॥ १ ॥

त्वचाओंका वर्णन ।

तस्य खल्वेवं प्रवृत्तस्य शुक्रशोणितस्याभिपच्यमानस्य क्षीरस्येव संतानिकाः सप्त त्वचो भवन्ति ॥ २ ॥

इस प्रकार (अग्नि, सोमादिके संयोगमे) प्रवृत्त (भूतात्माधिष्ठित) शीतोष्ण वातादि करके पचायमान शुक्र, शोणित (संयोगरूपगर्भ) के सात त्वचा (चर्म) होते हैं जैसे दूधके पकनेपर मलाई होती है ॥ २ ॥

तासां प्रथमावभासिनी नाम या सर्ववर्णानवभासयति पञ्चविधां च छायां प्रकाशयति सा व्रीहेरष्टादशभागप्रमाणा सिध्मपद्मकण्टकाधिष्ठाना ॥ ३ ॥ द्वितीया लोहिता नाम षोडशभागप्रमाणा तिलकालकन्यच्छव्यङ्गाधिष्ठाना ॥ ४ ॥

इनमेंसे प्रथम (सबसे उपरकी त्वचा) अवभासिनी नामक है यह समस्त वर्णों (कृष्णता, गोरतादि) को प्रकाश करती है और यही पांच प्रकारकी पांचभौतिक छाया तथा चकारके ग्रहणसे प्रभाको प्रकाश करती है यह त्वचा व्रीहि अर्थात जौके (जो धीम भाग हैं उनमे) अठारह भागके समान मोटी है यही सिध

(पा० १) [illegible] ॥ [illegible] ॥ (इति दल्हनः) ॥

(पाठ २) [illegible] ॥ (पाठ ३) [illegible]

और पद्मकण्टकनामक चर्म रोगोंके होनेका स्थान है अर्थात् सीप, पद्मकण्टक इसी ऊपरकी त्वचामें होते हैं ॥ ३ ॥ दूसरी लोहितानामक त्वचा है यह जौके सोलह भागके समान मोटी है और तिल, न्यच्छ (चकत्ते) और व्यंग (झाँई) इनके होनेका स्थान है अर्थात् तिल, चकत्ते और झांई ये दूसरी त्वचामें होते हैं ॥ ४ ॥

तृतीया श्वेता नाम द्वादशभागप्रमाणा चर्मदलाजगल्लिकामशकाधिष्ठाना ॥ ५ ॥ चतुर्थी ताम्रा नामाष्टभागप्रमाणा विविधकिलासकुष्ठाधिष्ठाना ॥६॥ पञ्चमी वेदिनी नाम व्रीहिपञ्चभागप्रमाणा कुष्ठविसर्पाधिष्ठाना ॥७॥ षष्ठी रोहिणी नाम व्रीहिप्रमाणा ग्रन्थ्यपच्यर्बुदश्लीपदगलगण्डाधिष्ठाना ॥ ८ ॥ सप्तमी मांसधरा नाम व्रीहिद्वयप्रमाणा भगन्दरविद्रध्यर्शोऽधिष्ठाना ॥९॥ यदेतत्प्रमाणं निर्दिष्टं तन्मांसलेष्ववकाशेषु न ललाटे सूक्ष्माङ्गुल्यादिषु यतो वक्ष्यत्युदरेषु व्रीहिमुखेनाङ्गुष्ठोदरप्रमाणमवगाढं विध्येदिति॥१०॥

तीसरी श्वेता नाम (श्वेत) त्वचा है यह जौके बारह भागके समान मोटी है और यही चर्मदलें, अजगल्लिका तथा मशक (मस्से) पैदा होनेका स्थान है ॥५॥ चौथी ताम्रा नाम (तांबेजैसी वर्णकी) त्वचा है यह जौके आठ भागके बराबर मोटी है और इसमें अनेक प्रकारके किलास और कुष्ठ होते हैं ॥ ६ ॥ पाँचवीं वेदिनीनामक त्वचा जौके पांच भागके बराबर है इसीमें कुष्ठ और विसर्प होते-हैं ॥ ७ ॥ छठी रोहिणीनामक त्वचा यवकी मुटाईके समान है ग्रंथि (गांठ) और अपची तथा अर्बुद (रसोली) और श्लीपद (पीलपाव) तथा गलगड ये इस छठी त्वचामें होते हैं ॥ ८ ॥ सातवीं मांसधरानामक त्वचा है यह दो जौकी मुटाईके समान है इसीमें भगंदर और विद्रधि तथा बवासीरके मस्से होते हैं ॥९॥ यह जो प्रमाण कहा सो अति मांसवाले शरीरके स्थूलभागकी त्वचाओंमें होता है जैसे (जघा, नितंबादि) और ललाट तथा छोटी अंगुली आदिमें नहीं होता क्योंकि अगाडी उदररोगोंकी शस्त्रचिकित्सामें ऐसा कहा है कि, व्रीहिमुखनामक शस्त्रसे अँगूठेके उदर प्रमाण गहरा वेध करे ॥ १० ॥

अथ परिशिष्टम् ।

त्वचाके विषयमें मतान्तर ।

श्लोक-त्वचाः सप्तमिल काय' सपृतो विश्वकर्मणा ॥ बाह्योपद्रवसपातात्रातिन साधु तिष्ठति ॥ १ ॥ स्तरद्वयतीय त्वच तद्वात्सश्चर्म कथ्यते ॥ स्तरो नामोत्पर्ने-

तस्त्वक् भूमिस्पर्शेन्द्रियस्य सा ॥ २ ॥ उपर्युपरिनिस्तीर्णस्तरसप्तक सहते ॥ एषा त्वगखिला जाता केश्चिदिति च मन्यते ॥ ३ ॥ तोयानिलादिसकर्षः स्वेदस्य च निर्निर्गमः ॥ दैहिकस्योष्मणो रक्षा त्वचा सपाद्यते ध्रुवम् ॥ ४ ॥

अर्थ-विश्वकर्मा परमेश्वरने यह सम्पूर्ण शरीर त्वचासे इस लिये आच्छादित किया है कि जिसमें बाहरके उपद्रवो और आघातोंसे रक्षित हुआ यह शरीर सुख पूर्वक रहे ॥ १ ॥ यह त्वचा दो पुडतवाली है जिसमें बाहरके पुडतको चर्म (चमडी) कहते हैं और भीतरके पुडतको स्तर (अस्तर) कहते हैं यह त्वचा स्पर्श इंद्रियका स्थान है ॥२॥ कइयोंका ऐसा मत है कि इस त्वचामें ऊपर नीचे ऐसे सब मिलकर सात अस्तर हैं और उन सात पुडतोंसेही यह सारी मोटी त्वचा बनी है ॥३॥ इस त्वचासे जल वायु आदिके परमाणु भीतरको आकर्षण होते हैं और पसीना बाहर निकलता है और शारीरक अग्निकी रक्षा यही त्वचा ठीक ठीक करती है ॥४॥

(वक्तव्य) डाक्टरी मतसे त्वचाके दोही भाग हैं इनमेंसे ऊपरले भागको ' एपीडर मिस ' या ' क्यूटि किल '-(Epidermis or Cuticle) कहते हैं और नीचेके भागको ' डरमिस '-(Dermis) कहते हैं और इन दोनोंमेंसे भी प्रत्येकके दो दो भाग हैं इनमेंसे क्यूटिकिलकी मुटाई कहीं एक इञ्चका २४ वां भाग है और कहीं कहीं चौबीसवां और कहीं बारहवां भागही है। स्वेद जनक छिद्र सब शरीरपर प्राय. तीस लाखके अनुमान होते हैं इन्हें एक इञ्चमें प्राय तीन हजारके लगभग समझो, देखो ईश्वरकी विचित्रता ॥

इति परिशिष्टम् ।

कलाओंका वर्णन ।

कलाः खल्वपि सप्त भवन्ति धात्वाशयान्तरमर्यादा ॥११॥भवतश्चात्र-

कला भी सातही हैं और धातुओंके आशयोंके बीचमें इनकी मर्यादा है ॥११॥ इस विषयमें दो श्लोक हैं-

यथा हि सारः काष्ठेषु छिद्यमानेषु दृश्यते ॥ तथा धातुर्हि मांसेषु छिद्यमानेषु दृश्यते ॥ १२ ॥ स्नायुभिश्च प्रतिच्छन्नान् सततांश्च जरायुणा ॥ श्लेष्मणा वेष्टितांश्चापि कलाभागांस्तु तान्विदुः ॥१३॥

(वाक्य ११) [illegible] इति-[illegible] ([illegible]) । [illegible] इत्याह-" [illegible] " [illegible] " [illegible] ॥ [illegible] ॥

जैसे गीले काठको काटनेसे उसका सार द्रव स्नेह दिखाई देता है वैसेही मांसके छेदन करनेसे धातु (रक्त आदि) दीखते हैं ॥ १२ ॥ स्नायु (नसों) से व्याप्त और जरायु (पतली झिल्ली) से आच्छादित तथा कफ करके वेष्टित कला (भाग) होते हैं (इन्हें कलाभाग जानों) ॥ १३ ॥

तासां प्रथमा मांसधरा नाम यस्यां मांसे शिरास्नायुधमनीस्रोतसां प्रताना भवंति ॥ १४ ॥ भवति चात्र–

इनमें प्रथम मांसधरा कला है जिसमें मांसमें शिरा (रग), स्नायु (नसें), धमनी (नाडी) और स्रोत (छिद्र) इनका जालसा फैला हुआ है ॥१४॥ इसमें श्लोक है–

यथा विसमृणालानि विवर्द्धन्ते समंततः ॥
भूमौ पंकोदकस्थाने तथा मांसे शिरादयः ॥ १५ ॥

कीचडवाली पृथ्वीमें जैसे कमलकी जड और नाली व्याप्त हुए (फैले हुए) बढते हैं तैसेही (मांसधरा कलाके) मांसमें रगें और नसें आदि होतीहैं ॥१५॥

द्वितीया रक्तधरा नाम मांसस्याभ्यंतरतस्तस्यां शोणितं विशेषतश्च शिरासु यकृत्प्लीह्नोश्च भवति ॥१६॥ भवति चात्र–

दूसरी रक्तधरा नाम (रुधिरको धारण करनेवाली) कला है यह मांसके भीतर है इसमें विशेष करके शिरा (रगों) में तथा यकृत् और प्लीहामें रक्त रहता है॥१६॥ यहां दृष्टांत रूप श्लोक है–

वृक्षाद्यथाभिप्रहतात्क्षीरिणः क्षीरमावहेत् ॥
मांसादेवं क्षतात् क्षिप्रं शोणितं संप्रसिच्यते ॥ १७ ॥

जैसे दूधवाले (अर्कादि) वृक्षके तोडनेसे दूध टपकने लगताहै वैसही मांसके कटनेपर तुरत (रगोंसे) रुधिर टपकने लगताहै ॥ १७ ॥

तृतीया मेदोधरा नाम मेदो हि सर्वभूतानामुदरस्थमण्वस्थिषु च महत्सु च मज्जा भवति ॥ १८ ॥ भवति चात्र–

तीसरी मेदोधरा नामक (मेदको धारण करनेवाली) कला है । मेद सब जीवोंके प्रायः उदरमें होता है और छोटे २ अस्थियोंमेंभी मेद होता है और बडे अस्थियोंमें मज्जा होती है ॥ १८ ॥ इसमें श्लोक है–

स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जा त्वभ्यंतराश्रितः ॥ इतरेषु च सर्वेषु सरक्तं मेद उच्यते॥शुद्धमांसस्य यः स्नेहः सा वसा परिकीर्तिता॥१९॥

(वाक्य १८ । १९) तृतीया मेदोधरा मेदो हि सर्वभूतानामुदरस्थमण्वस्थिषु च सरक्तं भवति तदेव च [illegible] प्रविष्टानि [illegible] महत्सु [illegible] च स्थूलास्थिषु तु मज्जा (इति [illegible]) ॥

मोटे अस्थियोंके भीतर विशेष करके मज्जा होती है तथा इतर सबमें रुधिर सहित मेदही होता है । शुद्ध मांसका जो स्नेह (चिकनाई) है उसे वसा (चरबी) कहते हैं ॥ १९ ॥

चतुर्थी श्लेष्मधरा नाम सर्वसंधिषु प्राणभृतां भवति॥२०॥भवति चात्र-

चौथी श्लेष्मधरा नाम (कफको धारण करनेवाली) कला है यह सब प्राणियोंके संधि (जोडों) में होती है ॥ २० ॥ इसपर दृष्टांतरूप एक श्लोक है-

स्नेहाभ्यक्ते यथा ह्यक्षे चक्रं साधु प्रवर्तते ॥

संधयः साधु वर्तन्ते संश्लिष्टाः श्लेष्मणा तथा ॥ २१ ॥

जैसे रथके पहियेके धुरेपर चिकनाई लगी होनेसे पहिया ठीक २ फिरतारहता है उसी तरह कफसे लिपी हुई संधियां (हाथ, पांव आदिके जोड) अच्छीतरह फैल और सुकड जाती हैं ॥ २१ ॥

पञ्चमी पुरीषधरा नाम याऽन्तःकोष्ठे मलमभिविभजते पक्वाशयस्था ॥ २२ ॥ भवति चात्र-

पांचवीं पुरीषधरा नामक (मलको धारण करनेवाली) कला होतीहै यह पक्वाशयमें रहती है और भीतर कोठेमें मलको जुदा जुदा करती है ॥ २२ ॥ यहां श्लोक है-

यकृत्समन्तात् कोष्ठं च तथान्त्राणि समाश्रिता ॥

उण्डुकस्थं विभजते मलं मलधरा कला ॥ २३ ॥

यह मलधरा कला यकृतके आसपास कोष्ठ और अन्त्र (आंतडों) के आश्रय होकर (अर्थात् यकृतके पास प्लीहा, वस्ति, पक्वाशय, अग्न्याशय, हृदय और आमाशय आदि कोष्ठ और मलमूत्रको बहानेवाले मोटे अन्त्र इन स्थानोंमें होकर) उण्डुकस्थ (मोटे बडे मलाधार अंतडेमें स्थित) मल और मूत्रको पृथक् २ करती है ॥२३॥

षष्ठी पित्तधरा नाम या चतुर्विधमन्नपानमुपयुक्तमामाशयात्प्रच्युतं पक्वाशयोपस्थितं धारयति ॥ २४ ॥ भवति चात्र-

---

(वाक्य० २० । २१) अतो चक्रमध्यस्थं [illegible] ॥ (वाक्य २२ । २३) यकृत्समन्तादि [illegible] । उण्डुकस्थेन [illegible] ॥ (श्लो०२४) षष्ठी पित्तधरा नाम [illegible] ॥

छठी पित्तधरा नाम (पित्तको धारण करनेवाली) कला है (यही ग्रहणी है) यह चारों प्रकारके (चबाये, खाये, पीये और चाटे हुए) पदार्थ जो आमाशयसे द्रवरूप नीचेको जातेहैं और पक्वाशयके ऊपर पकनेके लिये उपस्थित होतेहैं उन्हें धारण करती है ॥ २४ ॥ इसपर एक श्लोक है-

अशितं खादितं पीतं लीढं कोष्ठगतं नृणाम् ॥
तज्जीर्यति यथाकालं शोषितं पित्ततेजसा ॥ २५ ॥

चबाया, खाया, पिया और चाटा हुआ जो आहार मनुष्योंके कोष्ठमें प्राप्त होता है उसे यही यथाकाल पित्तकी गरमाईसे शोषित करके पकाती है ॥ २५ ॥

सप्तमी शुक्रधरा नाम या सर्वप्राणिनां सर्वशरीरव्यापिनी ॥२६॥ भवति चात्र-

सातवीं शुक्रधरा नाम (वीर्यको धारण करनेवाली) कला है यह प्राणियोंके समस्त शरीरमें व्याप्त रहती है ॥ २६ ॥ इसमें तीन श्लोक हैं-

यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षौ रसो यथा॥शरीरेषु तथा शुक्रं नृणां विद्याद्भिषग्वरः ॥ २७ ॥ द्व्यङ्गुले दक्षिणे पार्श्वे बस्तिद्वारस्य चाप्यधः ॥ मूत्रस्रोतःपथाच्छुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते ॥ २८ ॥ कृत्स्नदेहाश्रितं शुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा ॥ स्त्रीषु व्यायच्छतश्चापि हर्षात्तत्संप्रवर्तते ॥ २९ ॥

जैसे दूधमें घृत और इक्षु (ऊख) में रस व्याप्त रहता है ऐसेही पुरुषोंके शरीरमें वैद्य वीर्यको जाने ॥ २७ ॥ वस्तिके द्वारसे नीचे दो अंगुल दाहिनी तरफ होकर मूत्रके मार्ग (मूत्र निकलनेके छिद्र) हीसे पुरुषोंका वीर्य निकलता है ॥ ॥ २८ ॥ सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त रहनेवाला शुक्र प्रसन्न चित्त तथा स्त्रीसंगकी इच्छावाले पुरुषको हर्षके कारण प्रवृत्त होता है ॥ २९ ॥

गर्भवतियोंके रजस्वला नहोने और स्तनोंमें दूध होनेका हेतु।

गृहीतगर्भाणामार्तववहानां स्रोतसां वर्त्मान्यवरुध्यन्ते गर्भेण तस्माद्गृहीतगर्भाणामार्तवं न दृश्यते॥३०॥ततस्तदधः प्रतिहतमू-

---

(श्लो० २५) अशितमित्यादि—चतुर्विधमाहारं आमाशयगतं श्लेष्मणा क्लेदितं यथाकालं [illegible] [illegible] मात्राद्रव्यगुरुलघु[illegible] विषमेण च [illegible] शोषितमन्दरागिना पाचितं [illegible] जीर्यतीति । पक्वं च पक्वाशयाय विमुञ्चतीति ॥ (वाक्य २६ व २९) सप्तमी शुक्रधरा नामाङ्गुले दक्षिणे पार्श्वे बस्तिद्वारस्य चाधोऽनुपमानमाश्रिता कृत्स्नशरीरव्यापिनी शुक्रं प्रवर्तयतीति (हृदयाशा०) ॥

र्द्ध्वमागतमपरं चोपचीयमानमपरेत्यभिधीयते शेष चोर्द्ध्वतरमागतं पयोधरावभिप्रतिपद्यते तस्माद्गर्भिण्य पीनोन्नतपयोधरा भवंति३१॥

गर्भवती स्त्रियोंके आर्तवरक्तको वहानेवाले छिद्रोंका मार्ग गर्भसे रुक जाता है इससे गर्भवतियोंका आर्तव (रजस्वलाभाव) नहीं दीखता अर्थात् गर्भमें जबतक बालक हो रजस्वला नहीं होती ॥ ३० ॥ (जरायुकी उत्पत्ति) गर्भवती स्त्रियोंका आर्तव रक्त जब नीचेको प्रवृत्त नहीं होता और रुक जाता है तब ऊपरको (गर्भाशयमें) प्राप्त होजाता है फिर उसमें और कफादिक संचित होकर मिल जाते हैं वही अपरा (जरायु) अर्थात् जेर कहलाती है तथा उस आर्तवकाही शेष (द्रव) भाग अत्यन्त ऊपर गमन करके स्तनों (चूँचियों) में प्राप्त होता है जिससे गर्भिणी स्त्री पुष्ट ऊँचे दूधवाले स्तनोंको धारण करनेवाली होती है (अर्थात् इसीसे गर्भवती स्त्रियोंकी चूँचियां पुष्ट ऊँची और दूधवाली होजाती है) ॥ ३१ ॥

यकृत, प्लीहा, फुप्फुस और उडुककी उत्पत्ति।

गर्भस्य यकृत्प्लीहानौ शोणितजौ । शोणितफेनप्रभव फुप्फुस । शोणितकिट्टप्रभव उडुक. ॥ ३२ ॥

गर्भगत बालकके शरीरमें यकृत् (जिगर) और प्लीहा (तिल्ली) ये दोनों रुधिरसे बनते हैं और फुप्फुस (फेफडा) रुधिर झागोंसे बनता है तथा उडुक (पुरीषाधार अर्थात् मलको धारण करनेवाला मोटा अतडा) रुधिरकिट्टसे बनता है (इनके आकार आदि अगाडी परिशिष्टमें लिखेंगे) ॥ ३२ ॥

अन्त्रों (अनडियों) की उत्पत्ति ।

असृजे. श्लेष्मणश्चापि यं. प्रसाद· परो मतं ॥ तं पच्यमानं पित्तेन वायुश्चाप्यनु धावति ॥ ततोऽस्यान्त्राणि जायते गुद बस्तिश्च देहिनं ॥ ३३ ॥

रक्त और कफका जो परम सार (प्रसाद) है जब वह पित्त करके पकता है और उसके अनुगत वायु गमन करताहै तब उससे गर्भमें मनुष्यके अन्त्र (आतडी) और गुदा तथा बस्ति (मसाना) ये बनते हैं अर्थात् रक्त और कफके प्रसादको जब पित्त पकाताहै तब उसमें ये बनते है और वायु अनुगत होनेसे ये पोले अर्थात् खाले होजाते है (जैसे पिघले हुए काचमें वायु प्रविष्ट होनेसे नली आदि पोले पदार्थ बनजातेहै) ॥ ३३ ॥

(गद्य ३१) [illegible] ॥ (गद्य ३२) [illegible] ॥

जिह्वाकी उत्पत्ति ।

उदरे पच्यमानानामाध्मानाद्रुक्मसारवत् ॥
कफशोणितमांसानां सारो जिह्वा प्रजायते ॥ ३४ ॥

जैसे सुवर्णके तपायमान होनेसे कुन्दन बनता है वैसेही उदरमें पचायमान हुए कफ, रुधिर और मांसके सारसे जिह्वा उत्पन्न होती है ॥ ३४ ॥

स्रोतो (द्वारो) और पेशियोकी उत्पत्ति ।

यथार्थमूष्मणा युक्तो वायुः स्रोतांसि दारयेत् ॥
अनुप्रविश्य पिशितं पेशीर्विभजते तथा ॥ ३५ ॥

यथार्थ उष्णतासे जब वायु मिलता है तब स्रोतों (मल मूत्रादिके बहानेवाले द्वारो) को खोलता है अर्थात् बनाता है और इसी भांति मांसमें अनुप्रवेश करके पेशी (मांसकी गिलटियां) बना देता है ॥ ३५ ॥

मेदसः स्नेहमादाय शिरास्नायुत्वमाप्नुयात् ॥ शिराणां च मृदुः पाकः स्नायूनां च ततः खरः ॥ आशयाभ्यासयोगेन करोत्याशयसंभवम् ॥ ३६ ॥

मेद (चरबी) का स्नेह लेकर वायु सिरा (रग) और स्नायु (नसें) बनाताहै उनमें सिरा (रगों) द्वारा नरम परिपाक होताहै और उससे तीक्ष्ण परिपाक स्नायु (नसों) द्वारा होताहै (बारीक रगोंको शिरा कहतेहै और मोटी नसों तथा पट्ठोंको स्नायु कहतेहै) और स्थितिका योग करके वायु आशयों (वाताशय आदि) की उत्पत्ति करताहै ॥ ३६ ॥

वृक्कादिकी उत्पत्ति ।

रक्तमेदःप्रसादाद्वृक्कौ मांसासृक्कफमेदःप्रसादाद्वृषणौ शोणितकफप्रसादजं हृदयं यदाश्रया हि धमन्यः प्राणवहाः तस्याधो वामतः प्लीहा फुप्फुसश्च दक्षिणतो यकृत् क्लोम च ॥ ३७ ॥

रक्त और मेदके प्रसाद (सार) से वृक्क (दोनों गुरदे) पैदा होते हैं । मांस, रुधिर, कफ और मेदके सारसे वृषण (अंडकोश) बनतेहै तथा रुधिर और कफके

(श्लो० ३४) 'उदरे' इत्यत्र इदय इति वा पाठः (इति गयः) ॥ (श्लो० ३५) यथार्थं यथाप्रयोजनमित्यर्थः । ऊष्मणा पित्तेन यद युक्तो वायुः स्रोतांसि दारयेत् दारणं कुर्यात् । पेशी मांसखण्डम् ॥

(श्लो० ३६) शिरास्नायुत्वमाप्नुयात् इति-शिराः स्नायूंश्च वायुः कुर्यादित्यर्थः । आशयाभ्यासयोगेन वायुः [illegible] इत्येतदर्थं (इति निबन्धसंग्रहः) ॥ (श्लो० ३७) प्रसादः सारः । [illegible] (इति डल्हणः) ॥

प्रसादसे हृदय (दिल) बनताहै और उस हृदयके आश्रय प्राणको बहानेवाली धमनी (नाडियां) है उनके नीचे बायीं तरफ प्लीहा (तिल्ली) होतीहै और फुप्फुस (फेफडा) तथा दाहिने तरफ यकृत् (जिगर) और क्लोम (पित्ता) होताहै ॥ ३७ ॥

निद्रा।

तद्धृदयं विशेषेण चेतनास्थानमतस्तस्मिंस्तमसावृते सर्वप्राणिनः स्वपन्ति ॥ ३८ ॥ भवति चात्र–

वह हृदय विशेष करके चेतनाका स्थान है इससे जब वह तमोगुणसे आच्छादित होता है तब प्राणी सोते हैं ॥ ३८ ॥ इसपर श्लोक है–

पुण्डरीकेण सदृशं हृदयं स्यादधोमुखम् ॥
जाग्रतस्तद्विकसति स्वपतश्च निमीलति ॥ ३९ ॥

हृदयका आकार कमलके सदृश नीचेको मुखवाला है, जागनेकी अवस्थामें वह प्रायः खिला हुआसा रहता है और सोनेकी अवस्थामें मिचा हुआ (बंद सा) हो जाता है ॥ ३९ ॥

निद्रां तु वैष्णवीं पाप्मानमुपदिशन्ति सा स्वभावत एव सर्वप्राणिनोऽभिस्पृशति ॥ ४० ॥

निद्राको सर्वव्यापी विष्णुकी माया और पापमय वर्णन करते हैं वह स्वभावहीसे सब प्राणियोंको स्पर्श करती है (अर्थात् सब प्राणिमात्रको वह निद्रा आती है)॥४०॥

तामसी निद्रा।

तत्र यदा संज्ञावहानि स्रोतांसि तमोभूयिष्ठः श्लेष्मा प्रतिपद्यते तदा तामसी नाम निद्रा सम्भवत्यनवबोधिनी सा प्रलयकाले॥४१॥

(पा० ३८। ३९) हृदयस्य [illegible] ॥ १ ॥ [illegible] ॥ २ ॥ [illegible] ॥ ३ ॥ [illegible] ॥ ४ ॥ [illegible] ॥

(पा० ४०) [illegible] (नि० ७०) ॥ (पा० ४१) [illegible] ॥

जब सज्ञाको प्राप्तकरनेवाले नाडियोंके छिद्रोंको तमोगुणकी बाहुल्यतावाला कफ प्राप्त होजाता है तब बोधका नाश करनेवाली तामसी नाम निद्रा होती है, यह प्रलयकालमें होती है ॥ ४१ ॥

स्वाभाविकी निद्रा ।

तमोभूयिष्ठानामहःसु निशासु च भवति रजोभूयिष्ठानामनिमित्त सत्त्वभूयिष्ठानामर्द्धरात्रे ॥ ४२ ॥

तमोगुणकी बाहुल्यतावाले मनुष्योंको दिनमें भी निद्रा आती है और रात्रिमे भी अति निद्रा आती है तथा रजोगुणकी बाहुल्यतावालोंको वे नियम कभी २ दिनमें और कभी २ रात्रिमें निद्रा आती है तथा सत्त्वगुणकी बाहुल्यतावालोंको अर्द्धरात्रिके समय (थोडीसी निद्रा) आया करती है ॥ ४२ ॥

वैकारिकी निद्रा ।

क्षीणश्लेष्मणामनिलबहुलाना मन शरीराभितापवता च नैव सा वैकारिकी भवति ॥ ४३ ॥ भवन्ति चात्र–

जिनका कफ क्षीण हो जावे, वायु बढ जावे अथवा मन या शरीरमे सताप हो तब मनुष्योंको प्राय' निद्रा नहीं आती यदि आवे तो उसे वैकारिकी कहते हैं ॥ ४३ ॥ इस विषयमे श्लोक हैं–

हृदयं चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुत देहिनाम् ॥ तमोभिभूते तस्मिंस्तु निद्रा विशति देहिनाम् ॥ ४४ ॥ निद्राहेतुस्तमः सत्त्वं बोधने हेतुरुच्यते ॥ स्वभाव एव वा हेतुर्गरीयान् परिकीर्तित ॥ ४५ ॥ पूर्वदेहानुभूतांस्तु भूतात्मा स्वपतः प्रभुः ॥ रजोयुक्तेन मनसा गृह्णात्यर्थान् शुभाशुभान् ॥ ४६ ॥ करणानां तु वैकल्ये तमसाभिप्रवर्द्धिते ॥ अस्वपन्नपि भूतात्मा प्रसुप्त इव चोच्यते ॥ ४७ ॥

(या० ४२) यद्यपि सर्वासां निद्राणां तमोहेतुस्तथापि प्रकृष्टतमस्त्वात् तामसीनां अतिनिद्रा करोते । अनिमित्तं अनियतकाले [illegible] कदाचिद्दिवा कदाचिद्रात्रावित्यर्थं ॥ (या० ४३) क्षीणश्लेष्मणां मनुष्याणां निद्रा नैव भवति यदि कदाचिद्भवति सा । सा वैकारिकी नाम । ननु [illegible] [illegible] श्लेष्मा [illegible] यदा गच्छे निद्रा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इत्यर्थः [illegible] "यदा तु मनसि [illegible] [illegible] ॥ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]" ॥ (इति निबन्ध०)

(या० ४६) पूर्वदेहानुभूतांस्तु–[illegible] देहेनानुभूतान् । [illegible] देहस्य [illegible] रजोयुक्तेन मनसा [illegible] शुभाशुभानर्थान् [illegible] ॥

धन्वतरिजी कहते है कि हे सुश्रुत ! सब प्राणियोंका चेतनास्थान हृदय ही है जब उसमें तमोगुण व्याप्त होता है तब प्राणियोंको निद्रा आती है ॥ ४४ ॥ निद्रा अवस्थाका हेतु तमोगुण है और बोध (जाग्रत) अवस्थाका हेतु सत्त्वगुण कहा है अथवा स्वभावही इन दोनोंका उत्कृष्ट हेतु कहा जाता है ॥ ४५ ॥ पूर्वजन्म वा इसी जन्मके जो दृष्टश्रुत शुभाशुभ अर्थ है उनको रजोगुण युक्त मनसे सोता हुआ जो क्षेत्रज्ञ जीव ग्रहण करता है (उसे स्वप्न कहते है, इसका हेतु रजोगुण है ॥ ४६ ॥ जब तमोगुण बढकर इंद्रियोंमें विकलता (यथोचित ज्ञानकी अशक्ति) हो तब जागता हुआ भी जीवात्मा सोता हुआसा प्रतीत होता है ॥ ४७ ॥

दिनमें सोनेकी विधि और निषेध ।

सर्वर्तुषु दिवास्वापः प्रतिषिद्धोऽन्यत्र ग्रीष्मात् ॥ ४८ ॥ प्रतिषिद्धेष्वपि तु बालवृद्धस्त्रीकर्षितक्षतक्षीणमद्यनित्ययानवाहनाध्वकर्मपरिश्रान्तानामभुक्तवतां मेदस्वेदकफरसरक्तक्षीणानामजीर्णिनां च मुहूर्तं दिवास्वपनमप्रतिषिद्धम् ॥ ४९ ॥ रात्रावपि जागरितवतां जागरितकालादर्धमिष्यते दिवास्वप्नः ॥ ५० ॥

दिनमें सोना ग्रीष्म ऋतु (गरमी) के सिवाय सब ऋतुओंमे निषिद्ध है ॥४८॥ परन्तु निषिद्ध ऋतुओंमें भी बालक, वृद्ध, मैथुनसे थके हुए, उर क्षत रोगवाले, क्षीण, नित्य मद्य पीनेवाले, सवारी, मार्ग और कामसे थके हुए, भोजन न करनेवाले तथा जिनके मेद, पसीना, कफ, रस और रुधिर ये क्षीण होगये हो तथा अजीर्णवाले ऐसे मनुष्योंको दो घडी दिनमें सोना निषिद्ध नहीं है ॥ ४९ ॥ और जो रातको जागे हों तो जितने समय रातको जागे हों उससे आधे समय दिनमें सो लेना चाहिये ॥ ५० ॥

दिनमें सोनेसे हानि ।

विकृतिर्हि दिवास्वप्नो नाम । तत्र स्वपतामधर्मः सर्वदोषप्रकोपश्च तत्प्रकोपाच्च कासश्वासप्रतिश्यायशिरोगौरवाङ्गमर्दारोचकज्वराग्निदौर्बल्यानि भवन्ति ॥ ५१ ॥

दिनका सोना विकृति (विकार) है (अर्थात् ईश्वरके नियमसे विरुद्ध है) इसमें दिनमें सोनेवालोंको अधर्म होता है तथा सब दोषों (वात, पित्त, कफ,

(गद्य ४९) प्रतिषिद्धेष्वपि तु । 'मद्यनित्यानां' इत्यत्र नित्यमद्यानां इति च पाठः ॥
(गद्य ५१) [illegible] ॥

जब सज्ञाको प्राप्तकरनेवाले नाडियोंके छिद्रोंको तमोगुणकी बाहुल्यतावाला कफ प्राप्त होजाता है तब बोधका नाश करनेवाली तामसी नाम निद्रा होती है, यह अल्पकालमें होती है ॥ ४१ ॥

स्वाभाविकी निद्रा ।

तमोभूयिष्ठानामह सु निशासु च भवति रजोभूयिष्ठानामनिमित्तं सत्त्वभूयिष्ठानामर्द्धरात्रे ॥ ४२ ॥

तमोगुणकी बाहुल्यतावाले मनुष्योंको दिनमे भी निद्रा आती है और रात्रिमें भी अति निद्रा आती है तथा रजोगुणकी बाहुल्यतावालोंको वे नियम कभी २ दिनमें और कभी २ रात्रिमें निद्रा आती है तथा सत्त्वगुणकी बाहुल्यतावालोंको अर्द्धरात्रिके समय (थोडीसी निद्रा) आया करती है ॥ ४२ ॥

वैकारिकी निद्रा ।

क्षीणश्लेष्मणामनिलबहुलाना मन॰ शरीराभितापवता च नैव सा वैकारिकी भवति ॥ ४३ ॥ भवन्ति चात्र—

जिनका कफ क्षीण हो जावे, वायु बढ जावे अथवा मन या शरीरमें सताप हो उन मनुष्योंको प्राय॰ निद्रा नहीं आती यदि आवे तो उसे वैकारिकी कहते हैं ॥ ४३ ॥ इस विषयमें श्लोक है—

हृदयं चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुत देहिनाम् ॥ तमोऽभिभूते तस्मिंस्तु निद्रा विशति देहिनाम् ॥ ४४ ॥ निद्राहेतुस्तमः सत्त्वं बोधने हेतुरुच्यते ॥ स्वभाव एव वा हेतुर्गरीयान् परिकीर्तित॰ ॥ ४५ ॥ पूर्वदेहानुभूतांस्तु भूतात्मा स्वपत॰ प्रभुः ॥ रजोयुक्तेन मनसा गृह्णात्यर्थान् शुभाशुभान् ॥ ४६ ॥ करणानां तु वैकल्ये तमसाभिप्रवर्द्धिते ॥ अस्वपन्नपि भूतात्मा प्रसुप्त इव चोच्यते ॥ ४७ ॥

(पा० ४२) यद्यपि सर्वासां निद्राणां तमोहेतुत्वमपि प्रकृष्टतमस्त्वात् तामसीत्यतिनिद्रा कथ्यते । अनिमित्तं अनियतकालं [illegible] कदाचिद्दिवा कदाचिद्रात्राविति ॥ (पा० ४३) क्षीणकफा[illegible] मनुष्याणां निद्रा नैव भवति यदि कदाचिद्भवति तदा सा वैकारिकी ज्ञेया । ननु यदा [illegible] [illegible] [illegible] कथं निद्रा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नरके—"यदा तु मनसि [illegible] [illegible] [illegible] ॥ [illegible] [illegible] मानव " ॥ (इति निबन्ध॰)

(पा० ४६) पूर्वदे[illegible]—[illegible] देहे [illegible] । [illegible] देहेन [illegible] रजोयुक्तेन मनसा [illegible] शुभाशुभानर्थान् [illegible] भावः ॥

धन्वन्तरिजी कहते हैं कि हे सुश्रुत ! सब प्राणियोंका चेतनास्थान हृदय ही है जब उसमें तमोगुण व्याप्त होता है तब प्राणियोंको निद्रा आती है ॥ ४४ ॥ निद्रा अवस्थाका हेतु तमोगुण है और बोध (जाग्रत) अवस्थाका हेतु सत्त्वगुण कहा है अथवा स्वभावही इन दोनोंका उत्कृष्ट हेतु कहा जाता है ॥ ४५ ॥ पूर्वजन्म वा इसी जन्मके जो दृष्टश्रुत शुभाशुभ अर्थ हैं उनको रजोगुण युक्त मनसे सोता हुआ जो क्षेत्रज्ञ जीव ग्रहण करता है (उसे स्वप्न कहते हैं, इसका हेतु रजोगुण है ॥ ४६ ॥ जब तमोगुण बढकर इंद्रियोंमें विकलता (यथोचित ज्ञानकी अशक्ति) हो तब जागता हुआ भी जीवात्मा सोता हुआसा प्रतीत होता है ॥ ४७ ॥

दिनमें सोनेकी विधि और निषेध ।

सर्वर्तुषु दिवास्वापः प्रतिषिद्धोऽन्यत्र ग्रीष्मात् ॥ ४८ ॥ प्रतिषिद्धेष्वपि तु बालवृद्धस्त्रीकर्षितक्षतक्षीणमद्यनित्ययानवाहनाध्वकर्मपरिश्रान्तानामभुक्तवतां मेदःस्वेदकफरसरक्तक्षीणानामजीर्णिनां च मुहूर्तं दिवास्वपनमप्रतिषिद्धम् ॥ ४९ ॥ रात्रावपि जागरितवतां जागरितकालादर्द्धमिष्यते दिवास्वप्नः ॥ ५० ॥

दिनमें सोना ग्रीष्म ऋतु (गरमी) के सिवाय सब ऋतुओंमें निषिद्ध है ॥४८॥ परन्तु निषिद्ध ऋतुओंमें भी बालक, वृद्ध, मैथुनसे थके हुए, उरःक्षत रोगवाले, क्षीण, नित्य मद्य पीनेवाले, सवारी, मार्ग और कामसे थके हुए, भोजन न करनेवाले तथा जिनके मेद, पसीना, कफ, रस और रुधिर ये क्षीण होगये हो तथा अजीर्णवाले ऐसे मनुष्योंको दो घडी दिनमें सोना निषिद्ध नहीं है ॥ ४९ ॥ और जो रातको जागे हो तो जितने समय रातको जागे हों उससे आधे समय दिनमें सो लेना चाहिये ॥ ५० ॥

दिनमें सोनेसे हानि ।

विकृतिर्हि दिवास्वप्नो नाम । तत्र स्वपतामधर्मः सर्वदोषप्रकोपश्च तत्प्रकोपाच्च कासश्वासप्रतिश्यायशिरोगौरवाङ्गमर्दारोचकज्वराग्निदौर्बल्यानि भवन्ति ॥ ५१ ॥

दिनका सोना विकृति (विकार) है (अर्थात् ईश्वरके नियमसे विरुद्ध है) इसमें दिनमें सोनेवालोंको अधर्म होता है तथा सब दोषों (वात, पित्त, कफ,

(गम ४९) प्रतिषिद्धेषु ऋतुषु । 'मद्यनित्ययान' इत्यत्र नित्यमद्यपान इति वा पाठः ॥
(गम ५१) गदवैर इत्यत्र पर्यन्तदेन स्वमपि गद्यते ॥

रक्त) का प्रकोप भी होजाता है उस प्रकोपसे खांसी, श्वास, जुखाम, शिरका भारीपन, अंगोंका टूटनासा, अरुचि, ज्वर और मंदाग्नि ये विकार होते हैं ॥ ५१ ॥

रातमें अधिक जागनेमें हानि ।

रात्रावपि जागरितवता वातपित्तनिमित्तास्त एवोपद्रवा भवन्ति ॥ ५२ ॥ भवन्ति चात्र-

रात्रिमें अति जागनेवालोंको भी वायु, पित्तके रोग और उनके उपद्रव होजाते हैं ॥ ५२ ॥ इस विषयमें श्लोक हैं-

तस्मान्न जागृयाद्रात्रौ दिवास्वप्नं च वर्जयेत् ॥ ज्ञात्वा दोषकरावेतौ बुधः स्वप्नं मितं चरेत् ॥५३॥ अरोगः सुमना ह्येवं बलवर्णान्वितो वृषः ॥ नातिस्थूलकृशः श्रीमान्नरो जीवेत्समाः शतम् ॥ ५४ ॥ निद्रा सात्मीकृता यैस्तु रात्रौ च यदि वा दिवा ॥ न तेषां स्वपतां दोषो जाग्रतां वा विधीयते ॥ ५५ ॥

दिनमें सोने और रातमें अधिक जागनेसे विकार होता है इस कारण बुद्धिमान न रात्रिमें जागे और न दिनमें सोवे इन दोनोंको विकारकारक जानके यथोचित सोने (और जागने) का आचरण करे ॥ ५३ ॥ ऐसा करनेसे निरोग प्रसन्नचित्त बलवर्ण (रूप) युक्त पुरुषार्थी होते हैं न अधिक मोटे होते हैं न बहुत दुबले किंतु शोभायमान होकर सौ वर्ष मनुष्य जीते हैं ॥ ५४ ॥ जिन्होंने इच्छापूर्वक निद्राका अभ्यास किया हो (या जिनको जैसा माफक्त हो) उनको रात्रि या दिनमें कभी सोने तथा जागनेका दोष नहीं ॥ ५५ ॥

निद्रानाशका हेतु और यत्न ।

निद्रानाशोऽनिलात्पित्तान्मनस्तापात्क्षयादपि ॥ संभवत्यभिघाताच्च प्रत्यनीकैः शाम्यति ॥५६॥ निद्रानाशेऽभ्यङ्गयोगो मूर्ध्नि तैलनिषेवणम् ॥ गात्रस्योद्वर्तनं चैव हितं संवाहनानि च ॥५७॥ शालिगोधूमपिष्टान्नभक्ष्यैरैक्षवसंस्कृतैः ॥ भोजनं मधुरं स्निग्धं क्षीरमांसरसादिभिः ॥ ५८ ॥ रसैर्विलेशयानां च विष्किराणां तथैव च ॥ द्राक्षासितेक्षुद्रव्याणामुपयोगो भवेन्निशि ॥५९॥ शयनासनयानानि मनोज्ञानि मृदूनि च ॥ निद्रानाशे तु कुर्वीत तथान्यान्यपि बुद्धिमान् ॥६० ॥

(श्लो० ५७) संवाहनं मृदुमर्दनम् ॥ (श्लो० ६०) अन्यानि मनोऽनुकूलानि गीतादीनि ॥

वायु और पित्तसे, मनके संतापसे तथा क्षयसे और चोट आदिकी पीडासे निद्राका नाश होजाता है और इनके विपरीत भावोंसे निद्रानाशकी शांति होती है ॥ ५६ ॥ यदि निद्रानाश हो तो शरीरपर तेल मलके उबटन करना और स्नान करना चाहिये तथा शिरपर तैलका मर्दन करना और धीरे धीरे हाथ, पांव और शरीर दबवाना चाहिये ॥ ५७ ॥ शालि चावल, गेहूं पिष्ट अन्न (पिट्ठीके पदार्थ), और शर्करा (खांड) के बने मधुर, चिकने, दूध या मांसरस (शोरवे) के साथमें उत्तम भोजन करने चाहिये ॥ ५८ ॥ बिलमें रहनेवाले जीवों (शल्लकी, मूषक आदि) तथा विष्किरों (मुरगे) आदिके रस (शोरवे) के संग तथा दाख, मिश्री और ईख (गन्ने) आदिका उपयोग रातको करे ॥ ५९ ॥ उत्तम नरम शय्या, साफ बिछौना या मुलायम गद्दी तथा सुन्दर मृदु पालकी जैसी सवारी इत्यादि पदार्थोंका उपयोग बुद्धिमान्को निद्रानाश होनेकी व्याधिमें करना हितकारक होता है ॥ ६० ॥

अतिनिद्राका प्रतिकार ।

वमेन्निद्रातियोगे तु कुर्य्यात्संशोधनानि च ॥
लंघनं रक्तमोक्षं च मनोव्याकुलनानि च ॥ ६१ ॥

यदि निद्रा अधिक आती हो तो वमन करावे तथा विरेचनादि द्वारा शोधन करे, लंघन करावे और रक्तमोक्ष (फस्त) करावे तथा मनके व्याकुल करनेवाले आचरण करावे ॥ ६१ ॥

रातमें जागना तथा दिनमें सोना किनको हित है ।

कफमेदोविषार्त्तानां रात्रौ जागरणं हितम् ॥
दिवास्वप्नश्च तृट्शूलहिक्काजीर्णातिसारिणाम् ॥६२॥

जिनके शरीरमें कफ तथा मेद बढगये हो अथवा जो विषसे व्याप्त हों ऐसे मनुष्योंको रातमें भी जागना हित है । और जिन्हें तृषा, शूल, हिचकी, अजीर्ण और अतिसार ये रोग हो उन्हें दिनमें भी सोना अच्छा है ॥ ६२ ॥

तन्द्राके लक्षण।

इन्द्रियार्थेष्वसंप्राप्तिर्गौरवं जृंभणं क्लमः ॥
निद्रार्त्तस्येव यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ॥ ६३ ॥

इंद्रियां अपने २ अर्थोंमें ठीक प्राप्त न हों, शरीर भारी हो, जमाही आवे, थकानसी हो और निद्रायुक्तकेसी जिसकी चेष्टा हो उसे " तंद्रा " कहते हैं ॥ ६३ ॥

(श्लो० ६१) संशोधनादेव वमने लब्धे पृथग्वमनस्य पुनरुपादानं शङ्कितेन ॥

जृभा ।

पीत्वैकमनिलोच्छ्वासमुद्वेष्टन् विवृताननः ॥
यन्मुञ्चति सनेत्राश्रु स जृम्भ इति संज्ञितः ॥६४॥

जब मनुष्य ऊपरको मुँह पसार कर एक लंबी सांस खींचता है और फिर मुख मिचते २ कभी आखोंमें आँसू भरकर सांस छोडता है तो उस अवस्थाको " जृभ " (जमाही) कहते है ॥ ६४ ॥

क्लम ।

योऽनायासः श्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः ॥
क्लमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः ॥ ६५ ॥

जिसमें अनायास (बेपरिश्रम किये) ही शरीरमें थकानसी हो और श्वास न चढे तथा इन्द्रियोंकी अपने अपने विषयोंमे कुछ २ अज्ञानता हो उसे "क्लम" कहते है ॥ ६५ ॥

आलस्य ।

सुखस्पर्शप्रसङ्गित्वं दुःखद्वेषणलोलता ॥
शक्तस्य चाप्यनुत्साहः कर्मस्वालस्यमुच्यते ॥ ६६ ॥

जिस अवस्थामें सुखके स्पर्शकी लालसा रहे और दुःख (श्रमादि) दूर रहनेकी इच्छा हो तथा शक्ति होनेपर भी कार्योंमे उत्साह न हो तो उसे "आलस्य" कहते हैं ॥ ६६ ॥

उत्क्लेश ।

उत्क्लिश्यान्नं न निर्गच्छेत्प्रसेकष्ठीवनेरितम् ॥
हृदयं पीड्यते चास्य तमुत्क्लेशं विनिर्दिशेत् ॥ ६७ ॥

पेटका अन्न ऊपर ऊपरको आवे (जी मिचलावे) और अन्नादि बाहर न निकले (वमन हो नहीं) तथा हृदयमें दुःख हो तो उस "उत्क्लेश" (हुटीष) कहते हैं ॥ ६७ ॥

ग्लानि ।

वक्त्रे मधुरता तन्द्रा हृदयोद्वेष्टनं भ्रमः ॥
न चान्नमभिकाङ्क्षेत तस्य ग्लानिं विनिर्दिशेत् ॥ ६८ ॥

मुखमें मीठापन हो, तन्द्रा हो, हृदयमें उद्वेगसा हो, भ्रम हो, अन्नपर रुचि न हो तो उसको "ग्लानि" कहते है ॥ ६८ ॥

गौरव।

आर्द्रचर्मावनद्ध हि यो गात्रमभिमन्यते ॥
तथा गुरु शिरोऽत्यर्थं गौरवं तद्विनिर्दिशेत् ॥६९॥

जब मनुष्य अपने शरीरको गीले चर्मसे ढका हुआसा (गलगलायासा) जाने तथा शरीर भारी और शिर अति भारी हो तो उसे " गौरव " कहते है॥ ६९ ॥

मूर्च्छा पित्ततमःप्राया रजःपित्तानिलाद्भ्रमः ॥
तमोवातकफात्तन्द्रा निद्रा श्लेष्मतमोभवा ॥७०॥

मूर्च्छा (वेहोश दण्डाकारसा गिरे और जैसेहो वैसेही पडा रहे यह) पित्त और तमोगुणकी प्रधानतासे हो ओर भ्रम (अचेतहो कभी अस्त व्यस्त कहना या करना यह) रजोगुण और पित्त, वायुकी प्रधानतासे होता है तथा तंद्रा (घुमेर) तमोगुण और वायु, कफसे होती है तथा निद्रा कफ और तमोगुणसे होती है ॥ ७० ॥

गर्भस्य खलु रसनिमित्ता मारुताध्माननिमित्ता च गात्रवृद्धिर्भवति ॥ ७१ ॥ भवन्ति चात्र-

गर्भकी वृद्धि माताके रससेभी होतीहे और पवनके आध्मान (धमने)सेभी होती हे ॥ ७१ ॥ इसी विषयपर श्लोक है-

तस्यान्तरेण नाभेस्तु ज्योतिःस्थानं ध्रुवं स्मृतम्॥तदाधमति वातस्तु देहस्तेनास्य वर्द्धते ॥ ७२ ॥ ऊष्मणा सहितश्चापि दारयत्यस्य मारुतः ॥ ऊर्द्ध्वं तिर्यगधस्ताच्च स्रोतांस्यपि यथा तथा॥ ७३ ॥ दृष्टिश्च रोमकूपाश्च न वर्द्धन्ते कदाचन ॥ ध्रुवाण्येतानि मर्त्यानामिति धन्वन्तरेर्मतम् ॥७४॥ शरीरे क्षीयमाणेऽपि वर्द्धेते द्वाविमौ सदा ॥ स्वभावं प्रकृतिं कृत्वा नखकेशाविति स्थितिः ॥७५॥

नाभिस्थानमे ध्रुव (निश्चल), ज्योतिःप्रकाशक अग्निका स्थान है वहां वायु धमन करता है उससे शरीर बढता है ॥७२॥ जब वह वायु गरमीसे मिलता है तब चल

(श्लो० ६९) 'हि' स्थाने या इति पाठान्तरम् ॥ (वा० ७१) रसनिमित्ता मातुराहाररसकृता। मारुताध्माननिमित्ता आध्मानं स्रोतसां पूर्णं तदेव निमित्तं यस्याः । (श्लो० ७२) नाभेरन्तरेण नाभिमध्ये अन्तरेण मध्यार्थे (इति डल्हन) । ज्योतिःस्थानम् अग्निस्थानम्। ध्रुवं निश्चलम् तत्र वायुराधमति ॥

(श्लो० ७३) ज्योतिःस्थानाध्मानेनाप्यस्रोतोवृद्धौ कथं भवतीत्याशङ्क्याह-ऊष्मणेति-मारुतस्तावदो अन्तर्भूतवीर्याग्निर्वा तेनोष्मणा सहितोऽनिलः यथा यथा ऊर्ध्वं तिर्यक् अधस्तात् स्रोतांसि दारयति तथा तथा देहो वर्द्धते इति पूर्वान्वयात् संबन्धनीय (इति नि० सं०) (श्लो० ७४) दृष्टि: नेत्रगता तारकाग्नि:॥

(श्लो० ७५) स्वभावं प्रकृतिं कृत्वा स्वभावे कारणे वृत्तेत्यर्थः ॥

जृंभा ।

पीत्वैकमनिलोच्छ्वासमुद्वेष्टन् विवृताननः ॥
यन्मुंचति सनेत्राश्रु स जृंभ इति संज्ञितः ॥६४॥

जब मनुष्य ऊपरको मुँह पसार कर एक लंबी सांस खींचता है और फिर मुख मिचते २ कभी आखोंमें आँसू भरकर सांस छोडता है तो उस अवस्थाको " जृंभ " (जमाही) कहते है ॥ ६४ ॥

क्लम ।

योऽनायासः श्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः ॥
क्लमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः ॥ ६५ ॥

जिसमे अनायास (बेपरिश्रम किये) ही शरीरमे थकानसी हो और श्वास न बढे तथा इन्द्रियोंकी अपने अपने विषयोंमे कुछ २ अज्ञानता हो उसे "क्लम" कहते है ॥ ६५ ॥

आलस्य ।

सुखस्पर्शप्रसङ्गित्वं दुःखद्वेषणलोलता ॥
शक्तस्य चाप्यनुत्साहः कर्मस्वालस्यमुच्यते ॥ ६६ ॥

जिस अवस्थामें सुखके स्पर्शकी लालसा रहे और दुःख (श्रमादि) दूर रहनेकी इच्छा हो तथा शक्ति होनेपर भी कार्योंमें उत्साह न हो तो उसे "आलस्य" कहते हैं ॥ ६६ ॥

उत्क्लेश ।

उत्क्लिश्यान्नं न निर्गच्छेत्प्रसेकष्ठीवनेरितम् ॥
हृदयं पीड्यते चास्य तमुत्क्लेशं विनिर्दिशेत् ॥ ६७ ॥

पेटका अन्न ऊपर ऊपरको आवे (जी मिचलावे) और अन्नादि बाहर न निकले (वमन हो नहीं) तथा हृदयमें दुःख हो तो उसे "उत्क्लेश" (हुड़ौक) कहते हैं॥६७॥

ग्लानि ।

वक्त्रे मधुरता तन्द्रा हृदयोद्वेष्टनं भ्रमः ॥
न चान्नमभिकाङ्क्षेत तस्य ग्लानिं विनिर्दिशेत् ॥६८ ॥

मुखमें मीठापन हो, तंद्रा हो, हृदयमें उनदमी हो, भ्रम हो, अन्नपर रुचि न हो तो उसको "ग्लानि" कहते है ॥ ६८ ॥

गौरव।

आर्द्रचर्मावनद्धं हि यो गात्रमभिमन्यते ॥
तथा गुरु शिरोऽत्यर्थं गौरवं तद्विनिर्दिशेत् ॥६९॥

जब मनुष्य अपने शरीरको गीले चर्मसे ढका हुआसा (गलगलायासा) जाने तथा शरीर भारी और शिर अति भारी हो तो उसे " गौरव " कहते हैं ॥ ६९ ॥

मूर्च्छा पित्ततम प्राया रजःपित्तानिलाद्भ्रमः ॥
तमोवातकफात्तन्द्रा निद्रा श्लेष्मतमोभवा ॥७०॥

मूर्च्छा (बेहोश दडाकासा गिरे और जैसेहो वैसेही पडा रहे यह) पित्त और तमोगुणकी प्रधानतासे हो ओर भ्रम (अचेतहो कभी अस्त व्यस्त कहना या करना यह) रजोगुण और पित्त, वायुकी प्रधानतासे होता है तथा तंद्रा (घुमेर) तमोगुण और वायु, कफसे होती है तथा निद्रा कफ और तमोगुणसे होती है ॥ ७० ॥

गर्भस्य खलु रसनिमित्ता मारुताध्माननिमित्ता च परिवृद्धिर्भवति ॥ ७१ ॥ भवन्ति चात्र–

गर्भकी वृद्धि माताके रससेभी होतीहै ओर पवनके आध्मान (धमने) सेभी होती है ॥ ७१ ॥ इसी विषयपर श्लोक हैं–

तस्यान्तरेण नाभेस्तु ज्योतिःस्थानं ध्रुवं स्मृतम्॥तदाधमति वातस्तु देहस्तेनास्य वर्द्धते ॥ ७२ ॥ ऊष्मणा सहितश्चापि दारयत्यस्य मारुतः ॥ ऊर्द्ध्वं तिर्यगधस्ताच्च स्रोतांस्यपि यथा तथा ॥ ७३ ॥ दृष्टिश्च रोमकूपाश्च न वर्द्धन्ते कदाचन ॥ ध्रुवाण्येतानि मर्त्याना-मिति धन्वन्तरेर्मतम् ॥७४॥ शरीरे क्षीयमाणेपि वर्द्धेते द्वाविमौ सदा ॥ स्वभावं प्रकृतिं कृत्वा नखकेशाविति स्थितिः ॥७५॥

नाभिस्थानमें ध्रुव (निश्चल), ज्योतिःप्रकाशक अग्निका स्थान है वहा वायु धमन करता है उससे शरीर बढता है ॥७२॥ जब वह वायु गरमीसे मिलता है तब चल

(श्लो० ६९) 'हि' स्थाने वा इति पाठान्तरम् ॥ (वा० ७१) रसनिमित्ता मातुराहाररसजन्यरसकृता। मारुताध्माननिमित्ता आध्मानं स्रोतसां पूरणं तदेव निमित्तं यस्या । (श्लो० ७२) नाभेरन्तरेण नाभिमध्ये अन्तरेण मध्यार्थे (इति डल्हन) । ज्योतिस्थानम् अग्निस्थानम् । ध्रुव निश्चलम् तत्र वायुराधमति ॥

(श्लो० ७३) ज्योतिःस्थानाध्मानेन मध्यस्रोतोवृद्धौ कथं सर्वतोवृद्धिरित्याह–ऊष्मणेति–यथातथाशब्दो अन्तर्भूतवीप्सार्थः। तेनाध्मातो वर्द्धितोऽग्नि यथा मारुतः तिर्यक् अधस्ताच स्रोतांसि दारयति तथातथा देहो वर्द्धते इति पूर्वान्वयात् संबन्धनीय (इति नि० सं०) (श्लो० ७४) दृष्टि. तेजोऽवयवविशेषः॥

(श्लो० ७५) स्वभावं प्रकृतिं कृत्वा स्वभावे धारणं कृत्वेत्यर्थः ॥

फलके ऊपर, तिरछा और नीचेको जहाँ जहाँ यथायोग्य हे वहाँ२ स्रोतो(धमनीद्वारों) को खोलता हे वैसेही शरीर बढता जाता है ॥७३॥ मनुष्योंके दृष्टि (नेत्रोंके तिल) और रोमकूप (रोमछिद्र) ये शरीरवृद्धिके साथ २ कभीभी नहीं बढते क्योंकि ये स्थिर हैं यह धन्वंतरिजीका मत है॥७४॥ और शरीर क्षीण होनेपर (बुढापेमें)भी स्वभावकी प्रकृतिसे नाखून और बाल ये दो वस्तु सदा बढतेहीहैं ॥ ७५ ॥

प्रकृति ।

सप्त प्रकृतयो भवंति दोषैः पृथक् द्विशः समस्तैश्च ॥७६॥ शुक्रशोणितसंयोगे यो भवेद्दोष उत्कटः ॥ प्रकृतिर्जायते तेन तस्या मे लक्षणं शृणु ॥७७॥

प्रकृति (तासीर मिजाज या खासियत) सात प्रकारकी होतीहैं तीनों दोषोंसे पृथक् २ तीन जैसे वातप्रकृति, पित्तप्रकृति और कफप्रकृति तथा दो दो दोषोंकी तीन जैसे वात-पित्त प्रकृति, वात-कफ प्रकृति और कफ-पित्त प्रकृति। तथा एक तीनोंसे मिलकर त्रिदोष प्रकृति ऐसे ७ प्रकारकी प्रकृति होतीहै ॥७६॥ गर्भाधानके समय पिताके शुक्र और माताके शोणितके संयोगमें जौनसा दोष प्रधान उत्कट होताहै उसीसे वही प्रकृति मनुष्यकी होतीहै उसके पृथक् २ लक्षण सुनो ॥ ७७॥

वातप्रकृति ।

तत्र जागरूकः शीतद्वेषी दुर्भगः स्तेनो मत्सर्यनार्यो गांधर्वचित्तः स्फुटितकरचरणोऽतिरूक्षश्मश्रुनखकेशः क्रोधी दंतनखखादी च भवति ॥ ७८ ॥ अधृतिरदृढसौहृदः कृतघ्नः कृशपरुषो धमनीततः प्रलापी ॥ द्रुतगतिरटनोऽनवस्थितात्मा वियदपि गच्छति संभ्रमेण सुप्तः ॥ ७९ ॥ अव्यवस्थितमतिश्चलदृष्टिर्मंदरत्नधनसंचयमित्रः ॥ किंचिदेव विलपत्यनिबद्धं मारुतप्रकृतिरेष मनुष्यः ॥८०॥ वातिकाश्चाजगोमायुशशाखूष्ट्रशुनां तथा ॥ गृध्रकाकखरादीनामनूकैः कीर्तिता नराः ॥ ८१ ॥

(श्लो० ७६) दशसप्तविधप्रकृति प्रकृतिं मात्रादिप्रकाशयेति मुख्यायाः [illegible] ॥ (श्लो० ७७) धातादिषु गर्भाधाने च उत्कटः दोषः [illegible] [illegible] प्रकृतिर्भवति। उत्कटस्तु [illegible] [illegible] प्रकृतेः । [illegible] त्रिविधा [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] - "[illegible] ॥ [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १ ॥" (श्लो० ७९) द्रुतगतिः [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । अनात्म [illegible] ([illegible]) । (श्लो० ८१) [illegible] [illegible] [illegible] (इति [illegible])

बहुत जागनेवाला, शीतका द्वेषी और दुर्भग (बुरी चेष्टावाला), जिसमे चोरीकी रुत हो, मत्सरता युक्त हो, अनार्य हो, गंधर्वोकेसा जिसका चित्त हो अर्थात् गानेका प्रेमी हो, हाथ, पैर बहुत फटते हो, जिसके डाढी, मूछ, नखून और बाल अति रूखे हों, क्रोधी हो और दाँतों तथा नखोंको चबानेवाला हो ॥ ७८ ॥ धैर्य रहित हो, दृढ प्रेम न करे, कृतघ्न (किये हुए उपकारका न माननेवाला) हो, दुबला हो, शरीर खरदरा हो, शीघ्र २ श्वास लेनेवाला हो (अथवा जिसके शीघ्र सांस चढ़ आवे), बहुत बोले, जलदी २ चले, बहुत फिरे, चलचित्त हो, सोते हुए स्वप्नमें आकाशचारी हो ॥ ७९ ॥ बुद्धि स्थिर न हो, चचलदृष्टि हो, रत्नादि धनसचय और मित्र जिसके अधिक न हों, कभी कभी कोई २ बात अस्तव्यस्तभी कह उठे ऐसे मनुष्यको वातप्रकृति (सौदायी) जानना ॥ ८० ॥ बकरा, गीदड, सुसा, चूहा, ऊँट और कुत्ता, गीध, काक और गधा ये जतुभी वातप्रधान होतेहै इससे वातप्रकृति मनुष्य भी कुछ २ इनके स्वभावसे मिलते हुए होतेहै ॥८१॥

पित्तप्रकृति ।

स्वेदनो दुर्गन्धः पीतशिथिलाङ्गस्ताम्रनखनयनतालुजिह्वौष्ठपाणिपादतलो दुर्भगो वलीपलितखालित्यजुष्टो बहुभुगुष्णद्वेषी क्षिप्रकोपप्रसादो मध्यमबलो मध्यमायुश्च भवति ॥८२॥ मेधावी निपुणमतिर्विगृह्यवक्ता तेजस्वी समितिषु दुर्निवारवीर्यः ॥ सुप्तः सन् कनकपलाशकर्णिकारान् संपश्येदपि च हुताशविद्युदुल्काः ॥ ८३ ॥ न भयात्प्रणमेदनतेष्वमृदुः प्रणतेष्वपि सान्त्वनदानरुचिः ॥ भवतीह सदा व्यथितास्यगतिः स भवेदिह पित्तकृतप्रकृतिः ॥ ८४ ॥ भुजगोलूकगन्धर्वयक्षमार्जारवानरैः ॥ व्याघ्रर्क्षनकुलानूकैः पैत्तिकास्तु नरा मताः ॥ ८५ ॥

(पा० ८२) ताम्र अरुणवर्ण (इति शब्दस्तोम) ॥

(श्लो० ८३।८४) मेधावीति—मेधा विद्यते यस्य सः मेधा धारणावती बुद्धि । निपुणा क्रियासु दक्षा मतिर्यस्य । विगृह्य वक्ता सवधाय वक्ता अथवा परवाक्यमनुच्छिद्य वचनशील (इति डल्हण) समितिषु संग्रामेषु । सांत्वनं सुप्रशम । व्यथितास्यगति व्यथितमुख सुरतावस्थायाम् (इति डल्हण) । अन्ये तु व्यथितास्यगतिरित्यत्र अस्य गतिर्व्यथिता गमने व्यथा भवतीति समर्थयन्ति ॥ (श्लो० ८५) भुजगोलूकगधर्व इत्यत्र गधर्व पठित तथा च वातप्रकृतावपि गाधर्वचित्त इति पठितस्तयो प्रकृते भेद इत्याह—गानादौ सु वातप्रकृतिक क्रोधे पित्तप्रकृतिक अथवान्य गधर्वेषु क्रोधाधिक्यमपि ॥

जिसके पसीना बहुत आवे, (देहमें या पसीनेमें) दुर्गंध हो, शरीर पीला और शिथिल हो, नखून, नेत्र, तालु वा जिह्वा, हथेली और तलवे विशेष लाल हों, लावण्यसे रहित हो, शरीरमें थोडी अवस्थाहीमें झरी पडजाय, और बाल सुपेद हो जायँ, शिरके बाल उडजायँ, बहुत भोजन करे, उष्णताका द्वेषी हो (धूप गरमी नहीं सुहावे), शीघ्रही क्रोध हो जाय और शीघ्रही प्रसन्न हो जाय, बल और आयु मध्यम हो ॥ ८२ ॥ बुद्धिमान् हो, चतुराई युक्त हो, बातको सोच समझकर कहे, तेजस्वी हो, संग्राममें रुके नहीं (शूरवीर हो), सोते हुए स्वप्नमें सुवर्ण, पेसूके फूल, सुरख कनेरके फूल, आग, बिजली, प्रकाश इत्यादि विशेष देखे ॥ ८३॥ भय दिखानेपरभी नरम न हो और जो अपनेसे नहीं नवे उससे आपभी कडा रहे और जो आपसे नवे उससे शांति करे और उसे कुछ दे देनेकी रुचि करे, मुहकी गति सदाही प्राय. व्यथित रहे (मुँह आया रहे) ऐसा मनुष्य पित्तप्रकृति (सफराबी गरम तासीरवाला) होता है ॥ ८४ ॥ सर्प, उल्लू, गंधर्व, यक्ष, मार्जार, वानर, व्याघ्र, रीछ, नकुल ये भी पित्तप्रधान होते हैं इससे पित्तप्रकृति मनुष्योंका स्वभाव (आदत) प्राय. इनके सदृश होता है ॥ ८५ ॥

कफप्रकृति ।

दूर्वेंदीवरनिस्त्रिंशार्द्रारिष्टशरकाडानामन्यतमवर्णः सुभगः प्रियदर्शनो मधुरप्रियः कृतज्ञो धृतिमान् सहिष्णुरलोलुपो बलवांश्चिरग्राही दृढवैरश्च भवति ॥ ८६ ॥ शुक्लाक्षः स्थिरकुटिलातिनील केशो लक्ष्मीवान् जलदमृदंगसिंहघोष ॥ सुप्तः सन् सकमलहंसचक्रवाकान् संपश्येदपि च जलाशयान्मनोज्ञान् ॥ ८७ ॥
रक्तांतनेत्रः सुविभक्तगात्रः स्निग्धच्छविः सत्त्वगुणोपपन्नः ॥ क्लेशक्षमो मानयिता गुरूणां ज्ञेयो बलासप्रकृतिर्मनुष्यः ॥ ८८ ॥
दृढशास्त्रमतिः स्थिरमित्रधनः परिगण्य चिरात्प्रददाति बहु ॥ परिनिश्चितवाक्यपदः सततं गुरुमानकरश्च भवेत्स सदा ॥ ८९ ॥

(पा० ८६) इंदीवरं नीलोत्पलम् । निस्त्रिंशः [illegible] इति [illegible] [illegible] । ततो मूलवर्णे तु छुरिका (इति [illegible]) । [illegible] इति प्रसिद्ध ॥ (श्लो० ८७) [illegible] ॥ (श्लो० ८९) [illegible] ॥ [illegible] ॥

ब्रह्मरुद्रेंद्रवरुणैः सिंहाश्वगजगोवृषैः ॥ तार्क्ष्यहंसैः समानूका श्लेष्मप्रकृतयो नराः ॥ ९० ॥

जिसका वर्ण दूर्वा, इंदीवर (नील कमल), निस्त्रिंश (खड्ग), आर्द्रारिष्ट (स्निग्ध नींबके पत्ते) अथवा (ताजे रीठे) तथा शरकांड (सरकडा) इनमेसे किसीके समान (सांवला) हो, सुभग (सुंदर) और दीखनेमे मनोहर हो, मीठा भोजन जिसे अच्छा लगे, कृतज्ञ हो (किसीके गुण भूले नहीं), धैर्यवान् हो, शीत, उष्ण,सुख, दुःख और परिश्रमादिका सहनेवाला हो, जितेंद्रिय हो, बलवान् हो, देरसे हरेक बातको स्वीकार करे तथा दृढ वैर रखनेवाला हो अर्थात् किसी वैरीसे शीघ्र प्रसन्न न हो ॥ ८६ ॥ आखे सुपेद हो, गहरे घुघराले तथा अत्यत काले बाल हो, धनवान् हो (अर्थात् फिजूल खर्च न हो) और मेघ, मृदग तथा सिंहके समान गभीर शब्द वाले, सोतेमे कमल, हस और चक्रवाको सहित मनोहर जलाशयो (तालाब, नदियो) को देखे ॥ ८७ ॥ जिसकी आंखोके कोने लाल हो, सब शरीर सुडौल हो, शरीरपर स्निग्ध कांति हो (स्निग्ध शरीर हो) और सत्त्वगुणसे सयुक्त हो, क्लेश सहनेकी शक्ति हो, बडे लोगोंका सत्कार करनेवाला हो ऐसा मनुष्य कफप्रकृति जानना चाहिये ॥ ८८ ॥ जिसकी बुद्धि शास्त्रमे स्थिर हो और मित्रो और धनको स्थिर रखनेवाला हो, देरसे सोच, सँभाल कर बहुत देनेवाला हो, बातको निश्चय विचार कर कहे और पांवको जमा जमा कर धीरे धीरे धरे और प्राय गुमान विशेष करनेवाला हो ॥ ८९ ॥ ब्रह्मा, शिव, इंद्र, वरुण, सिंह, अश्व, हाथी, गो और वृषभ तथा गरुड और हस ये कफप्रकृति है इससे इनके स्वभावके समान प्राय कफप्रकृतियोंका स्वभाव होताहै ॥ ९० ॥

द्वयोर्वा तिसृणां वापि प्रकृतीनां तु लक्षणैः ॥
ज्ञात्वा संसर्गजा वैद्यः प्रकृतीरभिनिर्दिशेत् ॥ ९१ ॥

यदि दो अथवा तीन प्रकृतियोंके कुछ कुछ लक्षण मिले हुए जान पडे तो वैद्य उन्हे विचार कर ससर्गज प्रकृति कहे (जैसे किसीमे कुछ वातप्रकृतिके लक्षण पाये जाय और कुछ पित्तप्रकृतिके तो उसे वात-पित्त प्रकृति जानना और जिसमे वात और कफके कुछ २ लक्षण हो उसे वात कफ प्रकृति और जिस किसीमें कफ और पित्तके लक्षण हों उसे कफ पित्त प्रकृति जानना) और जिसमे तीनोंके कुछ २ लक्षण हो उसे त्रिदोष प्रकृति जानना चाहिये ॥ ९१ ॥

प्रकोपो वान्यथाभावः क्षयो वा नोपजायते ॥ प्रकृतीनां स्वभावेन जायते तु गतायुषः ॥ ९२ ॥ विषजातो यथा कीटो न त्रि

(श्लो० ९०)'तार्क्ष्यहंसै समानूका' इत्यत्र तार्क्ष्यहंसमानूका इति वा समस्त पाठ ॥

जिसके पसीना बहुत आवे, (देहमें या पसीनेमें) दुर्गंध हो, शरीर पीला और शिथिल हो, नाखून, नेत्र, तालु वा जिह्वा, हथेली और तलवे विशेष लाल हों, लावण्यसे रहित हों, शरीरमें थोडी अवस्थाहीमें झरी पडजाय, और बाल सुपेद हो जायँ, शिरके बाल उडजायँ, बहुत भोजन करे, उष्णताका द्वेषी हो (धूप गरमी नहीं सुहावे), शीघ्रही क्रोध हो जाय और शीघ्रही प्रसन्न हो जाय, बल और आयु मध्यम हो ॥ ८२ ॥ बुद्धिमान् हो, चतुराई युक्त हो, बातको सोच समझकर कहे, तेजस्वी हो, संग्राममें रुके नहीं (शूरवीर हो), सोते हुए स्वप्नमें सुवर्ण, पेसूके फूल, सुरख कनेरके फूल, आग, बिजली, प्रकाश इत्यादि विशेष देखे ॥ ८३॥ भय दिखानेपरभी नरम न हो और जो अपनेसे नहीं नवे उससे आपभी कड़ा रहे और जो आपसे नवे उससे शांति करे और उसे कुछ दे देनेकी रुचि करे, सुन्दर गति सदाही प्राय. व्यथित रहे (भूल आया रहे) ऐसा मनुष्य पित्तप्रकृति (सफराबी गरम तासीरवाला) होता है ॥ ८४ ॥ सर्प, उल्लू, गधर्व, यक्ष, मार्जार, वानर, व्याघ्र, रीछ, नकुल ये भी पित्तप्रधान होते हैं इससे पित्तप्रकृति मनुष्योंका स्वभाव (आदत) प्राय: इनके सदृश होता है ॥ ८५ ॥

कफप्रकृति ।

दूर्वेंदीवरनिस्त्रिंशार्द्रारिष्टशरकाडानामन्यतमवर्णः सुभगः प्रियदर्शनो मधुरप्रियः कृतज्ञो धृतिमान् सहिष्णुरलोलुपो बलवाश्चिरग्राही दृढवैरश्च भवति ॥ ८६ ॥ शुक्लाक्षः स्थिरकुटिलातिनीलकेशो लक्ष्मीवान् जलदमृदङ्गसिंहघोषः ॥ सुप्तः सन् सकमलहंसचक्रवाकान् संपश्येदपि च जलाशयान्मनोज्ञान् ॥ ८७ ॥
रक्तान्तनेत्रः सुविभक्तगात्रः स्निग्धच्छविः सत्त्वगुणोपपन्नः ॥
क्लेशक्षमो मानयिता गुरूणां ज्ञेयो बलासप्रकृतिर्मनुष्यः ॥ ८८ ॥
दृढशास्त्रमतिः स्थिरमित्रधनः परिगण्य चिरात्प्रददाति बहु ॥
परिनिश्चितवाक्यपदः सततं गुरुमानकरश्च भवेत्स सदा ॥ ८९ ॥

(पा० ८३) स्वप्नेषु [illegible] । [illegible] निरीक्षेत [illegible] इति [illegible] । [illegible] (इति [illegible]) । [illegible] ॥ (श्लो० ८४) [illegible] ॥ (श्लो० ८९) [illegible] ॥

ब्रह्मरुद्रेन्द्रवरुणैः सिंहाश्वगजगोवृषैः ॥ तार्क्ष्यहंसैः समानूका श्लेष्मप्रकृतयो नराः ॥ ९० ॥

जिसका वर्ण दूर्वा, इंदीवर (नील कमल), निस्त्रिंश (खड्ग), आर्द्रारिष्ट (स्निग्ध नींबके पत्ते) अथवा (ताजे रीठे) तथा शरकांड (सरकडा) इनमेंसे किसीके समान (सांवला) हो, सुभग (सुंदर) और दीखनेमें मनोहर हो, मीठा भोजन जिसे अच्छा लगे, कृतज्ञ हो (किसीके गुण भूले नहीं), धैर्यवान् हो, शीत, उष्ण,सुख, दुःख और परिश्रमादिका सहनेवाला हो, जितेंद्रिय हो, बलवान् हो, देरसे हरेक बातको स्वीकार करे तथा दृढ वैर रखनेवाला हो अर्थात् किसी वैरीसे शीघ्र प्रसन्न न हो ॥ ८६ ॥ आंखे सुपेद हों, गहरे घुघराले तथा अत्यंत काले बाल हों, धनवान् हो (अर्थात् फिजूल खर्च न हो) और मेघ, मृदंग तथा सिंहके समान गंभीर शब्द बोले, सोतेमें कमल, हंस और चक्रवाको सहित मनोहर जलाशयो (तालाब, नदियो) को देखे ॥ ८७ ॥ जिसकी आंखोके कोने लाल हों, सब शरीर सुडौल हो, शरीरपर स्निग्ध कांति हो (स्निग्ध शरीर हो) और सत्त्वगुणसे संयुक्त हो, क्लेश सहनेकी शक्ति हो, बडे लोगोंका सत्कार करनेवाला हो ऐसा मनुष्य कफप्रकृति जानना चाहिये ॥ ८८ ॥ जिसकी बुद्धि शास्त्रमें स्थिर हो और मित्रो और धनको स्थिर रखनेवाला हो, देरसे सोच, सँभाल कर बहुत देनेवाला हो, बातको निश्चय विचार कर कहे और पांवको जमा जमा कर धीरे धीरे धरे और प्रायः गुमान विशेष करनेवाला हो ॥ ८९ ॥ ब्रह्मा, शिव, इंद्र, वरुण, सिंह, अश्व, हाथी, गौ और वृषभ तथा गरुड और हंस ये कफप्रकृति हे इससे इनके स्वभावके समान प्रायः कफप्रकृतियोंका स्वभाव होताहै ॥ ९० ॥

द्वयोर्वा तिसृणां वापि प्रकृतीनां तु लक्षणैः ॥
ज्ञात्वा संसर्गजा वैद्यः प्रकृतीरभिनिर्दिशेत् ॥ ९१ ॥

यदि दो अथवा तीन प्रकृतियोंके कुछ कुछ लक्षण मिले हुए जान पडे तो वैद्य उन्हे विचार कर संसर्गज प्रकृति कहे (जैसे किसीमें कुछ वातप्रकृतिके लक्षण पाये जाय और कुछ पित्तप्रकृतिके तो उसे वात-पित्त प्रकृति जानना और जिसमे वात और कफके कुछ २ लक्षण हों उसे वात कफ प्रकृति और जिस किसीमें कफ और पित्तके लक्षण हों उसे कफ-पित्त प्रकृति जानना) और जिसमें तीनोंके कुछ २ लक्षण हों उसे त्रिदोष प्रकृति जानना चाहिये ॥ ९१ ॥

प्रकोपो वान्यथाभावः क्षयो वा नोपजायते ॥ प्रकृतीनां स्वभावेन जायते तु गतायुषः ॥ ९२ ॥ विषजातो यथा कीटो न वि-

(श्लो० ९०)'तार्क्ष्यहंसैः समानूका' इत्यत्र 'तार्क्ष्यहंससमानूका' इति वा समस्त पाठः ॥

पेर्ण विपर्यते ॥ तद्वत्प्रकृतयो मर्त्य शक्नुवंति नै बोधितुम् ॥९३॥

स्वभावहीसे प्रकृतियोंका-प्रकोप और अन्यथाभाव (पल्ट जाना) तथा क्षय नहीं होताहै यदि किसीको होजाय तो उसे गतायु(आसन्न मृत्यु) समझना चाहिये (जैसे वातप्रकृति मनुष्योंको वायुका कोप या पित्तप्रकृति, कफप्रकृति होजाना या वायुका विशेपक्षय होजाय तो उसे मृत्युकारक जानो) क्योंकि प्रकृतिमें दोपका कोप तथा पल्टा अथवा क्षय मृत्युके समीपही होताहै ॥९२॥ विषका पैदा हुआ कीडा जैसे विपसे व्याधित नहीं होता वैसेही प्रकृतिके वातादि दोष भी मनुष्यको विशेप बाधा नहीं करते ॥ ९३ ॥

प्रकारांतर ।

प्रकृतिमिह नराणां भौतिकीं केचिदाहुः पवनदहनतोये की र्तितास्तास्तु तिस्र ॥ स्थिरविपुलशरीरः पार्थिवश्च क्षमावान् शुचिरथ चिरजीवी नाभसः खैर्महद्भिः ॥ ९४ ॥

कोई ऐसा कहतेहै कि मनुष्योंकी प्रकृति पांचभौतिकी अर्थात् पृथिवीप्रधान, जल-प्रधान, तेज प्रधान, वायुप्रधान तथा आकाशप्रधान होती है इनमे वातप्रकृति वायु-प्रधान, पित्तप्रकृति तेज प्रधान और कफप्रकृति जलप्रधान जाननी चाहिये । इन तीनोंके लक्षण हम कहचुके (शेप रहीं दो) उनमसे जिसका शरीर स्थिर हो, बडा (विशाल) हो, क्षमायुक्त हो उसे पार्थिव (पृथ्वीप्रधान प्रकृति) जानो और जो बहुत पवित्र रहे, चिरजीवी हो जिसके नाक, कान आदिक छिद्र बडे चौडे हों(और हलका हो)वह आकाशप्रधान जानना चाहिये ॥ ९४ ॥

ब्रह्मकायादिके लक्षण ।

शौचमास्तिक्यमभ्यासो वेदेषु गुरुपूजनम् ॥ प्रियातिथित्वमिज्या च ब्रह्मकायस्य लक्षणम् ॥ ९५ ॥ माहात्म्यं शौर्यमाज्ञा च सततं शास्त्रबुद्धिता ॥ भृत्यानां भरणं चापि माहेन्द्रं कायलक्षणम् ॥ ९६ ॥ शीतसेवासहिष्णुत्वं पैगल्यं हरिकेशता ॥ प्रियवादित्व-मित्येतद्वारुणं कायलक्षणम् ॥ ९७ ॥

जिसमें पवित्रता हो, आस्तिकता हो, वेदादि शास्त्रोंके ... नमें निष्ठा हो, आये हुए अतिथि (अभ्यागत तथा महि...

(श्लो० ९३) स्वभावत न ... (इति ...) ॥ (श्लो० ९६) ... हरिकेश ... ॥

दिमें प्रीति हो वह ब्रह्मसत्त्व शरीर होता है ॥ ९५ ॥ जिसमें माहात्म्य (महाशयत्व) हो, शूरता हो, आज्ञाशक्ति हो, निरंतर शास्त्रमें बुद्धि हो, भृत्योंका भरण करे वह महेंद्रकाय अर्थात् महेंद्रसत्त्व शरीर होता है ॥ ९६ ॥ शीतल पदार्थोंका विशेष सेवन करे, सुखदुःखादिको सहसके, नेत्र पीले हों तथा बालभी भूरे हों, प्यारे वचन बोले वह वरुणसत्त्वशरीर मनुष्य होता है ॥ ९७ ॥

मध्यस्थता सहिष्णुत्वमर्थस्यागमसंचयौ ॥ महाप्रसवशक्तित्व कौबेर कायलक्षणम् ॥ ९८ ॥ गंधमाल्यप्रियत्वं च नृत्यवादित्रकामिता ॥ विहारशीलता चैव गांधर्वं कायलक्षणम् ॥ ९९ ॥ प्राप्तकारी दृढोत्थानो निर्भयः स्मृतिमाञ्शुचिः ॥ रागमोहभयद्वेषैर्वर्जितो याम्यसत्त्ववान् ॥ १०० ॥ जपव्रतब्रह्मचर्यहोमाध्ययनसेविनम् ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नमृषिसत्त्वं नरं विदुः ॥ १०१ ॥ सप्तैते सात्त्विकाः कार्या राजसांस्तु निबोध मे ॥ १०२ ॥

जिसका स्वभाव मध्यस्थ होनेका हो (हरेकके बीचमें पड उनका झगडा मिटावे, सहनशीलता हो, जिसके धनका आगमभी बहुत हो और संचयभी हो, बहुत सन्तान पैदा करनेकी शक्ति हो यह कुबेरसत्त्व शरीरके लक्षण हैं ॥ ९८ ॥ जिसे सुगंध माला प्रिय हो, नाच और गानेका शौक हो, विहार (सैल तमाशे) का शौकीन हो यह गंधर्वसत्त्व कायके लक्षण हैं ॥ ९९ ॥ कामोंको युक्तिसे करे और दृढतासे कामका आरंभ करे, भय रहित हो, स्मृति बहुत हो अर्थात् भूले नहीं, पवित्र रहे तथा प्रेम, मोह, भय और द्वेष इनसे वर्जित हो उसे यमसत्त्व शरीरके लक्षणोंसेयुक्त जाने ॥ १०० ॥ जो प्रायः जप, व्रत, ब्रह्मचर्य, होम और पठन पाठनमें विशेष प्रवृत्त रहे, ज्ञान और विज्ञानसे युक्त हो उसे ऋषिसत्त्व मनुष्य जानो ॥ १०१ ॥ ये पूर्वोक्त सात प्रकृति सात्त्विक (सत्त्वगुण प्रधान) शरीरोंकी होतीहैं इसके अगाडी रजोगुणप्रधान प्रकृति शरीरोंके लक्षण सुनो ॥ १०२ ॥

ऐश्वर्यवत रौद्रं च शूरं चंडमसूयकम् ॥ एकाशिनं चौदरिकमासुरं सत्त्वमीदृशम् ॥ १०३ ॥ तीक्ष्णमायासिनं भीरुं चंडं माया-

---

(श्लो० ९९) नृत्यवादित्रकामिता नृत्यवाद्यप्रियत्वम् ॥ (श्लो० १००) प्राप्तकारी युक्तकारी । दृढो त्थान दृढारंभ । (इति डल्हन) ॥ (श्लो० १०३) रौद्रं भयानकम् । चंडं तीव्रकोपम् । असूयकं परगुणेषु मत्सरिणम् । एकाशिनं एकाकी एव चाश्नातीत्यर्थ । औदरिकं पत्नीं गयदासस्तु औदरिकमित्यत्र आमिषकामित्वे पठति आम (?) उन्मत्तमिति च व्याख्याति ॥

यति। एवं विवर्द्धितः स यदा हस्तपादजिह्वाघ्राणकर्णनितम्बादिभिरङ्गैरुपेतस्तदा शरीरमिति संज्ञां लभते। तच्च षडङ्गं शाखाश्चतस्रो मध्यं पञ्चमं षष्ठं शिर इति ॥ २ ॥

माताके गर्भाशयमें क्षेत्रज्ञ (जीव) और प्रकृति (प्रधानादि) तथा विकार (पंचमहाभूत और एकादश इंद्रिय) इनसे मिश्रित शुक्र और शोणितका जो घनीभूत आकार हो वह गर्भ कहलाता है ॥ १ ॥ उस चेतनायुक्त गर्भको वायु विभाग करता है अर्थात् दोष, धातु, मल और अंग, प्रत्यंगोंको जुदा जुदा यथास्थित करता है और तेज (अग्नितत्त्व) उसे पकाता है तथा जलतत्त्व क्लेदन (आर्द्रता) करता है और पृथिवीतत्त्व उसे कडा (मूर्तिमान्) कर देता है तथा आकाश उसे बढाता है। जब इस प्रकारसे बढा हुआ गर्भ हाथ, पांव, जिह्वा, नासिका, कर्ण और नितंब (चूतड) आदि अंगोंसे उपयुक्त होजाता है तब वह शरीरसंज्ञाको प्राप्त होता है वह शरीर छः अंगोंवाला होता है, जिनमें चार अंग तो चारों शाखा अर्थात् दो हाथ और दो पांव और पांचवां अंग मध्यभाग अर्थात् धड और छठा अंग शिर कहलाता है (यूनानीवाले अंडकोश और लिंगको सातवां अंग मानते हैं इससे शरीरको "हफ्त अंदाम" अर्थात् सात अंगवाला शरीर कहते हैं) ॥ २ ॥

अतः परं प्रत्यङ्गानि वक्ष्यन्ते ॥

इससे अगाडी प्रत्यंगोंको कहते हैं ॥

मस्तकोदरपृष्ठनाभिललाटनासाचिबुकबस्तिग्रीवा इत्येता एकैकाः कर्णनेत्रनासाभ्रूशङ्खांसगण्डकक्षस्तनवृषणपार्श्वस्फिग्जानुबाहूरुप्रभृतयो द्वे द्वे विंशतिरङ्गुलयः स्रोतांसि च वक्ष्यमाणानि एष प्रत्यङ्गविभाग उक्तः ॥ ३ ॥

मस्तक, पेट, पीठ, नाभि, ललाट, नाक, ठोडी, बस्ति और ग्रीवा (गरदन) ये एक एक होते हैं और कान, आंख, नाकके नथने, भृकुटी, शंख (कनपटी), अंस (कांधे), गंड (गाल), कांख, चूंची, वृषण (अंड), पँसवाडे, स्फिक् (कूले), घुटने, हाथ और साथल (और प्रभृति शब्दसे होठ तथा कानकी लौ आदि) ये दो दो होते हैं और बीस अंगुली तथा स्रोत (मुख, लिंग, गुदादि) जो अगाडी कहे जायँगे यह सब प्रत्यंगविभाग कहा है (अर्थात् ऊपर छः अंग कहे और ये प्रत्यंग कहे हैं) ॥ ३ ॥

शरीरके अवयवोंका संख्या वर्णन ।

तस्य पुनः सङ्ख्यानम्। त्वचः कलाः धातवो मला दोषा यकृत्प्लीहा

हानो फुप्फुस उडुको हृदयमाशया अन्त्राणि वृक्कौ स्रोतांसि कंडरा जालानि कूर्चा रज्जव सेवन्य संघाता सीमंता अस्थीनि संधय स्नायव· पेश्यो मर्माणि सिरा धमन्यो योगवहानि स्रोतांसि च॥४॥

शरीरके अवयव संक्षिप्ततासे इसप्रकार है कि त्वचा (चर्म), कला (झिल्लिका), धातु (रस, रक्त, मास, मेद आदि), मल (विष्ठा, मूत्रादि), दोष (वात,पित्त, कफ), यकृत् (जिगर), प्लीहा (तिल्ली), फुप्फुस (फेफडा), उडुक (मलाधार मोटा अंतडा), हृदय (हृत्कमल या दिल), आशय (आमाशय अर्थात् भोजन जाकर ठहरने और पकनेकी जगह जिसे यूनानी हकीम मेदा कहतेहै इत्यादि) अन्त्र (अंतडियों), वृक्क (गुरदे), स्रोत (द्वार), कंडरा (मोटी नसें), जाल (मांसादिका जाल),कूर्च(कुँचले), रज्जु (बंधनी मांसरज्जु), सेवनी (सीवन), संघात(अस्थिशृंगाटक), सीमंत(केश), अस्थि (हाड), संधि (जोड), स्नायु, (नसें), पेशी(गिलटियां), मर्म (मर्मस्थान), सिरा (वारीक रगें),धमनी(नाडी) और योगवाही स्रोतस् (अन्न उदकादिको वहानेवाले स्रोत) और चकारशब्दसे अन्यभी जानने ॥ ४ ॥

त्वच सप्त। कला· सप्त। आशया सप्त। धातवः सप्त। सप्त सिरा शतानि। पंच पेशीशतानि। नव स्नायुशतानि। त्रीण्यस्थिशतानि। द्वे दशोत्तरे संधिशते। सप्तोत्तरं मर्मशतम्। चतुर्विंशतिर्धमन्य । त्रयो दोषा·। त्रयो मला·। नव स्रोतांसीति समास ॥ ५॥

त्वचा सात है (इनका वर्णन पहले कर चुके हैं), कलाभी सात है (इन्हेंभी कह चुके है) और आशय (वाताशय, आमाशयादि) येभी सात है और धातु(रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये) भी सात हे तथा सिरा (रगें) सातसौ ७०० है और पेशी (गिलटियां) पांचसौ५०० हैं और स्नायु नौसौ९०० हे और हड्डियां तीनसौ ३०० है और दोसौ दश २१० संधि है और एकसौ सात १०७ मर्म है तथा चौवीस धमनी है और दोष तीन है और मल तीन है तथा नौ स्रोत (द्वार) है यह संक्षिप्त वर्णन है ॥ ५ ॥

विस्तारोऽत ऊर्द्ध्वम्। त्वचोऽभिहिता कला धातवो मला दोषा यकृत्प्लीहानौ फुप्फुस उंडुको हृदय वृक्कौ च ॥ ६ ॥

इससे अगाडी विस्तार करते हैं। जिसमेंसे त्वचा, कला,धातु,मल, दोष, यकृत्, प्लीहा,फुप्फुस, उडुक, हृदय और वृक्क इनको वता चुके है (निदर्शनमात्र कहचुके हैं। इनका विस्तृत वर्णन हम ग्रंथातर और मतांतरसे अन्यत्र करेंगे) ॥ ६ ॥

आशय ।

आशयास्तु वाताशय· पित्ताशय. श्लेष्माशयो रक्ताशय आमाशय पक्वाशयो मूत्राशय स्त्रीणां गर्भाशयोऽष्टम इति ॥ ७ ॥

आशय इस प्रकारसे है कि १ वाताशय (नाभिसे दो अंगुल नीचे), २ पित्ताशय (यही आमाशय है यह नाभिसे कुछ ऊपर है इसेही पित्ता कहते हैं), ३ कफाशय (यह छातीके नीचे आमाशयके ऊपर है), ४ रक्ताशय (छातीमें हृदयके पास है), ५ आमाशय (यह नाभिसे स्तनपर्यंत है इसे मेदा कहते हैं), ६ पक्वाशय (यह वाताशयके नीचे है इसीका अधोभाग मलाशय कहाता है), ७ मूत्राशय (यही बस्ति अर्थात् मसाना कहाता है यह नाभिसे नीचे लिंगके मूलतक है) और स्त्रियोंके आठ८वां गर्भाशय होताहै (यह पक्वाशय और पित्ताशयके मध्यमें होताहै)७॥

अंत्रप्रमाण ।

सार्द्धत्रिव्यामान्यन्त्राणि पुंसां स्त्रीणामर्द्धव्यामहीनानि ॥८॥

पुरुषोंकी अंत्र (आंतें) साढे तीन व्याम लंबी होतीहैं और स्त्रियोंकी आंतें उससे आधा व्याम कम अर्थात् तीन व्याम लंबी होती हैं (पसवाडोंकी तरफ तिरछे दोनों हाथ फैलानेसे जो उनका अंतर होताहै वह व्याम कहलाताहै) ॥ ८ ॥

स्रोत (द्वार)

श्रवणनयनवदनघ्राणगुदमेढ्राणि नव स्रोतांसि नराणां बहिर्मुखान्येतान्येव स्त्रीणामपराणि च त्रीणि द्वे स्तनयोरधस्ताद्रक्तवहं च ॥ ९ ॥

दो कर्ण, दो नेत्र, एक मुख, दो नासिकाके छिद्र, एक गुदा, एक लिंग इस प्रकार बाहरको मुखवाले ये नौ द्वार पुरुषोंके शरीरमें होते हैं और स्त्रियोंके इनसे अधिक तीन और द्वार होते हैं, दो स्तन (चूची) और एक आर्तवका मार्ग गर्भाशय होताहै ॥ ९ ॥

(पा० ७) [illegible]

कडरा।

षोडश कडराः। तासां चतस्त्रः पादयोस्तावत्यो हस्तग्रीवापृष्ठेषु तत्र हस्तपादगतानां कंडराणां नखा प्ररोहा. ग्रीवाहृदयनिबंधिनीनामधोभागगताना मेढ्र श्रोणिपृष्ठनिबधिनीनामधोभागगताना बिंबः मूर्द्धोरुवक्षोक्षिपिंडादीनां च ॥ १० ॥

कडरा (मोटी नसें) सोलह होती हैं उनमेंसे ४ दोनों पावोंमें तथा चारही दोनो हाथोंमे और ४ ग्रीवामे और चारही पीठमें होती है जिनमे हाथ और पावोंकी कडरा नीचेको जाती है और उनके अग्रभाग (अगुलियोंके) नख होते है (अर्थात नख पर्यंत जाकर हाथ, पावोंकी कडरा समाप्त होती है)। ग्रीवा और हृदयको बॉधनेवाली जो चार कडरा है नीचे जाकर उनका अग्रभाग मेढ्र होता है (अर्थात् ये मेढपर समाप्त होती है) और पीठको कमरसे बांधनेवाली जो चार कडरा है नीचे जाकर उनका अग्रभाग नितंबबिंब (चूतड) है (अर्थात् ये चूतडों पर्यंत जाकर समाप्त होती है) इसी प्रकार मूर्द्धा, उर, वक्षस्थल, नेत्र, पिंडादिके मडल भी (इन्हीं कडराओंके उपरिगत अग्रभाग है ऐसा) जानना ॥ १० ॥

जाल।

मांसशिरास्नाय्वस्थिजालानि प्रत्येकं चत्वारि चत्वारि तानि मणिबंधगुल्फसंश्रितानि परस्परनिबद्धानि परस्परसंश्लिष्टानि परस्परगवाक्षितानि चेति येर्गवाक्षितमिदं शरीरम् ॥ ११ ॥

मांस, शिरा (रग), स्नायु (नस) तथा हड्डियां इनमेंसे प्रत्येकके चार चार जाल है ये जाल दोनो मणिबंधों (पहुचों) में और दोनों गुल्फ (पांवकेटकनों) में ऐसे इन चारों स्थानोंमें चारों प्रकारके जाल हैं ये परस्पर बँधे हुए और परस्पर मिले (लिपटे) हुए तथा परस्पर जालीके समान है इसीसे इस शरीरको गवाक्षित अर्थात् झरोखे युक्त कहते है ॥ ११ ॥

कूर्च।

षट् कूर्चास्ते हस्तपादग्रीवामेढ्रेषु। हस्तयोर्द्वौ। पादयोर्द्वौ। ग्रीवामेढ्रयोरेकैकः ॥ १२ ॥

(या० १०) कंडराप्रयोजनमाह भावमिश्र —"महत्य स्नायवः प्रोक्ताः कण्डरास्तास्तु षोडश। प्रसारणाकुञ्चनयोर्दृष्टं तासां प्रयोजनम् ॥" (या० ११) मणिबंध मणिरिष्यतेऽत्र इति मणिबंध प्रकोष्ठ पाण्योमध्यस्थे करसंधौ (इति शब्दस्तोम) गुल्फ पादग्रंथी ॥ (या० १२) कूर्चाः इति—कूर्चः भ्रुवोर्मध्यस्थिते लोमोपचये इत्यादि (इति शब्दस्तो०) भावमिश्रस्तु—"कूर्चा सन्ति शिरास्नायुमांसास्थिसमवायजाः स्मृता"

कूर्च अर्थात् कूँचले जो कूँचीके तुल्य होते हैं छः हैं ये हाथों, पावों, ग्रीवा और लिंग इनके मूलमें हैं। हाथोंके मूलमें दो (दो जगह) इसी भांति पावोंके मूलमें भी दो तथा ग्रीवामें एक और मेढ्रके मूलमें भी एक है (कूंचेके तुल्य छोटे और कडे केशोंको कूर्च कहते हैं और कई मांस, सिरा और स्नायु आदिके अंकुरित पदार्थको कूर्च बतलाते हैं) ॥ १२ ॥

मांसरज्जु ।

महत्यो मांसरज्जवश्चतस्रः । पृष्ठवंशमुभयतः पेशीनिबंधनार्थं द्वे बाह्ये आभ्यंतरे च द्वे ॥ १३ ॥

बड़ी मोटी मांसकी रज्जु (रस्से सदृश) चार हैं ये पीठके बांसके दोनों तरफ पेशियोंके बांधनेके निमित्त हैं जिनमेंसे दो बाहरकी तरफ दोनों ओर हैं और दो भीतरको दोनों तरफ हैं ॥ १३ ॥

सेवनी ।

सप्त सेवन्यः । शिरसि विभक्ताः पंच जिह्वाशेफसोरेकैका ताः परिहर्तव्याः शस्त्रेण ॥ १४ ॥

सेवनी (सींवन) शरीरमें सात हैं, पांच जगह तो शिरमें हैं और एक जिह्वामें और एक लिंगेंद्रियके नीचे ये सीवनें शस्त्रसे बचानी चाहिये (यदि नश्तर लगानेका काम पडे तो इन्हें बचाकर लगाना चाहिये) ॥ १४ ॥

अस्थिसंघात ।

चतुर्दशास्थ्नां संघाताः । तेषां त्रयो गुल्फजानुवंक्षणेषु । एतेनेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातौ । त्रिकशिरसोरेकैकः ॥ १५ ॥

अस्थिसंघात (हड्डीका जोड़) चौदह इस शरीरमें हैं इनमेंसे तीन एक पांवमें ऐसे हैं कि एक तो टखनेमें, एक घुटनेमें और एक जंघाके मूलमें । इसीप्रकार तीन दूसरे पांवमें और तीन एक हाथमें । इसी भांतिसे एक पहुँचेमें, एक कोहनीमें, एक कांधेमें । ऐसेही तीन दूसरे हाथमें ये बारह १२ हुए और एक त्रिकस्थानमें और एक शिरमें ऐसे सब १४ हुए (किसी किसीके मतसे ये अस्थिसंघात १८ होते हैं जो १४ तो उपर्युक्त और २ छातीमें जिसे पीठी कहते हैं तथा २ दोनों नितंबोंके बीचमें जिसे टूटी कहते हैं और दो दोनों अंसकूटोंपर ऐसे १८ हुए) ॥ १५ ॥

(पा० १३) स्त्रीणां तु–भागे... (टिप्पणी) ॥ (पा० १५) ... ॥

सीमत ।

चतुर्दशैव सीमतास्ते चास्थिसघातवद्गणनीयाः यतस्तैर्युक्ता अस्थि संघाता. । ये ह्युक्ताःसंघातास्तु खल्वष्टादशैकेषाम् ॥ १६ ॥

सीमत मनुष्यशरीरमे १४ है वे अस्थिसघातके भांतिही गिनने चाहिये क्योंकि अस्थिसघात सीमतोसे मिले हुएहै (सीमन्त अवयवकी सीमाके अन्तको कहतेहै) और जो पहले १४ अस्थिसघात कहेहै किसीके मतसे वे १८ होते है (उनको १५ वें वाक्यकी टीकामे हम गिनाचुके है) ॥१६॥

अस्थिसख्या ।

त्रीणि सषष्टीन्यस्थिशतानि वेदवादिनो भाषते । शल्यतत्रे तु त्रीण्येव शतानि । तेषा सविंशमस्थिशतं शाखासु । सप्तदशोत्तर शत श्रोणिपार्श्वपृष्ठोदरोरःसु । ग्रीवा प्रत्यूर्द्ध त्रिषष्टि । एवम स्थ्ना त्रीणि शतानि पूर्यते ॥ १७ ॥

इस मनुष्यशरीरमे वेदवादी विद्वान् तीनसो साठ ३६० हड्डियां कहतेहै परन्तु शल्यतत्र (चीरफाड़की विद्या) से केवल तीनसो ३०० ही प्रतीत होतेहै जिनमेसे एकसौ बीस १२० हड्डियां तो चारो हाथा, पैरोंमें है और एकसो सत्रह ११७ कमर पँसवाडे, पीठ, उदर और छातीमें है तथा तिरसठ ६३ हड्डियां ग्रीवासे ऊपर चेहरेमे है ऐसे सब मिलकर पूरी तीनसौ ३०० हुई ॥१७॥

पृथक् पृथक् अस्थिगणना ।

एकैकस्या तु पादागुल्या त्रीणि त्रीणि तानि पचदश । तलकूर्च गुल्फसश्रितानि दश । पार्ष्ण्यामेकम् । जंघाया द्वे । जान्न्येकम् । एकमूराविति । त्रिंशदेवमेकस्मिन् सक्थ्नि भवति । एतेनेतरस क्थिबाहू च व्याख्यातौ । श्रोण्यां पच तेषा गुदभगनितम्बेषु चत्वारि । त्रिकसश्रितमेकम् । पार्श्वे षट्त्रिंशदेवमेकस्मिन् । द्वितीयेप्येवम् । पृष्ठे त्रिंशत् । अष्टावुरसि । द्वे अक्षकसज्ञे । ग्रीवाया नवकम् । कठनाड्या चत्वारि । द्वे हन्वो । दंता द्वात्रिंशत् । नासाया त्रीणि । एक तालुनि । गडकर्णशखेष्वेकैकम् । षट् शिरसि ॥ १८ ॥

(वा०१६) "चतुर्दशैव सीमता कथिता मुनिपुगै । सघाता [illegible] ॥" ([illegible]) ॥

एक एक पांवकी अगुलीमें तीन तीन हड्डियां है ऐसे पांच अंगुलियोंमे १५ हुई और तलवे, पजे और टकनेमें १० (इस भांति कि अगुलियोंकी सीधमे ५, इनके जोडमे १, कूर्चमें २ और टकनेमे दो ऐसे १० हुई), एडीमे १, जघामे २, जानु (घुटने) में १ और साथल्मे १ ऐसे सब एक पाँवमें तीस हड्डी हुई इसी हिसाबसे दूसरे पांवमें ३० और दोनों हाथोंमें ६० बस चारो हाथ पावोंमें १२० हो गई। और कमरमें ५ इनमें गुदापर एक, भग या लिंगके ऊपर १, दोनों चूतड़ोंमे २ और त्रिकसधिमे १ (ऐसे ५ हुई), एक पसवाड़ेमें ३६ और दूसरे पसवाड़ेमेंभी ३६ तथा पीठमें ३० और उर (छाती) में ८ और अक्षकसन (हसली) की २ ऐसे धड़में सब ११७ हुई ग्रीवामें ९ और कठनाडीमें ४ और ठोडीमें २ और दांत ३२, नासिकामें ३, तालुमे १, गलोंथे, कान और कनपटीमे एक एक दोनो तरफ ६ हुई, ओर शिरमें ६ हड्डियां है ऐसे चेहरेकी सब ६३ हुई (इन सबको मिलाया तो हाथ, पांवोंकी १२०, धड़की ११७ और चेहरेकी ६३ सब ३०० पूरी हुई) ॥ १८॥

एतानि पंचविधानि भवति । तद्यथा कपालरुचकतरुणवलयनलकसंज्ञानि। तेषा जानुनितबासगडतालुशखशिर सु कपालानि। दशनास्तु रुचकानि। घ्राणकर्णग्रीवाक्षिकोपेषु तरुणानि। पाणिपादपार्श्वपृष्ठोदरोरस्सु वलयानि। शेषाणि नलकसंज्ञानि॥ १९॥ भवन्ति चात्र-

ये पूर्वोक्त सब अस्थि पांच प्रकारके है। यथा कपालसंज्ञक, रुचक स०, तरुण स०, वलय स० और नलकसंज्ञक। इनमेंसे घुटने, चूतड़, सोंदे, गलोंथे, तालु, कनपटी और शिरमें कपालसज्ञक (शरावाकृति) अस्थि है। और दांत रुचक (चीकमणीले) है। और नाक, कान, ग्रीवा, नेत्र कोष इनमे तरुण (कोमल) अस्थि है। और हाथ, पांव, पँसवाड़े, पीठ, पेट, वक्षस्थल (छाती) इनमें वलयसज्ञक (गुप्ति और गमदारमे) अस्थि है शेष अगुलियों, बाहु, जघा आदिमें नलकसज्ञक (नलिकाके आकार पोलेमें खाली) अस्थियां है ॥ १९॥ इस विषयमें श्लोक है-

अभ्यतरंगतैः सारैर्यथा तिष्ठति भूरुहा ॥ अस्थिसारैस्तथा देहो ध्रियते देहिनां ध्रुवम् ॥ २०॥ तन्माच्चिरविनष्टेषु त्वङ्मासेषु शरीरिणाम्॥ अस्थीनि न विनश्यति साराण्येतानि देहिनाम् ॥२१॥ मासान्यत्र निबद्धानि शिराभि स्नायुभिस्तथा ॥ अस्थीन्यालंबन कृत्वा न शीर्यन्ते पतंति वा ॥ २२ ॥

जैसे भीतरके सार पदार्थसे वृक्षादि स्थित रहते हैं इसीप्रकार अस्थिके सारसे मनुष्योंके शरीर धारण किये हुए स्थित रहते हैं ॥ २० ॥ इसी कारणसे यदि कभी त्वचा, मांसादि चिरविनष्ट होजायँ (अर्थात् घटजायँ, सूखजायँ, क्षय होजायँ) तो भी अस्थि नष्ट नहीं होते नहीं घटते इसीसे ये देहीके सार हैं ॥ २१ ॥ इन अस्थियोंमें शिरा और स्नायुवोंसे मांस बँधा हुआ है और अस्थियोंको आलंबन करके मजबूत किये हुए हैं इस कारणसे ये अस्थि न तो बिखरतेहैं और न गिरतेहैं ॥ २२ ॥

सन्धि ।

सन्धयस्तु द्विविधाश्चेष्टावतः स्थिराश्च ॥ २३ ॥ शाखासु हन्वोः कट्यां च चेष्टावन्तस्तु सन्धयः ॥ शेषास्तु सन्धयः सर्वे विज्ञेया हि स्थिरा बुधैः ॥ २४ ॥

मनुष्यशरीरमें सन्धि दो प्रकारकी होती है १ चेष्टावाली (जिनमें पसारने, सुकोड़ने या मुडनेकी शक्ति हो), दूसरे स्थिर जो पसारी, सकोडी न जावे ॥२३॥ जिनमें शाखा (हाथ, पैरों) और हनु (ठोडी) तथा कमर इन स्थानोंमें चेष्टावाली (चलायमान) सन्धियां होती हैं और शेष सब स्थिर सन्धियां हैं ॥ २४ ॥

संख्यातस्तु दशोत्तरे द्वे शते । तेषां शाखास्वष्टषष्टिरेकोनषष्टिः कोष्ठे । ग्रीवां प्रत्यूर्द्ध्वं त्र्यशीतिः ॥ २५ ॥ एकैकस्यां पादाङ्गुल्यां त्रयस्त्रयो द्वावङ्गुष्ठे ते चतुर्दश । जानुगुल्फवङ्क्षणेष्वेकैकः । एवं सप्तदशैकस्मिन् सक्थ्नि भवन्ति । एतेनेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातौ ॥ २६ ॥ त्रयः कटीकपालेषु । चतुर्विंशतिः पृष्ठवंशे । तावन्त एव पार्श्वयोः । उरस्यष्टौ । तावन्त एव ग्रीवायाम् । त्रयः कण्ठे । नाडीषु हृदयक्लोमनिबद्धास्त्वष्टादश । दन्तपरिमाणा दन्तमूलेषु । एकः काकलके नासायां च । द्वौ वर्त्ममण्डलजौ नेत्राश्रयौ गण्डकर्णशङ्खेष्वेकैकः । द्वौ हनुसन्धी । द्वावुपरिष्टाद्भ्रुवोः शङ्खयोश्च । पञ्च शिरःकपालेषु । एको मूर्ध्नि ॥ २७ ॥

संख्यामें सब सन्धि दोसौ दश २१० हैं उनमेंसे हाथ, पाँवोंमें ६८ और धड़में ५९ और ग्रीवासे ऊपर ८३ सन्धियां हैं ॥ २५ ॥ एक एक पाँवकी अंगुलीमें तीन तीन और अँगुठेमें २ ये सब १४ हुई और टखनेमें १, घुटनेमें १ और धूनमें १ ऐसे एक पांवमें सब १७ सन्धियां हुई फिर इसी हिसाबसे दूसरे पाँवमें १७ और

हाथमें १७ फिर दूसरे हाथमें १७ऐसे चारों हाथ, पैरोंमें सब ६८संधियां हुईं॥२६॥ कमर और कपालिकास्थिके बीचमें ३ संधि है और पीठके बांसमें २४ और पँसवाड़ोंमेंभी२४ छातीमें ८ और ग्रीवामेंभी ८ और कंठमें ३ तथा हृदय और क्लोमसे बँधीहुई नाडी (नलिका) में १८ और दांतोंके मूलमें ३२ और घंटिकामें १, नासिकामेंभी १, नेत्रोंके वर्त्ममंडलमें २, गलोया, कर्ण और कनपटियोंमें एक एक ये ६, ठोडीमें २, भ्रुकुटीके ऊपर और शंखमें दो दो, शिर कपालमें ५ और मूर्द्धामें १ इस प्रकार सब संधि २१० हुईं ॥ २७ ॥

त एते संधयोऽष्टविधाः । कोरोदूखलसामुद्गप्रतरतुन्नसेवनीवायसतुंडमंडलशंखावर्ताः । तेषामंगुलिमणिबंधजानुगुल्फकूर्परेषु कोराः संधयः । कक्षवंक्षणदशनेषूदूखलाः । अंसपीठगुदपादनितंबेषु सामुद्गाः । ग्रीवापृष्ठवंशयोः प्रतराः । शिरःकटिकपालेषु तुन्नसेवनी । हन्वोरुभयतस्तु वायसतुंडाः । कंठहृदयनेत्रक्लोमनाडीषु मंडलाः । श्रोत्रशृंगाटकेषु शंखावर्ताः ॥ २८ ॥

ये उक्त सब संधियां आठ प्रकारकी हैं १ कोर (कलिकावत्), २ उदूखल (ऊखल जैसी), ३ सामुद्ग (संपुटवत्), ४ प्रतर (डोंगे सदृश), ५ तुन्नसेवनी (सीवनके सदृश), ६ वायसतुंड (कागकी चोंचके सदृश), ७ मंडल (गोल), ८ शंखावर्त (शंखकी आँटीके सदृश) इनमेंसे अँगुली, पहुँचा, घुटना, टकना और कोहनी इनमें कोरसंज्ञक संधि हैं । कांख, वंक्षण (पूले) और दाँतोंमें उदूखल सदृश संधियां हैं । अंस (मोंढे), पीठ, गुदा, पैर और नितंब इनमें सामुद्गसंज्ञक संधि हैं । ग्रीवा और पीठके बांसमें प्रतरसंज्ञक संधि हैं । शिर, कमर और कपालमें तुन्नसेवनी संधि है। ठोडीके दोनों तरफ वायसतुंड सदृश संधि हैं । कंठ, हृदय, नेत्र और क्लोम नाडी (नलिका) इनमें मण्डलाकार संधि हैं। और कान, शृंगाटकोंमें शंखावर्तके तुल्य संधि है ॥ २८ ॥

अस्थ्नां तु संधयो ह्येते केवलाः परिकीर्तिताः ॥
पेशीस्नायुशिराणां तु संधिसंख्या न विद्यते ॥ २९ ॥

(सू० २८) [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] ॥

ये जो पूर्व वर्णन की गई है वे केवल हड्डियोंकी संधियां है और पेशी, स्नायु और शिरा इनकी संधियोंकी सख्या नहीं होसकती अर्थात् पेशी (गिलटी पट्टे) और नसो और शिरा (रगो) की संधियां अनत हे ॥ २९ ॥

स्नायु ।

नव स्नायुशतानि । तासा शाखासु षट्शतानि । द्वे शते त्रिंशच्च कोष्ठे । ग्रीवा प्रत्यूर्द्ध्वं सप्तति ॥ ३० ॥ एकैकस्या तु पादाङ्गुल्यां षट् निचितास्तास्त्रिंशत् । तावत्य एव तलकूर्चगुल्फेषु । तावत्य एव जघायाम् । दश जानुनि । चत्वारिंशदूरौ । दश वक्षणे । शत-मध्यर्द्धमेवमेकस्मिन्सक्थ्नि भवंति । एते नेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातौ ॥ ३१ ॥ षष्टिः कट्याम् । अशीतिः पृष्ठे । पार्श्वयोः षष्टिः । उरसि त्रिंशत् । षट्त्रिंशद् ग्रीवायाम् । मूर्ध्नि चतुस्त्रिंशत् । एवं नव स्नायुशतानि व्याख्यातानि ॥ ३२॥ भवति चात्र–

मनुष्यके शरीरमें नौसो ९०० स्नायु अर्थात् नसें है जिनमेसे ६०० तो शाखा अर्थात् चारो हाथ, पैरोमें है और २३० धडमें है । और ग्रीवासे ऊपर चेहरेमें ७० नसें है ॥ ३० ॥ एक एक पांवकी अँगुलीमें छः छः नसें है पांचों अंगुलियोंकी मिल-कर ३० हुई । और ३० ही तलवे, पजे और टकनेमे है । और ३० ही जघा अर्थात् पिंडलीमें है । तथा दश घुटनेमे है । और ४० साथलमें है । और १० वक्षण (कूलें) मे ऐसे एक पाँवमें सब १५० नसें हुई । इसी हिसाबसे दूसरे पांवमें १५० तथा एक हाथमें १५० और दूसरे हाथमें भी १५० इस भांति चारों हाथ, पैरोमें सब ६०० नसें है ॥ ३१ ॥ कमरमें ६० नसें है और पीठमें ८० पँसवाडोंमें ६० और वक्षस्थलमें ३० है ऐसे सब धडकी २३० नसें हुई । फिर ग्रीवामें ३६ और मूर्द्धा (चेहरे) मे ३४ ऐसे ग्रीवासे ऊपर ७० नसें होगई और सब मिलकर ९०० होगई ॥ ३२ ॥ इस विषयमें श्लोक है–

स्नायुश्चतुर्विधा विद्यात्तांस्तु सर्वा निबोध मे ॥ प्रतानवत्यो वृत्ताश्च पृथुलाः सुषिरास्तथा ॥ ३३ ॥ प्रतानवत्य शाखासु सर्वसंधिषु चाप्यथ ॥ वृत्तास्तु कडरा सर्वा ज्ञेयास्ता कुशलैरिह ॥ ३४ ॥ आमपक्वाशयान्तेषु वस्तौ च सुषिरा खलु ॥ पार्श्वोरसि तथा पृष्ठे पृथुलाश्च शिरस्यथ ॥ ३५ ॥

स्नायु चार प्रकारकी होती हैं जिन्हें मुझसे सुनो १ प्रतानवती, २ वृत्त, ३ पृथुल, ४ सुषिर ॥ ३३ ॥ हाथ, पैरोमें प्रतानवती (बेलकी तरह फैली हुइ) नसें

है और संधियोंमें भी प्रतानवतीही नसें हैं तथा जो नसें गोल हैं उन्हेंही कंडरा जानना, इन्हें पहले बता चुके हैं (मोटे स्नायु जो गोल हो वे कंडरा कहाती हैं) ॥ ३४ ॥ आमाशय और पक्वाशयमें तथा बस्तिमें सुषिर (छिद्रयुक्त) स्नायु हैं और पँसवाडे, छाती, पीठ तथा शिर इनमें पृथुला चौडी फैलनी नसें हैं ॥ ३५ ॥

नौर्यथा फलकास्तीर्णा बन्धनैर्बहुभिर्युता ॥ भारक्षमा भवेदप्सु नृयुक्ता सुसमाहिता ॥ ३६ ॥ एवमेव शरीरेऽस्मिन् यावन्तः सन्धयः स्मृताः ॥ स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धास्तेन भारसहा नराः ॥ ३७ ॥ न ह्यस्थीनि न वा पेश्यो न सिरा न च सन्धयः ॥ व्यापादितास्तथा हन्युर्यथा स्नायुः शरीरिणम् ॥३८॥ यः स्नायूः प्रविजानाति बाह्याश्चाभ्यन्तरास्तथा ॥ स गूढं शल्यमाहर्तुं देहाच्छक्नोति देहिनाम् ॥३९॥

जैसे नौका अनेक काष्ठफलकोंसे व्याप्त, बहुत बंधनोंसे बँधी हुई बोझा सहनेको समर्थ होती है और मनुष्योंसमेत जलमें तरनेका साधन होती है इसी प्रकार इस शरीरमें जितनी संधियां हैं वे सब बहुतसी नसोंसे बँधी हुई हैं इसीसे मनुष्य बोझेको सहता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अस्थि अथवा पेशी अथवा शिरा अथवा संधि विदीर्ण होजावें तो इतना शरीरका नाश नहीं करे जितना स्नायुके विदीर्ण होने (फटने) से मनुष्यका नाश होता है ॥ ३८ ॥ इससे जो वैद्य बाहरकी तथा भीतरकी सम्पूर्ण स्नायुवोंको भले प्रकार जानता है वही शरीरके गूढ शल्यको ठीक निकाल सकता है अन्यथा नहीं ॥ ३९ ॥

अथ परिशिष्टम् ।

श्लोक—स्नायवः सूत्रवत्सूक्ष्माः शुभ्रा निखिलदेहगाः ॥ कारणानि चेतनानां सदा चैतन्यसाधनं ॥ १ ॥ सुखदुःखावबोधे च प्रवृत्तौ च निवर्तने ॥ रूपगन्धरसस्पर्शशब्दज्ञाने च हेतवः ॥ २ ॥ निखिलास्ताश्च संजाता मस्तिष्कात्पृष्ठमध्यतः ॥ शिरोमण्डलमेवाद्याः शेषाः शेषांगमाश्रिताः ॥ ३ ॥ तेष्वेतेषु च भागेषु देहमात्रेषु पञ्चमः ॥ वेपमानः कम्पते मस्तुलुंगं च तत्क्षणात् ॥ ४ ॥ तस्य मर्मप्रभेदेन ज्ञानभेदो भवेद्ध्रुवं ॥ अतो मस्तिष्कमेवैको ज्ञानहेतुः प्रकीर्तितः ॥ ५ ॥ स्नायुनाशो, भंगसन्धिभंगे तत्स्यान्मृतोपमम् ॥ पक्षाघातादिरोगेषु कारणं तदपि मतम् ॥ ६ ॥

अर्थ—स्नायु सूत्रके तुल्य बारीक और सुपेद सब देहमें व्याप्त हैं और सदैव चेतनप्राणियोंकी चैतन्यताके साधन हैं (सर्वत्र स्नायु गति इन्हींसे है) ॥ १ ॥ सुख, दुःखके ज्ञानमें तथा सुख दुःखकी निवृत्ति और प्रवृत्तिमें यही कारण हैं और रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द इनके ग्रहणमें और ज्ञानमें यही हेतु हैं ॥ २ ॥

ये सब मस्तिष्क (दिमाग) से तथा पृष्ठवशकी मज्जासे उपजती है जिनमेसे जो मस्तिष्कसे उपजी हैं वे तो मस्तिष्कमेही गमन करती है और शेष सब अगमे व्याप्त होती है ॥ ३ ॥ जो भाव शरीरमे उत्पन्न होते है उनसे इनके सबध रखने-वाली स्नायु कपायमान होती है फिर उस कम्पसे मस्तिष्कको सूक्ष्म कप पहुँचाती-है उसी कम्पसे मस्तिष्कको सब ज्ञान होता है इससे मस्तिष्क (दिमाग) ही ज्ञानका हेतु है जैसे किसी वस्तुके प्रतिबिंबसे नेत्रगतरूप वहां स्नायु लम्बायमान होकर उस प्रभावको मस्तिष्कमें पहुचावे जिससे रूपका ज्ञान हो ऐसेही रसा-दिकका ज्ञानभी जानो ॥ ४ ॥ ५ ॥ जिस अगकी स्नायु नाश होजाय या निक-म्मी होजाय वह अग मृतके तुल्य होजाता है इसस पक्षाघातादि रोगोका भी यही कारण है ॥ ६ ॥ (आ वि)

इति परिशिष्टम् ।

पेशी ।

पच पेशीशतानि भवन्ति । तासा चत्वारि शतानि शाखासु । कोष्ठे पट्षष्टि. । ग्रीवा प्रत्यूर्द्ध्वं चतुस्त्रिंशत् ॥ ४० ॥

मनुष्यके शरीरमे पांचसौ ५०० पेशी (मांसकी गिलटियां) है उनमेसे शाखा (चारो हाथ, पैरो) मे ४०० पेशी है और धडमे ६६ तथा ग्रीवासे ऊपर ३४ पेशियां है ॥ ४० ॥

पेशियाकी पृथक पृथक् गणना ।

एकैकस्या तु पादांगुल्यां तिस्रस्तिस्रस्ता. पंचदश । दश प्रपदे । पादोपरि कूर्चसन्निविष्टास्तावत्य एव । दश गुल्फतलयो । गुल्फ-जान्वतरे विंशति । पच जानुनि । विंशतिरूरौ । दश वक्षणे।शतमे-वमेकस्मिन् सक्थ्नि भवन्ति । एतेनेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातौ॥४१॥

एक एक पांवकी अगुलियोंमे तीन तीन पेशी होतीहै सब पांचो अगुलियोंकी १५ हुई । दश पजेमे और पजेके ऊपर कूर्चसे मिली हुईभी १० । तथा टकने और तल्वेमे दश । तथा टकने और घुटनेके बीचमें २० । तथा घुटनेमे ५ । और साथलमे २० । और वक्षण (साथलके ऊपरले जोड़) में १० इस प्रकार एक पांवमें १०० पेशियां है । फिर इसी हिसाबसे दूसरे पांवमें भी १०० । और एक हाथमें १०० और दूसरे हाथमे भी १०० ऐसे चारो हाथ पैरोंकी सब ४०० पेशियां हुई ॥ ४१ ॥

तिस्र पायौ । एका मेढ्रे । सेवन्या चापरा । द्वे वृषणयो । स्फिचो पच पच । द्वे वस्तिशिरसि । पचोदरे । नाभ्यामेका । पृष्ठोर्द्ध्वस-

त्रिविष्टाः पंच पंच दीर्घा । षट् पार्श्वयो । दश वक्षसि । अक्षकांसौ प्रति समंतात् सप्त । द्वे हृदयामाशययो । षट् यकृत्प्लीहोंडुकेषु ॥ ४२ ॥ ग्रीवाया चतस्र । अष्टौ हन्वो. । एकैका काकलकगलयो । द्वे तालुनि । एका जिह्वायाम् । ओष्ठयोर्द्वे । नासाया द्वे । द्वे नेत्रयो । गंडयोश्चतस्रः । कर्णयोर्द्वे । चतस्रो ललाटे । एका शिरसीत्येवमेतानि पच पेशीशतानि ॥ ४३ ॥

गुदामे ३ पेशी है (यही त्रिवली कहलातीहै), लिगमे १ पेशी है, सीवनमें १, वृषणोंमें २, दोनों चूतडोमे पांच पांच अर्थात् १० है, वस्तिके शिरपर २, और उदरमे ५, नाभिमे १, पीठके ऊपर सन्निविष्ट पांच पांच बडी पेशियां है, पॅसवाडोंमें६, छातीमे १०, खोदे और हॅसलीके आसपास ७, हृदय और आमाशयमे २, यकृत्, प्लीहा और उडुक इनमे ६ ये सब मिलाके मध्यभागकी ६६ पेशियां हुई ॥ ४२ ॥ ग्रीवामे ४, ठोडी (जवडो) मे ८, काकलक, (काक) मे १, ओर गलमे १, तालुमे २, जिह्वामे १, होठोंमे २, नासिकामें २, नेत्रोमें २, गलोयोंमे ४, कानोमें २, ललाटमें ८, शिरमें १ ऐसे ये ग्रीवासे ऊपरकी सब ३४ पेशिया हुई और तीनों जगहकी सब मिलकर ५०० पेशिया हुई (परतु गयदासाचार्य वाग्भटके मतसे मध्यभागमें ६० और ग्रीवासे ऊपर ४० पेशी मानतेहे) ॥ ४३ ॥

शिरास्नाय्वस्थिपर्वाणि सधयश्च शरीरिणाम् ॥
पेशीभि सवृतान्यत्र बलवन्ति भवन्त्यत. ॥ ४४ ॥

शिरा,स्नायु और अस्थियोके जोड़ तथा,देहकी सधियां ये सब पेशियोंसे आच्छादित (मढेहुए) है इसीसे बलवान् (मजबूत) रहतेहै ॥ ४४ ॥

स्त्रियोंके अधिक पेशी ।

स्त्रीणा तु विंशतिरधिका. । दश तासां स्तनयोरेकैकस्मिन् पंच पंच यौवने तासा परिवृद्धि । अपत्यपथे चतस्रस्तासा प्रसृतेऽभ्यतरतो·

(वा० ४२) वाग्भटस्तु पेशीसंख्यामित्याह यथा–पंच पेशीशतानि तासां चत्वारि शतानि शाखासु पञ्चित्वारिंशदूर्ध्वम्। तत्र शाखासु विरोधो नास्ति कोष्ठे पञ्चषष्टिर्यथा–एकैका मेढ्रसेवन्यो । द्वे वृषणयो । दश स्फिचो । तिस्रो गुदे । तास्तु वलीसंज्ञा । द्वे वस्तिशिरसि। पंचाद उदरे । नाभ्यामेका । द्वे हृदि आमाशये च । षट् यकृत्प्लीहोंडुकेषु । पृष्ठे पंचोर्ध्वसन्निविष्टा । दश दीर्घा पार्श्वयो । दश वक्षसि । तिर्यगक्षकोपरित । एवं मध्यभागे ६० षष्टि । ऊर्ध्वं चत्वारिंशत् यथा–दश ग्रीवायाम् । अष्टौ गण्डयो । अष्टौ हन्वो । एकैका गलकाकलजिह्वामूर्धसु । द्वे द्वे तालुललाटयो नासौष्ठकर्णेषु च (इति वृ०वाग्भटः)॥

द्वे मुखाश्रिते बाह्ये च प्रवृत्ते द्वे । गर्भच्छिद्रसंश्रितास्तिस्रः । शुक्रार्तवप्रवेशिन्यस्तिस्र एव । पित्तपक्वाशयमध्ये गर्भाशयो यत्र गर्भस्तिष्ठति ॥ ४५ ॥

स्त्रियोंके देहमें २० पेशी अधिक होतीहै जिनमे पाच पाच दोनो चूचियोंमे ऐसे १० तो ये हुई ये चूचियोंकी पेशी तरुण (युवा) अवस्थामें वढतीहै। और योनिमें ४ पेशी है इनमेंसे २ पेशी तो योनिके अतर्गत बलीमे और २ योनिके मुखपर बाहर होती है और गर्भछिद्रके आश्रयमे ३, और वीर्य तथा आर्तव (शोणित) के गर्भाशयमे प्रवेश करनेवालीभी ३ ही है (ऐसे सब २० हुई) पित्ताशय और पक्वाशयके मध्यमे गर्भाशय है यहा ही गर्भ स्थित होताहे ॥ ४५ ॥

पेशियोंके स्वरूप ।

तासा बहुलपेलवस्थूलाणुपृथुवृत्तह्रस्वदीर्घस्थिरमृदुश्लक्ष्णकर्कशभावा सध्यस्थिशिरास्नायुप्रच्छादका यथादेश स्वभावत एव भवति ॥ ४६ ॥

उन पेशियोंमेंसे कोई बहुल (जादा), कोई पेलव (थोडी), कोई स्थूल (मोटी), कोई अणु (पतली), कोई पृथु (फैली हुई), कोई वृत्त (गोल), कोई ह्रस्व (छोटी), कोई दीर्घ (लंबी), कोई स्थिर, कोई मृदु (कोमल), कोई श्लक्ष्ण (लजलजी), कोई कर्कश (कठोर) है ये पेशी सधि, अस्थि, शिरा और स्नायुको उस स्थानके अनुसार स्वभावहीसे आच्छादन किये रहतीहै ॥ ४६ ॥

पुंसां पेश्यं पुरस्तांद्यो· प्रोक्ता लक्षणमुष्कजा ॥
स्त्रीणांमावृत्य तिष्ठति फलेमंतर्गत हि ताः ॥ ४७ ॥

पुरुषोंके शरीरम जो पेशियां पहले वर्णन करचुकेहै उनमेंसे तीन पेशी (१लिंगमें और २ वृषणोंमें) स्त्रियोंकी योनिमें भीतर आच्छादित रहती हैं (गयदासाचार्य इस श्लोकको क्षेपक मानकर प्रमाण नहीं करते वे कहतेहै कि "पुसां" अर्थात् पुरुषोंके ५०० पेशी है स्त्रियोंके नहीं किंतु स्त्रियोंके तीन न्यून पांचसौ तो ये और बीस अधिक सब ५१७ होती है) ॥ ४७ ॥

मर्मशिराधमनीस्रोतसामन्यत्र प्रविभाग ॥ ४८ ॥

मर्म, शिरा, धमनी और स्रोतोंका वर्णन और जगहपर किया है ॥ ४८ ॥

गर्भशय्याका वर्णन ।

शंखनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्त्ता सा प्रकीर्त्तिता ॥ तस्यास्तृतीये त्वा-

वर्त्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता ॥ ४९ ॥ यथा रोहितमत्स्यस्य मुखं भवति रूपत ॥ तत्संस्थानां तथारूपां गर्भशय्यां विदुर्बुधा ॥ ॥ ५० ॥ आभुग्नोभिमुखः शेते गर्भो गर्भाशये स्त्रिया ॥ स योनिं शिरसा याति स्वभावात्प्रसव प्रति ॥ ५१ ॥

स्त्रियोंकी योनि शंखकी नाभिके आकार तीन आंटेवाली होती है उसके तीसरे ओंटेमें गर्भशय्या होतीहै ॥ ४९ ॥ जैसे रोहित मछलीके मुखका स्वरूप होताहै वैसाही स्थान और रूप गर्भशय्याकाभी होता है ऐसा वैद्य कहतेहैं ॥५० ॥ आभुग्न (मुकड़ा हुवा) और सम्मुख गर्भशय्या(गर्भाशय)में गर्भ शयन करताहै अर्थात् वालक रहताहै वह प्रसवके समय स्वभावहीसे शिरके बल योनिद्वारपर प्राप्त होताहै ॥५१॥

मृत शरीर चीरकर देखनेकी विधि ।

त्वक्पर्यंतस्य देहस्य योयमंगविनिश्चय ॥ शल्यज्ञानादृते नैष वर्ण्यतेंगेषु केषुचित् ॥ ५२ ॥ तस्मान्निःसंशयं ज्ञानं हर्त्रा शल्यस्य वाञ्छता ॥ शोधयित्वा मृतं सम्यक् द्रष्टव्योंगविनिश्चयः ॥ ॥ ५३ ॥ प्रत्यक्षतो हि यद्दृष्टं शास्त्रदृष्टं च यद्भवेत् ॥ समासतस्तदुभयं भूयो ज्ञानविवर्द्धनम् ॥ ५४ ॥

त्वचापर्यंत जो जो शरीरके अंगविभाग है उनका ठीक२निश्चय कहीं कहीं शल्पज्ञान (चीर फाड कर देखने) के विना नहीं कहा जासकता ॥ ५२ ॥ इसलिये निस्सदेह ज्ञानकी वांच्छा करनेवाले वैद्य (सर्जन) को चाहिये कि मृत (मुरदे) की लाशको अच्छे प्रकारसे शोधनकर (चीर फाडकर) अंगोंको निश्चय देखे॥५३॥ क्योंकि जो जो प्रत्यक्ष देखा जाता है और शास्त्रमेंभी देखा जाता है फिर दोनों वार २ मिलानेसे ज्ञानकी वृद्धि होती है ॥ ५४ ॥

तस्मात्समस्तगात्रमविषोपहतमदीर्घव्याधिपीडितमवर्षशतकं निःसृष्टांत्रपुरीष पुरुषमावहन्त्यामापगाया निबद्ध पंजरस्थ मुञ्जवल्कलकुशशणादीनामन्यतमेनावेष्टितांगमप्रकाशे देशे कोथयेत् । सम्यक् प्रकुथित चोद्धृत्य ततो देह सप्तरात्राद्‌उशीरवालवेणुवल्कलकूर्चानामन्यतमेन शनैःशनैरवघर्षयंस्त्वगादीन् सर्वानेव बाह्याभ्यंतरांगप्रत्यंगविशेषान् यथोक्तान् लक्षयेच्चक्षुषा॥५५॥भवतश्चात्र-

चीरकर देखनेके वास्ते ऐसे मुरदेको लेवे जिसके सब अंग पूरे [illegible] जो

विषसे (जहरसे) न मरा हो तथा जो लवी व्याधिसे पीडित न रहा हो तथा जो सौ वर्षका अर्थात् बहुत वृद्ध न हो ऐसे ताजे मुरदेको लेकर उसके आंतडे और विष्ठा, मूत्रादि मल निकालकर उसके सब अगोंको मूज या वक्कल या कुशा या शण इनमेंसे किसीसे लपेटकर झरोखेदार सदूक या पिंजरेमें रखकर कम वहनेवाली नदीके गुप्त स्थानमें (जलमें) डालदे और फूलकर गलगला होने दे ओर जब ठीक २ गलकर फूलजावे तब उस मृत शरीरको जलसे निकालकर खस, वाल, घॉस या वक्कलकी कूची या फरचटसे धीरे धीरे त्वचादिको कुरेद २ (हटा २) कर सब बाहर भीतरके अग, प्रत्यग, हड्डी, पँसली, स्नायु, शिरा आदि जैसेके तैसे अपने नेत्रोंसे देख लेवे ॥ ५५ ॥ इस विषयमे दो श्लोक हैं—

न शक्यश्चक्षुषा द्रष्टुं देहे सूक्ष्मतमो विभुः ॥ दृश्यते ज्ञानचक्षुर्भिस्तपश्चक्षुर्भिरेव च ॥ ५६ ॥ शरीरे चैव शास्त्रे च दृष्टार्थः स्याद्विशारदः ॥ दृष्टश्रुताभ्यां संदेहमवापोह्याचरेत्क्रियाः ॥ ५७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस शरीरमें व्याप्त परम सूक्ष्म जो जीवात्मा है वह नेत्रोंसे नहीं दीख सक्ता किंतु वह ज्ञानके नेत्रोंसे तथा तपके नेत्रोंसे दीखताहै ॥ ५६ ॥ शरीरमें (चीरकर) और शास्त्रमे लिखे हुएको देखनेसे मनुष्य विशारद हो जाता है इससे शरीरमें देखने और शास्त्रमे सुननेसे सदेह निवृत्त करके चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५७ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मनि० सुश्रुतसं० भा०टी० शारीरस्थाने पञ्चमोऽध्याय ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अथातः प्रत्येकमर्मनिर्देश शारीर व्याख्यास्यामः ॥

यहांसे अगाडी प्रत्येक मर्मके निर्देशविषयक शारीरका व्याख्यान करते हैं ॥

सप्तोत्तर मर्मशतम्। तानि मर्माणि पचात्मकानि । तद्यथा मांसमर्माणि । शिरामर्माणि। स्नायुमर्माणि । अस्थिमर्माणि । संधिमर्माणि चेति । न खलु मांसशिरास्नाय्वस्थिसंधिव्यतिरेकेणान्यानि मर्माणि भवति यस्मान्नोपलभ्यते ॥ १ ॥

मनुष्यके शरीरमें १०७ मर्म है ये मर्म पांच भांतिके हैं यथा मांसमर्म, शिरामर्म, स्नायुमर्म, अस्थिमर्म और संधिमर्म तथा मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि और संधि इनके सिवाय अन्यत्र मर्म नहीं होते क्योंकि और जगह नहीं पाये जाते इससे उन पांचोंहीमें सब १०७ मर्म हैं ॥ १ ॥

(पा० १) मारयंतीति मर्माणि गूभावो मर्मेत् ॥

राणि कालांतरप्राणहराणि विशल्यघ्नानि वैकल्यकराणि रुजाकराणीति ॥ १४ ॥ तत्र सद्यःप्राणहराण्येकोनविंशतिः । कालांतरप्राणहराणि त्रयस्त्रिंशत् । त्रीणि विशल्यघ्नानि । चतुश्चत्वारिंशद्वैकल्यकराणि । अष्टौ रुजाकराणीति ॥ १५ ॥ भवति चात्र–

ये समस्त १०७ मर्म फिर पांच प्रकारके होतेहैं जैसे कोई तत्काल प्राण हरनेवाले (अर्थात् उनपर चोट लगनेसे तत्काल मृत्यु हो), और कोई कालांतरमें प्राण हरनेवाले होतेहैं, कोई विशल्यघ्न अर्थात शल्य निकालतेही प्राण हरनेवाले होतेहैं, कोई विकलता करनेवाले होतेहै और कोई अतिपीडा करनेवाले होतेहैं ॥ १४ ॥ जिनमें १९ सद्यःप्राणहर हैं, तथा ३३ कालांतरमें प्राणनाशक हैं, तीन विशल्यघ्न हैं, ४४ विकलता करनेवालेहैं, और ८ अति क्लेशदायक हैं ॥ १५ ॥ इस विषयमें श्लोक है–

सद्यःप्राणहर मर्म ।

शृंगाटकान्यधिपतिः शंखौ कंठशिरा गुदम् ॥
हृदयं वस्तिनाभी च घ्नंति सद्यो हतानि तु ॥ १६ ॥

शृंगाटक ४, अधिपति १, शंख २ कंठकी शिरा ८, गुदा १, हृदय १, वस्ति १ और नाभि १ ये १९ मर्म सद्य प्राणनाशक हैं अर्थात् इनपर विशेष जरब आनेसे मनुष्य तत्काल मरजाताहै ॥ १६ ॥

कालांतरप्राणहर और विशल्यघ्न मर्म ।

वक्षोमर्माणि सीमंततलक्षिप्रेंद्रवस्तयः ॥ कटीकतरुणे संधी पार्श्वजौ बृहती च या ॥ १७ ॥ नितंबाविति चैतानि कालांतरहराणि तु ॥ उत्क्षेपौ स्थपनी चैव विशल्यघ्नानि निर्दिशेत् ॥ १८ ॥

वक्षस्थलके मर्म ८, सीमंत ५, तलहृदय ४, क्षिप्र ४, इंद्रवस्ति ४, कटीकतरुण २, पार्श्वसंधि २, बृहती २, नितंब २ ऐसे ये ३३ मर्म कालांतरसे ... हैं ॥ १७ ॥ ... उत्क्षेप २ और स्थपनी १ ये ३ मर्म विशल्यघ्न हैं ... तब तक तो मनुष्य जीवे और शल्य निकालनेही ...

वैकल्यकर मर्म ।

लोहिताक्षाणि जानूर्वीकूर्चविटपकूर्प...

(पा० १४) विशल्यघ्ना... मारकाणि ... मातृका ॥ (श्लो० १७) वक्षो... स्थान... इत्यष्टौ वक्षोमर्माणीति ॥

विधुरे सकृकाटिके ॥ १९ ॥ असासफलकापागा नीले मन्ये फणौ तथा ॥ वैकल्यकरणान्याहुरावर्त्तौ द्वौ तथैव च ॥ २० ॥

वेकल्पकर ४४ मर्म इस प्रकार हे कि लोहिताक्ष ४,आणि ४, जानु २, ऊर्वी ४, कूर्च ४, विटप २, कूर्पर २, कुकुंदर २, कक्षधर २, विधुर २, कृकाटिका २, अस २, असफलक २, अपाग २, नीलधमनी २, मन्या २, फण २, तथा आवर्त २ ऐसे ये ४४ विकलताकारक मर्म हे ॥ १९ ॥ २० ॥

रुजाकर मर्म ।

गुल्फौ द्वौ मणिबधौ द्वौ द्वे द्वे कूर्चशिरासि च ॥ रुजाकराणि जानीयादष्टावेतानि बुद्धिमान् ॥ २१ ॥ क्षिप्राणि विद्धमात्राणि घ्नंति कालांतरेण च ॥ २२ ॥

दो गुल्फ, दो मणिबध, हाथ पावोंके दो दो कूर्चशिर ऐसे ये ८ मर्म रुजाकर (अतिकष्टदायक) है इन्हे बुद्धिमान् जान लेवे ॥ २१ ॥ क्षिप्रनामक मर्म विद्धमात्रही कालांतरमें प्राणनाशक होते है इससे प्रयोजन यह हे कि अन्य मर्म तो छेदन होनेसे प्राणहर होते है और ये क्षिप्र विधजानेमात्रसे कालांतरमे प्राणहर हो जाते है अथवा ये मर्म जो सद्य प्राणहर है वे थोडेसे विद्धमात्र हों तो कालांतरसे मृत्युकारक होते है ॥ २२ ॥

मर्मस्थानोंमे प्राणोंकी स्थिति ।

मर्माणि नाम मांसशिरास्नाय्वस्थिसंनिपातास्तेषु स्वभावत एवविशेषेण प्राणास्तिष्ठंति तस्मान्मर्मस्वभिहतस्तांस्तान्भावानापद्यन्ते ॥२३॥

मर्मस्थानोंमे प्रायः मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि और संधि इनका सन्निपात (मेल) होता है तो उस जगह स्वभावहीसे विशेष करके प्राण रहते है इसी हेतुसे मर्ममें चोट लगनेसे उनही उपरोक्त (सद्य प्राणहरत्व आदि) भावोंको मनुष्य प्राप्त होते है (अथवा मोह प्रलापादिको प्राप्त होता है) ॥ २३ ॥

तत्र सद्य प्राणहराण्याग्नेयान्यग्निगुणेष्वाशु क्षीणेषु क्षपयति ॥ ॥ २४ ॥ कालांतरप्राणहराणि सौम्याग्नेयान्यग्निगुणेष्वाशु क्षीणेषु क्रमेण च सोमगुणेषु कालांतरेण क्षपयति ॥ २५ ॥ विश-

(म० २३) पतिरत्र धेरेश्च अर्थविशेषेभाव इति । प्राणा अस्मादय । पारशनिटि–"हारिद्रार्थेऽन्यधप्रातिम रोडाद्धिविरपथ" इत्यादिवचनैर्पोदार् । अ पे तु घन प्रगार पत्रने प्रभेद इत्यादिवचनद् सुश्रुतपनोपात्ताद्रु (इति वल्हन) केचित्तु पांमार् भावनिाऊे–उप प्राणहरत्वकाना वस्मानहरत्वादिस्तान्वैकल्पकरत्वमाकरत्वान्भावानापद्यन्ते इति मान्यते ॥

णहरमंते विद्ध वैकल्यमापादयति । विशल्यप्राणहरमते विद्ध कालातरेण क्लेशयति रुजा च करोति । रुजाकरमतीव्रवेदनं भवति ॥ ३४ ॥

इनमेसे सद्यःप्राणहर मर्मके अतप्रदेश (निकट) क्षत होवे तो तत्काल मृत्यु न हो, कालांतरमे हो । और कालांतरमारक मर्मके समीप विद्ध हो (चोट लगे) तो विकलताकारक हो । और विशल्यघ्न मर्मके निकट वेध हो तो कालांतरमे क्लेश करे अथवा उसी समय पीडा करे और रुजाकर मर्मके समीप विधे तो अल्प पीड़ा होवे ॥ ३४ ॥

तत्र सद्य.प्राणहराणि सप्तरात्राभ्यतरान्मारयति । कालातरप्राणहराणि पक्षान्मासाद्वा । तेष्वपि तु क्षिप्राणि कदाचिदाशु मारयति । विशल्यप्राणहराणि वैकल्यकराणि च कदाचिदत्यभिहतानि मारयति ॥ ३५ ॥

इनमे सद्यःप्राणहर सात दिनके भीतर मृत्युकारक होते है । और कालांतरमारक पक्षभरमें या महीनेमे (या इससे भी अधिक समयमें) मृत्युकारक होते है उनमे भी क्षिप्र मर्म कभी कभी तत्काल मृत्यु करते है । और विशल्यघ्न तथा वैकल्यकारक मर्मोंमे कभी २ अधिक चोट लगे तो मृत्युकारक हो जाते है ॥ ३५ ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रत्येकशो मर्मस्थानान्यनुव्याख्यास्याम ॥ ३६ ॥

इससे अगाड़ी प्रत्येक मर्मका स्थान और उसके विवेचनका व्याख्यान करते है ॥ ३६ ॥

तत्र पादागुष्ठागुल्योर्मध्ये क्षिप्र नाम मर्म तत्र विद्धस्याक्षेपकेण मरणम् ॥ ३७ ॥ मध्यमागुलीमनुपूर्वेण मध्ये पादतलस्य तल हृदय नाम तत्रापि रुजाभिमरणम् ॥ ३८ ॥ क्षिप्रस्योपरिष्टादुभयत कूर्चो नाम तत्र पादस्य भ्रमणवेपने भवत. ॥ ३९ ॥ गुल्फसधेरध उभयत. कूर्चशिरो नाम तत्र रुजाशोफौ ॥ ४० ॥

इनमे पांवके अँगूठे ओर अँगुलीके वीचमें "क्षिप्र" नामक मर्मका स्थान हे वहाँ विंधनेसे आक्षेपक वातव्याधि होकर (कालांतरमे) मृत्यु होतीहे ॥ ३७ ॥ मध्यमा

(वा० ३४) अंते विद्ध इमीरे विद्धम् । रुजाकरमतीमवेदा भवतीत्यत्रापि अंते विद्धमित्यस्याध्याहार. ॥ (वा० ३७) स्नायुमर्मेदमर्द्धांगुलं कालान्तरप्राणहरम् ॥ (वा० ३८), मध्यमांगुलिमनुलक्षीकृत्य मांस मर्मेदमर्द्धांगुलं कालान्तरमर्म ॥ (वा० ३९) क्षिप्रस्योपरिष्टादिति–अंगुष्ठे स्नायुमर्म चतुरंगुलं वैकल्यकरम् ॥ (वा० ४०) कूर्चशिरोपि स्नायुमर्म एकांगुलं वैकल्यकरम् ॥

अँगुलीकी सन्धिमे पावके तलवेके बीचमें "तलहृदय" नाम मर्म है यहां विंधनेसे पीड़ा होकर मृत्यु होती है ॥ ३८ ॥ क्षिप्रसे ऊपर पञ्जेकी तरफ दोनों ओर "कूर्च" नाम मर्म है वहांके वेधसे पावमें भ्रमण और कंपन होताहै ॥ ३९ ॥ गुल्फ(टकने) की सन्धिसे नीचे दोनो तरफ "कूर्चशिर" नाम मर्म है वहां विंधनेसे पीड़ा और साजन होता है ॥ ४० ॥

पदजंघयोः संधाने गुल्फो नाम तत्र रुजः स्तब्धपादता खंजता वा ॥ ४१ ॥ पार्ष्णिं प्रति जंघामध्ये इन्द्रवस्तिर्नाम तत्र शोणितक्षये मरणम् ॥ ४२ ॥ जंघोर्वोः संधाने जानु नाम तत्र खंजता ॥४३॥ जानुन ऊर्द्ध्वमुभयतस्त्र्यंगुलमाणिर्नाम तत्र शोफाभिवृद्धिः स्तब्धसक्थिता च ॥ ४४ ॥

पाव और पिंडलियोकी सन्धिमें "गुल्फ" नामक मर्म है वहां चोट लगनेसे पीडा, पांवका जकड़ जाना और लँगडापन होता है ॥ ४१ ॥ एडीकी सन्धिमे जघाके मध्यमे "इन्द्रवस्ति" नाम मर्म है वहा विंधनेसे रक्तक्षय होकर मृत्यु हो॥४२॥पिंडली और सायलकी सन्धिमे "जानु" (घुटना) नाम मर्म है वहां चोट लगे तो लंगडापन होताहै ॥ ४३ ॥ ओर घुटनेसे ऊपर दोनो तरफ तीन अंगुल "आणि" नाम मर्म है वहा विंधनेसे शोथकी वृद्धि और सायल अकड जातीहै ॥ ४४ ॥

ऊरुमध्ये उर्वी नाम तत्र शोणितक्षयात् सक्थिशोषः ॥ ४५ ॥ ऊर्व्या ऊर्द्ध्वमधो वंक्षणसंधेरूरुमूले लोहिताक्ष नाम तत्र लोहितक्षयेण पक्षाघातः ॥ ४६ ॥ वंक्षणवृषणयोरंतरे विटपं नाम तत्र षाण्ड्यमल्पशुक्रता वा भवति ॥ ४७ ॥ एवमेतान्येकादश सक्थिमर्माणि व्याख्यातानि एतेनेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातौ ॥४८॥

सायलमें "ऊर्वी" नाम मर्मस्थान है वहा क्षत होनेसे रुधिर क्षय होकर सायल सूख जाती है ॥ ४५ ॥ ऊर्वीसे ऊपर वंक्षणसन्धिसे नीचे सायलके मूलमें "लोहिताक्ष" नाम मर्म है वहां क्षत होकर रुधिर निकलनेसे पक्षाघात होजाता है ॥४६॥

(व्या० ४१) गुल्फः सन्धिमर्म द्व्यंगुलं वैकल्यकरम् ॥ (व्या० ४२) इन्द्रवस्तिः मांसमर्मेदमर्धांगुलं काण्डोत्सेधाद्दश पाष्णिं प्रति त्रयोदशांगुलं [illegible] गमस्त्वयोरिति तन्मतेन [illegible] त्यास्यामि ॥ (व्या० ४३) जानुः सन्धिमर्मेदं वैकल्यकरम् ॥ (व्या० ४४) आणिः स्नायुमर्म वैकल्यकरमर्धांगुलम् ॥ (व्या० ४५) ऊर्वी नाम सिरामर्म अर्धांगुलं वैकल्यकरम् ॥ (व्या० ४६) लोहिताक्षनामैतत् सिरामर्म वैकल्यकरमर्धांगुलम् ॥ (व्या० ४७) विटपं नाम स्नायुमर्म वैकल्यकरमेकांगुलप्रमाणम् ॥

यहां विधनेसे कोष्ठमें वायु भरजावे और खांसी, श्वाससे मृत्यु हो ॥ ५९ ॥ ऐसे ये उदर और छातीके १२ मर्म कहे ॥ ६० ॥

अत ऊर्द्ध्वं पृष्ठमर्माण्यनुव्याख्यास्याम. ॥ ६१ ॥

इससे अगाडी पीठके मर्मोका वर्णन करते हे ॥ ६१ ॥

तत्र पृष्ठवंशमुभयत प्रतिश्रोणीकाडमास्थिनी कटीकतरुणे नाम मर्मणी तत्र शोणितक्षयात् पाडुविवर्णो हीनरूपश्च म्रियते ॥६२॥ पार्श्वजघनवहिर्भागे पृष्ठवंशमुभयतो नातिनिम्ने कुकुदरे नाम मर्मणी तत्र स्पर्शाज्ञानमधःकाये चेष्टोपघातश्च ॥ ६३ ॥

जिनमे पीठके वांसके दोनो तरफ कमरके दोनो हाड "कटीक तरुण" नाम मर्म हे यहांपर शस्त्र लगे तो रुधिरके क्षयसे पांडुरोगी तथा विवर्ण और कुरूप होकर मृत्यु हो ॥ ६२ ॥ पँसवाडो और साथलोसे बाहर (अर्थात् पॅसवाडोंके पीछे और सायलोके ऊपर) पीठके वाससे दोनो तरफ बहुत नीचे नहीं (कुछ २ नीचे) "कुकुंदर" नाम दो मर्म है वहा चोट लगे तो शरीर सु । पड जावे और नीचेके अगोंकी चेष्टा नाश होजाय ॥ ६३ ॥

श्रोणीकाडयोरुपर्याशयाच्छादनौ पार्श्वान्तरप्रतिवद्धौ नितवौ नाम तत्राध.कायशोषो दौर्वल्याच्च मरणम् ॥ ६४ ॥ अध.पार्श्वान्तरप्रतिवद्धौ जघनपार्श्वयोस्तिर्यगूर्ध्वं च जघनात्पार्श्वसंधी नाम तत्र लोहितपूर्णकोष्ठतया म्रियते ॥६५॥ स्तनमूलादुभयतः पृष्ठवंशस्य वृहती नाम तत्र शोणितातिप्रवृत्तिनिमित्तैरुपद्रवैर्म्रियते॥६६॥

श्रोणीकांड (पूर्वोक्त कटीकतरुण) स ऊपरके आशय (स्थान) के आच्छादन करनेवाले पॅमवाडोसे वॅधे हुए ऐसे " नितव " नामक दो मर्मस्थान है यहां चोट

वा० [illegible] कटीकतरुणे अस्थिमर्मणी अर्द्धांगुले फालांतरप्राणहरे । "प्रतिश्रोणीकाडम्" इत्यत्र प्रतिश्रोणीकर्णौ इति वा पठति तत्र श्रोणीकर्णौ लक्षीकृत्य त्रिकपार्श्वाभिधानौ श्रेण्या उपरि (इति डल्हन) ।
(वा० ६३) कुकुदरे संधिमर्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे च । पार्श्वयोरित्यत्र पार्श्वदक्षिणवामयो । जघनवहिर्भागे इति–कट्या पश्चाद्भागे । गयी तु " पार्श्वजघनभागे " इति पठित्वा पार्श्वयोरपरभागे अधोभागे निम्नसंधी कुकुदरे मर्मणी भवत इति । नातिनिम्ने ईषन्निम्ने ॥ (वा० ६४) नितवौ अर्द्धांगुलप्रमाणास्थिमर्मणी । "[illegible]यो " इत्यत्र श्रोणीकर्णयोरिति वा पाठ । श्रोणीकर्णा त्रिकसंधिपार्श्वौ नाम्ना मुपरि । ° शयाच्छादनाविति–आमाशयाच्छादनौ (इति डल्हन) तत्र नितवयोरामाशयाच्छादनाभावात् ॥
(वा० ६५) पार्श्वसंधी अर्द्धांगुलशिरामर्मणी कालांतरप्राणहरे । तिर्यगूर्ध्वमिति–ऊर्ध्वमुपरि पार्श्वकान् क्रमहृदे संधेरपि क्रमहृस्वत्वम् (नि०सं०) ॥(वा०६६) वृहती शिरा[illegible] [illegible]गुले [illegible]॥

लगनेसे नीचेके शरीर सूख जाते है फिर दुवलापन होनेसे मृत्यु होती हे ॥ ६४ ॥ नीचेके भागमे पँसवाडेसे बँधे हुए साथल और पँसलियोसे तिरछे ऊपरको साथलोंसे ऊपर " पार्श्वसंधि " नामक मर्म है यहां क्षत हो तो कोठा रुधिरसे भर मृत्यु हो ॥ ६५ ॥ स्तनमूलोंसे दोनो तरफ पीठके वांसके समीपतक " बृहती " नाम २ मर्म है यहा आघात हो तो रुधिरकी अतिप्रवृत्तिनिमित्तजन्य उपद्रवोसे मृत्यु हो ॥ ६६ ॥

(वक्तव्य-) निबंधसंग्रहमे डल्लनमिश्रने यहा आशय शब्दसे आमाशयका ग्रहण किया और उसीका आश्रय लेकर इस समयके अनुवादकोने भी वेसाही लिख मारा । भला विचारिये तो आमाशयका आच्छादन कहां और नितंब कहां-देखो वाचस्पत्यकोश वहा भी नितंबका अर्थ कटिका अधोभागही हे और आमाशय नाभि ओर स्तनोके बीचमें हे इससे हम यहां आशय शब्दसे आमाशय क्योंकर मान लें ॥

पृष्ठोपरि पृष्ठवंशमुभयतस्त्रिकसंबद्धे अंसफलके, नाम तत्र बाह्वोः स्वापः शोषो वा ॥ ६७ ॥ बाहुमूर्द्धग्रीवामध्येंसपीठस्कंधनिबंधना वंसौ नाम तत्र स्तब्धबाहुता ॥ ६८॥ एवमेतानि चतुर्दश पृष्ठमर्माणि व्याख्यातानि ॥ ६९ ॥

पीठके ऊपरके भागमे पीठ वांसके दोनो तरफ त्रिकस्थानसे बँधे हुए " अंसफलक " नाम मर्म हे वहा चोट लगनेसे हाथ सुन्न पड जाते हे अथवा सूख जाते है (यहां पृष्ठोपरि शब्द पृष्ठका ऊपरला ग्रीवाके त्रिकके समीपका भाग सूचनार्थ दिया हे) ॥ ६७ ॥ बाहुओंके ऊपर ग्रीवाके मध्य सचे और सौंदके बंधन करनेवाले ऐसे " अंस ' नामक मर्म हे यहां चोट लगनेसे हाथ स्तंभित रह जाते हे ॥ ६८ ॥ ऐसे य १४ मर्मस्थान पीठके वर्णन किये हे ॥ ६९ ॥

अत ऊर्ध्वं जत्रुगतानि व्याख्यास्यामः ॥ ७० ॥

इससे अगाडी जत्रु (कंठके जोतोंसे ऊपर) के मर्मोका व्याख्यान करते हे॥७०॥

तत्र कंठनाडीमुभयतश्चतस्रो धमन्यो द्वे नीले द्वे च मन्ये व्यत्यासेन तत्र मूकता स्वरवैकृतमरसग्राहिता च ॥ ७१ ॥ ग्रीवाया मुभयतश्चतस्रः शिरा मातृकास्तत्र सद्योमरणम् ॥ ७२ ॥ शिरो

(पा० ६७) अंसफलके बाहुस्वापशोषौ ... ॥ (पा० ६८) ... । ... ॥ (पा० ७१) व्यत्यासेन ... । नीले मन्ये द्वे द्वे ... ॥ (पाठ ७२) ... ॥

ग्रीवयो. सधाने कृकाटिके नाम तत्र चलमूर्द्धता ॥ ७३ ॥ कर्ण पृष्ठतोऽध संश्रिते विधुरे नाम तत्र बाधिर्यम् ॥ ७४ ॥

इनमेसे कठनाडीके दोनो तरफ चार धमनी है इनमेसे दो " नीला " और दो " मन्या " हे (कठनाडीके पास नीला हे और इससे पिछाडी मन्या है) इनमें आघात होनेसे गूँगापना, स्वरविकार ओर रसका अज्ञान होता है ॥ ७१ ॥ ग्रीवाके दोनो तरफ चार चार शिरा " मातृका " नामक मर्म है इनमें शस्त्र लगनेसे तत्काल मृत्यु होवे ॥ ७२ ॥ शिर और ग्रीवाकी सधिमें " कृकाटिका " नामक २ मर्मस्थान है उनेमे चोट लगनेसे शिर कापने लग जाता है ॥ ७३ ॥ कानके पीछे नीचेको " विधुर " नाम २ मर्म है उनमे चोट लगनेसे बहरापन होजाताहै ॥७४॥

घ्राणमार्गमुभयत स्रोतोमार्गप्रतिबद्धेऽभ्यंतरत. फणो नाम तत्र गधाज्ञानम् ॥ ७५ ॥ भ्रूपुच्छातयोरधोऽक्ष्णोर्बाह्यतोऽपागो नाम तत्रान्ध्य दृष्ट्युपघातो वा ॥ ७६ ॥ भ्रुवोरुपरि निम्नयोरावर्त्तौ नाम तत्रान्ध्य दृष्ट्युपघातश्च ॥ ७७ ॥ भ्रुवो पुच्छातयोरुपरि कर्णललाटयोर्मध्ये शंखौ नाम तत्र सद्योमरणम् ॥ ७८ ॥

नाकके मार्गमे दोनो तरफ छिद्रमार्गसे प्रतिबद्ध भीतरको " फण " नाम २ मर्म हे उनपर आघात पहुँचने या विकार होनेसे गधका ज्ञान नष्ट होजाता है॥७५॥ भ्रुकुटीकी पुच्छसे नीचेको नेत्रोसे बाहरकी तरफ " अपांग " नामक दो मर्मस्थान है इनमें आघात होनेसे अधापन अथवा दृष्टिका नाश होजाता है ॥ ७६ ॥ भ्रुकुटीसे ऊपर नीचे " आवर्त " नामक दो मर्म है यहा भी आघात होनेसे अधापन और दृष्टिका नाश होजाता है ॥ ७७ ॥ भ्रुकुटीकी पुच्छके अतमे ऊपरको कान ओर शिरके बीचमे " शख " (कनपटी) नामक दो मर्मस्थान है यहां आघात होनेसे तत्काल मृत्यु होजाती है ॥ ७८ ॥

शखयोरुपरि केशात उत्क्षेपौ नाम तत्र सशल्यो जीवति पाका त्पतितशल्यो वा नोद्धृतशल्य. ॥ ७९ ॥ भ्रुवोर्मध्ये स्थपनी नाम तत्रोत्क्षेपवत् ॥ ८० ॥ पञ्च सधय शिरसि विभक्ता सीमता

(वाक्य ७३) कृकाटिके सधिमर्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे च ॥ (वा० ७४) विधुरे स्नायुमर्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे च ॥ (वा० ७५) फणे नाम अर्द्धांगुलशिरामर्मणी वैकल्यकरे ॥ (वा० ७६) अपांगौ अर्द्धांगुलशिरामर्मणी वैकल्यकरे ॥ (वा० ७७) आवर्तौ अर्द्धांगुलसंधिमर्मणी वैकल्यकरे ॥ (वा० ७८) शंखौ अस्थिमर्मणी अर्द्धांगुले सद्य प्राणहरे ॥ (वा० ७९) उत्क्षेपौ स्नायुमर्मणी अर्द्धांगुले विशल्यघ्ने ॥ (वा० ८०) स्थपनी नाम शिरामर्मार्द्धांगुलं विशल्यघ्नम् ॥

नाम तत्रोन्मादभयचित्तनाशैर्मरणम् ॥ ८१ ॥ घ्राणश्रोत्राक्षिजि-
ह्वासंतर्पणीनां शिराणां मध्ये शिरासन्निपाताः शृंगाटकानि तानि
चत्वारि मर्माणि तत्रापि सद्योमरणम् ॥ ८२ ॥ मस्तकाभ्यन्तरो-
परिष्टात् शिरासंधिसन्निपातो रोमावर्तोऽधिपतिस्तत्रापि सद्योम-
रणम् ॥ ८३ ॥ एवमेतानि सप्तत्रिंशदूर्ध्वजत्रुगतानि मर्माणि
व्याख्यातानि ॥ ८४ ॥ भवन्ति चात्र–

शंखो (कनपटियो) के ऊपर बालोंकी सीमामें "उत्क्षेपक" नाम दो मर्मस्थान हैं इनमें शल्य (तीर आदि) लगे तो जबतक उनमें वह शल्य घुसा रहे तबतक मनुष्य जीवे अथवा स्वयं पककर वह शल्य आपही गिरजावे तो भी जीवे परंतु वह शल्य खींचकर निकाला जावे तो उसी समय मृत्यु होवे ॥ ७९ ॥ दोनों भ्रुकु-टियोंके मध्यमें "स्थपनी" नामक मर्मस्थान है इसे भी उत्क्षेपककी भांतिही जानना चाहिये ॥ ८० ॥ शिरमें जुदी जुदी पांचसंधि हैं वे "सीमंत" नामक मर्म हैं इनमें आघात होनेसे उन्मादभय और चित्तका नाश होकर मृत्यु होवे ॥ ८१ ॥ नासिका, कर्ण, नेत्र और जिह्वा इनको तृप्त करनेवाली शिराओंमें शिराओंका सनि-पात (मिलाहुआ गुच्छा) है ये गुच्छे चारों "शृंगाटक" नामक मर्म हैं इनमें) आघात होनेसे तत्काल मृत्यु होवे ॥ ८२ ॥ मस्तकके भीतर ऊपरको जहांपर बालोंका आवर्त (भँवर) होता है वहां शिरा और संधिका सन्निपात (मिलाप हैं यह "अधिपति" नाम मर्मस्थान है यहांपर चोट लगनेसे तत्काल मृत्यु होती है ॥ ८३ ॥ इस प्रकारसे ग्रीवासे शिरतकके ये ३७ मर्म वर्णन किये गये ॥ ८४ ॥ इस विषयमें श्लोक हैं–

मर्मस्थानोंका प्रमाण ।

ऊर्ध्वं शिरसि विटपे च सकक्षपार्श्वे एकैकमंगुलमितं स्तनमू-
लपूर्वम् ॥ विद्ध्यंगुलद्वयमितं मणिबंधगुल्फं त्रीण्येव जानु सपरं
सह कूर्पराभ्याम् ॥ ८५ ॥ हृद्बस्तिकूर्चगुदनाभि वदंति मूर्ध्नि
चत्वारि पंच च गले दश यानि च द्वे ॥ तानि स्वपाणितलकु-
ञ्चितसंमितानि शेषाण्यवेहि परिविस्तरतोऽङ्गुलार्धम् ॥ ८६ ॥

(पा० ८१) सीमंता अधिममाणि चतुरंगुलानि कालान्तरप्राणहराणि ॥ (पा० ८२) शृंगाटकानि शिरामर्माणि चतुरंगुलानि सद्यःप्राणहराणि तथाह–हृदयाम्बर –जिह्वाघ्राणाक्षिश्रोत्रतर्पणीनां शिराणां चतुर्णां सन्निपाता शाखा गुच्छानि चत्वारि शृंगाटकसंज्ञानीति ॥ (पा० ८३) अधिपति अधिमर्मेदमर्धांगुलप्रमाणं सद्योमारकमिति ॥ (श्लो०८५।८६) शिरसि मूर्धनि । कक्षपार्श्वे कक्षसमीपे ।"स्तनमूलपूर्वम्"–

उर्वी, कूर्चशीर्ष, विटप और कक्षधर ये मर्म एक एक अंगुल प्रमाणके है और स्तनमूल, मणिबन्ध और गुल्फ इन्हें दो दो अंगुल प्रमाणके जानो । तथा जानु और कूर्पर तीन तीन अंगुल है ॥ ८५ ॥ हृदय, वस्ति, कूर्च, गुदा, नाभि और शिर (तालु) के चार मर्म तो शृंगाटक और कपालके पांच मर्म सीमंत तथा गलेके दश मर्म ८ मातृका और दो नीला और दो मन्या ये सब चार चार अंगुलके है और जो ५६ शेष रहे वे सब आधे आधे अंगुल जानो ॥ ८६ ॥

एतत्प्रमाणमभिवीक्ष्य वदन्ति तज्ज्ञाः शस्त्रेण कर्मकरणं परिहृत्य मर्म ॥ पार्श्वाभिघातितमपीह निहन्ति मर्म तस्माद्धि मर्मसदनं परिवर्जनीयम् ॥ ८७ ॥

यह प्रमाण मर्मोंका जो पूर्व कहा इसे विचार कर मर्मको बचाकर सुज्ञ वैद्यको शस्त्रकर्म करना चाहिये क्योंकि मर्मस्थान आसपासमे कटजावे तो भी मृत्युकारक हो जाता है इस लिये निश्चय मर्मस्थानको तो छोड़करही चीरा लगाना चाहिये ॥ ८७ ॥

छिन्नेषु पाणिचरणेषु शिरा नराणां संकोचमीयुरसृगल्पमतो निरेति ॥ प्राप्यामितव्यसनमुग्रमतो मनुष्याः संछिन्नशाखतरुवन्निधनं न यान्ति ॥ ८८ ॥ क्षिप्रेषु तत्र सतलेषु हतेषु रक्तं गच्छत्यतीव पवनश्च रुजं करोति ॥ एवं विनाशमुपयाति हि तत्र विद्धो वृक्षो इवायुधविघातनिकृत्तमूलः ॥ तस्मात्तयोरभिहतस्य तु पाणिपादं छेत्तव्यमाशु मणिबन्धनगुल्फदेशे ॥८९॥

यदि किसी मनुष्यका हाथ या पांव कटभी जावे तो वहांकी रगें सुकड़ जावें और रुधिर कम बहता है यद्यपि बहुत उग्र पीडाको मनुष्य प्राप्त होता है तो भी शाखा कटे हुए जैसे वृक्ष नष्ट नहीं होते ऐसेही हाथ, पांव कट जानेपर मनुष्य नहीं मरता है ॥ ८८॥ परंतु हाथ, पांवोंके क्षिप्रसंज्ञक और तलसंज्ञक मर्ममें शस्त्र लगे

—इत्यत्र स्तनपृष्ठमूलमिति या पाठः । यवरामिति द्वितीयजत्रुणाहृतम् । मूर्ध्नि चत्वारि पंच चेति चत्वारि शृंगाटकानि तथा शैवेव पंच सीमन्ताः । गले दश यानि च द्वे इति—अष्टौ मातृकाः द्वे द्वे नीले मन्ये च । स्वपाणितलतुल्यितप्रमितानि चतुरंगुलप्रमाणानीत्यर्थः । शेषाणि षट्पंचाश मर्माणि विस्तरतः अर्धांगुलमित्यवेहि (इति डल्हनः) ॥

(श्लोक ८९) " वृक्षा इवायुधविघातनिकृत्तमूला " इत्यत्र गयी तु छिन्नतरुरभसगत्यादेश पक्षानि इति पठति ॥

तो रुधिर बहुतही बहता है और वायुभी बहुत पीडा करता है इससे क्षिप्र, तल इनमे विध जानेसे जैसे शस्त्रसे जड़कटा वृक्ष गिरजाता है वैसे मनुष्य मरजाता है इस कारण यदि इन क्षिप्र, तलमें शस्त्र लगे (घाव हो जावे) तो उस मनुष्यके उसी हाथ या पांवको मणिबंध या गुल्फकी जगहसे शीघ्र काट देना चाहिये ॥ ८९ ॥

मर्माणि शल्यविषयार्द्धमुदाहरंति यस्माच्च मर्मसु हता न भवंति सद्यः ॥ जीवंति तत्र यदि वैद्यगुणेन किंचित्ते प्राप्नुवंति विकलत्वमसंशयं हि ॥ ९० ॥ सभिन्नजर्जरितकोष्ठशिरःकपाला जीवंति शस्त्रविहतैश्च शरीरदेशैः ॥ छिन्नैश्च सक्थिभुजपादकरैरशेषैर्येषां न मर्मपतिता विविधाः प्रहाराः ॥ ९१ ॥

मर्मोको शल्यविषयार्द्ध कहतेहै इस हेतुसे कि कभी मर्मोमें आघात होनेसे तत्काल मृत्यु होतीहै और कदाचित् कोई कोई वैद्यकी कुशलतासे जीते भी रहजाते हैं परंतु वे विकलताको तो अवश्यही प्राप्त होते है ॥ ९० ॥ कई मनुष्य जिनके धड़, शिर, चेहरे (चोटोसे) जर्जरीभूत होगये है तथा शरीरके प्रदेश सायल, भुजा, पांव, हाथ, आदि शस्त्रोंसे कट गये है वेभी जीते रहजाते है जिनके मर्मोमें विविध प्रकारके प्रहार नहीं हुए हो (अर्थात् मर्मोमें आघात होनेसे बचना असंभव है और शिर, धड जर्जर हुए हाथ, पॉव कटे मनुष्य बच जातेहै) ॥ ९१ ॥

सोममारुततेजांसि रजःसत्त्वतमांसि च ॥ मर्मसु प्रायशः पुंसां भूतात्मा चावतिष्ठते ॥ मर्मस्वभिहतास्तस्मान्न जीवंति शरीरिण ९२

सोम, वायु और तेज तथा रजोगुण,सत्त्वगुण,तमोगुण और प्राय भूतात्मा(जीव) ये सब मर्मस्थानोंमें स्थित रहते है इसी हेतु मर्मोमें अभिघात होने (छेद भेदन होने, कुचले जाने, चोट लगने आदि) से मनुष्य नहीं जीते है ॥ ९२ ॥

इंद्रियार्थेष्वसंप्राप्तिर्मनोबुद्धिविपर्य्ययः ॥ रुजश्च विविधास्तीव्रा भवंत्याशुहरे हते ॥ ९३ ॥ हते कालांतरघ्ने तु ध्रुवो धातुक्षयो नृणाम् ॥ ततो धातुक्षयाज्जंतुर्वेदनाभिश्च नश्यति ॥ ९४ ॥ हते वैकल्यजनने केवलं वैद्यनैपुणात् ॥ शरीरं क्रियया युक्तं विकलत्वमवाप्नुयात् ॥९५॥ विशल्यघ्नेषु विज्ञेयं पूर्वोक्तं यच्च कारणम् ॥

(श्लोक ९०) मर्माणि शल्यविषयार्द्धमिति—शल्यशास्त्रविषयस्यार्द्धं मर्माणि एव, यस्मात् मर्मसु हता सद्यो न भवंति तत्र एव मृत्युं प्रयांति इति भावः । यत्नस्तु सद्यो न मरणीये मर्मो न म्रियंते इति व्याख्याति तस्य "जीवंति तत्र यदि वैद्यगुणेन कश्चित्" इत्यादि कथनं असंगतत्वात् मर्मणां शल्यविषयार्द्धत्वाप ॥

॥ ९६ ॥ रुजाकराणि मर्माणि क्षतानि विविधां रुजं. ॥ कुर्वन्त्यंते च वैकल्यं कुवैद्यवशगो यदि ॥ ९७ ॥

सद्यःप्राणहर मर्मोंमें आघात होनेसे इंद्रियोंकी अर्थोंमें समाप्ति न होना (इंद्रियोंका ज्ञान और कर्म नष्ट होना), मन और बुद्धिका विपरीत होना और अनेक भांतिकी दारुण पीडा होना ये लक्षण होतेहे ॥ ९३ ॥ कालांतरमारक मर्मोंमे आघात होनेसे मनुष्यका धातु क्षय (नष्ट) होजाता है फिर वेदनाओंसे मृत्यु होती है ॥ ९४ ॥ और वैकल्यकारक मर्मोंमे आघात हो तो केवल वैद्यकी निपुणतासे विकल शरीर क्रियायुक्त होसकता हे ॥ ९५ ॥ और विशल्यघ्न मर्मोंमे पूर्वोक्त कारण (शल्ययुक्त जीवे या स्वयं शल्य पककर गिरे तो जीवे, शल्य निकालनेसे मृत्यु हो इत्यादि) जानने ॥ ९६ ॥ और रुजाकर मर्मोंमे आघात हो तो वे अनेक प्रकारकी पीडा करते हे और यदि कुवैद्य चिकित्सा करे तो अंतमें विकलता होजाती है ॥ ९७ ॥

छेदभेदाभिघातेभ्यो दहनाद्दारणादपि ॥
उपघातं विजानीयान्मर्मणां तुल्यलक्षणम् ॥ ९८ ॥

मर्मोंमे छेद (विंधने), भेद (भेदन होने), अभिघात (चोट लगने, दब जाने पिस जाने) से और जलजाने या दाग देने और चीरा लगाने इन सब कारणोंको उपघातही समझना चाहिये। और पूर्वके तुल्य पीडा आदि लक्षण जानने चाहिये (डल्हनमिश्र उपघातका अर्थ समीपमे घात ऐसा करते हैं अर्थात् मर्मोंके समीपमें छेद, भेदादि होनेसे भी मर्मोंके तुल्यही प्राय लक्षण समझने चाहिये) ॥ ९८ ॥

मर्माभिघातस्तु न कश्चिदस्ति योल्पात्ययो वापि निरत्ययो वा ॥
प्रायेण मर्मस्वभिताडितास्तु वैकल्यमृच्छन्त्यथवा म्रियन्ते ॥९९ ॥
मर्माण्यधिष्ठाय हि ये विकारा मूर्छन्ति काये विविधा नराणाम्॥
प्रायेण ते कृच्छ्रतमा भवन्ति नरस्य यत्नैरपि साध्यमानाः ॥१००॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

मर्मकी चोट लगा हुआ ऐसा कोई भी नहीं होसकता कि जिसे थोडी भी पीडा न हो या पीडा होही नहीं किंतु प्राय मर्मकी चोट लगेहुए मनुष्य तो विकलताको प्राप्त होते हैं या मर जाते हैं ॥ ९९ ॥ मर्मस्थानमे हुए विकार तो मनुष्योंके शरीरमें अनेक प्रकारसे फैल जाते हैं और स्थित होजाते हैं इससे यत्नपूर्वक साधन करनेपर भी प्रायः अति कठिन होहीजाते हैं ॥

इति पं० मुरलीधरशर्म० सुश्रुत० भा० टी० शारीरस्थाने षष्ठोऽध्याय ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७

अथातः शिरावर्णनविभक्तिनाम शारीरं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी शिराओंके वर्णन और इनके विभाग विषयक शारीरकका व्याख्यान करते हैं ॥

सप्त शिराशतानि भवन्ति याभिरिदं शरीरमाराम इव जलहारिणीभिः केदार इव कुल्याभिरुपस्निह्यतेऽनुगृह्यते चाकुञ्चनप्रसारणादिभिर्विशेषैः । द्रुमपत्रसेवनीनामिव च तासां प्रतानास्तासां नाभिर्मूलं ततश्च प्रसरन्त्यूर्ध्वमधस्तिर्यक् च ॥ १ ॥ भवतश्चात्र–

इस मनुष्य शरीरमे सातसौ ७०० शिरा (प्रधान) है इन शिराओ (रगो) करके शरीर इस प्रकार सींचा (पालन पोषण किया) जाताहै जैसे बागीचा जलकी नालियो करके सींचा जाताहै तथा केदार (क्षेत्र) कुल्या (नहरो) करके सींचा जाता है और इन शिराओंसे ही आकुंचन (सकोड़), प्रसारण (फैलाव), (तथा जागना सोना इंद्रियोंका ज्ञान) इत्यादि द्वारा शरीरका अनुग्रह होता है शिराओंका फैलाव शरीरके अंग, प्रत्यंगोंमे इस प्रकारसे है जैसे वृक्षोके पत्तोंमे तंतुजाल फैले रहतेहै और इन सब शिराओंका मूल नाभि है इस नाभिस्थानसेही ये ऊपरको, नीचेको, टेढी तिरछी फैली हुई है ॥ १ ॥ इस विषयमें दो श्लोक है–

यावत्यस्तु शिराः काये संभवन्ति शरीरिणाम् ॥ नाभ्यां सर्वा निबद्धास्ताः प्रतन्वन्ति समन्ततः ॥ २ ॥ नाभिस्थाः प्राणिनां प्राणाः प्राणान्नाभिर्व्युपाश्रिता ॥ शिराभिरावृता नाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः ॥ ३ ॥

इस शरीरमे जितनी शिरा हैं सब नाभिसे संबद्धित हुई समस्त शरीरमे फैल रही है ॥ २ ॥ मनुष्योंके प्राण नाभिमे स्थित रहतेहै और नाभि प्राणोंके आश्रयमें यह नाभि शिराओंसे ऐसी घिरी हुई है जैसे चक्रनाभि (रथके पहियेका मध्य) आरक नामक काष्ठोंसे घिरा होताहै ॥ ३ ॥

तासां मूलशिराश्चत्वारिंशत् । तासां वातवाहिन्यो दश । पित्तवाहिन्यो दश । कफवाहिन्यो दश। दश रक्तवाहिन्यः । तासां तु

(वा० १) यत्र विवेचनं 'यत्र' इति पाठे तु यत्र भेदादिषु । जलहारिणीभिः प्रणालीभिः । केदारः क्षेत्रविशेषः । कुल्या कृत्रिमा सरित् । ... ॥ (श्लो० २) ... ॥

वातवाहिनीना वातस्थानगतानां पचसप्ततिशत भवति । तावत्य एव पित्तवाहिन्य. पित्तस्थाने कफवाहिन्यश्च कफस्थाने । रक्त वाहिन्यश्च यकृत्प्लीह्नोरेवमेतानि सप्त शिराशतानि ॥ ४ ॥

इन ७०० शिराओकी मूलशिरा ४० है जिनमें दश वात (वायु) को वहाने वाली और दश पित्तको वहानेवाली, दश कफको वहानेवाली और दशही रुधिरको वहानेवाली है। फिर वे वातवाहिनी वाताशयमें प्राप्त होनेवाली शिरायें १७५ होती है और इतनी १७५ ही पित्तवाहिनी पित्तस्थानमे प्राप्त होनेवाली है तथा १७५ कफवाहिनी कफस्थानमे प्राप्त होनेवाली है तथा १७५ रुधिरवाहिनी यकृत् और प्लीहामे प्राप्त होनेवाली है इस प्रकार ये सब ७०० शिराये हुई ॥ ४ ॥

तत्र वातवाहिन्य. शिरा एकस्मिन्सक्थ्नि पचविंशतिः । एतेनेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातौ ॥ ५ ॥ विशेपतस्तु कोष्टे चतुस्त्रिशत् । तासा गुदमेढ्राश्रिता श्रोण्यामष्टौ । द्वे द्वे पार्श्वयो. । षट् पृष्ठे। तावत्य एव चोदरे । दश वक्षसि ॥ ६ ॥

तहां वायुवाहिनी शिरा एक पांवमे २५ है और इसी भांति दूसरे पांवमें २५ तथा दोनों हाथोंमे पचीस पचीस ऐसे ये सब सौ १०० हुई ॥ ५ ॥ और कोष्ठ (धड़) मे विशेप करके ३४ है उनमे गुदा और लिंगके आश्रयभूत कटिमें ८ और दो दो दोनो पँसवाडोंमें ऐसे ४ ये और ६ पीठमें और ६ ही पेटमें और१० छातीमें है ॥ ६ ॥

एकचत्वारिंशज्जत्रुण ऊर्द्धम्। तासा चतुर्दश ग्री ... तस्र' । नव जिह्वायाम् । षट् नासिकायाम् । अष्टौ ... शिराण ...
एवमेतत्पचसप्तत्यधिकशत ...
एव विभाग. शेपाणामपि ...
नेत्रयोर्दश । कर्णयोर्द्वे । एव ... वहा ...
सप्त शिराशतानि भवन्ति ... ॥

इक्तालीस ४१ शिरा वातवहा ...
१४ ग्रीवा (नाड) मे, और ४ दोनो ...
नेत्रोंमे है ॥ ७ ॥ ऐसे ये १७५ वातव...
हिसाब शेप रहीं पित्तवहा, कफवहा औ...

इतनाही है कि पित्तवाहिनियोंमेंसे नेत्रोंमे १० और कानोंमें २ शिरा है इसीप्रकार कफवहा और रक्तवहा भी समझ लेनी चाहिये ऐसे ये सब७०० शिराये विभागपूर्वक व्याख्यान कीगई ॥ ९ ॥ इस विषयमें श्लोक है–

क्रियाणामप्रतीघातममोहं बुद्धिकर्मणाम् ॥ करोत्यन्यान् गुणांश्चापि स्वाः शिराः पवनश्चरन् ॥ १० ॥ यदा तु कुपितो वायुः स्वाः शिराः प्रतिपद्यते ॥ तदास्य विविधा रोगा जायते वातसंभवा ॥ ११ ॥ भ्राजिष्णुतामन्नरुचिमग्निदीप्तिमरोगताम् ॥ संसर्पत्स्वाः शिराः पित्तं कुर्य्याच्चान्यान् गुणानपि ॥१२॥ यदा प्रकुपितं पित्तं सेवते स्ववहाः शिराः ॥ तदास्य विविधा रोगा जायते पित्तसंभवाः ॥ १३ ॥ स्नेहमंगेषु संधीनां स्थैर्य्यं बलमुदीर्णताम् ॥ करोत्यन्यान् गुणांश्चापि बलासः स्वाः शिराश्चरन् ॥ १४ ॥ यदा तु कुपितः श्लेष्मा स्वाः शिराः प्रतिपद्यते ॥ तदास्य विविधा रोगा जायते श्लेष्मसंभवा ॥ १५ ॥ धातूनां पूरणं वर्णं स्पर्शज्ञानमसंशयम् ॥ स्वाः शिराः संचरद्रक्तं कुर्य्याच्चान्यान् गुणानपि ॥ १६ ॥ यदा तु कुपितं रक्तं सेवते स्ववहाः शिराः ॥ तदास्य विविधा रोगा जायते रक्तसंभवाः ॥१७॥

शुद्ध वायु अपनी शिराओंमे ठीक संचार करे तो समस्त क्रिया (प्रसारण, आकुंचनादि) यथायोग्य होती है और बुद्धि तथा कर्मोंमें मोह नहीं होता अर्थात् बुद्धींद्रिय और कर्मेंद्रिय सब अपने कार्योंमे निपुण होती है तथा अन्य स्पर्शनादि गुणभी ठीक ठीक होते है ॥ १०॥ और यदि कुपित वायु अपनी शिराओंमें सञ्चार करे तो अनेक प्रकारके वायुरोग उससे उत्पन्न हो जाते है ॥ ११ ॥ शुद्ध पित्त अपनी शिराओंमें संचार करे तो भ्राजिष्णुता (कांति), अन्नपर रुचि, जठराग्निकी दीप्ति और नैरोग्यता तथा अन्य गुण (रागादिभी) ठीक करता है॥ १२ ॥ और यदि कुपित पित्त अपनी शिराओंमें गमन करे तो उससे अनेक प्रकारके पित्तरोग (दाहादि) उत्पन्न हो जाते है ॥ १३ ॥ शुद्ध कफ अपनी शिराओंमें संचार करे तो अंगोंमें स्निग्धता और संधियोंमें स्थिरता (पोढ़पना) और बल तथा उदीर्णता (महत्त्वता) और अन्य दृढता आदि गुण करता है ॥ १४ ॥ और यदि कुपित कफ अपनी शिराओंम गमन करे तो उससे अनेक प्रकारके कफके रोग (ग्लानि,

गौरवादि) हो जाते है ॥ १५ ॥ शुद्ध रुधिर अपनी शिराओंमे सचार (गमन) करे तो सब धातुवो (मास, मेदा, अस्थि, मज्जा और वीर्य इन) की पूर्णता और सुदररूप तथा निःसशय स्पर्शका ज्ञान तथा अन्य (प्रसन्नता आदि) गुणभी करता है ॥ १६ ॥ और यदि कुपित रुधिर अपनी शिराओंमें गमन करे तो उससे अनेक प्रकारके रुधिरविकार (विस्फोटक, विसर्पादि) हो जाते है ॥ १७ ॥

शिराओंका सर्वदोषवहत्व ।

न हि वातं शिराः काश्चिन्न पित्तं केवलं तथा ॥ श्लेष्माणं वा वहन्त्येता अतः सर्ववहाः स्मृताः ॥१८॥ प्रदुष्टानां हि दोषाणामुच्छ्रितानां प्रधावताम् ॥ ध्रुवमुन्मार्गगमनमतः सर्ववहाः स्मृताः ॥१९॥

कोईभी ऐसी शिरा नहीं है जिनमे केवल वायुही या केवल पित्तही या केवल कफही वहतेहों किंतु सबमे सबके अशांश होतेहै और एक मुख्य होताहै जैसे वातवहा शिराओंमे वायु तो मुख्य और पित्तादिके अशांश होतेहै इसी भांति पित्तवहा शिराओंमे पित्त मुख्य और वातकफादिके अशांश, ऐसे औरभी जानो इसीसे ये शिरा सर्ववहा कहलाती है ॥१८॥ और जब दोष दुष्ट होतेहै और उच्छ्रित(उफानयुक्त) होतेहै और प्रधावतेह (दौड़तेहै) तो अवश्य उन्मार्गगमन करतेहै अर्थात् अपने प्राकृत मार्गसे अन्यमार्गमे गमन करतेहै (और गमन शिराओंद्वारा होताहै) इससेभी शिरा सर्ववहा कही जाती है ॥ १९ ॥

शिराओंके रग आदि ।

तत्रारुणा वातवहा पूर्यन्ते वायुना शिराः ॥ पित्तादुष्णाश्च नीलाश्च शीता गौर्यः स्थिराः कफात् ॥ असृग्वहास्तु रोहिण्यः शिरा नात्युष्णशीतलाः ॥ २० ॥

तिनमें वायुवहा शिरा कालापन लिये लाल रगकी होती है और वायुसे फूली रहती है तथा पित्तवहा शिरा गरम और नीले रगकी होती है तथा कफवहा शिरा शीतल सुपेद रगकी और स्थिर होती है एव रक्तवहा शिरा लाल और न बहुत गरम न शीतल होती है ॥ २० ॥

(श्लो० १८ । १९) मारुतवहादिव्यपदेशानामपि शिराणां सर्वत्र सर्वकार्योपलम्भात् सर्ववहत्वं दर्शयन्नाह—'न हि वातं' इत्यादि । 'उच्छ्रितानाम्' इत्यत्र मूर्च्छितानामिति वा पाठः मूर्च्छितानां परस्परं मिलितानाम् (इति डल्हन) (श्लो० २०) अरुणशब्देनात्र कृष्णमिश्रितरक्तवर्णो ग्राह्यो अव्यक्तरागवर्णो वा । अरुण अव्यक्तरागे अव्यक्तरागे कृष्णमिश्रितरक्तवर्णे च (इति हे० को०) रोहिणी रक्तवर्णवती । रोहितवर्णात् स्त्रियां ङीप् तस्य नश्च णत्वम् (इति वाचस्पतिः) ॥

अतं ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि न विध्येद्याः शिरा भिषक् ॥ वैकल्यं मरणं चापि व्यधात्तासा ध्रुव भवेत् ॥ २१ ॥ शिराशतानि चत्वारि विद्याच्छाखासु बुद्धिमान् ॥ षट्त्रिंशच्च शत कोष्ठे चतुःषष्टिं च मूर्द्धनि ॥ २२ ॥ शाखासु षोडश शिराः कोष्ठे द्वात्रिंशदेव तु ॥ पंचाशज्जत्रुणश्चोर्द्धमवेध्या परिकीर्तिता ॥ २३ ॥

इससे अगाडी उन शिराओंका वर्णन करते हे जिन्है वैद्य वेधन नहीं कर जिनके विंध जानेसे विकलता या मृत्यु अवश्य होती है ॥ २१ ॥ चारसो ४०० शिरा तो चारो प्रकारकी चारो हाथ पेरोंमें हे ओर १३६ धडमे है तथा १६४ ग्रीवासे ऊपर हैं ॥ २२ ॥ उनमेसे हाथ, पैरोंमे १६ शिरा अवेध्य (वेधनके योग्य नहीं)हे और धड़में ३२ वेधन योग्य नहीं तथा ५० गलेसे ऊपर अवेध्य हे ॥ २३ ॥

तत्र शिराशतमेकस्मिन्सक्थ्नि भवति । तासा जालधरा त्वेका तिस्रश्चाभ्यतरास्तत्रोर्वीसंज्ञे द्वे लोहिताक्षसंज्ञा चैका ।एतास्त्ववेध्या एतेनेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातावेवमशस्त्रकृत्याः षोडश शाखासु ॥ २४ ॥

ये जो एक पांवमे १०० शिरा है उनमेंसे एक तो जालधरा (जो जालको धारण करनेवाली कूर्चशीर्षके पास हे) और तीन भीतरकी जिनमे दो ऊर्वी सज्ञक है (ये ऊर्वी नाम मर्मके निकट हे) और १ लोहिताक्षसज्ञक (यह लोहिताक्ष मर्मस्थानपर है) ऐसे एक पेरमें ये ४ शिरा छेदन करनी वर्जित है इसी प्रकार दूसरे पांव ओर दोनों हाथोंमे १६ शिरा अवेध्य है ॥ २४ ॥

द्वात्रिंशच्छ्रोण्या तासामष्टावशस्त्रकृत्या द्वे द्वे विटपयो कटीकतरुणयोश्च ॥ २५ ॥ अष्टावष्टावेकैकस्मिन्पार्श्वे तासामेकैकामूर्द्धगा परिहरेत् पार्श्वसधिगते च द्वे ॥ २६ ॥ चतस्रो विंशतिश्च पृष्ठवंशमुभयतस्तासामूर्द्धगामिन्यो द्वे द्वे परिहरेद्बृहतीशिरे॥२७। तावत्य एवोदरे तासा मेढ्रोपरि रोमराजीमुभयतो द्वे द्वे परिहरेत्२८॥

श्रोणी (कमर)मे ३२ शिरा है उनमे आठ शिरा अवेध्य है दो दो विटपोंमे आर दोनों दो कटीकतरुणोंमे, ॥ २५ ॥ और आठ आठ एक एक पँसवाडेमें शिरा है उनमे दोनो तरफ एक एक ऊपरको जानेवाली और दो दोनों पँसवाडोंकी सधिकी अवेध्य है ॥ २६ ॥ पीठके बांसके दोनों तरफ २४ शिरा है उनमेंसे ऊपर

जानेवाली बृहतीनामक दो दो शिरा अवेध्य है ॥ २७ ॥ और चोबीसही शिरा पेटमे है उनमे लिंगके ऊपर रोमोके दोनों तरफकी दो दो शिरा वेधन योग्य नहीं है ॥ २८ ॥

चत्वारिंशद्वक्षसि तासां चतुर्दशाशस्त्रकृत्या हृदये द्वे द्वे द्वे स्तनमूले स्तनरोहितापलापापस्तम्भेपूभयतोऽष्टौ ॥ २९ ॥ एवं द्वात्रिंशदशस्त्रकृत्या. पृष्ठोदरोरःसु भवति ॥ ३० ॥

वक्षःस्थलमे ४० शिरा है जिनमें १४ शिरा शस्त्रसे बचाने योग्य हैं, हृदयमे २ और स्तनमूलमे दोनो ओर दो दो (ऐसे ४) और स्तनरोहितमें दो दो(४) तथा अपलाप और अपस्तंभोमे दो दो (४ ये सब १४ हुई) ॥ २९ ॥ ऐसे सब ३२ शिरा, पीठ, पेट और छातीमे अवेध्य हे ॥ ३० ॥

चतुःषष्टिशिराशतं जत्रुण ऊर्द्ध्वं भवति । तत्र षट्पंचाशच्छिरोधरायां तासामष्टौ चतस्रश्च मर्मसंज्ञा. परिहरेद्द्वे कृकाटिकयोर्द्वे विधुरयो. । एवं ग्रीवाया षोडशावेध्या. ॥३१॥ हन्वोरुभयतोष्टावष्टौ तासा तु सन्धिधमन्यौ द्वे द्वे परिहरेत् ॥ ३२ ॥

ग्रीवासे ऊपर १६४ शिरा है तिनमें ५६ शिरोधरा (ग्रीवा) मे है उनमेसे आठ मातृका, चार नीला और मन्यासंज्ञक मर्मशिरा और दो कृकाटिका[illegible] [illegible]र दो विधुर ऐसे ग्रीवामें १६ शिरा अवेध्य है ॥ ३१ ॥ हनु (ठोडी) के द[illegible] आठ शिरा है उनमेंसे सन्धिकी और धमनी संज्ञक दो दोको बचाना[illegible]

षट्त्रिंशज्जिह्वाया तासामध[illegible] रसव[illegible] च द्वे ॥ ३३ ॥ द्विर्द्वादश नासा[illegible] [illegible]पन। हरेत् तासामेव च नाल्वन्येका [illegible] ३४ ॥ [illegible] ३५ [illegible]

(व० २९) [illegible] (व्या० ३१) [illegible] (इति नि० ५०) ॥

जिह्वामें ३६ शिरा हैं जिनमें १६ नीचेकी हैं (और २० ऊपरकी) उनमेंसे रसको वहानेवाली दो और वाणीको वहानेवाली दो अवेध्य हैं ॥ ३३ ॥ नासिकामें 'द्विर्द्वादश' अर्थात् चौवीस शिरा हैं जिनमेंसे नासिकाके समीपवाली ४ शिरा वचानी चाहियें और एक तालुमें 'मृदावुद्देशे' अर्थात् घोणाके समीप अवेध्य है ॥ ३४ ॥ दोनों नेत्रोंमें ३८ शिरा हैं उनमेंसे दोनों अपांगोंकी एकएक शिरा वचानी चाहिये ३५॥

कर्णयोर्दश तासां शब्दवाहिनीनामेकैकां परिहरेत् ॥ ३६ ॥ नासानेत्रगतास्तु ललाटे षष्टिस्तासां केशान्तानुगताश्चतस्रः आवर्तयोरेकैका स्थपन्यां चैका परिहर्तव्या ॥ ३७ ॥ शङ्खयोर्दश तासां शङ्खसन्धिगतामेकैकां परिहरेत् ॥ ३८ ॥ द्वादश मूर्ध्नि तासामुत्क्षेपयोः द्वे परिहरेत्सीमन्तेष्वेकैकामेकामधिपताविति ॥ ३९ ॥ एवमशस्त्रकृत्याः पञ्चाशज्जत्रुण ऊर्द्ध्वमिति॥ ४० ॥ भवति चात्र—

कानोंमें दश शिरा हैं उन शब्दवाहिनी शिराओंमेंसे एक एक दोनों तरफ (मुख्य शब्दवहा) को वचावे ॥ ३६ ॥ नाक और नेत्रोंमें गमन करनेवाली ऐसी ललाटमें ६०शिरा हैं (२४ नासिकाकी और ३६ नेत्रोंकी) इनमेंसे केशांतके समीपकी ४ और आवर्तकी एक एक करके २ और स्थपनीकी १ ऐसे ७ शिरा अवेध्य हैं ॥ ३७ ॥ शंख (कनपटियां) में दश शिरा हैं उनमेंसे कनपटीकी संधिमें प्राप्त हुई एक एक दोनों तरफ वचाने योग्य हैं ॥ ३८ ॥ मूर्द्धा (दिमाग) में १२ शिरा हैं उनमेंसे उत्क्षेपनामक मर्मोंमें दो और पांच सीमंतोंकी एक एक ऐसे ५ ये और अधिपतिनामक मर्मस्थानकी १ ऐसे ये मूर्द्धामें ८ शिरा अवेध्य हैं ॥ ३९ ॥ इस हिसाबसे ग्रीवासे ऊपर सब मिलकर ५० शिरा हैं जिन्हें शस्त्र (नश्तर) से छेदन या वेधन नहीं करना चाहिये ॥ ४० ॥ इस विषयमें श्लोक है—

व्याप्नुवन्त्यभितो देहं नाभितः प्रसृताः शिराः ॥
प्रतानाः पद्मिनीकन्दाद्बिसादीनां यथा जलम् ॥ ४१ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

नाभिसे उत्पन्न हुई शिरायें समस्त शरीरमें फैली हुई हैं जैसे कमलके मूलसे निकली हुई कमलकी नालियोंका जाल जलमें फैला रहता है (इससे यह भी प्रतीत होता है कि शिरायें अपने स्थानमें, कभी कभी कोई डिग भी जासकती हैं अर्थात् टूटी हुई भी होसकती हैं और कुछ न्यूनाधिक होना भी संभव है) ॥ ४१ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मकृत० सुश्रुतसं० भा० टी० शारीरस्थान सप्तमोऽध्याय ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८

अथातः शिराव्यधविधिशारीरं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी शिराव्यधविधि (शिरावेधनविधि अर्थात् फस्त खोलनेकी विधि) नामक शारीरकका व्याख्यान करते हैं ॥

बालस्थविररूक्षक्षतक्षीणभीरुपरिश्रान्तस्त्रीमद्याध्वकर्षितमत्तवान्तविरिक्तास्थापितानुवासितजागरितक्लीबकृशगर्भिणीनां कासश्वासशोषप्रवृद्धज्वराक्षेपकपक्षाघातोपवासपिपासामूर्च्छाप्रपीडितानां च शिरा न विध्येद्याश्चाव्यध्या व्यध्याश्चादृष्टा दृष्टाश्चायन्त्रिता यन्त्रिताश्चानुत्थिता इति ॥ १ ॥

बालक, वृद्ध, रूक्ष, क्षीण, भीरु (डरपोक), परिश्रांत (थकाहुआ), तथा स्त्री, मदिरा, मार्ग इनसे जो दुबला होगया हो, मदोन्मत्त, जिसे वमन होचुका हो, जिसे विरेचन होचुका हो, तथा जिसको आस्थापन और अनुवासन वस्तिप्रयोग हुआ हो, और रात्रिको जिसे निद्रा न आती हो, तथा क्लीब (नपुंसक), दुर्बल और गर्भवती स्त्री इनकी शिरा वेध नहीं करनी चाहिये अर्थात् इतनोंकी फस्त खोलनी नहीं चाहिये तथा खांसी और श्वासके रोगी, और शोषरोगवाले, तथा बढे हुए ज्वर, आक्षेपक और पक्षाघात रोगवाले, तथा उपवास (व्रत या लंघन) किये हुए, तृषा युक्त, तथा मूर्च्छासे पीडित ऐसे मनुष्योंकी भी शिरा वेधन नहीं करनी चाहिये और जो शिरा अवेध्य है उनको न वेधे और जो वेध्य तो हैं परंतु अदृष्ट हैं उन्हें भी न वेधे और जो दीखती भी हैं पर यन्त्रसाध्य नहीं हैं उन्हे भी नहीं वेधे और जो यन्त्रसाध्य भी हैं पर उठी हुई या ऊपरको उठती नहीं है उन्हे भी नहीं वेधे (अर्थात जो शिरा वेधन करने योग्य हैं और दीखती भी हैं और यन्त्रसाध्य भी हैं और ऊपरको उठी भी हों उनका वेधन करे)॥ १ ॥

शोणितावसेकसाध्याश्च विकारा प्रागभिहितास्तेषु चापक्वेष्व

(वाक्य १) बालस्थविरयोरसम्पूर्णक्षीणधातुत्वात् । रूक्षक्षतक्षीणानामनिष्पत्त्यभिभयात् क्षतेन क्षीणस्य वा । भीरोश्च सभीतहृदयत्वाल्लोहितदर्शनेन मूर्च्छाभयान्न विध्येत् । अन्यत्रापि परश्चिद्दोषभयो बोद्धव्यः । यथा मद्यपस्यातिमूर्च्छाकरत्वात् । कृशक्लीबस्य वातकोपभयात् । वान्तविरिक्तयोरपि वातप्रकोपभय- दतिनैर्बल्यकरत्वाच । अनुवासितस्याभिमान्द्यभयात् । क्लीबस्य प्रधानधातोरभावादल्पसत्त्वे च मूर्च्छाभयात् । ईश्वरस्य गर्भिणीनां चोपक्षीणधातुत्वाद्गर्भदेहभयात् । कासश्वासशोषिणामपि नभयात् । प्रवृद्धज्वरस्य प्रलापादिभयात् शिरां न विध्येत् (इति नि० सं०)

न्येषु चानुक्तेषु यथाभ्यास यथान्यायं च शिरा विध्येत्प्रतिषि-द्धानामपि च विषोपसर्गे आत्ययिकेषु शिराव्यधनमप्रतिषिद्धम्॥२॥

रुधिर निकालनेसे साध्य होनेवाले रोग पहले (सूत्रस्थानोक्त शोणितवर्णनीयाध्यायमें) कहे गये हैं (जैसे त्वग्दोष, विद्रधि आदि) उनमे जबतक पकाव न हुआ हो अर्थात् राध न पडगई हो और अन्य जो नहीं कहे गये हैं और रुधिर निकालनेसे साध्य हो सकते हों ऐसे विकारोमे अभ्यासपूर्वक और निर्णयपूर्वक शिरा वेधन करना चाहिये और जिनको शिरावेधन (फस्द खोलना) वर्जित भी कहा है उनमेंसे किसीको विषका संसर्ग हो या अत्यन्त आवश्यक हो अर्थात् शिरावेधन विना आराम नहीं होसके तो उनके भी शिरावेधन करना निषिद्ध नहीं है ॥ २ ॥

तत्र स्निग्धस्विन्नमातुर यथादोषप्रत्यनीकद्रवप्रायमन्नं भुक्तवंत यवागू पीतवतं वा यथाकालमुपस्थाप्यासीन स्थित वा प्राणानबाधमानो वस्त्रपट्टचर्मान्तर्वल्कललतानामन्यतमेन यन्त्रयित्वा नातिगाढं नातिशिथिलं शरीरप्रदेशमासाद्य यथोक्त शस्त्र गृहीत्वा शिरा विध्येत् ॥ ३ ॥

जब शिरावेधन करना (फस्द खोलना) हो तब रोगीको यथाचित स्नेहन, स्वेदन कराकर दोषोंके अनुसार शांतिकारक पतला पदार्थ अन्नका खिलाकर, यवागू पिलाकर समयके अनुसार खडा करके या बिठला कर प्रियवाक्योंसे आश्वासन करके कपडेके या रेशमके फीतसे अथवा चमडे या वृक्षकी छाल (सणजैस) या लता (बेल) इनमेंसे किसी एकसे अंगको (नस उठाने आदिके लिये) न बहुत कडा और न बहुत ढीला बांधकर और हाथसे सूँतकर (मर्म आदि तथा युक्त शिराको विचारकर) यथायोग्य शस्त्र (नश्तर)लेकर शिरावेधन करे अर्थात् फस्त खोलदे ॥ ३ ॥

नैवातिशीते नात्युष्णे न प्रवाते न चाभ्रिते ॥
शिराणां व्यधन कार्यमरोगे वा कदाचन ॥ ४ ॥

(वाक्य २) प्रागभिहितेषु शोणितावसेकसाध्येषु अपक्वेषु शिरां विध्येत् पक्वानां रक्ताभावादनर्थकत्वेन इति । अन्येषु चानुक्तेषु-शिराकाभिमुखेषु शोणितावसेकसाध्येषु आमविहितेषु इत्यर्थ । (टी० नि० ५०) यथाभ्यासम् अभ्यासपूर्वकं यथासमीपं वा । यथान्यायं स्नेहस्वेदादिपूर्वकम् । प्रतिषिद्धानामपि चात्ययिकेषु शिराव्यधनमप्रतिषिद्धम् । अत्ययो विनाशो भयस्मरणादिनि आत्ययिकेषु ॥ (वाक्य ३) तत्र इति वाक्योपक्रमे । आतुरमित्यत्र आतुरग्रहणेन इत्यस्य इदं न धारयेदपि गच्छति । इत्यादि इत्यो-क्तेइत्यर्थः (इति डल्हन) ।

अति शीत समयमें फस्त नहीं खोलनी और अति गरमीमें भी नहीं खोलनी, बहुत हवामें भी नहीं खोलनी और बादल हो तब भी नहीं खोलनी, चाहिये और कोई रोग नहीं हो तब तो कदाचित् फस्त खोलनीही नहीं चाहिये ॥ ४ ॥

तत्र व्यध्यशिरं पुरुषं प्रत्यादित्यमुखमरत्निमात्रोच्छ्रिते उपवेश्यासने सक्थ्नोराकुञ्चितयोर्निवेश्य कूर्परे संधिद्वयस्योपरि हस्तावन्तर्गूढाङ्गुष्ठकृतमुष्टी मन्ययोः स्थापयित्वा यन्त्रणशाटकं ग्रीवामुष्ट्योरुपरि परिक्षिप्यान्येन पुरुषेण पश्चात् स्थितेन वामहस्तेनोत्तानेन शाटकान्तद्वयं ग्राहयित्वा ततो वैद्यो ब्रूयाद्दक्षिणहस्तेन शिरोत्थापनार्थं नात्यायतशिथिलं यन्त्रणमावेष्टयेत्यसृक्स्रावणार्थं यश्च पृष्ठमध्ये च पीडयेति कर्मपुरुषं च वायुपूर्णमुखं स्थापयेदेष उत्तमाङ्गगतानामन्तर्मुखवर्ज्यानां शिराणां व्यधने यन्त्रणविधिः ॥५॥

जिस मनुष्यकी फस्त खोलनी हो उसे सूर्यके सम्मुख अरत्निमात्र (छटली अगुली पर्यंत एक हाथ) ऊँचे स्थान (चाकी वगैरह) पर बिठलादे (दोनों पाँव नीचे रखा दे) और दोनों साथल सकुचित कराकर उनकी संधि (घुटनो) पर दोनों कोहनियां रखवादे और हाथोंके दोनों अँगूठे मुट्ठियोंमें बंद कराकर मुट्ठियोंको मन्या- स्थानके (ग्रीवाके जोतोंके) पास रखवादे फिर बंध बांधनेके फीतेको ग्रीवा और मुट्ठियोंके ऊपरसे ले जाकर एक अन्य मनुष्यको पिछाडीकी तरफ खडा करके जिसका बायाँ हाथ कुछ ऊँचा रहे उसे फीतेके दोनों सिरे पकड़वा देवे और वैद्य उससे कहे कि, नस उठानेके लिये दाहिने हाथसे न बहुत कड़ा न बहुत ढीला ऐसा रोगीके बंध लगा और रुधिर निकलनेके लिये ग्रीवामें जो फीता पड़ा है उसे दबा (इससे ठीक नस उठती है और ठीक रुधिर निकलता है) और जिसकी फस्त खोले उसे वायुसे मुह भरा बैठा रहने दे । यह विधि मुखके भीतरकी शिराओंको छोडकर उत्तमांग (चेहरे)में प्राप्त अन्य शिराओंके वेधनमें (अर्थात् सोरे फस्तके लिये) बहुत ठीक है अथवा मुखके भीतरकी शिराओंको छोडकर ग्रीवामें ऊपरकी शिराओंके वेधनमें यह यन्त्रणविधि है ॥ ५ ॥

(मा० ५) अरत्निमात्रोच्छ्रिते इति-कनिष्ठाङ्गुलिपरिमितहस्तमात्रोच्छ्रिते इत्यर्थः । सक्थ्नोराकुञ्चितयो- रुपविष्टस्य ... कूर्परे निवेश्येत्यन्वयः । अन्तर्गूढाङ्गुष्ठकृतमुष्टी हस्तौ मन्ययोः स्थापयित्वा ... । पश्चात् स्थित ... पुरुषे ... इति सूत्र-"शिरोत्थापनार्थं यत्र आवेष्टय तथा रक्तस्रावणार्थं च ... मध्ये पीडय" इति । कर्मपुरुषमिति-यस्य शिराव्यधनं क्रियते स कर्मपुरुषः । ... उत्तमाङ्गगतानामिति- ... स्थाङ्गगतवर्जितानाम् (इति ...) ।

पावकी शिरावेधनविधि।

तत्र पादव्यध्यशिरस्य पादं समे स्थाने सुस्थिरं स्थापयित्वान्य पादमीपत्सकुचितमुच्चैः कृत्वा व्यध्यपादं जानुसंधेरधः शाटने नावेष्ट्य हस्ताभ्यां प्रपीड्य गुल्फं व्यध्यप्रदेशस्योपरि चतुरंगुल स्रोतादीनामन्यतमेन बद्ध्वा पादशिरां विध्येत् ॥ ६ ॥

जिसके पावकी शिराका वेधन करना हो उसके पावको समान भूमिमे निश्चलतासे रखवाकर अन्य दूसरे (जिसकी शिरा न वेधनी हो) पांवको कुछ सिकोड़कर ऊंचा रखवादे फिर शिरावेधनेवाले समान भूमिस्थित पावके घुटनेसे नीचे पट्टीसे बांधकर टकनेको हाथोसे मले (सूते) फिर वेधनकी जगहसे चार अंगुल ऊपर सूत या रेशम आदिसे बांधी हुई पांवकी शिराको वेधन करे ॥ ६ ॥

हाथका शिरावेधन।

अथोपरिप्रांद्धस्तो गूढांगुष्ठकृतमुष्टी सम्यगासने स्थापयित्वा सुखोपविष्टस्य पूर्ववद्यन्त्रं बद्ध्वा हस्तशिरां विध्येत् ॥ ७ ॥

यदि हाथकी फस्त खोलनी हो तो थोड़ा हाथोंको ऊचा कराकर अंगुठेको मुट्ठीमे दबाकर ठीक (समान) आसनपर बिठाकर सुखसे बैठे हुए मनुष्यके पहले कहे अनुसार कोहनीके ऊपर पट्टी बांधकर हाथकी फस्त खोलनी चाहिये ॥ ७ ॥

अंगविशेषका शिरावेधन।

गृध्रसीविश्वाच्योः सकुचितजानुकूर्परं स्यात् । श्रोणीपृष्ठस्कंधेपून्नामितपृष्ठस्यावाक्शिरस्कस्योपविष्टस्य विस्फूर्जितपृष्ठस्य विध्येत् ८

गृध्रसी और विश्वाची नामक वातव्याधियोंमे फस्त खोले तो गृध्रसीमें घुटने सिकोड़ कर ओर विश्वाचीमे कोहनी सिकोड़ कर शिरा वेधे । कमर, पीठ, कधे इनका रक्त निकालना हो तो पीठ ऊपरको ओर शिर नीचेको करके बैठावे ओर पीठको नवाये रखकर सिरावेधन करे ॥ ८ ॥

उदरोरसो प्रसारितोरस्कस्योन्नमितशिरस्कस्य विस्फूर्जितदेहस्य । बाहुभ्यामवलम्ब्यमानदेहस्य पार्श्वयो । अवनामितमेढ्रस्य मेढ्रे । उन्नामितविदष्टजिह्वाग्रस्याधो जिह्वायाम् । अतिव्यात्ताननस्य तालुनि दंतमूलेषु च ॥ ९ ॥ एवं यन्त्रोपायानन्यांश्च शिरोत्थापनहेतून्बुद्ध्यावेक्ष्य शरीरवशेन व्याधिवशेन च विदध्यात् ॥ १० ॥

पेट और छातीकी शिरा वेधन करनी हो तो हृदयको पसारकर शिरको ऊंचा करके और शरीरको फैलाकर वेधन करे । पँसवाड़ेकी शिरा वेधन करनी हो तो ऐसे बिठावे कि दोनों हाथ टेककर देह उनके सहारे होजावे । लिंगकी फस्त खोलनी हो तो स्तम्भीभूत होनेपर खोले । जिह्वाकी शिरा वेधनी हो तो बाहरको निकली हुई, ऊपरको उठी हुई, दांतोंसे अलग जिह्वाका अग्रभाग कराकर नीचेकी शिरा वेधन करे। तालु और दंतमूलमें फस्त खोलनी हो तो खूब मुँह फाड़ेहुएकी फस्त खोले ॥ ९ ॥ इसी प्रकार अन्यत्र सब जगह शरीरके अनुकूल और व्याधिके अनुकूल शिराओंके उठानेके लिये बुद्धिसे यन्त्रणा (पट्टी आदि बांधना या शरीरके अंग, प्रत्यंगको फैलाना, सिकोडना आदि) कल्पना करलेना चाहिये ॥ १० ॥

शिरावेधनमें शस्त्रका प्रमाण ।

मांसलेष्ववकाशेषु यवमात्रं शस्त्रं निदध्यादतोऽन्येष्वर्द्धयवमात्रं व्रीहिमात्रं वा व्रीहिमुखेन अस्थ्नामुपरि कुठारिकया विध्येदर्द्धयवमात्रम् ॥ ११ ॥ भवन्ति चात्र-

मांसयुक्त प्रदेशमें जौ मात्र शस्त्र (नश्तर) घुसाना चाहिये और अन्यत्र (जहां मांस अधिक न हो वहां) आधे जौकी बराबर तथा चावलके बराबरही घुसानेसे शिरावेधन हो जाता है । शिरावेधन कर्म व्रीहिमुख नामक शस्त्रसे करना चाहिये, परंतु अस्थि (हड्डियों) के ऊपर कुठारिका नामक शस्त्रसे आधे जौके बराबर वेधन करना चाहिये ॥ ११ ॥ इस विषयमें श्लोक है-

शिरावेधनका समय ।

व्यभ्रे वर्षासु विध्येत ग्रीष्मकाले तु शीतले ॥
हेमंतकाले मध्याह्ने शस्त्रकालास्त्रयः स्मृताः ॥ १२ ॥

वर्षा ऋतुमें जब बादल न हों तब और ग्रीष्म (गरमी) में ठंडके समय और हेमंतऋतु (सरदी) में मध्याह्नके समय शस्त्रकर्म करे (शस्त्रकर्म करनेके इस भांति ये तीन समय हैं ॥ १२ ॥

ठीक शिराविंधीके लक्षण ।

सम्यक् शस्त्रनिपातेन धारया या स्रवेदसृक् ॥
मुहूर्तं रुद्ध्वा तिष्ठेच्च सुविद्धा तां विनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥

ठीक ठीक शस्त्र (नश्तर) लगनेसे मुहूर्तभरतक धारसे रुधिर निकले और जब बंद करना चाहे उसी समय बंद होजाये तो जानो कि ठीक शिरावेधन हुआ ॥ १३ ॥

दूषित रक्त पहले निकलताहै ।

यथा कुसुम्भपुष्पेषु पूर्वं स्रवति पीतिका ॥
तथा शिरासु विद्धासु दुष्टमग्रे प्रवर्तते ॥ १४ ॥

जैसे कसूँभिके फूलोंमेसे पहले पीला रंग (डहल) निकलताहै उसी प्रकार शिरावेधन होनेपर दूषित रुधिर पहले निकलताहै ॥ १४ ॥

मूर्च्छितस्यातिभीतस्य श्रान्तस्य तृषितस्य च ॥
न वहन्ति शिरा विद्धास्तथानुत्थितयन्त्रिता ॥ १५ ॥

जिसे मूर्च्छा आजावे या जो अधिक डरजावे तथा थकेहुए, तृषायुक्त ऐसे मनुष्योंकी शिरा वेधन की जानेपर रुधिर नहीं निकलताहै तथा जिसकी रगें उठी न हों तथा पट्टीसे बांधा न गया हो तोभी रुधिर नहीं निकलताहै ॥ १५ ॥

क्षीणस्य बहुदोषस्य मूर्च्छयाभिद्रुतस्य च ॥
भूयोऽपराह्णे विस्राव्या सापरेद्युस्त्र्यहेऽपि वा ॥ १६ ॥

जो मनुष्य क्षीण हो अथवा जिसके बहुत दोष बढा हो अथवा जिसे मूर्च्छा आगई हो ऐसे मनुष्यके फिर तीसरे पहर शिरा वेधन करनी चाहिये या दूसरे दिन या तीसरे दिन फिर वेधन करनी चाहिये ॥ १६ ॥

रक्तं सशेषदोषं तु कुर्यादपि विचक्षणः ॥ न चातिप्रस्रुतं कुर्याच्छेषं संशमनैर्जयेत् ॥ १७ ॥ बलिनो बहुदोषस्य वयस्थस्य शरीरिणः ॥ परं प्रमाणमिच्छन्ति प्रस्थं शोणितमोक्षणे ॥ १८ ॥

जब थोडासा दूषित रुधिर बाकी रहे तभी छोडदेना चाहिये अति रुधिर नहीं निकाले किंतु दूषित थोडे बचे हुएको औषधोंसे शमन करे ॥ १७ ॥ बलवान्, बहुत बढे दोषवाले, जवान, पूरे शरीरवालेके रुधिर निकालनेका परम (ज्यादेसे ज्यादे) प्रमाण १ प्रस्थ (१६ पल) है इससे अधिक कदाचित् नहीं निकाले ॥ १८ ॥

व्याधिविशेषपर शिरावेधन ।

तत्र पाददाहपादहर्षावबाहुकचिप्पविसर्पवातशोणितवातकण्टकविचर्चिकापाददारीप्रभृतिषु क्षिप्रमर्मण उपरिष्टाद्‌द्व्यंगुले व्रीहिमुखेन शिरां विध्येत् ॥ १९॥ श्लीपदे तच्चिकित्सिते यथा वक्ष्यते। क्रोष्टुकशिरःखञ्जपङ्गुलवातवेदनासु जङ्घायां गुल्फस्योपरि चतुरं-

(पा० १९) अत्र प्रभृतिमरणाद्देति पाठोना (?) धातुविदोरमाया युक्तो ।

तत्र दुर्विद्धातिविद्धा कुंचिता पिच्चिता कुट्टिताऽप्रस्तुता अत्युदीर्णा अन्तेऽभिहता परिशुष्का कूणिता वेपिता अनुत्थितविद्धा शस्त्रहता तिर्यग्विद्धा अपविद्धा अव्याध्या विद्रुता धेनुका पुनःपुनर्विद्धा शिरास्नाय्वस्थिसंधिमर्मसु चेति विंशतिर्दुष्टव्यधा॥२५॥

इनमे १ दुर्विद्धा, २ अतिविद्धा, ३ कुंचिता, ४ पिच्चिता, ५ कुट्टिता, ६ अप्रस्तुता, ७ अत्युदीर्णा, ८ अंतेभिहता, ९ परिशुष्का, १० कूणिता, ११ वेपिता, १२ अनुत्थितविद्धा, १३ शस्त्रहता, १४ तिर्यग्विद्धा, १५ अपविद्धा, १६ अव्याध्या, १७ विद्रुता, १८ धेनुका, १९ पुनःपुनर्विद्धा, २० शिरा, स्नायु, अस्थि और संधियोंके मर्मस्थानोंमे विधना ऐसे ये शिराव्यधनमे बीस २० प्रकारके दूषण होते है (इनके लक्षण और अर्थ अभी अगाडी कहेंगे) ॥ २५ ॥

दुर्विद्धादिके लक्षण ।

तत्र या सूक्ष्मशस्त्रविद्धा न व्यक्तमसृक् स्रवति रुजाशोफवती च सा दुर्विद्धा । प्रमाणातिरिक्तविद्धायामन्तःप्रविशति शोणितं शोणितातिप्रवृत्तिर्वा साऽतिविद्धा । कुंचितायामप्येवम् । कुठशस्त्रप्रमथिता स्थूलीभावमापन्ना पिच्चिता । अनासादिता पुनःपुनरन्तयोश्च बहुशः शस्त्राभिहता कुट्टिता । शीतभयमूर्च्छाभिरप्रवृत्तशोणिता अप्रस्तुता । तीक्ष्णमहामुखशस्त्रविद्धा अत्युदीर्णा । अल्परक्तस्राविण्यन्तेविद्धा । क्षीणशोणितस्यानिलपूर्णा परिशुष्का । चतुर्भागावसादिता किंचित्प्रवृत्तशोणिता कूणिता । दुःस्थानबंधनाद्वेपमानाया शोणितसंमोहो भवति सा वेपिता । अनुत्थितविद्धायामप्येवम् । छिन्नातिप्रवृत्तशोणिता क्रियासंगकरी शस्त्रहता । तिर्यक्प्रणिहितशस्त्रा किंचिच्छेषा तिर्यग्विद्धा । बहुशः क्षता हीनशस्त्रप्रणिधानेनापविद्धा । अशस्त्रकृत्या अव्याध्या । अनवस्थितविद्धा विद्रुता । प्रदेशस्य बहुशोऽवघट्टनादारोहव्यधा मुहुर्मुहुः शोणितस्रावा धेनुका । सूक्ष्मशस्त्रव्यधनाद्बहुशो भिन्ना पुनःपुनर्विद्धा । स्नाय्वस्थिशिरासंधिमर्मसु विद्धा या रुजां शोषं वैकल्यं मरणं वापादयति ॥ २६ ॥ भवन्ति चात्र—

जो शिरा छोटे पतले शस्त्रसे विधे जिससे ठीक ठीक रुधिरस्राव न हो पीडा र सूजन होजावे वह १ दुर्विद्धा है। जो नस प्रमाणसे अधिक छेदन होजावे और भीतरको प्रवेश होजावे या वहुत अधिक खून निकले वह २ अतिविद्धा है। ३ चेत (टेढी विधी) कभी येही लक्षण होतेहैं। मोटी धारवाले शस्त्रसे वेधनेपर थेतभी होकर मोटी पडजावे, फैलजावे, कुचलजावे वह ४ पिच्चिता है। जो त्वार ठीक न विधे तब वार वार उसके आसपास शस्त्रसे छेदी जावे वह ५ ट्टेता है। जो ठढ या भय या मूर्च्छा आदिसे रक्त नहीं वहे तो ६ अप्रस्रुता है। त तीक्ष्ण वडे मुँहके शस्त्रसे जो वहुत विस्तृत छेद होजावे तो वह ७ अतिउदीर्णा। जिसके वेधनमें थोडासा रक्त निकले वह ८ अतेऽभिहता या अतेविद्धा है। णरुधिर होनेपर जो वायुसे भर (सूख) जावे वह ९ परिशुष्का है। जो चौथा- ो विंधे और किंचित् रक्त निकले वह १० कूणिता है। जिसमे ठीक स्थानमें नहीं लगने आदिसे नस कपायमान होतीरहे और रुधिर वद वद होकर कुछ२ कले उसे ११ वेपिता कहतेहैं। जो नस विना उठी वींधी जावे वह १२ अनु- त्तविद्धा कहातीहै उसमेभी वेपिताकी भांति रक्त कम निकलना आदि लक्षण नो। जो छेदन होनेपर वहुत रक्त स्रवे और क्रियाको रोकदे (नसका फरकाव र गति वद हो जावे) वह१३ शस्त्रहता है। जो तिरछे शस्त्रपात होनेसे तिरछी धे, कुछ शेष रहजावे वह १४ तिर्यग्विद्धा कहातीहै। जो हीनशस्त्रके कारण वहुत फैगई है वह १५ अपविद्धा है। जो शिरा शस्त्रकर्म (छेदन, वेधन)से वर्जित (उसका वेध होना) १६ अव्याध्या कहातीहै। जो असावधानीसे वींधी जावे १७ विद्रुता है। स्थानको वारवार शस्त्रसे वेधे जानेपर वारवार रुधिर स्रवे वह धेनुका कहातीहै। छोटे या वारीक नोकके शस्त्रसे कईवार छेदन कराजावे वह पुनःपुनर्विद्धा कहातीहै। स्नायुमर्म, अस्थिमर्म, शिरामर्म और संधिमर्म इन नोंमें विधी हुई शिरा पीडा, शोप और विकलता तथा मृत्युकारक हो जाती है ह २० वीं मर्मविद्धा कहाती है) ॥ २६ ॥ इस विषयमें श्लोक है-

शिरासु शिक्षितो नास्ति चला ह्येताः स्वभावतः ॥ मत्स्यवत्परि- र्तन्ते तस्माद्यत्नेन ताडयेत् ॥ २७ ॥ अजानता गृहीते तु शस्त्रे ायनिपातिते॥ भवति व्यापदश्चैता बहवश्चाप्युपद्रवाः ॥ २८ ॥

शिराओंके पूर्ण ज्ञानमें कोई भी पूरा २ शिक्षित नहीं है (और नहीं हो सकता) कि ये स्वभावहीसे चलायमान होती है, मछलीकी भांति कभी ऊपरको उठती और फिर कभी नीचेको हो जाती है और चलती रहती है इस कारणसे इनका न (बांधना और वधन करना आदि) यत्नपूर्वक करना चाहिये ॥ २७ ॥ यदि

तत्र दुर्विद्धातिविद्धा कुंचिता पिच्चिता कुट्टिताऽप्रस्रुता अत्यु दीर्णा अन्तेऽभिहता परिशुष्का कूणिता वेपिता अनुत्थितविद्धा शस्त्रहता तिर्यग्विद्धा अपविद्धा अव्याध्या विद्रुता धेनुका पुनः-पुनर्विद्धा शिरास्नाय्वस्थिसंधिमर्मसु चेति विंशतिर्दुष्टव्यधा॥२५॥

इनमें १ दुर्विद्धा, २ अतिविद्धा, ३ कुंचिता, ४ पिच्चिता, ५ कुट्टिता, ६ अप्रस्रुता, ७ अत्युदीर्णा, ८ अंतेभिहता, ९ परिशुष्का, १० कूणिता, ११ वेपिता, १२ अनुत्थितविद्धा, १३ शस्त्रहता, १४ तिर्यग्विद्धा, १५ अपविद्धा, १६ अव्याध्या, १७ विद्रुता, १८ धेनुका, १९ पुनःपुनर्विद्धा, २० शिरा, स्नायु, अस्थि और संधियोंके मर्मस्थानोंमें विधना ऐसे ये शिरावेधनमें बीस २० प्रकारके दूषण होते हैं (इनके लक्षण और अर्थ अभी अगाडी कहेंगे) ॥ २५ ॥

दुर्विद्धादिके लक्षण।

तत्र या सूक्ष्मशस्त्रविद्धा न व्यक्तमसृक् स्रवति रुजाशोफवती च सा दुर्विद्धा । प्रमाणातिरिक्तविद्धोऽन्तर्गत प्रविशेति शोणित शोणितातिप्रवृत्तिर्वा साऽतिविद्धा । कुंचितायामप्येवम्। कुंठशस्त्र-प्रमथिता स्थलीभावमापन्ना पिच्चिता। अनासादिता पुनःपुनरं-तयोश्च बहुश शस्त्राभिहता कुट्टिता। शीतभयमूर्च्छाभिरप्रवृत्तशो-णिता अप्रस्रुता। तीक्ष्णमहामुखशस्त्रविद्धा अत्युदीर्णा । अल्परक्तस्राविण्यन्तेविद्धा। क्षीणशोणितस्यानिलपूर्णा परिशुष्का । चतु-र्भागावसादिता किंचित्प्रवृत्तशोणिता कूणिता । दु स्थानबन्धनाद्वे-पमानाया शोणितसमोहो भवति सा वेपिता । अनुत्थितवि-द्धायामप्येवम्। छिन्नातिप्रवृत्तशोणिता क्रियासंगकरी शस्त्रहता। तिर्यक्प्रणिहितशस्त्रा किंचिच्छेषा तिर्यग्विद्धा । बहुश क्षता, हीनशस्त्रप्रणिधानेनापविद्धा। अशस्त्रकृत्या अव्याध्या । अनव-स्थितविद्धा विद्रुता । प्रदेशस्य बहुशोऽवघट्टनादारोहव्यधा मुहुर्मुहु शोणितस्रावा धेनुका । सूक्ष्मशस्त्रव्यधनाद्बहुशो विच्छि-न्ना पुन पुनर्विद्धा । स्नाय्वस्थिशिरासंधिमर्मसु विद्धा वा रुजा शोफं वैकल्यं मरणं वापादयति ॥ २६ ॥ भवन्ति चात्र—

जो शिरा छोटे पतले शस्त्रसे विधे जिससे ठीक ठीक रुधिरस्राव न हो पीडा और सूजन होजावे वह १ दुर्विद्धा है। जो नस प्रमाणसे अधिक छेदन होजावे और खून भीतरको प्रवेश होजावे या बहुत अधिक खून निकले वह २ अतिविद्धा है। ३ कुंचित (टेढी विंधी) कभी येही लक्षण होतेहै। मोटी धारवाले शस्त्रसे वेधनेपर मथितसी होकर मोटी पडजावे, फैलजावे, कुचलजावे वह ४ पिच्चिता है। जो एकबार ठीक न विधे तब बार बार उसके आसपास शस्त्रसे छेदी जावे वह ५ कुट्टिता है। जो ठढ या भय या मूर्च्छा आदिसे रक्त नहीं बहे तो ६ अप्रस्रुता है। बहुत तीक्ष्ण बडे मुँहके शस्त्रसे जो बहुत विस्तृत छेद होजावे तो वह ७ अतिउदीर्णा है। जिसके वेधनमें थोडासा रक्त निकले वह ८ अंतेऽभिहता या अंतेविद्धा है। क्षीणरुधिर होनेपर जो वायुसे भर (सूज) जावे वह ९ परिशुष्का है। जो चौथाईसी विधे और किंचित् रक्त निकले वह १० कूणिता है। जिसमे ठीक स्थानमे बध नहीं लगने आदिसे नस कपायमान होतीरहे और रुधिर बद बदहोकर कुछ२ निकले उसे ११ वेपिता कहतेहै। जो नस विना उठी बींधी जावे वह १२ अनुत्थितविद्धा कहातीहै उसमेभी वेपिताकी भांति रक्त कम निकलना आदि लक्षण जानो। जो छेदन होनेपर बहुत रक्त स्रवे और क्रियाको रोकदे (नसका फरकाव और गति बद हो जावे) वह१३ शस्त्रहता है। जो तिरछे शस्त्रपात होनेसे तिरछी विंधे, कुछ शेष रहजावे वह १४ तिर्यग्विद्धा कहातीहै। जो हीनशस्त्रके कारण बहुत छेद कीगई है वह १५ अपविद्धा है। जो शिरा शस्त्रकर्म (छेदन, वेधन) से वर्जित है (उसका वेध होना) १६ अव्याध्या कहातीहै। जो असावधानीसे बींधी जावे वह १७ विद्रुता है। स्थानको वारवार शस्त्रसे वेधे जानेपर वारवार रुधिर स्रवे वह १८ धेनुका कहातीहै। छोटे या बारीक नोकके शस्त्रसे कईवार छेदन कीजावे वह १९ पुनःपुनर्विद्धा कहातीहै। स्नायुमर्म, अस्थिमर्म, शिरामर्म और संधिमर्म इन स्थानोंमे विंधी हुई शिरा पीडा, शोप और विकलता तथा मृत्युकारक हो जाती है (यह २० वीं मर्मविद्धा कहाती है)॥ २६ ॥ इस विषयमें श्लोक है–

शिरासु शिक्षितो नास्ति चला ह्येताः स्वभावतः ॥ मत्स्यवत्परिवर्तंते तस्माद्यत्नेन ताडयेत् ॥ २७ ॥ अजानता गृहीते तु शस्त्रे कायनिपातिते॥ भवंति व्यापदश्चैता बहवश्चाप्युपद्रवाः ॥ २८ ॥

शिराओंके पूर्ण ज्ञानमे कोई भी पूरा २ शिक्षित नहीं है (और नहीं हो सकता) क्योंकि ये स्वभावहीसे चलायमान होती है, मछलीकी भांति कभी ऊपरको उठती है और फिर कभी नीचेको हो जाती है और चलती रहती है इस कारणसे इनका ताडन (बांधना और वेधन करना आदि) यत्नपूर्वक करना चाहिये ॥ २७ ॥ यदि

अजान मनुष्य शस्त्र लेकर शिरावेधन करे (पूर्ण अभ्यासविना फस्त खोले) तो उससे अनेक व्याधियां और बहुतसे उपद्रव उत्पन्न होजातेहैं ॥ २८ ॥

शिरावेधनकी प्रधानता ।

स्नेहादिभिः क्रियायोगैर्न तथा लेपनैरपि ॥ यात्याशु व्याधयः शांतिं यथा सम्यक् शिराव्यधात् ॥ २९ ॥ शिराव्यधश्चिकित्सार्द्धं शल्यतंत्रे प्रकीर्तितः ॥ यथा प्रणिहितः सम्यग्बस्तिः कायचिकित्सिते ॥ ३० ॥

स्नेहन, स्वेदन आदि क्रियाओंसे तथा लेपोंसे इतनी शीघ्र व्याधि शांत नहीं होती है जितनी ठीक २ शिरावेधनसे शीघ्र शांत हो जाती है ॥ २९ ॥ शल्यतन्त्रमे आधा कर्म शिरावेधन और आधी सब क्रिया है ऐसेही कायचिकित्सामे ठीक २ बस्तिकर्म आधी चिकित्सा है और अन्य सब आधी (इससे शल्यक्रियामें शिरावेधनकी बहुत मुख्यता है और कायचिकित्सामें बस्तिकर्मकी प्रधानता है) ॥ ३० ॥

तत्र स्निग्धस्विन्नवांतविरिक्तास्थापितानुवासितशिराविद्धैः परिहर्तव्यानि क्रोधायासमैथुनदिवास्वप्नवाग्व्यायामयानोत्थानासनचंक्रमणशीतवातातपविरुद्धासात्म्याजीर्णान्याबललाभान्मासमेके मन्यंते एतेषां विस्तरमुपरिष्टाद्वक्ष्यामः ॥ ३१ ॥

जिसने स्नेहपान किया हो या स्वेदक्रिया की हो या वमन, विरेचन आस्थापनबस्ति, अनुवासन बस्तिकर्म किया हो या शिरावेधन कराया हो उन रोगियोंको क्रोध, परिश्रम, मैथुन, दिनमें सोना, बहुत बोलना, सवारी करना, उछलना, दूरतक फिरना, शीतवायु, धूप, विरुद्ध और प्रतिकूल भोजन करना, तथा अजीर्णकारक पदार्थ इनसे बचे रहना चाहिये जबतक पूरा बल (ताकत) न हो तबतक और कई एक मास पथ्य करना ऐसा मानते हैं इनका विस्तारसे वर्णन आगे करेंगे ॥ ३१ ॥

शिराविषाणतुंबैस्तु जलौकोभिः पदैस्तथा ॥ अवगाढं यथापूर्वं निर्हरेद्दुष्टशोणितम् ॥ ३२ ॥ अवगाढे जलौका स्यात्प्रच्छन्नं पिंडिते हितम् ॥ शिराङ्गव्यापके रक्ते शृंगालाबू त्वचि स्थिते ॥ ३३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

शिरावेधमें शृंग, तूंबी, जोंक और पछने इनसे जितना २ नीचा दुष्ट रक्त निकालना हो उसी भांति यथापूर्व(क्रमसे)दूषित रुधिरको निकाले(जैसे फस्तसे पतला सर्वदेहव्यापी रक्त निकाले, उससे भीतर गाढेको शृंगसे, उससेभी नीचे और गाढेको

तूंबसे, तथा उससेभी नीचे और गाढेको जोखोंसे निकाले । अवगाढ शब्दका अर्थ कोई अभ्यतर अर्थात् नीचा ऐसा करते हैं और कोई गाढा ऐसा करते हे) ॥३२॥ नीचा और गाढा रुधिर हो तो उसमे जलोका (जोंखें) काममें लानी चाहिये ओर जो रुधिरके पिंडे (गाँठेसी) बँध जावे तो उसमे पछने लगाना श्रेष्ठ है तथा शरीरमें व्यापक रक्तमें शिरावेधन करना उचित हैं ओर त्वचामें दुष्ट रक्त हो तो उसमे शृंग ओर तूंबा लगाकर रक्त निकालना श्रेष्ठ है ॥ ३३ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा०टी० शारीरस्थानेऽष्टमोऽध्याय ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९

अथातो धमनीव्याकरण शारीर व्याख्यास्याम. ।

यहांसे अगाडी अब हम धमनियोंकी विवेचनाका शारीरक व्याख्यान करते हैं ॥

चतुर्विंशतिर्धमन्यो नाभिप्रभवा अभिहिताः ॥ १ ॥ तत्र केचिदाहु. शिराधमनीस्रोतसामविभागं शिराविकारा एव धमन्यः स्रोतांसि चेति" । तत्तु न सम्यक् । अन्या एव हि धमन्य· स्रोतांसि च शिराभ्य· ॥ २ ॥

चौबीस धमनी नाभिसे उत्पन्न हुई हैं ऐसे पहले शोणितवर्णनीय अध्यायमें कह आये हैं ॥ १ ॥ यहांपर कई ऐसा कहते हैं कि शिरा, धमनी ओर स्रोत इनमें भेद नहीं हे किंतु शिराहीका भेद धमनी है तथा स्रोतभी इसी भांति शिराहीका भेद हे (अर्थात् येभी एक प्रकारकी मोटी शिराही समझिये) परतु धन्वतरि भगवान् कहते हैं कि यह कहना उनका ठीक नहीं हे वास्तवमें धमनी ओर स्रोत शिराओंसे पृथक्ही हैं ॥ २ ॥

कस्माद्व्यञ्जनान्यत्वान्मूलसन्नियमात् कर्मवैशेष्यादागमाच्च ॥ ३ ॥ केवल तु परस्परसन्निकर्षात् सदृशागमकर्मत्वात् सौक्ष्म्याच्च विभक्तकर्मणामप्यविभाग इव कर्मसु भवति ॥ ४ ॥

(धमन्य २४।३) ध्मानात् अनिलपूरणात् धमन्य । शिराः सरणात् । स्रवणात् स्रोतांसि । तत्र वातादिवहानां शिराणामरुणनीलगौरलोहितवर्णत्व लक्षणम् । शब्दादिवहानां धमनीनां पुनः उक्तं रसधातुवहत्वं चतुर्थं चरके–"रसधातुवहानि सूक्ष्माण्यणूनि च । स्रोतांसि दीर्घाण्याकृत्या प्रतानसदृशानि च ॥" इति । मूलसंनियमात् मूलनियमात् यथा–मूलं शिराणां हृदयं, नाभिमूलाश्चतुर्विंशतिर्धमन्यः, द्वाविंशतिः स्रोतांसि इति । कर्मवैशेष्यात् कर्मविशेषात् "कर्मणामनियमः" इत्यत्र हि प्रोक्तं शिराणां कर्मवैशेष्यं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धवहत्वादिकं धमनीनां प्राणान्नपानोदकरसरक्तमांसमेदोवहत्वं स्रोतसां कर्मादि॰ रम् । आगमोपदेशः तत्र विभागवत् दर्शितं यथा–मर्मशिरास्नायुधमनीस्रोतसां इत्यादि(निबंधसंग्रह)॥

इसमें प्रथम कारण " व्यजनान्यत्वात्" है अर्थात् इनकी व्यंजना (व्यक्ति) भिन्न भिन्न है (अर्थात् वातवहा शिरा अरुण । पित्तवहा नील । कफवहा शुक्ल । रक्तवहा लोहित) सो धमनियों और स्रोतोंमें इस प्रकार वर्ण नहीं होते किंतु उनके वर्ण जिन २ धातुओंको व वहातीहै उनरके समान होते हैं किंतु शब्दादिवाहिनी धमनियोंका कोई वर्णही नहीं। दूसरा कारण "मूलसन्नियमात्" है अर्थात् मूलके नियमसे भी ये जुदे जुदे हैं (जैसे मूलशिरा ४४ जिनसे ७०० शिरा निकली और मूलभूत धमनी २४ हैं और स्रोत २२ । तीसरा कारण " कर्मवैशेष्यात्" है अर्थात् कर्मकी विशेषतासे भी ये जुदे २ ही हैं) जसे अप्रतिघात वातादिवहन शिराओंके कर्म और शब्द-स्पर्श-रस-गंधादि वहन धमनियोंके कर्म, और प्राण-अन्न-जल-रस-रक्त-मांस-मेद आदि वहन स्रोतोंका कर्म है। चौथा कारण "आगमात्" है अर्थात् आयुर्वेद शास्त्रसे भी ये जुदे२ही हैं क्योंकि शास्त्रमें ये पृथक २ही लिखे हैं ॥ ३ ॥ किंतु इनका परस्पर सन्निकर्ष होनेसे और इनका आगम और कर्म समान होनेसे तथा अतिसूक्ष्मताके कारणसे जुदे जुदे होनेपरभी ये मिले हुएसे (एकसे) सब कामोंमें प्रतीत होते हैं ॥ ४ ॥

तासां तु नाभिप्रभवाणां धमनीनामूर्द्ध्वगां दश दश चाधोगामिन्यश्चतस्रस्तिर्यग्गाः ॥ ५ ॥

उन नाभिसे उत्पन्न हुई २४ धमनियोंमेंसे दश ऊर्द्ध्वगामिनी अर्थात् ऊपरको गमन करनेवाली हैं और दश अधोगामिनी अर्थात् नीचेको गमन करनेवाली हैं तथा चार तिर्यग्गामिनी (तिरछा गमन करनेवाली) हैं ॥ ५ ॥

ऊर्द्ध्वगाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धप्रश्वासोच्छ्वासजृम्भितक्षुद्धसितकथितरुदितादीन्विशेषानभिवहन्त्यः शरीरं धारयन्ति ॥ ६ ॥ तास्तु हृदयमभिप्रपन्नास्त्रिधा जायन्ते तास्त्रिंशत् ॥७॥ तासां तु वातपित्तकफशोणितरसान् द्वे द्वे वहतस्ता दश। शब्दरूपरसगंधानष्टाभिर्गृह्णीते। द्वाभ्यां भाषते च द्वाभ्यां घोषं करोति द्वाभ्यां स्वपिति द्वाभ्यां प्रतिबुध्यते । द्वे चाश्रुवाहिन्यौ । द्वे स्तन्यं स्त्रियां वहतः स्तनेसंश्रिते । ते एव शुक्रं नरस्य स्तनाभ्यामभिवहतः ॥ ८ ॥ तास्त्वेतास्त्रिंशत्सविभागा व्याख्याताः । एताभिरूर्द्ध्वं नाभेरुदरपार्श्वपृष्ठोरस्कंधग्रीवाबाहवो धार्यंते याप्यंते च ॥ ९ ॥ भवति चात्र-

ऊपरको गमन करनेवाली धमनी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, प्रश्वास, उच्छ्वास (श्वास लेना छोड़ना), जभाई लेना, छींकना, हँसना, बोलना, रुदन करना आदि कार्योंको वहन करती हुई शरीरको धारण करती है ॥ ६ ॥ ये १० ऊर्द्धगामिनी धमनी हृदयमें पहुँचकर तीनगुनी होकर तीस ३० होजाती है ॥ ७ ॥ इनमें २ वातवहा, २ पित्तवहा, २ कफवहा, २ रक्तवहा, २ रसवहा ऐसे ये १० हैं तथा शब्द, रूप, रस और गंधको प्राप्त करनेवाली दो दो ८ ये। दोसे मनुष्य बोलता है, २ से घोष करता है, २ से सोता है, २ से जागता है, दो धमनी अश्रुवाहिनी है, और स्त्रियोंके स्तनोंमें स्थित दो धमनी दूधको प्रवृत्त करतीहैं और वेही २ धमनी पुरुषोंके शुक्रको प्रवृत्त करती है ॥ ८ ॥ इस भांति ये ३० धमनियां विभागसहित वर्णन कीगई इन्हींसे नाभिका ऊपर, पेट, पँमवांड, पीठ, छाती, कंधे, ग्रीवा और भुजा धारण तथा पोषण किये जाते है ॥ ९ ॥ इसविषयमें श्लोक है-

ऊर्द्धं गतास्तु कुर्वंति कर्माण्येतानि सर्वश. ॥
अधोगमास्तु वक्ष्यामि कर्म तासा यथायथम् ॥ १० ॥

ऊपर गमन करनेवाली सब धमनियां इस प्रकार (जेसे पूर्व कहाहे) कर्म करती-हे अब अगाडी अधोगम (नीचे गमन करनेवाली) धमनियां और इनके जसे २ कर्म है उन्हे वर्णन करते हैं ॥ १० ॥

अधोगमास्तु वातमूत्रपुरीषशुक्रार्तवादीन्यधो वहति । तास्तु पित्ताशयमभिप्रतिपन्नास्तत्रस्थमेवान्नपानरस विपक्कमौष्ण्याद्विवेचयन्त्योभिवहत्य शरीरं तर्पयत्यर्पयंति चोर्द्धगतानां तिर्यग्गताना रसस्थान चाभिपूरयन्ति मूत्रपुरीषस्वेदाश्च विवेचयंति॥११॥

नीचेको गमन करनेवाली धमनियां अधोवायु, मूत्र, पुरीष, वीर्य और स्त्रियोंका आर्तव इन्हे नीचेको प्रवृत्त करती हैं । ये अधोगामिनी धमनी पहले पित्ताशयमें प्राप्त होकर वहांके अन्नपानजनित रसको जो विपक्व है उसे उष्णतासे विवेचन (शुद्ध) करके शरीरमें पहुँचाती और शरीरको तृप्त करती है। ऊर्द्धगामिनी और तिरछा गमन करनेवाली धमनियोंको (सर्वत्र पहुँचानेके वास्ते) समर्पण करती है और मुख्य रसके स्थानको पूरण करती हैं तथा मूत्र, विष्ठा और स्वेद इन्हे विवेचन (पृथक् पृथक्) करती है ॥ ११ ॥

आमपक्वाशयांतरे च त्रिधा जायते त्रिंशत् ॥ १२ ॥ तासा तु वातपित्तकफशोणितरसान् द्वे द्वे वहतस्ता दश। द्वे अन्नवाहि

न्यावत्राश्रिते । तोयवहे द्वे । मूत्रवस्तिमभिप्रपन्ने मूत्रवहे द्वे । शुक्रवहे द्वे । शुक्रप्रादुर्भावाय द्वे विसर्गाय ते एव रक्तमभिवहतो नारीणामार्तवसंज्ञम् । द्वे वर्चोनिरसन्यौ स्थूलांत्रप्रतिबद्धे । अष्टावन्यास्तिर्यग्गानां धमनीनां स्वेदमर्पयंति ॥ १३ ॥

ये धमनी आमाशय और पक्वाशयके मध्य (अग्न्याशय) मे पहुँचकर तीन तीन भागमें विभक्त हो जाती है ऐसे यहांपर ये ३० हो जाती हे ॥ १२ ॥ इनमेंसे वायु, पित्त, कफ, रक्त और रसको दो दो धमनी वहाती है (यह ऐसे १० हुई), दो अत्र (आंतो) मे स्थित होकर अन्नको वहाती है, दो जलको वहाती है, तथा मूत्र वस्ति (मसाने) मे प्राप्त हुई दो मूत्रको प्रवृत्त करती है, तथा वीर्यकोभी दो धमनी प्रवृत्त करती है, और दो शुक्रको उत्पन्न करती है और जो शुक्रको प्रवृत्त करती है वेही शुक्रको निकालतीहै और स्त्रियोंके वेही आर्तवसंज्ञक रक्तको प्रवृत्त करती है और मोटे आंतड़े (उडुक) मे प्राप्त हुई दो विष्ठाको वाहर निकालती है, तथा शेष आठ तिरछी गमन करनेवाली धमनियोंको पसीना समर्पण करती है ॥ १३ ॥

तास्त्वेतास्त्रिंशत् सविभागा व्याख्याता एताभिरधोनाभेः पक्वाशयकटीमूत्रपुरीषगुदवस्तिमेढ्रसक्थीनि धार्यंते याप्यंते च ॥१४॥ भवति चात्र–

इस प्रकारसे ये ३० अधोगामिनी धमनी विभागपूर्वक वर्णन कीगई इन्हींसे नाभिके नीचे पक्वाशय, कमर, मूत्र, पुरीष, गुदा, वस्ति, लिंग और दोनों पांव धारण किये जातेहे और पोषण किये जातेहे ॥ १४ ॥ यहां एक श्लोक है–

अधोगमास्तु कुर्वंति कर्माण्येतानि सर्वशः ॥
तिर्यग्गाः संप्रवक्ष्यामि कर्म तासां यथायथम् ॥ १५ ॥

अधोगामिनी धमनी सब इस प्रकारसे कर्म करती है अब अगाडी तिर्यग्गामिनी (तिरछी गमन करनेवाली) धमनियोंका वर्णन करतेहे और जो जो उनके कर्म हे उनको वर्णन करते है ॥ १५ ॥

तिर्यग्गाणां तु चतसृणां धमनीनामेकैका शतधा सहस्रधा चोत्तरोत्तरं विभज्यते तास्त्वसंख्येयास्ताभिरिदं शरीरं गवाक्षितं

(पा०१३) "शुक्रवहे द्वे शुक्रप्रादुर्भावाय द्वे" इसके स्थानमें [illegible] ॥

विवद्धमातत च॥१६॥ तासा मुखानि रोमकूपप्रतिवद्धानि ये स्वेद-मभिवहति रस चापि संतर्पयत्यतर्वाहिश्चं तैरेवं चाभ्यगपरिपेकाव-गाहालेपनवीर्याण्यत शरीरमभिप्रतिपद्यंते त्वचि विपकानि तैरेव स्पर्शसुखमसुख वा गृह्णाति ॥ १७ ॥ तास्त्वेताश्चतस्रो धमन्यः सर्वांगगताः सविभागा व्याख्याता ॥ १८ ॥ भवतश्चात्र–

तिर्यग्गामिनी जो ४ धमनी है इनमेंसे एक एकमेंसे सौ सौ, हजार हजार और फिर इनमेसे सैकडों, हजारो विभाग होजातेंहै इससे ये असख्यात हो जातीहैं और इनसे यह शरीर झरोखोंकी भांति होरहा है और इन्हींसे सब शरीर बँधा हुआहै तथा आच्छादन किया हुआहै ॥ १६ ॥ इनके सूक्ष्म मुख रोमोंके छिद्रसे मिले हुए हैं इन मुखोंहीसे ये पसीनेको प्रवृत्त करतींहै और रसको बाहर भीतर सर्वत्र पहुँचातींहै और शरीरको पोषण करतींहै और इन्हींसे मर्दनकी वस्तु और तरडे देनेकी वस्तु तथा स्नान और लेपका प्रभाव शरीरमे पहुँचताहै और ऊपरमे शुष्क होजाताहै। तथा इन्हींसे स्पर्शका सुख, दुःख (शीत, उष्ण, मृदु, कठिनादि) जीव ग्रहण करताहै ॥ १७ ॥ ऐसे ये चार तिर्यग्गामिनी समस्त शरीरमे गमन करनेवाली धमनी विभागपूर्वक वर्णन की गइ ॥ १८॥ इस विषयम दो श्लोक है–

यथा स्वभावत खानि मृणालेषु विसेषु च ॥
धमनीना तथा खानि रसो यैरुपचीयते ॥ १९ ॥

जैसे कमलकी नालियों और जडोम स्वभावहीसे सूक्ष्म छिद्र होतेंहै वैसेही धमनियोंमेंभी सूक्ष्म २ छिद्र है इन्हीं छिद्रोंसे रस सचय होता है (और शरीरको पोषण करताहै) ॥ १९ ॥

पचादिभूतास्त्वथ पचकृत्त्व. पचेन्द्रिय पंचसु भावयति ॥
पचेंद्रिय पंचसु भावयित्वा पंचत्वमायाति विनाशकाले ॥२०॥

(वाक्य १७) ये रोमकूपप्रतिवद्धं मुखा स्वेदमभिवहति ॥

(श्लो० २०) पंचादिभूता इति–पच पृथिव्यादय आदिभूता येषां ता धमन्य । "पचादिभूता" इत्यत्र पंचाभिभूता इति पाठे तु पचभ्य पृथिव्यादिभ्यो अभिभूता धमन्य पंचकृत्व पचधा भूत पंचेंद्रियं कमपूर्वं पचसु पंचेन्द्रियेषु भावयति। विनाशकाले पंचेंद्रियं पंचसु पृथिव्यादिषु भावयित्वा इव पृथ्वा ता स्वयमपि पंचत्वमायाति । अथवा पंचाभिभूता धमन्य पचकृत्व पचेंद्रियं इंद्रियवेनेह पचसु तद्विषयेषु भावयति मरणपर्यंत विनाशकाले पंचेंद्रियं देहे पचसु पृथिव्यादिषु भावयित्वा पंचत्वमायाति । केचित् श्लोकमनुमत्र केरक मन्यते ॥

पांच पृथिव्यादि (पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश) हे आदिभूत जिनके ऐसी जो पांच (गन्धवाहिनी, रसवाहिनी, रूपवाहिनी, स्पर्शवाहिनी, शब्दवाहिनी) धमनियां हे वे पचधा प्रवृत्त होकर पचेन्द्रिय कर्मपुरुषको पांचों इंद्रियों (घ्राण, रसना, नेत्र, त्वचा, श्रोत्र) की तरफ प्रवृत्त करती है और विनाशकाल (मृत्युके समय) मे पाचो इंद्रियोंको पृथिव्यादि पांचो तत्त्वोंमें लय करके स्वयभी पचत्वको प्राप्त होजाती है (अथवा "पञ्चादिभूता" की जगह पञ्चाभिभूता' ऐसा पाठ है तो पांच तत्त्वोंसे अभिभूत अर्थात उत्पन्न ऐसी जो धमनी ऐसा अर्थ करना)अथवा पञ्च तत्त्वोंसे अभिभूत जो गन्धादिवाहिनी धमनी है वे पांच ठौर विभक्त होकर पाचों इंद्रियोंको उनके पांचो विषयोंमे प्रवृत्त करती है और फिर मृत्युके समय पचेंद्रिय (कर्मपुरुष) को पाचो तत्त्वोंमे लय करके स्वय पचत्वको प्राप्त होजाती है (नष्ट होजाती है)। यह श्लोक क्लिष्ट समझकर कूटमुद्गरमें लिखा है इसके और भी कई भांति कई अर्थ करतेंहै और कई इसे इस जगह क्षेपक मानते है और कहते है कि धमनियोंके सम्बन्धमें इस श्लोकका ठीक वास्तविक प्रयोजन नहीं जाना जाताहै केवल खींचकर "पञ्चाभिभूता." इस पदसे धमनियोंका अर्थ लेते है ॥२०॥

अत ऊर्ध्वं स्रोतसा मूलविद्धलक्षणमुपदेक्ष्याम. ॥ २१ ॥

इसके अगाडी (धमनीप्रकरणके कथनानंतर) अब हम स्रोतोंके मूलविद्ध लक्षणोंका उपदेश करते है ॥ २१ ॥

तानि तु प्राणान्नोदकरसरक्तमांसमेदोमूत्रपुरीषशुक्रार्तववहानि येष्वधिकार एकेषा बहूनि । एतेषा विशेषा बहव ॥ २२ ॥

वे स्रोत प्राणवाही अन्नवाही,जलवाही, रसवाही, रक्तवाही, मांसवाही, मेदवाही, मूत्रवाही, तथा मलवाही, शुक्रवाही और स्त्रियोंके आर्तव रक्तवाही है स्रोतोंमे मुख्य अधिकार इन्हींका है अर्थात् ये ११ ही मुख्य स्रोत है किन्हीं २ आचार्योंके मतमे स्रोत बहुतसे है और उनमेंसे उनके भेद फिर बहुतसे है। जैसे स्वेदवाही, मज्जवाही, अस्थिवाही आदि परन्तु धन्वन्तरिजीके मतसे इनका मूलविद्ध स्रोतोंमें अधिकार नहीं है क्योंकि, अस्थिवाहियोंका मूल मेदही है इसीप्रकार औरभी मुख्य नहीं है ॥ २२ ॥

तत्र प्राणवहे द्वे तयोर्मूल हृदय रसवाहिन्यश्च धमन्यस्तत्र विद्धस्य क्रोशनविनमनमोहनभ्रमणवेपनानि मरण वा भवति ॥२३॥

(वाक्य २२) एवमधिकार इति–अन्यचिकित्सायामेषु एकादशसु प्रत्यधिकारः । एकेषां मते स्रोतांसि बहूनि अस्थिमज्जस्वेदवहादीनि तेषां भेदा बहव परमत तेषामनधिकारः । किं च तेषां मांसादिकेदारेण स्थितत्वादपि ... न च शास्त्रादिज्ञाननिमित्त ... तेषामनधिकार एव ॥

अन्नवहे द्वे तयोर्मूलमामाशयोऽन्नवाहिन्यश्च धमन्यस्तत्र विद्धस्याध्मानं शूलान्नद्वेषौ छर्दिः पिपासान्ध्यं मरणं वा ॥ २४ ॥ उदकवहे द्वे तयोर्मूलं तालु क्लोम च तत्र विद्धस्य पिपासा सद्योमरणं च ॥ २५ ॥ रसवहे द्वे तयोर्मूलं हृदयं रसवाहिन्यश्च धमन्यस्तत्र विद्धस्य शोषः प्राणवहविद्धवच्च मरणं तल्लिंगानि च ॥ २६ ॥

उन स्रोतोंमेंसे प्राणोंको वहानेवाले दो स्रोत हैं इनका मूल हृदय है और रसवाहिनी धमनी भी (इनका मूल) है यहांपर विंध जानेसे (तीर, गोली, नश्तर आदि लगजानेसे) प्रलाप और शरीर नवजाना, मूर्च्छा, भ्रमण और कंप ये उपद्रव होते हैं अथवा मृत्यु होती है ॥ २३ ॥ अन्नवाही स्रोत दो हैं इनकी जड आमाशय और अन्नवाहिनी धमनी है यहां विंधनेसे अफरा, शूल, अन्नद्वेष, वमन, प्यास, अंधता अथवा मृत्यु होवे ॥ २४ ॥ जलवाही स्रोत भी दो हैं इनका मूल तालु तथा क्लोम हैं यहां विंध जानेसे प्यास और तत्काल मृत्यु होती है ॥ २५ ॥ रसवाही स्रोत भी दो हैं इनकी जड हृदय तथा रसवाहिनी धमनी है यहांपर विंध जानेसे शोष (शुष्कता) तथा प्राणवहाके विंधनेके समान लक्षण और मृत्यु होती है ॥ २६ ॥

रक्तवहे द्वे तयोर्मूलं यकृत्प्लीहानौ रक्तवाहिन्यश्च धमन्यस्तत्र विद्धस्य श्यावाङ्गता ज्वरो दाहः पाण्डुता शोणितातिगमनं रक्तनेत्रता चेति ॥२७॥ मांसवहे द्वे तयोर्मूलं स्नायुत्वचा रक्तवहाश्च धमन्यस्तत्र विद्धस्य श्वयथुर्मांसशोषः सिराग्रन्थयो मरणम् ॥ २८ ॥ मेदोवहे द्वे तयोर्मूलं कटी वृक्कौ च तत्र विद्धस्य स्वेदागमनं स्निग्धाङ्गता तालुशोषः स्थूलशोफता पिपासा च ॥ २९ ॥

रक्तवाही स्रोत दो हैं इनका मूल यकृत् (जिगर), तिल्ली तथा रक्तवाहिनी धमनी है यहां विंध जानेसे शरीर काला पडना, ज्वर, दाह, शरीर पीला होना, अति रुधिर निकलना, नेत्र लाल होना ये लक्षण होते हैं ॥ २७ ॥ मांसवाही स्रोत भी दो हैं इनका मूल स्नायुओंकी त्वचा तथा रक्तवाहिनी धमनी है यह विंधनेसे सोजा, मांस सूखना, शिराओंमें गांठ पडना और मृत्यु ये लक्षण होते हैं ॥ २८ ॥ मेदोवाही स्रोत दो हैं इनका मूल कमर और दोनों वृक्क (गुर्दे) हैं यहां विंध जानेसे पसीना नहीं आता, स्निग्धता हो, तालु सूखे, मोटा शोथ हो, तथा प्यास अधिक हो ॥ २९ ॥

मूत्रवहे द्वे तयोर्मूलं वस्तिर्मेढ्रं च तत्र विद्धस्यानद्धवस्तिता मूत्र निरोध• स्तब्धमेढ्रता च ॥ ३० ॥ पुरीषवहे द्वे तयोर्मूल पक्वाशयो गुदं च तत्र विद्धस्यानाहो दुर्गन्धता ग्रथितान्त्रता च ॥ ३१ ॥ शुक्रवहे द्वे तयोर्मूल स्तनौ वृषणौ च तत्र विद्धस्य क्लीवता चिरात्प्रसेको रक्तशुक्रता च ॥ ३२ ॥ आर्तववहे द्वे तयोर्मूल गर्भाशय आर्तववाहिन्यश्च धमन्यस्तत्र विद्धाया वंध्यात्वं मैथुनाऽसहिष्णुत्वमार्तवनाशश्च ॥ ३३ ॥

मूत्रवाही दो स्रोत हैं इनका मूल वस्ति (मसाना) तथा लिंग है यहां विधनेसे वस्ति फूलना, मूत्र बंद होना, लिंग कडा होना ये लक्षण होते हैं ॥ ३० ॥ पुरीष (विष्ठा) वाही भी दो स्रोत हैं इनका मूल पक्वाशय तथा गुदा है यहां विधनेसे पेट फूलना, दुर्गंध होना, आंतोंमें आंटे पडना ये लक्षण होते हैं ॥ ३१ ॥ वीर्यवाही स्रोत भी दो हैं इनका मूल दोनों चूचियां और दोनों अंड हैं यहां विधनेसे नपुंसकता, देरसे वीर्य गिरना, वीर्यपातमें रुधिर आना ये लक्षण होते हैं ॥ ३२॥ स्त्रियोंके आर्तववाही स्रोत भी दोही हैं इनका मूल गर्भाशय तथा आर्तववाहिनी धमनी हैं यहां विधनेसे स्त्रियोंको वंध्यापन, मैथुनका असहन तथा रजोधर्मका नाश ये लक्षण होते हैं ॥ ३३ ॥

सेवनीछेदाद्रुजाप्रादुर्भावः वस्तिगुदविद्धलक्षण प्रागुक्तमिति ॥ ३४ ॥ स्रोतोविद्धं तु प्रत्याख्यायोपचरेदुद्धृतशल्यं तु क्षतविधानेनोपचरेत् ॥ ३५ ॥

सेवनीके छेदन होनेसे बहुत पीडाका प्रादुर्भाव होता है और वस्ति तथा गुदामें विद्धके लक्षण पहले कहेही गये हैं ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य स्रोतस्थान (स्रोतोमुख) में विद्ध हुआ हो उसे (असाध्य है या कष्टसाध्य है ऐसा) कहकर फिर चिकित्सा करनी चाहिये और जिसका शल्य निकल गया हो उसकी क्षतविधिसे (जखमके इलाजकी भांति) चिकित्सा करनी ॥ ३५ ॥

मूलात्स्रोतदंतर देहे प्रसृत त्वभिवाहि यत् ॥
स्रोतस्तदिति विज्ञेय शिराधमनिवर्जितम् ॥ ३६ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने नवमोऽध्याय ॥ ९ ॥

मूल (हृदय) छिद्रसे लेकर शरीरके भीतर जो वहनशील छिद्र हैं उनको स्रोत कहते है परतु शिरा और धमनी स्रोत नहीं है इन्हे छोडकर शेप जो वहनशील छिद्र है वे स्रोत कहलाते है ॥ २६ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० शारीरस्थाने नवमोऽध्याय ॥९॥

दशमोऽध्याय: १०

अथातो गर्भिणीव्याकरणशारीरं व्याख्यास्याम ।

यहांसे अगाडी अब हम गर्भवतीके बरतावकी विवेचना नामके शारीरकी व्याख्या करते है ॥

गर्भिणी प्रथमदिवसात्प्रभृति नित्य प्रहृष्टा शुच्यलंकृता शुक्लवसना शांतिमंगलदेवताब्राह्मणगुरुपरा च भवेत् ॥१॥ मलिनविकृतहीनगात्राणि न स्पृशेद्दुर्गंधदुर्दर्शनानि परिहरेदुद्वेजनीयाश्च कथाः ॥२॥ शुष्कं पर्युषितं कुथितं क्लिन्नं चान्नं नोपभुंजीत बहिर्निष्क्रमणं शून्यागारचैत्यश्मशानवृक्षाश्रयान् क्रोधभयसंकरांश्च भारानुच्चैर्भाष्यादिकं परिहरेत् यानि च गर्भं व्यापादयति ॥३॥ न चाभीक्ष्णं तैलाभ्यंगोत्सादनादीनि निषेवेत न चायासयेच्छरीरं पूर्वोक्तानि च परिहरेत् ॥ ४ ॥ शयनासनं मृद्वास्तरणं नात्युच्चमपाश्रयोपेतमसंबाधं विदध्यात् । हृद्यं द्रवं मधुरप्रायं स्निग्धं दीपनीयसंस्कृतं च भोजनं भोजयेत् सामान्यमेतदाप्रसवात् ॥ ५ ॥

(गर्भवतीके लक्षणादि दौहृदादि पहले वर्णन होचुके हैं अब उसके बरतावोका वर्णन होताहे) गर्भवतीको ऋतुस्नानके दिनहीसे नित्य प्रसन्न, पवित्र रहना, शृंगार करना, उज्ज्वल वस्त्र पहरना चाहिये और शांतिपाठ, मंगलाचार, तथा देवता, ब्राह्मण ओर गुरवोंमें तत्पर रहना चाहिये ॥ १ ॥ मैले, विकारवाले, हीनांग मनुष्योंका स्पर्श न करे तथा दुर्गंध और जो खराब दीखें उन्होंसेभी दूर रहे और मनको विगाडनेवाली कथाओंसे भी बचे ॥ २ ॥ सूखा, बासी, झुसा, सडा पदार्थ न खावे बाहर फिरना, सूने मकानमें रहना, छतरियो तथा श्मशानोंमें जाना, वृक्षोंके नीचे

(पा० १) प्रथमदिवसात् ऋतुस्नानदिवसादेव यद्वा गर्भास्थितिप्रकाशात् ॥

(पा० ३) शिवारपानं वैन्वन ॥ (पा० ४) पूर्वोक्तानि गर्भव्यापादकानि ॥ (पा० ५) मृद्वास्तरणं मृदिका यास्तरणं भगाभयोर्वे प्रतिराहकष्टीदम् ॥

रहना इनसभी परहेज करे । क्रोध, भय इनसभी बचे तथा निःश्वासकर न करे, बोझा न उठावे, चिल्लाकर न बोले और इनके सिवाय जो गर्भको खंडित करनेवाले आहार विहार हो उन्हेंभी न करे ॥ ३ ॥ अधिक तैलाभ्यंग, उबटन न करे, शारीरक श्रम न करे, तथा पहले कहे हुए अनुचित बरताव न करे ॥ ४ ॥ अति मोनों, बैठेरहना तथा विना बिछौने पृथ्वीमें बैठना या पडना इनका त्याग रक्खे । ऊपर उछलकर न बैठे, कष्टमें नहीं बैठे, मीठा, पतला, हृदयको आनन्दकारी, चिकना, दीपन वस्तुवोसे संस्कार किया हुआ भोजन करे इन आचरणोंको सामान्यतासे गर्भारंभसे लेकर प्रसव होनेतक करना चाहिये ॥ ५ ॥

विशेषतस्तु गर्भिणी प्रथमद्वितीयतृतीयमासेषु मधुरशीतद्रवप्रायमाहारमुपसेवेत ॥ ६ ॥ विशेषतस्तु तृतीये षष्टिकोदनं पयसा भोजयेत् । चतुर्थे दध्ना । पंचमे पयसा । षष्टे सर्पिषा चेत्येके ॥७॥ चतुर्थे पयोनवनीतसंसृष्टमाहारयेज्जांगलमांससहितं हृद्यमन्नं भोजयेत् । पंचमे क्षीरसर्पिःसंसृष्टम् । षष्ठे श्वदंष्ट्रासिद्धस्य सर्पिषो मात्रां पाययेद्यवागूं वा । सप्तमे सर्पिः पृथक्पर्ण्यादिसिद्धमेवमाप्यायते गर्भः ॥ ८॥

विशेष करके गर्भिणीको पहले, दूसरे और तीसरे महीनेमें मीठा, शीतल, पतला आहार सेवन करना चाहिये ॥ ६ ॥ कईयोंका यह भी मत है कि विशेषकर तीसरे महीनेमें षष्टिक (साठी चावलों) का भात दूधके संग खिलाना, चौथे महीनेमें दहीके संग, पांचवेंमें फिर दूधके संग और छठेमें घृतके साथ भात खिलाना ॥ ७ ॥ परन्तु धन्वंतरिजीका मत यह है कि चौथे महीनेमें दूध मक्खनसे मिला आहार तथा जांगल जीवोंके मांसके संग हृदयप्रिय अन्न खिलाना चाहिये । पांचवेंमे दूध घीसे मिला भोजन देवे और छठे महीनेमें गोखरूसे सिद्ध किए घृतकी पानकी मात्रा दे अथवा यवागू पिलावे । सातवें महीनेमें पृथक्पर्णीसे सिद्ध किया हुआ घृत देवे इसप्रकार करनेसे गर्भ ठीक पूर्ण होता है ॥ ८ ॥

अष्टमे बदरोदकेन बलातिबलाशतपुष्पपललपयोदधिमस्तुतैललवणमदनफलमधुघृतमिश्रेणास्थापयेत्पुराणपुरीषशुद्ध्यर्थमनुलोमनार्थं च वायोः ॥ ९ ॥ ततः पयोमधुरकषायसिद्धेन तैलेनानुवासयेदनुलोमे हि वायौ सुखं प्रसूयते निरुपद्रवा च भवति॥१०॥

अष्टम मासमें पुराने मलकी निवृत्ति (शुद्धि) और वायुको अनुलोमन (सीधा) होनेके वास्ते बेरके जल, बला (खरेटी,) अतिबला (कघी नाम खरेटी भेद), शतपुष्प (सोफ), मास, दूध, दहीका मस्तु (दहीका जल,) तिलका तैल, नमक, मैनफल शहत और घृत ये सब मिलाकर इनसे आस्थापन (वस्ति) प्रयोग करे ॥ ९ ॥ फिर मधुर और कषाय द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए तेलसे अनुवासन (वस्ति) करे इससे वायु अनुलोमन होता है और वायु अनुलोमन होनेसे सुखपूर्वक प्रसव होताहै और कुछ उपद्रव नहीं होता ॥ १० ॥

अत ऊर्द्ध्वं स्निग्धाभिर्यवागूभिर्जांगलरसैश्चोपक्रमेदाप्रसवकाला-देवमुपक्रान्ता स्निग्धा बलवती सुखमनुपद्रवा प्रसूयते ॥ ११ ॥

इसके पीछे चिकने यवागुवों और जांगलजीवोंके मांसरसको यथाक्रम आरंभ करावे। इस प्रकार यत्न करनेसे गर्भिणी स्निग्ध बलवती होती है और सुखपूर्वक उपद्रवरहित बालक उत्पन्न करती है ॥ ११ ॥

सूतिकागारविधि।

नवमे मासि सूतिकागारमेनां प्रवेशयेत् प्रशस्ततिथ्यादौ तत्रारिष्टं ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणां श्वेतरक्तपीतकृष्णेषु भूमिप्रदेशेषु बिल्वन्यग्रोधतिंदुकभल्लातकनिर्मितं सर्वागारं यथासंख्यं तन्मयपर्यंकमुपलिप्तभित्तिं सुविभक्तपरिच्छदं प्राग्द्वारं दक्षिणद्वारं वाऽष्टहस्तायतं चतुर्हस्तविस्तृतं रक्षामंगलसंपन्नं विधेयम् ॥१२॥

गर्भिणीको नव महीनेमें सूतिकागारमें (प्रसवके स्थानमें) शुभ तिथि, वार, नक्षत्रादि देखकर प्रवेश करे। वह प्रसवस्थान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको यथाक्रम श्वेत, पीत, रक्त और काली पृथ्वीमें बिल्व, गूलर, तेंदू और भिलावेकी लकडीसे बनावे और उसमें फिर उसी क्रमसे इन्हीं वर्णोंको इन्हीं बिल्वादि वृक्षोंकी खट्वा बिछवावे तथा भीतोंको अच्छे प्रकार लिपवाकर, प्रसवोपयोगी सामग्रीसे उपयुक्त, पूर्वाभिमुख अथवा दक्षिणाभिमुख, आठ हाथ लंबा और चार हाथ चौडा रक्षामंगल संपन्न ऐसा सूतिकागार बनाना चाहिये ॥ १२ ॥

जाते हि शिथिले कुक्षौ मुक्ते हृदयबंधने ॥ सशूले जघने नारी ज्ञेया सा तु प्रजायिनी ॥ १३ ॥ तत्रोपस्थितप्रसवायाः कटीपृष्ठं

(वा० १२) इदानीमस्य सूतिकागारविधिमाह यथा—नवमे मासीत्यादि [illegible] प्रशस्ते देशे [illegible] सूतिकागारं कारयेत्। सुविभक्तपरिच्छदमिति—सुविभक्तानि परिच्छदानि उपकरणानि यस्मिन् ॥ (श्लो० १३) सशूले जघने इति—शूलयुक्तायां कट्याम्। (इति डल्हन) अन्ये तु शूलयुक्ते जघनप्रदेशे इति ॥

प्रति समंताद्वेदना भवत्यभीक्ष्णं पुरीषप्रवृत्तिर्मूत्रं प्रसिच्यते योनिमुखात् श्लेष्मा च ॥ १४ ॥

जब दोनों कूख ढीली पडजावें, हृदयका बंध छूटजावे और साथलोंमें पीडा होने लगे तब जानना कि, इसके शीघ्र बालक होनेवाला है ॥ १३ ॥ और जब तुरत बालक होनेवाला होता है तब कमर और पीठके आसपास चारों तरफ बहुत पीडा होने लगती है, बारबार मल और मूत्रकी प्रवृत्ति होती है तथा योनिके मुखमेंसे कुछ कफसा (पानीसा) भी आने लगता है ॥ १४ ॥

प्रजनयिष्यमाणां कृतमङ्गलस्वस्तिवाचनां कुमारपरिवृतां पुंनामफलहस्तां स्वभ्यक्तामुष्णोदकपरिषिक्तामथैनां संभृतां यवागूमाकण्ठात् पाययेत् ॥१५॥ ततः कृतोपधाने मृदुविस्तीर्णे शयने स्थितामाभुग्नसक्थीमुत्तानामशङ्कनीयाश्चतस्रः स्त्रियः परिणतवयसः प्रजननकुशलाः कर्तितनखाः परिचरेयुः ॥ १६ ॥

जिसके बालक होनेवाला हो उसे मंगलयुक्त स्वस्तिवाचन करावे और लडकोंसे आवृत करके (अर्थात् उसके आसपास कुछ लडके बिठाकर उन्हें कुछ फलादि दिलादे) फिर पुरुषनामवाले आम, अनार जैसे फल हाथमें दिलाकर और तैल मर्दन कराके गरम जलमें अभिषेक (स्नान) करावे इसके पीछे आसन्नप्रसवा स्त्रीको कंठतक पेट भरके यवागू पिला देवे ॥ १५ ॥ फिर ऊँची तकिया लगाकर मुलायम बिछौना बिछाकर उसपर लिटा दे और साथलोंको चौडी और ऊँची रहने दे और जिनसे शंका (लज्जा) न हो ऐसी चार बुड्ढी (दाई) स्त्रियां जो जनानेके काममें चतुर हों और जिनके नाखून कटे हो वे परिचर्यामें रहें ॥ १६ ॥

अथास्या विशिखान्तरमनुलोममनुसुखमभ्यज्यात् ब्रूयाच्चैनामेका सुभगे प्रवाहस्वेति न चाप्राप्तावी प्रवाहस्व । ततो विमुक्ते गर्भे नाडीप्रबन्धे सशूलेषु श्रोणिवङ्क्षणवस्तिशिरःसु प्रवाहेथाः शनैः शनैः । ततो गर्भनिर्गमे प्रगाढं ततो गर्भे योनिमुखं प्रपन्ने गाढतरमाविशल्यभावात् ॥ १७ ॥

(वाक्य १७) विशिखान्तरम् आत्मद्वारम् (इति डल्हन) । आवी प्रजनवेदना (इति गु डल्हन)
अन्ये तु बस्ति कारणमिति । न विगतशल्यभावात् इत्यत्र ...
...भावात् ॥

उन दाइयोंको चाहिये कि आसन्नप्रसवा स्त्रीके अपत्यमार्गको रोमोंके अनुकूल ओर मुखकी तरफ चिकनाई लगावे फिर उनमेंसे एक दाई उस आसन्नप्रसवासे कहे कि हे सुभगे! प्रवाहण कर अर्थात् किनठ परंतु जबतक जेर-नाल (पानीसा) न आवे तबतक न किनठे फिर जब गर्भनाडीका बंध हृदयसे छूट जावे और कमर, नले, वस्ति, शिर इन स्थानोंमें ज्यादा पीडा हो तब धीरे धीरे ज्यादा किनठना चाहिये फिर जब गर्भ निकलने लगे तब और ज्यादा किनठे और जिस समय गर्भका बालक योनिके मुखपर आजावे तब तो बहुतही जोरसे प्रवाहण करे और फिर एकवार अति पीडासी होकर बालक जन्मेगा ॥ १७ ॥

अकालप्रवाहणके दोष ।

अकालप्रवाहणाद्बधिरं मूकं व्यस्तहनुं मूर्द्धाभिघातिनं श्वासकासशोषोपद्रुत कुब्जं विकटं वा जनयति तत्र प्रतिलोममनुलोमयेत्॥१८

बे समय प्रवाहण (किनछने या जनावनेका उद्योग कराने) से बहरा, गूगा, टेढी ठोडीवाला, दबे शिरका, श्वास, खांसी, क्षयी रोगवाला, कुबडा अथवा विकट शरीरवाला बालक उत्पन्न होता है तहां यदि वायु प्रतिलोम हो तो उसे अनुलोम करना चाहिये ॥ १८ ॥

प्रसवमें विलंब हो तो उपचार ।

गर्भसंगे तु योनिं धूपयेत् कृष्णसर्पनिर्मोकेण पिंडीतकेन वा बध्नीयाद्धिरण्यपुष्पीमूलं हस्तपादयोर्द्धारयेत् सुवर्चलां विशल्यां वा ॥ १९ ॥

प्रसवमें अवरोध हो तो योनिमें काले सर्पकी कांचली तथा मदनफलकी धूनी देना चाहिये अथवा हिरण्यपुष्पी (कटकारी) की जडको हाथ और पैरोंमें बांधदे अथवा सुवर्चला (सूर्यभक्ता-अतसी) और विशल्या (पाटला) को धारण करे (इन यत्नोंसे शीघ्र प्रसव होता है)॥ १९ ॥

जन्मोत्तरविधि ।

अथ जातस्योल्वं मुखं च सैन्धवसर्पिषा विशोध्य घृताक्तं मूर्ध्नि पिचुं दद्यात्ततो नाभिनाडीमष्टांगुलमायम्य सूत्रेण बद्धा छेदयेत्तत्सूत्रैकदेशं च कुमारस्य ग्रीवायां सम्यग्बध्नीयात् ॥ २० ॥

(पा० १९) पिंडीतको मदन । (टी० श्लो०) हिरण्यपुष्पी कण्टकारिका तथा मूलम् । सुवर्चला सूर्यभक्ता अतसी । विशल्या पाटला (इति दल्हन) ॥ (पा० २०) अथास्य आद्यम्य विशोध्य । ग्रीवायां सम्यग्बध्नीयात् सांप्रतिकपाठम् ॥

जन्मके पीछे जरायुको बालकके शरीरपरसे साफ करे तथा बालकके मुखको सेंधनमक और घृतसे शुद्ध करे फिर रुईका फोहा घृतमें भिगोकर तालूपर लगावे फिर नाभिनाडी (नाल) को आठ अंगुल नापकर सूतसे बांध देवे और अगाडीसे कतर डाले और नालमें जो डोर बंधी है उसे बालकके गलेमें (ढीलीसी) बांध देवे ॥ २० ॥

अथ कुमारं शीताभिरद्भिराश्वास्य जातकर्मणि कृते मधुसर्पिरनन्ताब्राह्मीरसेन सुवर्णचूर्णमङ्गुल्याऽनामिकया लेहयेत् ॥ २१ ॥

इसके अनंतर बालकको शीतल जलसे आश्वासन करके जातकर्म करे पीछे शहद, घृत, अनंतमूल, ब्राह्मीका रस इनमें (एक रत्ती मात्र) सुवर्णका चूर्ण (मृगांक या सुवर्णके वरक) मिलाकर अनामिका अंगुलीसे बालकको चटावे ॥२१॥

ततो बलातैलेनाभ्यज्य क्षीरवृक्षकषायेण सर्वगन्धोदकेन वा रूप्यहेमप्रतप्तेन वा वारिणा कोष्णेन कपित्थपत्रकषायेण वा कोष्णेन यथाकालं यथादोषं यथाविभवं च ॥२२॥

बला (खरेटी) के तेलका बालकके शरीरपर मर्दन करके दूधवाले वृक्षोंके काथसे अथवा सर्वगंधोदक (एलादिके जल) से चांदी और सुवर्णके तपाये हुए (जिसमें तप्त रूप्य वा हेम बुझा हो) जलसे अथवा कपित्थपत्र (कैथके पत्ते) के कुछ कुछ गरम काथसे जैसा समय (ऋतु) हो,जैसा दोष हो,और जैसा विभव (समृद्धि) हो उसीके अनुसार स्नान कराना चाहिये ॥ २२ ॥

धमनीनां हृदिस्थानां विवृतत्वादनन्तरम् ॥ चतूरात्रात्त्रिरात्राद्वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्तते ॥ २३ ॥ तस्मात्प्रथमेऽह्नि मधुसर्पिरनन्तामिश्रं मन्त्रपूतं त्रिकालं पाययेत् । द्वितीये लक्ष्मणासिद्धं सर्पिस्तृतीये च । ततः प्राङ्निवारितस्तन्यं मधुसर्पिः स्वपाणितलसम्मितं द्विकालं पाययेत् ॥ २४ ॥

प्रसूता स्त्रीके हृदयकी धमनियोंके मुख खुल जातेहैं इससे तब चार रात्रि या तीन रात्रि व्यतीत होजातीहै तब उस (सद्य:प्रसूता) स्त्रीके स्तनोंमें दुग्ध उतरता है ॥२३॥ इस कारण प्रथम दिन शहत, घृतमें अनंतमूल मिलाकर मंत्रोंसे अभिमंत्रित

(पा०-२१)सुवर्णचूर्णमिति-चूर्णप्रमाणं तु गुञ्जामात्रमिति (नि० वृ०) (पा०-२२) क्षीरवृक्षा उदुम्बरादयो ज्ञेयाः ॥ (पा०-२४) अनन्ता दूर्वा मे वे केचित् । केचित्तु अनन्तमूलमिति मन्यन्ते । स्वपाणितलमिति मधुसर्पिषोरयमेव प्रमाणं यथाकथं नास्तिवर्षे [illegible] प्रमाणं तत [illegible] मधु [illegible] ॥

करके तीन समय बालकको पिलावे । दूसरे दिन लक्ष्मणासे सिद्ध किया हुआ घृत (मधु युक्त) पिलावे और तीसरे दिनभी यही करे । फिर(चौथे दिन) स्तनोंमेंसे पहलेका कुछ दुग्ध निकाल डाले और दो समय थोडा थोडा दुग्ध प्रसूताके स्तनोंसे पिलावे तथा शहत और घृत पाणितलप्रमित (चार टक) (जिसमें ३ टक मधु १ टक घृत) दोनो समय चटावे ॥ २४ ॥

प्रसूताके नियम ।

अथ सूतिका बलातैलाभ्यक्ता वातहरौषधानि क्वाथेनोपचरेत्॥२५॥ सशेषदोषा तु तदह पिप्पलीपिप्पलीमूलहस्तिपिप्पलीचित्रकशृंगवेरचूर्णगुडोदकेनोष्णेन पाययेत् । एवं द्विरात्रं त्रिरात्रं वा कुर्यादादुष्टशोणितात् ॥२६॥

इसके अनतर प्रसूताको बलातैलका मर्दन करना और वातघ्न (भद्रदारु आदि) औषधोंके क्वाथसे उपचार करे ॥ २५ ॥ और जो रक्तका दोष शेष रहा हो तो उसी दिन पीपल, पीपलीमूल, गजपीपल, चित्रक और सोंठके चूर्णको गुडके उबालेहुए गरम गरम जलके सग पिलावे । इसी भांति जबतक दुष्ट रक्त रहे दो या तीन दिनतक करे ॥ २६ ॥

विशुद्धे ततो विदारिगधादिसिद्धां स्नेहयवागूं क्षीरयवागूं वा पाययेत्त्रिरात्रम् । ततो यवकोलकुलत्थसिद्धेन जांगलरसेन शाल्योदनं भोजयेत् बलमग्निबलं चाविक्ष्य । अनेन विधिनाऽध्यर्द्धमासमुपसंस्कृता विमुक्ताहाराचारा विगतसूतिकाभिधाना स्यात् पुनरार्तवदर्शनादित्येके॥ २७॥

जब रक्तदोष शुद्ध होजावे तब विदारिगधादिगणसे सिद्ध की हुई स्नेहयुक्त यवागू अथवा दुग्धयुक्त यवागू तीन दिन तक पिलावे इसके पीछे जौ, कोल और कुलथीसे सस्कार किये हुए शालीके भातको जांगलजीवोंके मांसरसके सग बल और अग्निका बल विचारकर प्रसूताको खिलावे । इस विधिसे डेढ महीने तक उपचार करनेपर आहार तथा विहारका नियम नहीं रहना चाहिये क्योंकि डेढ महीने पीछे स्त्रीकी प्रसूता सज्ञा नहीं रहती है । और कई आचार्योंका यह मत है कि जबतक फिर रजस्वला न हो तबतक उसकी प्रसूता सज्ञा रहतीहै (अर्थात् जबतक गोदमें बालक दूधपीता रहे तबतक प्रसूता सज्ञा रहती है ऐसा कई मानते है) ॥ २७ ॥

(पा० २५) वातहरौषधानि भद्रदार्वादीनि ॥

धन्वभूमिजातां सूतिकां घृततैलयोरन्यतरस्य मात्रां पाययेत् पिप्पल्यादिकषायानुपानं स्नेहनित्या च स्यात्त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा बलवतीमबलां यवागूं पाययेत्त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा ॥ २८ ॥ अत ऊर्द्ध्वं स्निग्धेनान्नसंसर्गेणोपचरेत् प्रायशश्चैनां प्रभूतेनोष्णोदकेन परिषिञ्चेत् क्रोधायासमैथुनादीन् परिहरेत् ॥ २९ ॥ भवतश्चात्र-

धन्वभूमि (जांगल देश जैसे मारवाड) की प्रसूताको घृत या तैलकी मात्रा पिलावे और पिप्पल्यादि क्वाथका अनुपान देवे और नित्य तैलाभ्यंग करे ऐसे तीन या पांच दिनतक करे। बलवती प्रसूताको तीन दिन और बलहीनको पांचदिन तक यवागू पिलावे ॥ २८ ॥ इसके पीछे चिकने अन्नके संसर्गसे उपचार करे अर्थात् उसे चिकना अन्न (हलवा आदि) खिलाते रहें और कभी कभी उष्णजलसे शरीरको सींचे (तरेडे दे तथा स्नान करावे) और क्रोध, परिश्रम तथा मैथुन आदिको त्यागे रहे ॥ २९ ॥ इस विषयमें दो श्लोक हैं-

मिथ्याचारात्सूतिकाया यो व्याधिरुपजायते ॥ स कृच्छ्रसाध्योऽसाध्यो वा भवेदत्यपतर्पणात् ॥ ३० ॥ तस्मात्तां देशकालौ च व्याधिसात्म्येन कर्मणा॥परीक्ष्योपचरेदेवं न यमत्ययमाप्नुयात्॥३१॥

मिथ्या आचार (औषध, अन्न, विहार) से प्रसूताको जो व्याधि होजाय तथा अपतर्पण (तृप्तिकारक वस्तु न मिलने) से जो सूतिकाको रोग होजावें तो वे कष्टसाध्य अथवा असाध्य होते हैं ॥ ३० ॥ इस कारण देश, काल और व्याधि तथा सात्म्य (उसे कैसा सानुकूल है) इन बातोंको विचारकर और परीक्षा करके प्रसूताका उपचार करना चाहिये ऐसा न हो कि उलटा रोग बढकर असाध्य होजावे ॥ ३१ ॥

अपरापातन।

अथापरा पतत्यानाहाध्मानौ कुरुते तस्मात् कण्ठमस्याः केशवेष्टितया-ऽङ्गुल्या प्रमृजेत्। कटुकालाबुकृतवेधनसर्षपसर्पनिर्मोकैर्वा कटुतैल-मिश्रैर्योनिमुखं धूपयेत्। लाङ्गलीमूलकल्केन वास्याः पाणिपाद-तलेमालिम्पेत् ॥ ३२ ॥

यदि अपरा (आंवल नाल) नहीं गिरे या थोडी रहजावे तो पेटमें अफरा और भारीपन पैदा करती है तिसके निकलनेके वास्ते प्रसूता स्त्रीके कण्ठमें अंगुलीमें बाल

(पा० २८) धन्वभूमिजातामिति-जाङ्गलदेशजातां सूतिकां मधुरकटुकषायानुलोमेन घृतस्य तैलस्य वा मात्रामग्निबलापेक्षिणीं पाययेत् (टी०) ॥ (पा० २९) प्रभूतेन प्रचुरेण ॥

बांधकर मलना चाहिये तथा कडुवी तोंबी, कडुवी तुरई, सरसा, सर्पकी कांचली इनमे कडुवा तैल मिलाकर योनिके मुखपर धूनी देना चाहिये। अथवा कलिहारीके जडको पीसकर उसके हाथ, पावोंमें लेपकरे ॥ ३२ ॥

मूर्ध्नि वाऽस्या महावृक्षक्षीरमनुसेचयेत् । कुष्ठलांगलीमूलकल्कं वा मद्यसूत्रयोरन्यतरेण पाययेत्। शालिमूलकल्कं वा पिप्पल्यादि वा मद्येन। सिद्धार्थककुष्ठलांगलीमहावृक्षक्षीरमिश्रेण सुरामंडेन वाऽस्थापयेत्। एतैरेव सिद्धेन सिद्धार्थकतैलेनोत्तरबस्तिं दद्यात्। स्निग्धेन वा कृत्तनखहस्तेनापहरेत् ॥ ३३ ॥

अथवा शिरपर थूहरके दूधका आसेचन करे अथवा कूट, कलिहारीकी जडको मद्य या गोमूत्रमेंसे किसीके साथ थोडी पिलावे। अथवा चावलोंकी जडको जलमे पीसके या पिप्पली आदिको मद्यके साथ दे। अथवा सरसों, कूट, कलिहारी, थूहरका दूध मिलाकर सुरामंडके संग आस्थापनबस्ति करना और इन्हीं औषधोंसे सिद्ध किये हुए सरसोंके तेलसे उत्तरबस्ति करे अथवा नाखून कटे हाथोंमें तेल लगाकर (हाथ योनिमें देकर) मल्लको खींचके निकाले ॥ ३३ ॥

मकल्लरोगके लक्षण।

प्रजातायाश्च नार्या रूक्षशरीरायास्तीक्ष्णैरविशोधित रक्तं वायुना तद्देशगेनोनिरुद्धं नाभेरधः पार्श्वयोर्बस्तौ बस्तिशिरसि वा ग्रंथिं करोति। ततश्च नाभिबस्त्युदरशूलानि भवति । सूचीभिरिव निस्तुद्यते भिद्यते दीर्य्यते इव च पक्वाशयः। समंतादाध्मानमुदरे मूत्रसंगश्च भवतीति मकल्ललक्षणम् ॥ ३४ ॥

जब स्त्रीके बालक हो चुके तब यदि रूक्ष शरीरवाली प्रसूता हो उसके अशुद्ध रक्त शेष रहा हो उस अवस्थामें उसे तीक्ष्ण वस्तुओंका उपयोग किया जावे तो वह अशुद्ध रक्त उस स्थानमें प्राप्त हुए वायुसे अवरुद्ध होकर (रुक जावे तब) नाभिसे नीचे पँसवाडोंमें बस्तिमें या बस्तिके शिरके स्थानमें गांठसी उत्पन्न कर देता है उससे नाभि, बस्ति, उदर इन स्थानोंमें शूल होजाता है इससे सूईकीसी भांति चुभन होती है, भेदनसा होता है, और पक्वाशय विदारणसा होता है, और सारे पेटमें अफरासा हो जाता है तथा मूत्र रुक रुककर आता है ये लक्षण मकल्लरोगके हैं॥ ३४॥

(पा० ३४) प्रजाताया प्रजननशोणितशुक्रैरितायुः मकल्ल । गर्भद्वारस्फुटात्प्रनिर्गो निर्गच्छति मकल्ल (इति पाठ) ॥

मक्कल्लका यत्न ।

तत्र वीरतर्वादिसिद्ध जलमूषकादिप्रतीवाप पाययेत् । यवक्षारचूर्णं वा सर्पिषा सुखोदकेन वा लवणचूर्णं वा पिप्पल्यादिक्वाथेन पिप्पल्यादिचूर्णं वा सुरामण्डेन वरुणादिक्वाथं वा पंचकोलैला प्रतीवाप पृथक्पर्ण्यादिक्वाथं वा भद्रदारुमरिचसंसृष्टं पुराणगुडं वा त्रिकटुचतुर्जातककुस्तुम्बुरुमिश्रं खादेदच्छं वा पि वेदरिष्टम्॥३५॥

इस मक्कल्लरोगमे वीरतरु (अर्जुनवृक्ष) का क्वाथ, क्षारमृत्तिका (खारी मिट्टी रेहकी जाति) डालकर पिलावे अथवा जौखारके चूर्णको घृतके संग दे अथवा गरम जलके संग लवणके चूर्णको दे अथवा पिप्पल्यादि क्वाथके संग पिप्पल्यादि चूर्ण देवे अथवा मद्यके मंडके संग वरुणादिगणका क्वाथ देवे अथवा पचकोल (पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सुंठी) और इलायची डालकर पृथक्पर्ण्यादिका क्वाथ देवे अथवा भद्रदारु और मिरचयुक्त पुराना गुड देवे अथवा त्रिकटु और चातुर्जात (तज, पत्रज, इलायची, नागकेशर) और धनियां मिलाकर खावे अथवा अभयादिका अरिष्ट निर्मल करके पीवे (इन योगोंमेंसे जो योग प्रकृति और दोष तथा ऋतुके अनुकूल हो वही उपयोग करना चाहिये)॥३५ ॥

अथ बाल क्षौमपरिवृत क्षौमवस्त्रास्तृतायां शय्यायां शाययेत् । पीलुबदरीनिम्बपरूषकशाखाभिश्चैनं वीजयेत् । मूर्ध्नि चास्याहरहस्तैलपिचुमवचारयेत् । धूपयेच्चैनं रक्षोघ्नैर्धूपैः । रक्षोघ्नानि चास्यै पाणिपादशिरोग्रीवास्ववसृजेत् । तिलातसीसर्षपकणाश्चात्र प्रकिरेत् । अधिष्ठाने चाग्निं प्रज्वालयेत् । व्रणितोपासनीयं चावेक्षेत ॥ ३६ ॥

इसके अनंतर बालकको क्षौम (एकप्रकारके रेशमी कपडे) से आच्छादित करके खाटपर रेशमी कपडा बिछाकर लिटावे । और पीलूवृक्ष, बेरी, निंब तथा फालसेकी टहनीसे हवा करे और बालकके शिरपर प्रतिदिन तेलका पोहा लगावे और रक्षोघ्न धूप, वच आदिकी धूनी देतारहे तथा रक्षोघ्नवस्तु (जैसे गुग्गुल

(पा० ३५) ऊषरा क्षारमृत्तिका । मण्डं केवलं स्वच्छं वा । अरिष्टं गमनादिहरिष्टम् (नि०स०)
(अ० ३६) अधिष्ठाने सूतिकागारे । व्रणितोपासनीयं सूत्रस्थाने ... अध्यायं उक्तानि रक्षाकर्माणि कुर्यादिति भावार्थः ॥

सरसो, गोरोचन आदि) बालकके हाथ, पैर, शिर, ग्रीवा आदिपर लगाया करे। तिल, अलसी, सरसों इनमेंसे कोई इसके आसपास बिखेरे और बालकके स्थानके पास अग्नि जलती रक्खे तथा व्रणितोपासनीयाध्यायोक्त बरतावोंको देखे (और उसके अनुसार करे) ॥ ३६ ॥

नामकरण।

ततो दशमेऽहनि मातापितरौ कृतमंगलकौतुकौ स्वस्तिवाचनं कृत्वा नाम कुर्यातां यदभिप्रेतं नक्षत्रनाम वा ॥ ३७ ॥

इसके पीछे दशवें दिन माता पिता मंगल कौतुकपूर्वक स्वस्तिवाचन करके यथायोग्य मनोज्ञ अथवा नक्षत्रके चरणाक्षरके अनुकूल (जैसे 'चूचे-चोला'-अश्विनी इत्यादि) नामाक्षर आदिमें रखकर नाम रक्खे (ब्राह्मणोंको शर्मा, क्षत्रियोंको वर्मा, वैश्योंको गुप्त और शूद्रोंको दास पद अंतमें रखना चाहिये अथवा इस समयके अनुसार ब्राह्मणोंको दत्त, आनंद आदि। क्षत्रियोंको सिंह, साल, पाल। वैश्योंको मल आदि शब्द अंतमें देने चाहिये इसका विशेषविधान धर्मशास्त्र और ज्योतिःशास्त्रमें देखना चाहिये) ॥ ३७ ॥

योग्य धात्री (धाय) के लक्षण।

ततो यथावर्णं धात्रीमुपेयान्मध्यप्रमाणां मध्यमवयसमरोगां शीलवतीमचपलामलोलुपामकृशामस्थूलां प्रसन्नक्षीरामलम्बौष्ठीमलम्बोर्ध्वस्तनीमव्यंगामव्यसनिनीं जीवद्वत्सां दोग्ध्रीं वत्सलामक्षुद्रकर्मिणीं कुले जातामतो भूयिष्ठैश्च गुणैरन्वितां श्यामामारोग्यबलवृद्धये बालस्य ॥ ३८ ॥ तत्रोर्ध्वस्तनी करालं कुर्यात् लंबस्तनी नासिकामुखं छादयित्वा मरणमापादयेत् ॥ ३९ ॥

इसके अनंतर अपने वर्णके अनुसार(जैसे ब्राह्मणको ब्राह्मणी, क्षत्रियको क्षत्रिया, वैश्यको वैश्या, शूद्रको शूद्रा)धाय (बालकको दूध पिलानेवाली) नियत करनी चाहिये (अथवा अपने२ वर्ण अर्थात् रंगके समान अर्थात् प्रसूता गौर हो तो गौर, और

(श्लो० ३७) अभिप्रेतं मनोज्ञं नक्षत्रनाम वा नक्षत्रदेवताश्रयम् (इति डल्हणः) अथवा नक्षत्रनाम चोति शब्देन नक्षत्रचरणवर्णादिताक्षरमादौ कृत्वा नाम कुर्यातामित्यर्थः ॥

(श्लो० ३८) यथावर्णमिति-ब्राह्मणस्य ब्राह्मणी क्षत्रियस्य क्षत्रियामित्यादि (इति डल्हणः) अन्ये तु यथावर्णां मातृसदृशवर्णां गौरस्य गौरवर्णां वा इत्याहुः । श्यामां श्यामा प्रसूता ... भवति (इति डल्हणः) ... "... सम्पूर्णा ..." इति ... ॥

श्याम हो तो श्याम धाय नियत करे) वह धाय मध्यप्रमाण अर्थात् न बहुत लंबी हो, न बहुत छोटी हो, तथा मध्य अवस्थावाली, रोगरहित, शील (स्वभाव) वाली हो, बहुत चपल न हो, लोलुप अर्थात् जिसका चित्त रुक न सके ऐसी न हो, बहुत दुबली न हो, न बहुत मोटी हो, शुद्ध दुग्धवाली हो, जिसके होठ लंबे न हों, जिसके स्तन ऊंचे और लंबे न हों, जिसका शरीर हीनाधिक न हो, जिसमें कोई व्यसन (ऐब) न हो, जिसके बालक जीते रहते हों (अथवा सवत्सा हो), दुग्धी (दूधवाली) हो, बालकपर प्रेम रखनेवाली हो, नीच कर्म करनेवाली न हो, अच्छे कुलकी जन्मी हो इत्यादि बहुतसे गुणोंसे युक्त हो और श्यामा अर्थात् सांवली हो अथवा सुंदर रूपवती हो ऐसी धाय बालकको निरोगता और उसकी वृद्धि करनेवाली होती है ॥ ३८ ॥ जो धाय ऊंचे स्तनोंवाली हो तो बालकको कराल (कठोर) करनेवाली होती है तथा लंबे स्तनोंवालीके स्तनोंसे बालकके नाक, मुखका आच्छादन होजाता है इससे यह कभी मृत्युकी संभावना उपजाती है ॥ ३९ ॥

प्रथमस्तनपानविधि ।

ततः प्रशस्तायां तिथौ शिरःस्नातामहतवाससमुदङ्मुखं शिशुमुपवेश्य धात्रीं प्राङ्मुखीमुपवेश्य दक्षिणं स्तनं धौतमीषत्परिस्रुतमभिमन्त्र्य मन्त्रेणानेन पाययेत् ॥ ४० ॥

फिर श्रेष्ठ तिथि (नक्षत्रादि) में मा या धायको शिरसमेत स्नान कराके अच्छे वस्त्र पहनाके पूर्वाभिमुख बैठाकर उसकी गोदमें उत्तराभिमुख बालकको स्थापन करके धायके दहिने स्तनको जो थोड़ा धोया हुआ हो और उसमेंसे थोड़ा दूध निकाल डाला हो उसे नीचे लिखे मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके पिलावे ॥ ४० ॥

चत्वारः सागरास्तुभ्यं स्तनयोः क्षीरवाहिणः ॥ भवन्तु सुभगे नित्यं बालस्य बलवृद्धये ॥ पयोऽमृतरसं पीत्वा कुमारस्ते शुभानने ॥ दीर्घमायुरवाप्नोतु देवाः प्राश्यामृतं यथा ॥ ४१ ॥

हे सुभगे ! बालकके बलकी वृद्धिके लिये चारों समुद्र तेरे स्तनोंमें नित्य क्षीरवाही होकर रहें । हे शुभानने ! तेरे दूधरूपी अमृतरसको पान करके यह बालक दीर्घायुको प्राप्त हो जैसे देवता अमृत पीकर दीर्घायु होते हैं ॥ ४१ ॥

अतोऽन्यथा नानास्तन्योपयोगस्याऽनारम्भाद्व्याधिजन्म भवति । अपरिस्रुतेऽप्यतिस्तब्धस्तन्यपूर्णस्तनपानादुत्स्नुहितस्रोतसः शिशोः कासश्वासवमीप्रादुर्भावः तस्मादेवंविधं स्तन्यं न पाययेत् ४२

(पा० ४२) उत्सुहितस्रोतस इति—क० । छर्दि [illegible] ॥

इसके विपरीत यदि नाना स्तन्य (अनेक स्त्रियोंके दूध) का उपयोग हो अर्थात् कभी कोई पिला दे कभी कोई तो वह आत्माके अनुकूल न होनेसे व्याधि पेदा करताहै। और जो पहले दूध नहीं निकाला जावे तो अति कड़े दूधसे भरे स्तन पान करनेसे वह जमा जाड़ा जोरकी धारका दूध बालकको खांसी, श्वास, वमन पेदा कर देताहै इस हेतु ऐसे स्तन न पिलाने चाहिये ॥ ४२ ॥

क्रोधशोकावात्सल्यादिभिश्च स्त्रिया स्तन्यनाशो भवति। अथास्याः क्षीरजननार्थं सौमनस्यमुत्पाद्य यवगोधूमशालिषष्टिकमांसरससुरासौवीरकपिण्याकलशुनमत्स्यकशेरुकशृंगाटकबिसविदारीकदमधुकशतावरीनलकालाबूकालशाकप्रभृतीनि विदध्यात् ॥ ४३ ॥

क्रोध, शोक, प्रेम न रखना इत्यादि (तामस व्यवहारों और अति तीक्ष्ण, उष्ण पदार्थ खाने आदि) से स्त्रियोंका दूध नष्ट होजाताहै (जिसका दूध नष्ट होगया हो या स्वल्प हो) उसे दूधकी वृद्धिके लिये सुमनसता (शीलता सौम्यता) उत्पन्न करानी चाहिये और जौ, गेहू, शालि (चावल), षष्टिक (साठी) चावल, मांसका रस, सुरा (मद्यभेद), सौवीर, तिलकुट, लशुन, मछली, कसेरू, सिंघाड़े, कमलकी जड़, विदारीकंद, मुलहटी, शतावरी, नलिका (नालीका शाक,) अलाबू (घीया), कालशाक इत्यादि खिलाते रहे ॥ ४३ ॥

अथास्याः स्तन्यमप्सु परीक्षेत। तच्चेच्छीतलममलं तनु शंखावभासमप्सु न्यस्तमेकीभावं गच्छत्यफेनिलमतन्तुमन्नोत्प्लवते न सीदति वा तच्छुद्धमिति विद्यात्तेन कुमारस्यारोग्यं शरीरोपचयो बलवृद्धिश्च भवति। न च क्षुधितशोकार्तश्रान्तप्रदुष्टधातुगर्भिणीज्वरितातिक्षीणातिस्थूलविदग्धभक्ष्यभोज्यविरुद्धाहारतर्पिताया स्तन्यं पाययेन्नाजीर्णौषधं च बालं दोषौषधमलानां तीव्रवेगोत्पत्तिभयात् ॥ ४४ ॥ भवन्ति चात्र—

दूध पिलानेवाली (माता या धाय)के दूधकी जलमें परीक्षा करे यदि वह शीतल, निर्मल, पतला, शंखसा सुपेद हो, जलमें डालनेसे एकत्र होजावे (फैले नहीं), झागदार न हो, और तारसे न छूटे, और न ऊपर तैरता रहे, न नीचे डूब जावे उस शुद्ध दूध जाने उसके पीनेसे बालकको निरोगपन, शरीर मोटा होना और बल वृद्धि

(सू०४३) नलका [illegible] नलिका या। नालिका शाकविशेष। नारिकेर इति वा [illegible] ([illegible]

होती है। और क्षुधायुक्त, शोकयुक्त, थकी हुई, जिसकी धातु दूषित होगई हो, गर्भिणी हो, जिसे तप आता हो, अतिक्षीण या अतिस्थूल हो, जो विदग्ध (कच्चा पक्का) खाती हो, जिसने विरुद्ध भोजन पेटभर खाया हो ऐसी स्त्रीका दूध बालकको नहीं पिलाना चाहिये और यदि बालकको अजीर्ण भी हो तो (बहुत तेज) औषध न पिलावे क्योंकि दोष और औषध तथा मलका तीक्ष्ण वेग होनेका भय होनेसे । (यदि दे तो सूक्ष्म और मृदु औषध देनी चाहिये) ॥४४॥ इस विषयमें श्लोक है-

भावमिश्रोक्त दुष्टदुग्धलक्षण (परिशिष्ट)

श्लोक-कषायसलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम् ॥ पित्तादम्लं च कटुकं राज्यो-म्भसि तु पीतिका ॥ १ ॥ कफदुष्टं तु यत्तोये निमज्जति च पिच्छिलम् ॥ द्वन्द्वजं तु द्विलिंगं स्यात्त्रिलिंगं सान्निपातिकम् ॥ २ ॥

अर्थ-जो कषायरस हो, जलमें डालनेसे तिरे वह दुग्ध वायुसे दूषित होता है। और जो खट्टा या चरका हो तथा जलमें डालनेसे पीली धारीसी होजावे तो वह दुग्ध पित्तसे दूषित है ॥ १ ॥ तथा जो बहुत गाढा हो और जलमें डालनेसे डूब जावे वह कफसे दूषित दुग्ध है । इसी भांति जिसमें दो भांतिके लक्षण हों वह दो दोषोंसे दूषित और जिसमें तीनों लक्षण हो वह त्रिदोषदूषित समझना ॥२॥

धात्र्यास्तु गुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा ॥ दोषा देहे प्रकुप्यंति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति ॥ ४५ ॥ मिथ्याहारविहारिण्या दुष्टा वाता दयः स्त्रियाः ॥ दूषयंति पयस्तेन शरीरे व्याधयः शिशोः ॥ भवंति कुशलस्तांश्च भिषक् सम्यग्विभावयेत् ॥ ४६ ॥

दूध पिलानेवाली धायके भारी भोजन करनेसे, विषम भोजन करनेसे तथा दोषल आहार विहारसे शरीरमें दोष कुपित होकर दुग्धको दूषित कर देते हैं ॥ ४५ ॥ मिथ्या आहार, विहार करनेवाली स्त्रियोंके शरीरमें वातादि दोष दुष्ट होकर दुग्धको दूषित करते हैं जिस दूषित दूधके पीनेसे बालकके शरीरमें व्याधियां पैदा होजाती है इससे चतुर वैद्य बालकके रोगोंको ठीक विचार कर यत्न करे ॥ ४६ ॥

बालकके रोग जाननेकी रीति ।

अंगप्रत्यंगदेशे तु रुजा यत्रास्य जायते ॥ मुहुर्मुहुः स्पृशति तं स्पृश्यमाने च रोदिति ॥ ४७॥ निमीलिताक्षो मूर्द्धस्थे शिरो रोगे न धारयेत् ॥ वस्तिस्थे मूत्रसंगार्तो रुजा तृष्यति मूर्च्छति ॥४८॥

विण्मूत्रसगवैवर्ण्यछर्द्याध्मानात्रकूजनैः ॥ कोष्ठे दोषान् विजानीयात्सर्वत्रस्थाश्च रोदनैः ॥ ४९ ॥

बालकके जिस जिस अंग प्रत्यगमें पीडा होती है उसे वह वारवार छूता है और यदि कोई अन्य मनुष्य उस अगको छूवे तो बालक रोता है ॥ ४७ ॥ यदि मूर्द्धामें शिरोरोग हो तो बालक आँख बदकिये रहता है और शिरको धूनता टकराता है तथा वस्तिस्थानमें रोग पीडा हो तो मूत्र रुकता है, तृषा अधिक लगती है, मूर्च्छा होजाती है ॥ ४८ ॥ और यदि मल मूत्र दोनो रुक जावें, वर्ण अच्छा न रहे, वमन हो, अफारा हो, तथा आँतें गुड़गुड करे तो कोष्ठगत पीडा जानना और समस्त शरीरमे (अरति आदि) पीडा हो तो उसे रुदनमात्रसे जानलेना चाहिये (इसी भाँति औरोंको भी जानना) ॥ ४९ ॥

तेषु च यथाभिहित मृद्वच्छेदनीयमौषध मात्रया क्षीरपस्य क्षीरसर्पिषा धात्र्याश्च विदध्यात्। क्षीरान्नादस्यात्मनि धात्र्याश्च। अन्नादस्य कषायादीनात्मन्येव न धात्र्याः ॥ ५० ॥

बालकोके रोगनाशक औषधोंमें जो यथायोग्य कोमल हो, और अच्छेदी अर्थात कफादिको छेदन करनेवाली (तीक्ष्ण) नहीं हो वह औषध दूध पीनेवाले बच्चेके रोग हो तो उसकी धायको दूध और घृतके सग देनी चाहिये। और, जो दूधभी पीता हो कुछ अन्नभी खाता हो तो उस बच्चेको भी और उसकी धायको भी औषध देना चाहिये। और अन्नमात्र खानेवाला हो तो उस बच्चेहीको काथादि पिलावे धायको नहीं ॥ ५० ॥

बालकोंकी औषधोकी मात्रा।

तत्र मासादूर्द्ध्वं क्षीरपायांगुलिपर्वद्वयग्रहणसम्मितामौषधमात्रां विदध्यात्। कोलास्थिसम्मिता कल्कमात्रा क्षीरान्नादाय कोल तम्मितामन्नादायेति ॥ ५१ ॥

एक महीनेसे अधिककी अवस्थावाले दूध पीते बच्चेको यदि औषध (हरीतकी, गुडूच्यादि) देना आवश्यक हो तो अगुलीके दो पोरोंसे जितनी औषध लगजावे उतनी औषध (काथादि) देना चाहिये। और जो दूधभी पीता हो, कुछ अन्नभी

(पा० ५१) शाङ्गधरे मात्राप्रमाणं दर्शितम् यथा--"प्रथमे मासि जातस्य शिशोर्भेषजरक्तिका ॥ अवलेह्या तु कर्त्तव्या मधुक्षीरसिताघृतैः ॥ १ ॥ एकैकां वर्द्धयेत्तावद्यावत्संवत्सरो भवेत्॥ तदूर्ध्वं माषवृद्धिः स्याद्यावत्षोडशवार्षिक ॥ २ ॥"

खाता हो उसे वेरकी गुठली जितनी पिसी दवा देना चाहिये। और अन्न खाते बच्चेको कोलप्रमाण औषध देना ॥ ५१ ॥

येषां गदानां ये योगाः प्रवक्ष्यन्तेऽगदंकराः ॥ तेषु तत्कल्कसंलिप्तौ पाययेत शिशुं स्तनौ ॥ ५२ ॥ एकं द्वे त्रीणि चाहानि वातपित्तकफज्वरे ॥ स्तन्यपायाहितं सर्पिरितराभ्यां यथार्थतः ॥ ५३ ॥

अथवा जिन जिन रोगोंके लिये जो जो आराम करनेवाले औषधोंके योग कहे है यदि बालकोंको रोग होवें तो उन्हीं २ को पीसकर दूध पिलानेवालीके स्तनोंके ऊपर लेप करके दूध पिलाना चाहिये ॥५२॥ यदि दूध पीनेवाले बालकको वातज, पित्तज और कफज ज्वर हो तो एक दिन, दो दिन, तीन दिन इस क्रमसे घृत, अहित होता है (अर्थात् दूध पीते बच्चेको वातज्वरमें १ दिन, पित्तज्वरमें २ दिन, कफज्वरमें ३ दिन घृत न देना) और जो इतर (दूध पीते और अन्नभी कुछ खाते तथा केवल अन्न खाते) हो उन्हें यथायोग्य घृतका पथ्य उचित है ॥ ५३ ॥

न च तृष्णाभयादन्यं पाययेत शिशुं स्तनौ ॥
विरेकबस्तिवमनान्यृते कुर्याच्च नात्ययात् ॥ ५४ ॥

ज्वरके वेगमें बालकको तृषाके भयसे स्तनपान कराना उचित नहीं तथा अत्यावश्यकताके सिवाय बालकको विरेचन, बस्तिकर्म तथा वमन करनाभी उचित नहीं ॥ ५४ ॥

काकछटकनेका यत्न।

मस्तुलुंगक्षयाद्यस्य वायुस्तालवस्थि नामयेत् ॥ तस्य तृड्दैन्ययुक्तस्य सर्पिर्मधुरकैः शृतम ॥ पानाभ्यजनयोर्योज्यं शीताम्बुसेचनं तथा ॥ ५५ ॥

बालकके मस्तककी मज्जाका क्षय होनेसे वायु उसके तालुके अस्थिको नवा देता है (फाट छिटक जाता है) इसमें तृषा अधिक लगती है, बालक दीन (विकल) होजाता है इसमें इसको मधुरगण (काकोल्यादि) में गरम किया हुआ घृत पान करावे और तालुपर मले तथा ठंडे जल और शीतल पानीसे पवनका उपयोग करे ॥ ५६ ॥

(श्लो०५३) [illegible]

(श्लो०५४) [illegible]

नाभिपाक और गुदपाक ।

वातेनाध्मापिता नाभिं सरुजां तुण्डिसञ्ज्ञिताम् ॥ मारुतघ्नैः प्रशम-
येत्स्नेहस्वेदोपनाहनैः ॥ ५६ ॥ गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं
कारयेत्क्रियाम् ॥ रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥ ५७ ॥

यदि वायुसे नाभि फूल जावे और उसमे पीडा हो, अगाडीको चोचसी निकल आवे तो इस व्याधिमे वायुनाशक स्नेहकर्म करना (वायुनाशक घृत लगाना) तथा स्वेदन, उपनाहनादि करना ॥ ५६ ॥ यदि बालकोकी गुदा पक जावे तो पित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये, विशेष करके रसोत (रसवती) का पान कराना और लेप करना हित है ॥ ५७ ॥

क्षीराहाराय सर्पिः पाययेत् सिद्धार्थकवचामासीपयस्यापामार्गशतावरीसारिवाब्राह्मीपिप्पलीहारिद्राकुष्ठसैंधवसिद्धं क्षीरान्नादाय मधुकवचापिप्पलीचित्रकत्रिफलासिद्धं अन्नादाय द्विपंचमूलीक्षीरतगरभद्रदारुमरिचमधुविडङ्गद्राक्षाद्विब्राह्मीसिद्धम् । तेनारोग्यबलमेधायूंषि शिशोर्भवन्ति ॥ ५८ ॥

केवल दूध पीनेवाले बच्चेको सुपेद सरसो, वच, जटामांसी, क्षीरकाकोली (अथवा दुद्धी), ओंगा, शतावरी, सारिवा, ब्राह्मी, पिप्पली, हलदी, कूट, सेंधानमक इनसे सिद्ध किया घृत नित्य पिलाना चाहिये । और दूधभी पीने तथा कुछ अन्नभी खानेवाले बालकको मुलहटी, वच, पिप्पली, चित्रक और त्रिफला इनसे सिद्ध किये घृतका पान कराना । तथा अन्न खानेवाले बालकको दोनो पञ्चमूल (अर्थात् दशमूल), क्षीर (दुग्ध) अथवा ' क्षीरि ' ऐसाभी पाठांतर है जिससे क्षीरवृक्ष, तगर, देवदारु, कालीमिर्च, मधु (शहत) अथवा 'मधुक' पाठांतर होनेसे मुलहटी, वायविडंग, द्राक्षा दोनो ब्राह्मी (ब्राह्मी और ब्रह्ममांडूकी) इनका सिद्ध किया घृत पान कराना चाहिये इससे बालक निरोगी, बलवान, बुद्धिमान् और दीर्घायु होता है ॥ ५८ ॥

बालकोंका बरताव ।

बालं पुनर्गात्रसुखं गृह्णीयान्न चैनं तर्जयेत् । सहसा न प्रतिबोधयेदवित्रासभयात् । सहसा नापहरेदुत्क्षिपेद्वा वातादिविघातभयात् नोपवेशयेत् कौब्ज्यभयात् । नित्यं चैनमनुवर्तेत प्रियशतैरजिघांसुः ॥ ५९ ॥

और बालकको जैसे उसका शरीर सुख पावे वैसे गोदमें रक्खे तथा बालकको त्रास नहीं देना यदि सोता हो तो उसे झटपट न जगावे क्योंकि इससे वह डर जाताहै और झट ऊपरको न उठावे, और झटसे न नीचेको करे इससे वायुके विघातका भय होताहै और अतिछोटे बचेको बिठावेभी नहीं क्योंकि बिठानेमें मथा कुबडा न होजावे यह भय होताहै तथा बालकके चिरजीवनकी वाञ्छावाले माता पिता नित्य बालकके अनुकूल और प्रिय सैकडों यत्न करें ॥ ५९ ॥

एवमनभिहतमनास्त्वभिवर्द्धते । नित्यमुदग्रसत्त्वसंपन्नो नीरोगः सुप्रसन्नमनाश्च भवति ॥ ६० ॥ वातातपविद्युत्प्रभापादपलताशून्यागारनिम्नस्थानगृहच्छायादिभ्यो दुर्ग्रहोपसर्गतश्च बाल रक्षेत् ॥ ६१ ॥

ऐसे पूर्वोक्त बरताव करनेसे बालक अखण्डचित्त रहकर दिन प्रति दिन वृद्धिको प्राप्त होताहै तथा सत्त्वसंपन्न निरोगी और प्रसन्नचित्त रहताहै ॥ ६० ॥ तथा बालकको तीक्ष्ण पवन, धूप, बिजलीके चमके, वृक्ष, बेल, सूने स्थान, नीचे स्थान (गढे आदि) और गृहछाया (दीवालोंकी पडछाँही) इनसे रक्षा करे अर्थात् इनमें बचाये रक्खे तथा खोटे ग्रहोंके घात और उपसर्गों (उपद्रवों) से भी बचाये रक्खे ॥ ६१ ॥

नाशुचौ विसृजेद्बालं नाकाशे विषमे न च ॥
नोष्मसारुतवर्षेषु रजोधूमोदकेषु च ॥ ६२ ॥

बालकको अशुद्ध जगह (पाखाने मोरी आदिके पास)में नहीं छोडे, तथा ऊपर खुली छतोंपरभी न छोडे, तथा जहां ऊंची नीची जगह हो वहांभी न छोडे, तथा गरम हवा (लूह) अथवा गरम हवा तथा बरसते मेहमें, धूल उडतेमें और तालाब, नदी आदिके पासभी नहीं जानेदेवे ॥ ६२ ॥

क्षीरसात्म्यतया क्षीरमाजं गव्यमथापि वा ॥
दद्यादास्तन्यपर्याप्तेर्बालानां वीक्ष्य मात्रया ॥ ६३ ॥

बालकोंको दूधही सानुकूल होता है इससे यदि दूध पिलानेवालीके स्तनोंमें तृप्तिके योग्य दूध न हो तो बकरी अथवा गौका दूध जो उचित हो मात्राके अनुसार बालकोंको पिलाना चाहिये ॥ ६३ ॥

(श्लो०६३) [illegible] ([illegible]) ॥

अन्नप्राशन ।

षण्मासं चैनमन्नं प्राशयेल्लघु हितं च। नित्यमवरोधरतश्च स्यात्कृत-रक्षः उपसर्गभयात्।प्रयत्नतश्च ग्रहोपसर्गेभ्यो रक्ष्या बाला भवति६४॥

छठे महीनेमें बालकको अन्नप्राशन करावे जो अन्न बालकको दे वह हल्का, पतला और हित होना चाहिये तथा सदैव बालकके पास कोई न कोई मनुष्य रहना चाहिये तथा उपसर्ग (उपद्रवो) के भयसे सदा रक्षित रखना चाहिये क्योंकि बालक यत्नपूर्वक ग्रह और उपद्रवोसे रक्षा करने योग्य होते है ॥ ६४ ॥

बालग्रहपीडितके सामान्य लक्षण ।

अथ कुमार उद्विजते त्रस्यति रोदिति नष्टसंज्ञो भवति नखदशनैर्धात्रीमात्मानं च परिणुदति दंतान् खादति कूजति जृम्भते भ्रुवौ विक्षिपत्यूर्द्ध्वं निरीक्षते फेनमुद्वमति संदष्टौष्ठः क्रूरो भिन्नामवर्चा दीनार्तस्वरो निशि जागर्ति दुर्बलो म्लानाङ्गो मत्स्यच्छुच्छुन्दरिमत्कुणगन्धो यथा पुरा धात्र्याः स्तन्यमभिलषति तथा नाभिलषतीति सामान्येन ग्रहोपसृष्टलक्षणमुक्तं विस्तरेणोत्तरे वक्ष्यामः ॥६५॥

जब बालकको बालग्रहो (पूतना आदि) की छायाजनित पीडा होती है तो उसके सामान्यतासे ये लक्षण होते है जैसे–बालक उदास रहता हो, भयभीतसा रहता हो, अधिक रोया करता हो, कभी नष्टसंज्ञ (गाफिल) हो जाता हो, अपने देह अथवा दूध पिलानेवालीको नखो या दाँतोसे नोचता हो, दांत चबाता हो, पीडासे दुःशब्द करता हो, जमाही जादा लेता हो, भ्रुकुटी टेढी रखता हो, ऊपरको देखता हो, मुँहसे झाग आता हो, होठ काटता हो, कठोर होजाता हो, मल और आमके फटे दस्त आते हो, दीन दु:खीकेसी वाणी हो, रातको जागता हो, दुबला और ढीला शरीर हो जाता हो, मछली, छछूंदर और खटमल जैसी गंध आती हो, पहलेके समान दूध न पीता हो ये सामान्यतासे बालग्रहोंसे पीडितके लक्षण कहे है, विस्तारसे उत्तरतंत्रमे (पूतना, अधपूतना, शकुनी आदि) सबके लक्षण, यत्न आदि कहेंगे (देशभाषामें ग्रहजनित पीडाको मसाणिया रोग कहते है) ॥ ६५ ॥

शक्तिमंतं चैनं ज्ञात्वा यथावर्णं विद्यां ग्राहयेत्।अथास्मै पंचविंशतिवर्षाय द्वादशवर्षां पत्नीमावहेत्पित्र्यधर्मार्थकामप्रजाः प्राप्स्यतीति ६६

(था० ६६) यथावर्णं ब्राह्मणक्षत्री राजन्यो दण्डनीतिं वैश्यो वार्ताम् (इति इतिहास) शूद्र शिल्पादिकमित्यर्थे । द्वादशवर्षां पत्नीमित्यत्र मनु –'त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्' इति ॥

जब बालककी अवस्था ८ वर्षकी हो जाय तब इसे शक्तिमान् जानकर (अर्थात् निर्बल रुग्ण तो नहीं है ऐसा विचार कर) वर्णके अनुसार ब्राह्मण हो तो ब्रह्मविद्या, क्षत्रिय हो तो धनुर्विद्या, वैश्य हो तो व्यापारविद्या, शूद्र हो तो शिल्प अथवा समयानुकूल जैसी विद्या उनके कुलमें प्रवृत्त हो वैसी विद्या पढाना आरम्भ करे। फिर जब पुरुषकी अवस्था २५ पच्चीस वर्षकी हो तब इसका १६ वर्षकी स्त्रीसे विवाह करना चाहिये ऐसा करनेसे पित्र्य (पितरोंको जो हित हो श्राद्धादिकी योग्यता) तथा धर्म (श्रुतिस्मृतिविहित यज्ञादिका अनुष्ठान) और अर्थ (द्रव्य), काम (मनोरथादि इंद्रियानुकूल सुख) और प्रजा (संतान) इन सबको प्राप्त होता है ॥६६॥

छोटी अवस्थामें गर्भाधानका निषेध।

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्॥ यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ ६७ ॥ जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ॥ तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥ ६८ ॥

सोलह वर्षकी अवस्थासे छोटी स्त्रीके पचीस वर्षकी अवस्थासे छोटा पुरुष गर्भाधान करे तो वह गर्भ कुक्षिहीमें विकारको प्राप्त होकर स्खलित होजावे और यदि पूरा होकर बालक जन्मभी लेवे तो दीर्घायु नहीं होवे (बहुत दिन न जीवे) और जो जीवे भी तो दुर्बल इंद्रियवाला (कमजोर) ही रहता है इस कारण अत्यन्त छोटी अवस्थावाली स्त्रीमें गर्भाधान नहीं करना चाहिये ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

अतिवृद्धायां दीर्घरोगिण्यामन्येन वा विकारेणोपसृष्टायां गर्भाधानं नैव कुर्वन्ति पुरुषस्याप्येवंविधस्य त एवं दोषाः संभवन्ति ॥६९॥

अतिवृद्धा (बूढी) और दीर्घरोग (क्षयी, श्वासादि) से पीडित तथा अन्य विकारसे युक्त स्त्रीमें भी गर्भाधान नहीं करना (क्योंकि वृद्धाकी संतान सत्त्वहीन और रोगवतीकी रोगयुक्त होतीही है) तथा ऐसे अतिवृद्ध और दीर्घरोगी आदि निंद्य पुरुषोंकोभी गर्भाधान करनेका निषेध है क्योंकि उनमेंभी येही दोष होते हैं॥६९॥

गर्भस्राव आदिकी चिकित्सा।

तत्र पूर्वोक्तकारणैः पतिष्यति गर्भे गर्भाशयकटीवंक्षणबस्तिशूलानि रक्तदर्शनं च तत्र शीतैः परिषेकावगाहप्रदेहादिभिरुपचरेज्जीवनीयशृतक्षीरपानैश्च ॥ ७० ॥ गर्भस्फुरणे मुहुर्मुहुस्तत्संभारणार्थं क्षीरमुत्पलादिसिद्धं पाययेत् ॥ ७१ ॥

पूर्वोक्त कारणोंसे यदि गर्भ गिरने लगे तो उसके पूर्व गर्भाशय, कमर, नले, बस्ति इन स्थानोंमें पीडा होने लगती है, और रुधिर आना दिखाई देता है, इस

अवस्थामे शीतल तरडे देना, स्नान करना और लपका उपचार करे, और जीवनीयगणसे सिद्ध किया दुग्ध पान करावे ॥ ७० ॥ वारवार गर्भ चलायमान होवे तो उसकी स्थितिके लिये उत्पलादिगण (यह पहले कह चुके हैं) से सिद्ध किया हुआ दुग्ध पिलावे ॥ ७१ ॥

प्रस्रंसमाने सदाहपार्श्वपृष्ठशूलासृग्दरानाहमूत्रसगा. स्थानात्स्थानं चोपक्रामति गर्भे कोष्ठे संरंभस्तत्र स्निग्धशीता क्रिया ॥७२॥ वेदनाया महासहाक्षुद्रसहामधुकश्वदंष्ट्राकटकारिकासिद्ध पय. शर्कराक्षौद्रमिश्रं पाययेत् । मूत्रसगे दर्भादिसिद्धम् । आनाहे हिंगुसौवर्चललशुनवचासिद्धम् ॥ ७३ ॥

जब गर्भ झिरने लगे तब दाहयुक्त पॅसलियोंमें और पीठमें शूल होता है, और रुधिर वहने लगताहे, अफरा होजाता है और मूत्र बंद होजाता है । जब गर्भ एक स्थानसे छूटकर अन्य स्थानमें चलायमान होने लगता है तब उदरमे अति पीडा होती है इस अवस्थामे चिकनी और शीतल क्रिया करनी चाहिये ॥ ७२ ॥ गर्भाशयमें पीडा हो तो महासहा (माषपर्णी), क्षुद्रसहा (मुद्गपर्णी), मुलहटी, गोखरू, कटेली इनसे सिद्ध किया हुआ दुग्ध, खांड और शहत मिलाकर पिलावे । यदि मूत्र रुकजावे तो दर्भा आदिका सिद्ध किया दुग्ध (या जलमे कल्क करके) पिलावे । यदि अफरा हो तो हींग, सौचरनमक, लहसन और वच इनका उपयोग करे ॥ ७३॥

अत्यर्थं स्रवति रक्ते कोष्ठागारिकागारमृत्पिंडसमगाधातकीकुसुमनवमालिकागैरिकसर्जरसरसाञ्जनचूर्णं मधुनावलिह्याद्यथालाभं न्यग्रोधादित्वक्प्रवालकल्कं वा पयसा पाययेदुत्पलादिकल्कं वा । कशेरुशृंगाटकशालूककल्कं वा शृतेन पयसोदुम्बरफलौदककन्दक्वाथेन वा शर्करामधुमधुरेण शालिपिष्टम् । न्यग्रोधादिस्वरसपरिपीतं च वस्त्रावयवं योन्यां धारयेत् ॥ ७४ ॥

जो रुधिर अत्यन्त वहता हो तो कोष्ठागारिका (भृंगी नामक परद कीडा जो मट्टीका घर बनाता है) उसके घरकी मिट्टी, लज्जालू, धायके फूल, नवमालिका पुष्पवृक्ष, गेरू, राल और रसौत इनका चूर्ण शहतसे चटावे । अथवा न्यग्रोधादि-

(पा० ७२) छत्र उभयत्र ॥
(पाठय ७३) महासहा माषपर्णी । क्षुद्रसहा मुद्गपर्णी (इति च रके) ॥ (पा० ७४) कोष्ठागारिकागारमृत्तिकेति कोष्ठागारी कृमिविशेषः तदागारमृत्तिका । र्जन् । ओदककेशः कसेरुकास्स्वः ॥

गणमस जो मिलसकें उनकी छाल और कोमल पत्तोंका कल्क दूधके संग पिलावे अथवा उत्पलादिगण (कमल आदि) का कल्क दूधके संग पिलावे। अथवा कसेरु, सिंघाडे और शालूक (कमलकी जड) इनका कल्क गरम दुग्धके संग पिलावे। अथवा गूलरके फल और जलके कंद इनके क्वाथको खांड, शहतसे मीठा करके पिसे चावलोंके संग पिलावे। अथवा गूलर आदिका रस निचोडकर उसमें कपडेका टुकडा खूब तर करके योनिमें धारण करे ॥ ७४ ॥

अथादृष्टशोणितवेदनायां मधुकदेवदारुपयस्यासिद्धं पयः पाययेत्। तदेवाश्मन्तकशतावरीपयस्यासिद्धं विदारिगन्धादिसिद्धं वा बृहती-द्वयोत्पलशतावरीसारिवापयस्यामधुकसिद्धं चैव क्षिप्रमुपक्रान्तायां उपावर्त्तन्ते रुजो गर्भश्चाप्यायते ॥ ७५ ॥

जो रुधिर नहीं दीखे और वेदना होवे तो मुलहटी, देवदारु, पयस्या, अर्कपुष्पी इनसे सिद्ध किये हुए दुग्धको पिलावे। अथवा अश्मतक, शतावरी और अर्कपुष्पीसे सिद्ध किया दूध पिलावे। अथवा विदारीगंधा आदिसे सिद्ध किया दूध पिलावे। अथवा दोनों कटेहली, कमल, शतावरी, सारिवा, अर्कपुष्पी और मुलहटी इनसे सिद्ध किया हुआ दूध पिलावे इस प्रकार जिसकी शीघ्र चिकित्सा कीजाय उसके रोग निवृत्त होजातेहैं और गर्भ परिपूर्ण होता है ॥ ७५ ॥

व्यवस्थिते च गर्भे गव्येनोदुम्बरशलाटुसिद्धेन पयसा भोजयेत् ॥७६॥ अतीते लवणस्नेहवर्ज्याभिर्यवागूभिरुद्दालकादीनां पाचनीयोपसंस्कृताभिरुपक्रमेत यावतो मासा गर्भस्य तावन्त्यहानि॥७७॥

यदि गर्भ ठहर जावे तो गौके दूधमें कच्चे गूलरके फल सिद्ध करके पिलाते रहे ॥ ७६ ॥ और यदि नहीं ठहरे (गिरपडे) तो लवण और चिकनाईसे वर्जित उद्दालक धान्यकी यवागूको पाचनीय द्रव्योंमें संस्कार करके जितने महीनेका गर्भ गिरे उतने दिनतक पिलावे ॥ ७७ ॥

बस्त्युदरशूलेषु पुराणगुडं दीपनीयसंयुक्तं पाययेदरिष्टं वा ॥ ७८ ॥ वातोपद्रवगृहीतेऽत्यर्थं स्रोतसां लीयति गर्भे सोऽतिकालमवतिष्ठमानो

(पा० ७५) अश्मंतक कोविदार । पयस्या अर्कपुष्पी ॥ (पा० ७६) व्यवस्थिते [illegible] [illegible] गर्भे । [illegible] [illegible] यथा "[illegible] [illegible] [illegible] ॥" (पा० ७७) [illegible] । [illegible] ([illegible]) । [illegible] ॥ (पा० ७८) दीर्घ [illegible] । [illegible] ॥ (पा० ७९) [illegible] । [illegible]।–

व्यापद्यते ते मृदुना स्नेहादिक्रमेणोपचरेत् । उत्क्रोशरससिद्धामनल्पस्नेहां यवागूं पाययेत् माषतिलबिल्वशलाटुसिद्धान् वा कुल्माषान् भक्षयेन्मधुमाध्वीकं चानुपिबेत्सप्तरात्रम् ॥ ७९॥

बस्तिस्थान और पेटमें शूल हो तो पुराने गुड़को दीपनीय द्रव्योंसे युक्त करके पिलावे। अथवा अभयादिकका अरिष्ट पिलावे (कोई २ अरिष्ट शब्दका अर्थ मद्यभी करतेहैं)॥ ७८॥ जब गर्भमें स्राव आदि उपद्रव होतेहैं तो वायुके उपद्रवोंसे सगृहीत गर्भ सुकड़कर स्रोतोंमें लय होजाताहै (बढ़ता नहीं दीखता) फिर बहुत समयतक कुक्षिमें पड़ा रहनेसे नष्टभी होजाताहै तब इसे कोमल २ स्नेहादिकसे उपचार करे और उत्क्रोश (कुरर) पक्षीके मांसके रसमें सिद्ध की हुई यवागू जिसमें कम चिकनाई न हो उसे पिलाया करे । तथा उड़द तिल और कच्चे बिल्व इनसे सिद्ध की हुई कुल्माष (बाकली) खिलावे और ऊपरसे सात दिनतक महुएका मधु पिलावे ॥ ७९ ॥

कालातीतस्थायिनि गर्भे विशेषतः सधान्यमुदूखलं मूशलेनाभिहन्याद्विषमे वा यानासने सेवेत ॥ ८० ॥ वाताभिपन्नः एवं शुष्यति गर्भः स मातुः कुक्षिं न पूरयति मन्दं स्पंदते च तं बृंहणीयैः पयोभिर्मांसरसैश्चोपक्रमेत् ॥ ८१ ॥

जो प्रसवके दिनोंसे अधिक गर्भ कुक्षिमें रहे अर्थात् दशम मास पूर्ण होनेपरभी प्रसव न हो तो विशेष करके यह यत्न करावे कि ऊखलमें धान्य भरकर मूशलसे गर्भवतीसे कुटावे । अथवा ऊट या गाडीकी सवारीमें बिठाकर टहलावे (वृद्धवाग्भट इसको विरुद्ध कहते है-देखो टिप्पणी) ॥ ८० ॥ वायुसे व्यापन्न हुआ गर्भ सूख जाता है वह माताकी कुक्षिको पूर्ण नहीं करता है, मंद गतिसे फरकता है उसे बृंहणीय (पुष्टिकारक) दूध, मांसके रस इत्यादिसे उपचार करना चाहिये॥८१॥

शुक्रशोणितं वायुनाभिप्रपन्नमवक्रान्तजीवमाध्मापयत्युदरं तत्कदाचिद्यदृच्छयोपशांतं नैगमेयापहृतमिति भाषते तमेव कदाचित्प्रलीयमानं नागोदरमित्याहुस्तत्रापि लीनवत् प्रतीकारः ॥ ८२ ॥

—मृदुना शनैः शनैः स्नेहेनोपचरेत् शीघ्रतया गर्भोपघातकत्वात् उत्क्रोश कुररभेदः पक्षिविशेषः । अनल्पस्नेहां प्रचुरस्नेहाम् (नि० टी०) ॥

(श्लो० ८०) मुशलेनोलूखलं धान्यपूर्णमाहन्तीति हन्तु न कुर्यात् ... नवमादिमासेषु ... विषमयानासनाभ्यां गर्भपातात् ... (अ० ...) (इति ...) ॥

कभी ऐसाभी होता है कि शुक्र, शोणित वायुसे दूषित हो जाते हैं तो गर्भमें जीव नहीं पड़ता है वह पेटको फुला देता है, कभी यह आपही शांतभी हो जाताहै इसे नैगमेष ग्रह करके अपहृत है ऐसा कहतेहैं, कभी ऐसे मलीयमान गर्भको नागोदर भी कहते हैं यहांपरभी ऐनके सदृश यत्न करना चाहिये ॥ ८२ ॥

अत ऊर्द्ध मासानुमासिकं वक्ष्यामः ।

इसके अगाड़ी प्रतिमासके गर्भविकार अर्थात् गर्भस्रावका यत्न लिखते हैं ॥

मधुकं शाकबीजं च पयस्या सुरदारु च ॥ अश्मंतकस्तिलाः कृष्णास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥ ८३ ॥ वृक्षादनी पयस्या च लता चोत्पलसारिवा ॥ अनन्ता सारिवा रास्ना पद्मा मधुकमेव च ॥ ८४ ॥ बृहत्यौ काश्मरी चापि क्षीरिशुंगास्त्वचो घृतम् ॥ पृश्निपर्णी बला शिग्रु. श्वदंष्ट्रा मधुपर्णिका ॥ ८५ ॥ शृंगाटकं बिसं द्राक्षा कशेरु मधुकं सिता ॥ ८६ ॥ वत्सैते सप्त योगाः स्युरर्द्धश्लोकसमापनाः ॥ यथासंख्यं प्रयोक्तव्या गर्भस्रावे पयोयुताः ॥ ८७ ॥

प्रथम महीनेमेंही रक्तदर्शन हो तो मुलहटी, शाकवृक्षके बीज, पयस्या, क्षीरकाकोली अथवा अर्कपुष्पी और देवदारु, दूसरे महीनेमें गर्भस्रावकी शंका हो तो अश्मंतक (अश्मंतक जिसके कोविदारकेसे अम्ल पत्ते होते हैं), काले तिल, ताम्रवल्ली (मँजीठ), शतावरी । तथा तीसरे महीनेमें बंदा, अर्कपुष्पी लता, कमल और सारिवा । तथा चौथे महीनेमें अनन्ता (अनन्तमूल या दूर्वा), सारिवा, रास्ना, पद्मा (पद्मचारिणी या भार्ङ्गी) और मुलहटी । पांचवें महीनेमें दोनों कटेली, खंभारि, क्षीरशुंगा (दूधवाले वृक्ष वटादिकी कोंपल), तज और घृत । छठे महीनेमें पृश्निपर्णी, खरेटी, सोहजन, गोखरू और मधुपर्णी । सातवें महीनेमें सिंघाडे, कमलकी नाल, दाख, कसेरु, मुलहटी और मिश्री, इस प्रकार जो आधे आधे श्लोकमें कहे हुए योग हैं इन्हें हे शिष्य । यथासंख्य मासमासके प्रति गर्भस्रावकी शंकामें दूधके संग पिलावे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

कपित्थबृहतीबिल्वपटोलेक्षुनिदिग्धिकाः ॥ मूलानि क्षीरसिद्धानि पाययेद्भिषगष्टमे ॥ ८८ ॥ नवमे मधुकानंतापयस्यासारिवाः पिबेत ॥ क्षीरं शुंठीपयस्याभ्यां सिद्धं स्याद्दशमे हितम् ॥ ८९ ॥ सक्षीरा वा हिता शुंठी मधुकं सुरदारु च ॥ एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक् चोपशाम्यति ॥ ९० ॥

आठवें महीनेमें गर्भकी नैरोग्यताके लिये कपित्थ (कैथ), बड़ी कटेली, बिल्व, पटोल, ईख और छोटी कटेली इनकी जडको दूधमें सिद्ध करके वैद्य पिलावे ॥ ८८ ॥ नवम मासमें गर्भकी नैरोग्यताके लिये मुलहटी, अनतमूल, क्षीरकाकोली (या अर्कपुष्पी) और सारिवा इनसे सिद्ध दुग्ध पिलावे । तथा दशवें महीनेमें सोंठ और अर्कपुष्पीसे सिद्ध किया दुग्ध पिलावे ॥ ८९ ॥ अथवा सोंठ और मुलहटी तथा देवदारु ये दुग्धके सग पिलाना हित है इस प्रकार उपचार करनेसे गर्भ परिपूर्ण होता है और पीडाभी शात हो जाती है ॥ ९० ॥

निवृत्तप्रसवायास्तु पुनः षड्भ्यो वर्षेभ्य ऊर्द्ध्वं प्रसवमानाया नार्या कुमारोऽल्पायुर्भवति ॥ ९१ ॥

जिसके पहली सतान होनेसे छह ६ वर्ष उपरांत प्रसव होवे ऐसी स्त्रियोंकी सतान स्वल्पायु होती है ॥ ९१ ॥

अथ गर्भिणीं व्याध्युत्पत्तावत्यये छर्दयेन्मधुराम्लेनान्नोपहितेनानुलोमयेच्च संशमनीयश्चैं मृदु विदध्यादन्नपानयोरश्नीयाच्च मृदुवीर्यं मधुरप्राय गर्भाविरुद्ध च गर्भाविरुद्धार्थं क्रियां यथायोग विदधीत मृदुप्रायां ॥ ९२ ॥ भवति चात्र-

यदि गर्भिणी स्त्रीको अत्यत दारुण व्याधि होजावे और वमनकी अत्यत आवश्यकता हो तो मधुर अम्ल अन्नके योगसे मृदु वमन करावे और इसी प्रकार अनुलोमन (कुछ मृदु रेचनादि) भी करे तो इसी भांति करे तथा सशमन क्रिया करनेकी आवश्यकता हो तो यहभी मृदुही करे और खाने पीनेमें मृदुवीर्य और थोडा मिष्ट तथा गर्भके अनुकूल खानपान रखें और यथायोग्य गर्भके अनुकूल और मृदुक्रिया करतेरहे ॥ ९२ ॥ इस विषयमें श्लोक है-

सौवर्ण सुकृत चूर्ण कुष्ठ मधु घृत वचा ॥ मत्स्याक्षक शखपुष्पी मधुसर्पि सकाचनम् ॥ ९३ ॥ अर्कपुष्पी मधुघृत चूर्णित कनकं

(वाक्य ९१) निवृत्तप्रसवा इति-स्तोन षड्भ्यो वर्षेभ्य ऊर्ध्वं निवृत्तप्रसवेत्युच्यते तस्याः कुमारोऽल्पायुर्भवति गर्भ उपयोन्यादिदोषेण हि निवर्तते प्रसव (इति डल्हन) ॥

(वा० ९२) अत्यये विनाशहेतौ । अत्ययकारिणि व्याधौ मृदुना द्रव्येण वमनादि कार्यमिति । अनुलोमयेच्च इति-मधुराम्लेनान्नोपहितेनेति शेषः ॥ (श्लो० ९३) सुवर्णचूर्णं सुवर्णभस्मनेव कल्पितं प्रतिपन्ने । मत्स्याक्षक ब्राह्मी अन्ये तु शखपुष्पाकृति मत्स्याक्षकमाहुः ॥

वचा ॥ हेमचूर्णानि कैटर्यं श्वेता दूर्वा घृतं मधु ॥९४॥ चत्वारोऽभिहिताः प्राशाः श्लोकार्द्धेषु चतुर्ष्वपि ॥ कुमाराणां वपुर्मेधाबलबुद्धिविवर्द्धनाः ॥ ९५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

पहिला योग सुवर्णका चूर्ण (मृगांक), कूट, शहत, घृत और वच है । दूसरा योग मत्स्याक्ष (मछेछी), शंखाहुली, शहत, घृत और सुवर्ण है ॥ ९३ ॥ तीसरा योग अर्कपुष्पी, शहत, घृत सुवर्णचूर्ण और वच है । चौथा योग सुवर्णचूर्ण, कैटर्य (पूतिकरञ्ज), सुपेद दूब, घृत और शहत है ॥ ९४ ॥ ये आधे आधे श्लोकमे चार योग कहे हैं इनमेंसे किसी एकको प्राशन कराना (चटाना) बालकोंकी देह और धारणा शक्ति तथा बल और बुद्धिको बढाता है ॥ ९५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां राजवैद्य प० मुरलीधरशर्मविरचितसान्वयटिप्पणीसमन्वितभाषाटीकायां शारीरस्थाने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

शैलाननार्यीशसमाश्रितेन वैद्येन नाम्ना मुरलीधरेण ॥
टीकाकृतो सुश्रुतसंहितायां शारीरके पूर्तिमगात्तृतीये ॥ ३ ॥

निधिबाणेन्दु १९५३ मिते संवत्सरे चैत्रस्यासितपक्षे त्रयोदश्यां समगमयामिदं सुश्रुतसंहितायां शारीरकं सान्वयटिप्पणीकसपरिशिष्टभाषाटीकासहितं समाप्तिमगमत् ॥ शुभमस्तु ॥

॥ समाप्तमिदं शारीरं स्थानम् ॥ ३ ॥

(श्लो०९४) कैटर्य [illegible] (हवि [illegible]) [illegible] । [illegible] "[illegible] ॥ [illegible] ॥ १ ॥ [illegible] ॥ [illegible] [illegible]" ॥

[illegible]

निवेदक-
मुरलीधरशर्म्मा,
टीकाकार.

॥ श्रीः ॥

डाक्टरीमतसे शारीरक।

परिशिष्टभाग १

प्रगट हो कि, हमारे शास्त्रकारोंने भी शारीरकका अच्छे प्रकार वर्णन किया है परंतु भारतवर्षमें इस समय यूनानी और डाक्टरीका अधिक प्रचार होनेसे बहुधा लोगोंकी तृप्ति उनके मतानुसार विवेचन किये विना नहीं होती यद्यपि हमारे शास्त्रोंमें शारीरककी उत्पत्ति और शल्यक्रियाके उपयोगी मर्मादिका विशेष व्यौरा लिखा है तथापि आंतरिक अवयव यकृत्, प्लीहा, वृक्क, फुप्फुस आदिका विस्तारपूर्वक वर्णन कि अमुक अवयव इस प्रकारका है, यह कार्य करता है इत्यादि बहुत नहीं लिखा किंतु सूचना मात्र थोडासा लिखा है परंतु समयके अनुसार हरेक बातमें सस्कार होताही रहता है अस्तु, यूनानी लोगोंने शारीरककी विवेचनामें बहुत कुछ उन्नति की है और अपने विज्ञानके अनुसार उसमें बहुत बारीकियां निकाली हैं जिनका परिज्ञान इस समयके चिकित्सकोंको अवश्य होना चाहिये यद्यपि इस समय डाक्टरीकी प्रधानता सबसे अधिक है परंतु उसका शारीरक यूनानीके शारीरकसे बहुत मिलता जुलता है इसका कारण यही प्रतीत होता है कि ग्रीक अर्थात् यूनानी भाषाके चिकित्साग्रन्थोंका अनुवाद इधर तो अरबोंने अपनी अरबी भाषामें कर लिया है और उधर इन्हींका अनुवाद लेटिनमें किया गया है पर मूल इस विद्याके दोही हैं या तो भारतके प्राचीन महर्षि वैद्य अत्रि, भरद्वाज, चरक, धन्वतरि, सुश्रुत आदि या ग्रीक देश यूनानके विद्वान् हकीम, डाक्टर, सुकरात, बकरात, जालीनूस, अरस्तातालीस, लुकमान वगैरह।

कालांतर, मतांतर, देशांतर और मतिभ्रांतरसे चाहे १ व्याधिकी औषधें सैकडों, हजारों भिन्न भिन्न रीतिपर हो पर शारीरक अर्थात् अवयवोंका यथार्थतर सत्य विज्ञान निस्संदेह सर्वत्र एकसाही होना चाहिये और है भी, हम अपने पाठकोंको अन्यमतीय शारीरकके संक्षिप्त परिज्ञान होनेके लिये उनके मतका सारासार अवश्य लिखना उचित जानते हैं जिनका वैद्योंको विशेष काम पडता है मुख्य उन अवयवोंका संक्षिप्त वर्णन करते हैं ॥

डाक्टरीमतसे संक्षिप्त शारीरक।

शिर– (ब्रेन Brain)

खोपरी यह दो हिस्सोंमें बँटी हुई है १ का नाम "क्रेनियम है" दूसरेका नाम "फस"–"अस्थीफीटल बोन" (गुद्दीकी हड्डी) यह हड्डी शरकी हड्डीखोपरीसे

नीचले और पीछले हिस्सेमें है इसके नीचले और अगले हिस्सेके छेदको "फोरामिन मेगनम" कहते हैं जो खोपरीको "इस पाईनल कनाल" में मिलाता है। "प्राइ-टल बोन" ये दाहिनी और बाईं दो हड्डियां हैं इनसे खोपरीका उतना मुकद्दम हिस्सा बनता है। "फ्रांटल बोन" यह खोपरीके सामनेकी दीवार बनाती हैं यह माथकी हड्डी है। नेत्रगोलकके किनारेका नाम "आरबीटल आरच" है इसके भीतरी तिहाईके सूराखको "फॉरमन" कहते हैं। "टिमपोरल बोन्स" अर्थात् कनपटीकी हड्डी इसीमें कानका छिद्र रहता है। "नेजल बोन्स" (नाककी २ हड्डियां) ये दोनों मिलकर नाक बनाती हैं। "इथमाइड बोन" यह चलनीकी सम्बन्धी हड्डी है खोपरीके नेत्रमूलके भीतरी भांके और नाकके गढ़ेके बनानेमें शामिल है। "सुपीरीयर मगजलरी बोन" (चेहरेकी हड्डियां) ये दो हड्डियां मिलकर चेहरेका बड़ा हिस्सा बनाती हैं और ऊपरके कुल दांतोंको सहारती हैं। और सख्ततालू और नेत्रोंके सहन और नाकके मत्रिकूटका भाग बनाती हैं। "इन-फीरीयर मेगलज बोन" (ठोडीकी हड्डी) यह चेहरेकी सब हड्डियोंसे मोटी है और मजबूत है इसकी दो शाखें हैं इनमें नीचेके दांत लगे हुए हैं 'सैन्स' या 'नेरास' की हड्डियोंके गार जो तंग सूराखोंके करीबसे नाकके जोफसे मिलते हैं "मगजिलरी सैन्स" के सूराख बचपनमें छोटे रहते हैं बड़े होनेपर बढ़ जाते हैं बुढ़ापेमें बहुतही चौड़े होजाते हैं इसीसे बुढ़ापेमें बलगम बहुत गिरता है।

भीतर दिमागके दो हिस्से हैं १ बड़ा दिमागका हिस्सा, दूसरा छोटा। दिमागका बड़ा हिस्सा अगली तरफ होता है और छोटा पिछली तरफ इनमें खाकी रंगकी और सुपेद रतूबत रहती है। "असपाइनल कार्ड" (हराम) इसका आकार घोड़ेकी दुमकासा है, रंग सुपेद चांदीके तारोंकासा है इसमेंसे सब पट्ठोंकी जड़ें निकलकर नीचेको जाती हैं यह माप. १५ से १८ इंचतक लंबा होता है यह दिमागके पिछले हिस्सेमें मिला हुआ होता है जिसमें बहुतसे हड्डियोंके जोड़, बहुतसे परत और बहुतसे पट्ठे, झिल्लियां, कई विभाग और कई उभार, कई गढ़े, कई नाड़ियां कई प्रकारकी इन सूरत हैं सबका समझना बहुत कठिन है इसमें शुद्ध जो सार संक्षिप्ततासे लिखा गया है॥

दिमागका अन्य शारीरिक अवयवोंसे सम्बन्ध।

"सरिब्रम" (दिमागका अगला हिस्सा) अक्ल और होश हवासमें संबंध रखता है और इसका कुल है क्योंकि जो अधिक बुद्धिमान् है उनका दिमागका यह हिस्सा बड़ा होता है और उनके दिमागके भीतरी गढ़े गहरे होते हैं और उनकी "ब्रेन पार्टीशन" (दिमागके भीतरी उभार) बड़ी होती है॥

सरिवरमके जरव पहुँचनेस, दब जानेसे या इसमें बीमारी होनस प्रथम होश हवासमे फरक आता है " सरिबरममे" चोट लगनेसे एक या जादा दिमागी कुवते नष्ट होजाती है दिमागकी खाखी रगकी वस्तुके रोगग्रस्त होनेसे किसी प्रकारका उन्माद होताहै ।

दिमागको एक दोहरा अवयव समझो जो भाग शरीरके छाती पेट आदिसे सबंध रखते हे दिमागमेभी पासही पास इक्टे रहते हे और जो अलेहदा हिस्सोसे सबंध रखते है जेसे हाथ पांव तो वे दिमागमेभी हरतरफ जुदेही रहते है ।

बाई तरफकी तीसरी " कानवालोशन ' के पिछले भागमे बोलनेकी शक्ति रहतीहै इसमे बीमारी हो तो बोलनेमे तकलीफ हो और दाहिनी रुखका 'हमेप्लीजिया' (पट्ठोमें रोग) होगा अगर उसमे दोनो तरफ खराबी होजावे तो बोलनेका फालिज होवे सरिवरममे एक हलका सचालन शक्तिका मूल है उसमें खराबी होनेसे फालिज होता है इस हलकेमे तीन "फ्रांटिल" कानवो लोशसकी जड़ हे "एसिंडिंग फ्रांटिल" कानवालोशनका ऊपरी तिहाई हिस्सा बाजूसे सबंध रखता है ओर इसका ऊपरी पेराइटल कानवालोशन हाथ और कबजेसे तथा " पोस्टीरो पेराइटल लापूल " पिंडली और पाँवसे "एसिडिग फ्राटिल" की बीचकी तिहाई ओर तीसरी "फ्राटिल" की जड़ चेहरेके पट्ठोंसे "एसिडिग फ्रांटिल" की नीचली तिहाई मुँह ओर जुबानस तथा ऊपरी " फ्रांटिल कानवालोशन " ओर दूसरे फ्रांटिल कानवालोशनकी पिछली तिहाई शिर और नेत्रोंसे सबंध रखती है इससे उक्त जगहोमे खराबी होनेसे उनके सबंधी अवयवोकी सचालनशक्ति नष्ट होजाती है, जानना चाहिये कि दिमागके भीतरी भागकी अगली दो तिहाई शरीरकी सचालनशक्तिसे सबंध रखतीहै और दिमागके भीतरी हिस्सेकी पिछली एक तिहाई स्पर्शशक्तिसे सबंध रखतीहै और पिछले भागका प्रभाव हाथकी अपेक्षा टांगोपर विशेष हुआ करता है । ऊपर जो सचालनशक्तिका मूल अगली दो तिहाई ओर स्पर्शशक्तिका मूल पिछली तिहाई कहा उनमे विकार होनेसे दूसरी तरफके अवयवोकी सचालनशक्ति तथा स्पर्शशक्ति नष्ट होती है।

" मिडला ऑबलोंगेटा" यह दिमागके अगले भाग ओर नुखाके बीचमें है इससे बडे २ काम मुतल्लिक है इससे इसमे विकार होना जादा हानिकारक है नुखाके ऊपरीभाग और मिड्लासे श्वासका सबंध पाया जाता है यदि यह विकृत हो जावे या नष्ट हो जावे तो तत्काल श्वास बंद होकर मृत्यु हो जावे दिल्का स्कायनाकुचनसे सबंध रखनेवालेभी दो स्थान है एक दिल्की गतिको कम करता है दूसरा गतिको तेज करता है ।

सरिवरमका वजन अनुमान मर्दोंके ४४ औंस होता है और स्त्रियोंके ३९ औंस तथा सरिवलम (क्षुद्र मस्तिष्क) का वजन अनुमान मर्दोंमें ५ औंस ४ ड्राम और स्त्रियोंमें ४ औंस १२ ड्राम होता है तथा " पांस" और "मिडला आवलंगिटा" भागका वजन अनुमान पुरुषोंमें १५ ड्राम और स्त्रियोंमें पौने सोलाह ड्राम होता- है दिमागमें खाकी रंगकी जिसे १ ३४ और सुपेद रंगकी जिन्स १ ८० तथा मनुष्योंके दिमागकी नुखाका वजन अनुमान १ औंससे पौने दो औंसतक होता है हाथीके दिमागका वजन अनुमान ८ से १० पौंडतक पाया गया है और घड़के दिमागका वजन अनुमान ५ पौंडके होता है ।

एलीमिंटरी कनाल (आहार नलका) Alimentary Canal

यह एक लंबी नली है जो मुहमे शुरू होकर " म्यूट्रीज " में खतम होती है खाया हुआ भोजन इसीमें जाता है, इसीमें पकता है, इसीसे मल होकर निकल जाता- है, भोजनका परिपाक इसीपर मुनहसर है या उन गद्दूदोंपर जिनकी रतूबत इस नालीमें गिरती है मरी (कंठनलका) और मेदा (आमाशय) तथा अमआ (अंतडियां) ये सब इसीके भाग हैं यह सब ३० फुटके अनुमान लंबी होती है।

इसाफेगस (मरी या कंठनलका) Œsophagus

कंठनलकाको अंग्रेजीमें " इसाफेगस " कहते हैं यह गरदनके पांचवे मोहरेके मुकाबिले नरम हाड़के नीचेसे शुरू होती है और छातीके बीचकी हड्डी (कांडी) के पास मेदेके मुँहसे जा मिली है इसकी लंबाई ९। १० इंच है यह एलीमिंटरी कनालके भागोंमेंसे तंग भाग है यह ठीक सीधी नीचेको नहीं उतरती है किंतु इसमें थोड़े २ तीन खम पाये जाते हैं इसके आसपास " न्यूमोगास्ट्रिक " आसाब (पट्टे) फैले रहते हैं और नीचे सिरेके पास " प्लूरा " है भोजन इसीमें होकर मेदेमें जाता है ।

इस्टमक (मेदा या आमाशय) Stomach

आमाशय अर्थात् मेदेको अंग्रेजीमें " इस्टमक" कहते हैं यह इसाफेगस अर्थात् कंठनलकासे नीचे "एलीमेंटरी कनाल"का चौड़ा भाग है भोजन इसमें कुछ ठहरता- है और इस जगेकी रतूबत " गेस्ट्रिक जूस " से मिलकर पतला द्रव पदार्थ बन जाता है यह मेदा "ट्रांसवर्स कोलन" अंतड़ीके ऊपर पेटकी अगली दीवारके पीछे जिगरके नीचे है आकारमें मशकीज समान नीचे चौड़ा है इसका बायाँ सिरा बड़ा और नीचेको झुका हुआ है मेदेकी लंबाई अनुमान १०।१२ इंच है और चौड़ाई साढ़े चार इंच है खाली मेदेका वजन अनुमान ४॥ औंस होता है जिस जिल्दमें यह मेदा है यह चार परतवाली है सबसे ऊपरी परत स्यूरस कोट (यह नाम इसका-

मोटी झिल्ली) है यह झिल्ली बुढापेमे पतली पड़जाती है जब मेदा खाली होता है इसमे शिकन (सलवटे) पडजाती है मेदेके दो मुँह होते है एक ऊपरको जिसमे कंठनलका खुलती है और भोजन मेदेमे आता है। दूसरा दाहिनी तरफ नीचेको जिसके राहसे भोजन अब पकासा अतडियोंमे जाता है।

इसमालइंटीस्टाइंस (पतली अँतडियां) Small Intestines

ये पतली पचीदा अतडिया है मेदेके नीचले मुँहसे शुरु होकर पेटके बीचले भागमे रहती है इनकी लबाई अनुमान २० फुटकी है ये लच्छासा बनाये हुए है यह लच्छा एक बडी मोटी आंतसे घिरा है यह लच्छेकी आते तीन भागमे बँटी है जिसमे सबसे ऊपरी भागको जो १० । १२ इंच है डिओडिमन कहते है बाकीका दो बटे पाच भाग है जिज्यूनम कहलाता है और नीचेवाले तीन बटे पाच भाग है को एलीअम कहते है।

लार्ज इंटिस्टाइस (मोटी आंत) Largs Intestines

ये एलीअमसे शुरु होती है इसके बडे तीन भाग है प्रथम "सीकम" दूसरा "कोलन" तीसरा "रिकटम" इसकी मुटाई २॥ इंचसे १॥ इंचतक पाई जाती-है इसमे लबे रेशोंके तीन बधसे पाये जाते है तथा बहुतसे फुव्वार और तंगियां है जिससे ऐसा मालूम होता है जेसे कई थैलियाँ जुड़ी हो।

"सीकम" यह एलीअमसे नीचे है और सबसे चोटा भाग है जिसकी चोडाई २॥ इंच है और पेटकी अगली दीवारके पीछे रहता है इसके नीचले पीछेके सिरेमे १ तग गोल लबी आंतडी निकली है जिसे "एपिंटक्स सीसाई" कहते है यह छोटी अगुलीसा गोल है और तीनसे छः इंचतक लबा होता है खास सीकम आर एसिडिग कोलनके मिलापपर एक किवाडीसी है जो मलको फिर अदरकी तरफ (एलीअमकी तरफ) नहीं जाने देती।

"एसिंडिग कोलन" यह दाहिनी तरफ है खास सीकमसे शुरु होकर सीधी ऊपरको चढकर जिगरके सिरेतक पहुँचती है फिर सामने और बाई तरफ दाहिने गुरदेके पास झुक जाती है यह खास सीकमसे कुछ पतली है पर "ट्रांसवर्सकोलन" से चौडी है इसके सामने एलिअमके लच्छे है।

"ट्रांसवर्स कोलन" यह भाग दाहिने गुरदेके पाससे शुरू है पेटकी पिछली दीवारके पास आड़ा रहता है बायें गुरदेतक महराबसा बनकर आता है इसके ऊपर जिगरका नीचला सिरा गालब्लाडर मेदा और तिल्लीका नीचला हिस्सा रहता है इसके नीचे एलिआमके पेचदार लच्छे है।

"डिसेंडिंग कोलन" यह ट्रांसवर्सकोलनसे शुरू होकर बराबर नीचेको झुक आती है यह बाईं तरफ रहती है।

"रिक्टम" रोदामुस्तकीम यह सबमें नीचेका भाग है यह पहले बाईं तरफसे जरा दाहिनी तरफ झुककर टेढ़ा होकर फिर अनुमान सीधासा नीचे उतर आता है और गुदातक पहुँचता है इसमेंभी थोड़े रेतीन खम पाये जाते हैं इसके थैलेके खमके मुकाबिले मर्दोंके मसाना और स्त्रियोंके "यूट्रस" योनि गर्भाशयद्वार होता है इसमें मल भर जाता है तब दस्तकी हाजत होती है॥

श्वाससम्बंधी अवयव लैरिंक्स (हलक)

यह श्वासके रास्तेका ऊपरी भाग है इसकी लंबाई १॥ इंच और चौड़ाई १ इंच है मुँह और नाकसे इसमें हवा पहुँचती है और आवाज (शब्द) पैदा करती है यह गरदनके ऊपरी भागके अगली तरफ है यह नरम तालूके नीचेसे आहार नलकासे पृथक् होतीहै इसके नीचे एक और खम है जो इससे कुछ चौड़ा है इसके नीचे कई छल्लियां सीधी खमदार हैं और कई गट्ठुद हैं इसके नीचे ट्रेकिया है।

ट्रेकिया यह दोनों फेफड़ोंमें हवा जानेका रास्ता है और लैरिंक्स (हलक) से शुरू होकर दो भागोंमें दाहिने और बाँयें वक्षस्थलमें बटजाता है इसकी लंबाई साढ़े चार इंच और चौड़ाई पौन इंच है इसके पिछली तरफ इसोफेगस आहारनलिका अर्थात् मरी अम्हदा है।

लंग्स (फेफड़े Laungs)

फेफड़े दो हैं और दिल (हृत्कमल) के और बड़ी अंतड़ीके दाहिनी ओर बाईं तरफ सीनेके अंदर रहते हैं और ऊपरसे दोनों जुड़े हुए हैं पर नीचे जुदे जुदे होगये हैं ऊपरको जहां ये जुड़े हैं वहां "प्लूरा" नामक दो पतरसियम (थैलियां) सीनेके दाहिनी और बाईं पहलूओंके अंदर रहतीहैं इनके फेफड़ा सूरतमें मखरूतीके उनकी तरहका ऊपरसे चौड़ा नीचे तंग होता गयाहै इनका वजन अनुमान ३० से ४८ औंसतक पाया जाताहै दोनों फेफड़ोंमेंसे दाहिना कुछ बड़ा होताहै अगर दोनों ४२ औंस हों तो दाहिना २२ और बांया २० औंस मसामिय फेफड़े स्पंज जैसे फोफले हैं इनमें फैलाव सुकड़ाव बहुत है बचपनमें फेफड़े हलके सुर्ख गुलाबी रंगके होतेहैं पर ज्यों २ उमर बढ़तीहै इनमें स्याही आती जाती है श्वासकी हवा इनमें दाखिल होकर दिलको ऑक्सिजन पहुंचातीहै और जब यह अंदरकी हवा गरम और गलीज होजातीहै तब बाहर निकलनेपर तकाजा करतीहै और दूसरी ताजी हवाकी जरूरत पड़तीहै इसी प्रकार बराबर आना और जाना लगातार बना रहताहै और यही जिंदगीका मूल है।

(हार्ट दिल) Heart

यह दोनो फेफड़ोंके बीच सीनेमे रहता है " पीका र्डियम " नामक गशा (झिल्ली) से ढका हुआ है यह झिल्ली दिल्से २। २॥ इचके फासले तक दिलके बडे अरुक्को ढके हुए है दिल सीनेके बीच जरा बांई तरफ झुकाहुआ यू रहता है कि बांई तरफ ३ इंच और दाहिनी तरफ १॥ इंच । दिलके गिरद बहुतसी नालियां है जिनमे इसके परवरश करनेवाले आसाव (पट्टे) आदि हैं । इनके सिवाय और बहुत शिराये इसमे शामिल होती है दिलके " विट्रीकल " मे दो सुराख पाये जाते है और इनपर किवाडियांसी पाई जाती है ये किवाडिया दम बदम खुलती मिचती रहती है इनके राह दिलमे खून आता जाता है जिगरसे ताजा खून दिलमे पहुँचकर और अवयवोमे यहाहीसे पहुँचता है दिल एक लंबी लकीरसे दो भागमे बटा है एक दाहिना भाग दूसरा बायां फिर एक आडी लकीरसे इसके दो हिस्से हुए है इनमेसे ऊपरवालेको " आरीकल " और नीचेवाले खानेको " विट्रीकल " कहते है । दिलका बेस खूनी अरुकसे जुडा हुआ है बाकी "पीका-र्डियम " में लटका हुआसा है ।

स्वस्थ मनुष्यका दिल ५ इंच लंबा और ३॥ साढे तीन इंच चौड़ा और ढाई इंच मोटा होता है । वजन अनुमान १० औंस और स्त्रीका ९ औंस होता है यह शरीरके १६० वे भागके समान होता है " रायट आरीक्युलो विंट्री क्यूलर आरी फस " यह सूराख " स्टरनम " के पीछे उस लकीरपर है जोकि चौथी पस लियोकी कुरियों और स्टरनमके जोडके नीचले किनारेपर खिचती है पल्मोनरी शिरयानकी किवाडिया स्टरनमके पास दूसरी और तीसरी बांई पसलियोकी कुरि-योंके मध्यके पीछे है-" आयार्टा " की किवाडियां स्टरनम और उसके बांये किनारेके पीछे तीसरी पसलीकी कुरीको मिलायके मुकाबिल है । पल्मोनरी सूराख दिलके कुल दरवाजोसे ऊँचा और सामने है-" आयार्टिक " सूराख पल्मोनरी शिरयानके सूराखके पीछे और जरा नीचे है ।

लिवर (जिगर) Liver

इसमे " बाइल " (पित्त) पैदा होता है और यह खूनको बनाता और साफ करता है जिगरकी लम्बाई दाहिनेसे बांये सिरतक १० या १२ इंच और चौडाई पिछले किनारेसे अगलेतक ६ । ७ इंच और मुटाई अनुमान साढे तीन इंचके होती है इसका घनात्मक अनुमान कुल १०० इंच घनके होता है वजन ५० से ६० औंस तक पाया जाता है यह वास्तवमे कुल देहके ३६ छत्तीसवे भागके बराबर होता है यह ठोस है इसका रंग भूरा सुर्खी लिये होता है इसका ऊपरला भाग चिकना और चमकदार होता है और " पेरीटोनियम " झिल्लीसे ढका हुआ है " फाल्सी

फारम " नामक झिल्लीमें इसके दो विभाग जुडे हुए होते हैं नीचकी तरफ इसमें ५ " लोब " और फिशर (दरार) होते हैं जिगरका स्थान मेदेके ऊपर दाहिनी तरफ छठी सातवीं पँसलीके मुकाबिले है जब मनुष्य सीधा बैठता या खडा होता है तो जिगरका कुछ भाग पँसलियोंसे नीचे भी आजाता है पर लेटनेके समय अनुमान एक इंच ऊपरही रहता है ।

गाल ब्लेडर (पित्ता मरारा) Gall bladder.

यह नासपाती नुमा थैली तीन चार इंच लंबी और डेढ इंच चौडी होती है इसमें आठसे १२ ड्रामतक सफरा जमा रहता है यह जिगरके दाहिने लोथडेके नीचेवाली जगहपर तिरछी रहती है इसके नीचेकी भूमिपर " मेसेन्टेरियम " टका हुआ है जिस जगह गाल ब्लेडर रहता है उस गढेको " फासा सिसटिक फिली " कहते हैं इसका स्थान दसवीं दाहिनी पँसलीकी नोकके मुकाबिलेसे शुरू होता है और पेटकी भीतरी त्वचासे आ मिलता है इसके नीचे " टासवर्स कोलन " नामक आंत है इसकी गरदन दुहरा खम खाकर नीचेको झुककर " सिसटिक डक्ट " में मिलती है यह " सिसटिक डक्ट " अनुमान डेढ इंच लम्बी है नीचे बाईं तरफ जाकर " हिपाटिक डक्ट " से मिलकर " कामन बाइल डक्ट " बनाता है यह तीन लाइन चौडा और तीन इंच लम्बा है यही सफरा (पित्त) को " डियोडि-नम " में पहुँचाता है और जब आंतोंमें सफराकी जरूरत नहीं होती तब सफरा " हिपाटिक डक्ट " से " सिसटिक डक्ट " में जाकर " गाल ब्लेडर " में पहुँच कर वहांही जमा रहता है और जब खानेके समय आंतोंमें सफरा (पित्त) की जरूरत होती है तो " सिसटिक डक्ट " की राहसे निकलकर वहां शामिल होता है।

स्प्लीन (तिल्ली) Spleen

यह नरम लचलचा अवयव है इसका रंग नीला बैंगनी स्याहीसा है यह खूनके दुरुस्त करने और " कारपसक्लिस " के बनानेमें काम आती है इसका आकार अण्डाकृति है यह पेटमें बाईं तरफ मेदेके पास खडीसी रहती है स्थान इसका नवीं, दसवीं, ग्यारहवीं पँसलियोंके मुकाबिले है इसका प्रमाण सबके एकसा नहीं होता पर सामान्यतः पांच इंच लम्बी, चार इंच चौडी और डेढ इंच मोटी होती है वजन पांचसे सात औंसतक होता है पर किसी किसीके इतनी बढजाती है कि १८। २० पौंडतक होजाती है ।

पैंक्रिआस (लबलबा) Pancreas

यह एक लम्बी सी तिरछी गद्दूद पेटमें मेदेके पीछे पहले लम्बरके माहरेके मुकाबिले आडी पडी रहती है इसका बायां सिरा तिल्लीसे मिलाहुआ रहता है

इसकी लंबाई छहसे ८ इंचतक होती है और चोडाई डेढ इंच तथा मुटाई एक इंचके अनुमान होती है और वजन इसका ढाईसे साढे तीन औंसतक होता है इसमे जो रतूवत होती है उसे " पेनक्रियाटिक जूस " कहते है यह रतूवत साफ होती है और इसमे खारकी तेजाबी कैफियत होतीहै यह हाजमेको ठीक और तेज करतीहै ॥

यूरेनरी आरगेंस (मूत्रसंबधी अवयव) किडनी (गुरदे) Kidney]

गुरदोंमे पेशाब पेदा होताहै और "यूरेटर" की राह मसानेमे आकर जमा रहता है और उसमे "यूरेथरा" के जरिये निकलताहै ॥

गुरदे दो है एक दाहिनी तरफ दूसरा बांई तरफ है हरएक " वर्टिवर्लकालम " के एक तरफ " मोटोनियम " के पीछे पेटमे गहरा रहताहै यद्यपि गुरदोंका प्रमाण सबके बराबर नही होता परंतु अनुमानसे हरेक गुरदा, चार इंच लंबा, ढाई इंच चौडा ओर सवा डेढ इंच मोटा होताहै। बायां गुरदा जरा लंबा ओर पतला होताहै और दाहिना जरा छोटा और चोडा होताहे। हरेक गुरदेका वजन मर्दोंके साढे चार औंसके अनुमान होताहै और स्त्रियोंके इससे कुछ कम। दाहिना गुरदा जिगरकी नजदीकीके सबब बॉयेंसे कुछेक नीचे है गुरदोंका रंग गहरा सुरख होताहै ओर आकार जरा उभरा हुआसा चिपटाहै दाहिने तरफ गुरदेके सामने "डिओडियम" और " एसिडिंगकोलन " है और बाँई तरफके गुरदेके पास "डीसिडिंगकोलन" है और दाहिने गुरदेका ऊपरी अगला भाग जिगरके नीचले भागके निकट है और बॉयेंका ऊपरी अगला हिस्सा तिल्लीके पास है ॥

यूरेटर हालवां (मूत्रकी २ नालियां)

ये दो नालियां चौदहसे सोलह इंचतक लंबी और परकी कलमजेसी मोटी होतीहै ये गुरदोंसे मूत्रको मसानेमे पहुँचातीहै और तिरछे तौरमे मसानेकी किनारोंमे थोडी दूर जाकर उसके पिछले ओर नीचले हिस्सेमें खुलतीहै ॥

यूरेनरी ब्लेडर (मसाना) Bladder

यह एक सोसली झिल्लीकी थैलीसी है इसके अंदर मूत्र जमा होताहै यह बचपनमें गावदुम होताहै ओर पेटमे नाफके नीचे रहताहै। मसानेकी शकल खाली तथा भरे होने आदिमे एकसी नहीं होती यह खाली तिकोनासा होताहै और जब मूत्रसे भरताहै तो गोल होजाताहै और जब मूत्र ज्यादा भर जाताहै तब अंडेकी सूरत होजाताहै और तन जाताहै और पेटमे ऊपरको चढताहै और दूसरा बडा सिरा स्त्रियोंके "वैजायना" और मर्दोंके " रेक्टम " अंतडीपर ठहरताहै। सामान्यतासे मूत्रका अनुमान २४ घंटेमे ४० से ५० औंसतक होताहै पर गरमीकी ऋतुमें

पसीना अधिक आनेसे मूत्र कुछ कम होताहै। मूत्रके रासायनिक भाग यूं है कि एक हजारमें ९३३ भाग पानी और ६७ भाग सर्कील चीजें, और इन सर्कील चीजोंकी १०० भागोंमेंसे यूरिया ४९·६८ यूरकएसिड १·६१ एमो नायारल साल्टस (एक नमक) आर क्लोराइड सोडियमसली २८ ९५ एल्के लायन सल्फेट ११ ५८ एल्केलायन पासफेट ५ ९७ मासफेटलाइम (चूना) और मेगनशिया १ ५० भाग होतेहैं।

पेनिस (लिंग) और मूत्रनलका यरेथरा Penis,

मूत्रनाली (यूरेथरा) यह मसानेकी गरदनमे शुरू होकर लिंगके सिरतक पहुँचतीहै इसकी लंबाई अनुमान साढे आठ इंचके होतीहै मोकेके अनुसार इसके तीन भाग है १ "प्रासटेटिक" यह हिस्सा इस नालीका सबसे चौडा भाग है यह सवा इंच लंबा और चार पांच लकीरके बराबर चौडा है इसमें एक थोडासा निचाव है जिसे "प्रासटेटिक साइनस" कहतेहैं जिसमें "परासटेटिकडेक्टस" के बहुतसे छेद खुलतेहै। २ भाग "पोरशन" यह हिस्सा "प्रासटेटिक" से पीछे स्पंजी पोरशनके बीचमें है इसकी अगली दीवार पौन इंच और पिछली आध इंच लंबी है यह हिस्सा कुछ यूरेथरासे तंग है इसकी गोलाई सिरफ आठ इंचके लगभग है। ३ भाग "स्पंजी पोरशन" यह भाग अनुमान ६ इंच लंबा है यूरेथराका मुँह एक ग्वडा फटाव है, ३॥ से तीन लकीरें चौडा और स्पंजी हिस्सका सबसे तंग मुकाम है॥

टिसटीकिल्स (अंडकोश खुसिया) Testicles

दोनो टिसटीकिल्स (अंड) "इस करोटम" थैलियोंमें तिरछेसे लटकते हैं बायाँ दाहिनकी अपेक्षा कुछ नीचा होताहै इनकी सूरत अंडेकीसी है हरेक अनुमान डेढ इंच लंबा और चौडा सवा इंच और मोटा १इंच होताहै वजन अनुमान हरेकका पौन औंसमे १ औंसतक होताहै खुसियेका गद्द नरम जरद सुरखी माएल है बहुतसे छोटे २ गायदुम लोथडोंसे बना है ये लोथड समपासे टाई सौसे चारसौ तक होतेहैं इनमें मनी पैदा होतीहै और याद रहे कि खुसिये स्त्रियोंके भी होतेहैं पर अंदरको होते हैं॥

यूटरस (गर्भाशय रहम) Uterus

यह एक मांसका नासपातीनुमा अवयव है यह मासनेके पीछेको नजरआताहै इसके आगे मसाना और पीछे "रेक्टम" अन्तडी है हमल (गर्भ) के समय यह पेटके तरफ चढ जाताहै इसके दो हिस्से हैं जिनमें पिछले चौडेको "बॉडी" अगले तंग हिस्सेको इसकी गरदन कहते हैं हमलके बिना जवान औरतका यूटरस अनुमान ३ इंच लंबा २ इंच चौडा और १ इंच मोटा होताहै यह एक झिल्लीसे बनाहै जिसमें फैलने और सुकडनेकी शक्ति है।

अस्थियोंकी संख्या ।

यद्यपि डाक्टरी मतसे मनुष्योंकी भिन्नभिन्न अवस्थाओंमे अस्थियोंकी संख्या भिन्नभिन्न होतीहै आरंभमें कई हड्डिया भिन्न २ होतीहै और पीछे जुडकर एक होजातीहै परतु मध्यम अवस्थामे हड्डियोंकी संख्या इस प्रकार है "इस्पाइनेलकालिम" (पृष्ठवंश) मे २४ हड्डियां मोहरेहै एक "सेक्रम" (वंशाग्र) और एक "काकसिक्स" (उससेभी नीचे) कुल २६ ये हुई और खोपरीमे ८ और चेहरेमें १४ हड्डियॉ है पँसलियां बारह जोडे अर्थात् २४ है और एक "सटरनम" (छातीकी हड्डी) एक "हाय आयडबोन" ये कुल २६ हुई और "सुपिरीयर एक्स ट्रीमिटीज" (दोनों हाथो) मे ६४ हड्डिया है और "इनफीरियर एक्सट्रीमिटीज" (नीचे दोनों पावों) मे ६२ हड्डियां है ये सब मिलकर २०० हड्डियां हुई इनके सिवाय ३२ दांत और तीन २ छोटी हड्डियां हरेक कानमेंसे ६ ये और ८ "सिस्माइड" (अगूठे आदिके मूल) में छोटी मटरसी हड्डियां है तो ४६ ये हुई इनको मिलानेसे मनुष्यके शरीरमे सब हड्डियां २४६ पाई जातीहै ॥

(वक्तव्य) इसमें यह है कि हड्डियोकी संख्या जो ऊपर लिखी है वह पूर्ण नहीं क्योंकि जैसे ऊपरकी संख्यामे "सेक्रम" और "काकसक्स" और "सटरनम" में एक एक हड्डी कही परतु सेक्रममे ५ काकसक्समे ४ और सटरनममें ६ हड्डियां जुडी है इससे शरीरमे हड्डियां अधिक मालूम देती है जैसे वद्यकमें हड्डियां लिखीहै वे अयोग्य नहीं सिद्ध होतीं ।

शरीरकी त्वचा ।

डाक्टरी मतसे त्वचा (चर्म) के मुख्य दो भाग है उनमे नीचेवाले भागको "डरमिस" कहतेहै और ऊपरवालेको 'एपीडरमिस' अथवा "क्यूटिकिल" कहतेहै फिर इनमें प्रत्येकके दो दो भाग है क्यूटीकिलमें नीचेके भागमें छोटे २ मृदुकोष्ठोंकी परत है जो रुधिरसे बनताहै और ऊपरके भागमें वेही पुराने होकर ऊपर आजातेहै और फडे होजातेहै और झडजातेहै और डरमिसके दो भागोमेंसे ऊपरके परतमें नसें फैली है तथा नीचेके परतमेभी नसोंका जाल है क्यूटीकिलकी मुटाई नरमस्थानमें एक इचका २४० वां भाग और दृढस्थानोंमें २४ वां तथा १२ वां भाग है पसीनेके निकलनेके छेद सब देहपर अनुमान तीस लाखके है ॥

"सेक्रम" पृष्ठवंशके नीचके भागको कहतेहैं वास्तवमें इसमें ५ हड्डियां (मोहरे) जुटे हुए होते हैं इन्हें डाक्टर एक मानते है । "काक्सिक्स" यह त्रिकके पास पृष्ठवंशका सबसे नीचेका भाग है इसमें वास्तवमें ४ हड्डियां परस्पर जुडी हैं "सटरनम" यह छातीके बीचकी हड्डी है वास्तवमें इसमें ६ जोड हैं जो प्रथम अवस्थामें जुदे २ होते हैं और अवस्था बढनेसे जुडकर एक प्रतीत होता है (देखो अनाटमी और फीजियोलोजी) "क्यूटीकिल" मुख्य बाह्य चर्म है यह इन्द्रियोंविषयके भागके कोशोंके कई एक परतोंके साहम मिलनेसे बनाहै (देखो अनाटमी) ॥

डाक्टरीमतसे संक्षिप्त रोग गणना।

इन्टरमेटिंट फीवर–वारीका शीतज्वर
कोटी डेइन–नित्य चढनेवाला
टरशन फीवर–तीसरे दिनका तप.
क्वरटन फीवर–{ चौथे दिनका तप (चातुर्थिक)
रीमीटेंट फीवर { सतत ज्वर जो बराबर चढाही रहे
कंटीन्यूड फीवर–गरमीका तप
डेंगोफीवर–एक भांतिका वातज्वर
यालोफीवर { यह योरपका तप है एक भांतिका सन्निपात
टाइफस फीवर–सविष
टाइफाइड फीवर–{ यह जानविष दुर्गंधसे होताहै
फीमन फीवर { यह बहुतमें खराब अन्न खाने आदिसे होताहै
हैक्टिक फीवर–जीर्णज्वर तपेदिक
इनफलमटाइल फीवर–आमज्वर
पाइएमिया–दुष्टरक्तज्वर
प्योरपेरल फीवर–प्रसूतज्वर
आस्मालपाक्स–शीतला–चेचक
चिकनपाक्स–खसरा
रोज्योला–महीन खसरा
स्कारलेटीना–मोतीज्वर
इरूसीपला { पदमाला, गर्मी, मसूड़ोंसे रक्त आना
इस्करवी–मुंहमें रक्तदोष
रोमाटेजम–गठिया, अस्थिवात
मास्कयोलर रोमाटेजम { एक भांतिका गठिया

सेफेलिलजिया–शिरका दर्द
कलडसहिस्ट्री–सूखा मस्तकशूल
हेमिक्रीमिया–आधाशीशी
वरटीगो–शिररोग
इनकफलाइटिस { दिमागके परदोंमें सूजन, गरमीसे शिर दर्द
न्यूरेलजिया–पट्ठोंका दर्द
साइटीका–रांगन वायु.
पेरालसिस–शून्य वायु
हेमेप्लेजिया–अर्द्धांगवायु
पेरा प्लेजिया–उरुस्तंभ
फेशियल पेरालिसेस–अर्दितवायु.
कोरिया–कंपवायु
टिटनिस–धनुर्वायु
इनसानिटी–उन्माद
एडयूसी–मंदबुद्धिता
डेमनशिया–कभी २ बेसुध होना
मेलन कोलिया–भ्रम
मेनिया–पूर्ण उन्माद
डिलीरियमट्रीमस–मिरु, प्रलाप
पलपेटीशन–धकधान
एपेलपसी–मृगी
केटेलपसी–मूर्छा
लेरंजा इटिस–[illegible]
कटार–[illegible]
इनफलूएंजा–[illegible], जुकाम.
आस्मा–दमा श्वास
एमफाइसीमा–श्वास
हूपिंगकाफ–कुकुर खांसी.

न्यूमोनिया-उरःक्षत
थाइसिसपिल-
मेरा नेलस- } क्षयी-राजयक्ष्मा
मापटेसिस-मुँहसे खून आना
प्लेराइटिस(प्लूरिसी)-पासूका दर्द
हाइड्रोथोरेक्स-छाती दुखे तप शोथ
न्यूमो थोरेक्स- } फेफड़ामे हवा भरनेसे श्वास हो और दर्द
स्टोमेटाइटिस-मुखपाक बालरोग
पेरोटाइटिस-कनफेड
टासीलाइटिस-जिह्वक
कैजगचन ऑफदी स्टमक-रक्तपित्त
मेलेना-अधोगत रक्तपित्त
हेमाटेमेसस-ऊर्ध्वगत रक्तपित्त
गेसट्राइटस-पेटका दर्द मेदेमे हो
इलसर ऑफदीस्टमक-परिणामशूल
वर्मस-कृमि पेटमे हो
कालरा-विसूची (हैजा)
डिसेंटरी-मोंडे निवाही
डायारया-अतिसार
कान्सटीपेशन-कब्जीयत
डिसपेपसिया-अजीर्ण
कालक-शूलजका दर्द
पेरेटोनाइटिस-पेय पड़जाना
टयोवर क्योलर-
परीटोनाइटिस- } उदररोग
आसाइटिस (ड्राप्सी) जलोदर
हेमेटाईटिस-यकृत् रोग
एकटेरेस-पांडु (पीलिया)
इनलार्जमेंट ऑफ
दी स्पिलीन } प्लीहवृद्धि(तिल्ली)

किडनी-वृक्क रोग (गुरदेकी) व्याधि
हेमाटोरिया-पित्तकृच्छ (सोजाक)
जायाबेटियर-बहुमूत्र
इस्परमीटोरिया-प्रमेह
डिसमेनोरिया-नष्टार्तव स्त्रीरोग
एपेथीलेडोमा-प्रदर
पेरोरिलजिया-रक्तप्रदर
ल्यूकेरिया-श्वेतप्रदर
इनपोटेस-नपुंसकता
हिमरोइड बवासीर
पेलेथोरा-रक्तवृद्धिविकार
एनेमिया-रक्तक्षयविकार
इनफलामेशन-शोथ (सूजन)
एरीसिफलिस-विसर्प
सिफलिस-उपदंश आतशक
प्रोराईगो-सूखी खाज
स्केबेज-गीली खुजली
वाइटीलेगो-श्वेतकुष्ठ
हरपीज-दाद (दद्रु)
लेपरा-कुष्ठ
एलोपीसिया-गंज
ओटोलजिया-कानका दर्द
व्यूबो-बद
कलवलशन-ऐंठन (तशन्नुज)

यहांपर संक्षेपमें रोगोंके कुछ नाम मात्र लिखे हैं विशेष वर्णन थोड़ा २ उन रोगोंके प्रकरणमें देखिये। अथवा इन रोगोंका निदान, लक्षण, उपाय आदि विशेष वर्णन हमारे डाक्टरी चिकित्सासार नामक पुस्तकमें देखिये जिसमें डाक्टरी और देशी दोनों भांतिमे रोगोंके नामादि है

॥ इति परिशिष्ट शारीरक भाग ॥ १ ॥

डाक्टरीमतसे संक्षिप्त रोग गणना।

इंटरमेटिंट फीवर–बारीका शीतज्वर
कोटी डिअन–नित्य चढनेवाला
टरशन फीवर–तीसरे दिनका तप
करटन फीवर–{ चोथे दिनका तप (चातुर्थिक)
रीमटेंट फीवर { सतत ज्वर जो बरा बर चढाही रहे
कटीन्यूड फीवर–गरमीका तप
डेंगोफीवर–एक भांतिका वातज्वर
यालोफीवर { यह योरपका तप है एक भांतिका सन्निपात
टाइफस फीवर–मन्थिर
टाइफाइड फीवर–{ यह जानविर दुर्गंधसे होताहै
फीमन फीवर { यह फसलमें सराब अन खाने आदिसे होताहै
हेकटिक फीवर–जीर्णज्वर तपेदिक
इनफलमेटाइल फीवर–आमज्वर
पाइमिया–दुष्टज्वर
प्योरपेरल फीवर–प्रसूतज्वर
आस्मालपाक्स–शीतला–चेचक
चिकनपाक्स–ममरा
रोभ्योला–मसा खसरा
स्कारलेटीना–मोतीज्वर
इरिसिपेलस { पद्ममाला, अर्धा, मधुरोगसे ध्वन आना
डिस्परसी–मुँहमें प्रसन्दोष
रोमाटिजम–गठिया, प्रतिवात
मास्क्युलर रोमाटिजम { एक भांतिकी गठिया

सेफेलिलजिया–शिरका दर्द.
कलडसहिस्ट्री–भरा मस्तकशूल.
हेमिक्रेनिया–आधाशीशी
वरटीगो–शिररोग
इनफ फलाटिस { दिमागके परदोंमें सूजन, गरमीसे शिर दर्द
न्यूरेलजिया–पठोंका दर्द
साईटीका–रांगन वायु
पेरालसिस–शून्य वायु
हेमेप्लेजिया–अर्द्धांगवायु
पेरा प्लेजिया–ऊरुस्तम्भ
फेशियल पेरालिसिस–अर्दितवायु
कोरिया–रथवायु
टिटनिस–धनुर्वायु.
इनसानिटी–उन्माद
एडगृसी–मदबुद्धिता
डेमनगिया–गर्मी २ बेसुध होना
मेलन कोलिया–वहम
मेनिया–पूर्ण उन्माद
डिलीरियमट्रेमेंस–मिद, प्रलाप
पलपेटेशन–धडकान
एपेलेपसी–मृगी
केटेलेपसी–मूर्च्छा
लेरंजा इटिस–स्वरभंगज्वर.
फेटार–घातपतन
इनफ्लोइंजा–स्वरज्वर, जुखाम
आस्मा–तमकश्वास
इस्कार्डमीया–श्वास
होपिंगकफ–कुकर खांसी.

न्यूमोनिया-उरःक्षत
थाइसिसपिल- मेरा नेलस- } क्षयी-राजयक्ष्मा
मापटेसिस-मुँहसे खून आना
प्लोराइटिस (प्लूरिसी)-पासूका दर्द
हाइड्रोथीरेक्स-छाती दूखे तप शोथ
न्यूमो थोरेक्स- { शेरामे हवा भरनेसे श्वास हो और दर्द
स्टोमेंटाइटिस-मुखपाक बालरोग
पेरोटाइटिस-कनफेड
टासीलाइटिस-जिह्वक
केंजशचन ऑफदी स्टमक-रक्तपित्त
मेलेना-अधोगत रक्तपित्त
हेमाटेमेसस-ऊर्ध्वगत रक्तपित्त
गेसट्राइटस-पेटका दर्द मेदेमें हो
इलसर ऑफदीस्टमक-परिणामशूल
वर्मस-कृमि पेटमे हो
कालरा-विसूची (हेजा)
डिसेंटरी-मोटे निवाही
डायारया-अतिसार
कान्सटीपेशन-क्वजीयत
डिसपेपसिया-अजीर्ण
कालक-शूलजका दर्द
पेरेटोनाइटिस-वध पडजाना
टवोवर क्योलर- परीटोनाइटिस- } उदररोग
आसाइटिस (ड्राप्सी) जलोदर
हेमेटाईटिस-यकृत् रोग
एक्टोरेस-पांडु (पीलिया)
इनलार्जमेंट ऑफ दीस्पिलीन } प्लीहवृद्धि (तिल्ली)

किडनी-वृक्क रोग (गुरदेकी) व्याधि
हेमाटोरिया-पित्तकृच्छ्र (सोजाक)
जायाबेटियर-बहुमूत्र
इस्परमीटोरिया-प्रमेह
डिसमेनोरिया-नष्टार्तव स्त्रीरोग
एपेथीलिडोमा-प्रदर
पेरोरिलजिया-रक्तप्रदर
ल्यूकोरिया-श्वेतप्रदर
इनपोटस-नपुंसकता
हिमरोइड बवासीर
पेलथोरा-रक्तवृद्धिविकार
एनेमिया-रक्तक्षयविकार
इनफलामेशन-शोथ (सूजन)
एरीसिफलिस-विसर्प
सिफलिस-उपदंश आतशक
प्रोराईगो-सुखी खाज
स्केबेज-गीली खुजली
वाइटीलेगो-श्वेतकुष्ठ
हरपीज-दाद (दद्रु)
लेपरा-कुष्ठ
एलोपीसिया-गंज
ऑटोलजिया-कानका दर्द
ब्यूबो-बद
कलनलशन-ऐंठन (तशन्नुज)

यहांपर संक्षेपमें रोगोंके कुछ नाम मात्र लिखे हैं विशेष वर्णन थोडा २ इन रोगोंके प्रकरणमें देखिये। अथवा इन रोगोंका निदान, लक्षण, उपाय आदि विशेष वर्णन हमारे डाक्टरी चिकित्सासार नामक पुस्तकमें देखिये जिसमें डाक्टरी और देशी दोनों भांतिसे रोगोंके नामादि हैं

॥ इति परिशिष्ट शारीरक भाग ॥ १ ॥

॥ श्री ॥

यूनानीमतसे संक्षिप्त शारीरक।

परिशिष्ट भाग २

सिर।

यह त्वचा, अस्थि, मांस और झिल्ली तथा मस्तिष्क मज्जा और उसके ऊपरका वेष्टन और शिराओं और पेशियों पट्ठोंसे बनाहुआ है इसमें सात हड्डियां हैं इसमें मुख्य मस्तिष्क मज्जा जो नरम सुपेद लजलजा है यह सब पट्ठों और रूहनफसानीका (इंद्रियज्ञानका) मूल है इससे रगें और पट्ठे निकलकर शाखाओंकी तरह फैले हैं इसके तीन भाग हैं उनमें नीचेका भाग चौड़ा और बीचका उससे कम और ऊपरका छोटा है इनमें नीचेका भाग नरम है इस हेतुसे कि यह ज्ञानेन्द्रियोंकी शक्तियोंका मूल है और ऊपरका भाग कठिन इस हेतुसे है कि यह आकुंचन, प्रसारण आदि क्रियाजनक पट्ठोंका मूल है ॥

इसके भाग इस भांति समझिये कि, खोपड़ी तालूके ऊपरका भाग प्रथम और शिखाके स्थानके नीचे तृतीयभाग और बीचमें मध्यभाग, मध्यभागके नीचे मस्तकोका है जिसे "मानरा" कहते हैं सूदाका मल यहांसे पतला होकर तालूमें आताहै ॥

'नुखा' अर्थात् मस्तिष्क मज्जाका मूल है जिसे मगजहराम कहते हैं इससे ईश्वरने दो मुहरे तो इस प्रकारके निकाले हैं कि उनमें दो पट्ठे निकले हैं जिनमें एक दाहिने मुहरेसे और एक बांयें मुहरेसे परन्तु "अस अस" नामी मुहरेसे जो नीचे है उससे १ अकेला पट्ठा निकला है और इन पट्ठोंमेंसे शाखायें होकर हरेक अंग, प्रत्यंगमें जा मिले हैं "असब" (पट्ठे) दो प्रकारके हैं प्रथम वे जो दिमाग (मस्तिष्क) से उगे हैं ये सात जोड़ हैं यह सब ऊपरकी ज्ञानेंद्रियोंकी शक्ति और धारणाशक्ति प्रतिभा आदिक इन्हींसे प्राप्त होती है। दूसरे प्रकारके पट्ठे वे जो "नुखा" से उगे हैं जो ३१ जोड़ हैं और १ अकेला है जिनसे नीचेके शरीरमें आकुंचन, प्रसारणादि और स्पर्शशक्ति इन्हींसे प्राप्त होती है ॥

'गशा' (झिल्ली) यह नरम पतला (त्वचा) भी होती है इसका प्रयोजन यह है कि उनमें अवयवोंकी रक्षा करे और जिन अवयवोंमें स्पर्शशक्ति नहीं है उनमें स्पर्शशक्ति पहुंचावे। सिरमें ५ गशा हैं जिनमें १ कहफ (दिमागकी छत) कहाता है और दूसरी उसके अन्दर है तीसरी जो झिल्लीदार मस्तिष्क मज्जाके गिर्द है यह सूराखदार है और ये गशा दिमागके अंदर पोलोंमें है ॥

यूनानी मतमें शिरसे पैदा होनेवाले रोग इस प्रकार हे-१ शिरका दर्द, २ सर-साम (जिसमें दिमागके परदोंमे शोथ होता है और प्रलाप, भ्रमादि अनेक उपद्रव होते हे), ३ माशरा (बाहर मस्तककी तरफ शोथ होना), ४ चक्कर और आखो अगाडी अँधेरी आना, ५ अतिनिद्रा, ६ निद्रानाश, ७ निद्रा उछट उछटकर आना, ८ जमूद (मूर्च्छाका भेद), ९ भूल, १० वहम, सिड, ११ अत्युन्माद, १२ प्रलाप, १३ मूर्खता, १४ धन (किसी बातकी धत लग जाना) या जिद, १५ सोतेमे चमकना दबजाना, १६ अपस्मार-मृगी, १७ मूर्च्छा, १८ फालज (स्पर्शशक्तिका नाश होना) सुन्न पडजाना अगका, १९ तशेनुज (पेठाव), २० तमद्दुद (हनुग्रह), २१ राशा (कप), २२ सुस्ती, २३ लक्वा (मुँहकाए या आधा शरीर सुन्न पड़जाना टेढा हो जाना), २४ स्फुरण, २५ आखे लाल रहना जादा अगडाइयां आना, २६ नजला (जुकाम), २७ भौंका दर्द, २८ सर खुजलाना ॥

(देखो तिब्ब अकबर)

नेत्र (चश्म)

यह आजाय शरीफामेंसे हे नेत्रोमे ७ परदे अर्थात् ७ पटल हे और तीन रतूबत हे आंखकी प्रकृति गरम तर हे इसमें पट्ठे और फरकनेवाली तथा स्थिर शिरायें है पहले तबकेका नाम "मुल्तहमा" हे यह सबसे बाहरकी तरफ हे । दूसरा "करनिया" हे इसमें वास्तविक कोई रग नहीं है वही रग नजर आता हे जो इसके नीचेके तबकोंमे हे । तीसरा तबका "अबिया" ह और यह किसीकी आंखमें स्याह रगका हे किसीकी आंखमे जरदी मायल हे और इसीके बाद रतूबत बेजिया है जो तीन रतूबतोंमेंसे १ हे और यह अंडेके तुल्य सुपेद है । चौथा तबका "अन्कबुतिया" हे यह मकडीके जालेसा हे और इसके पीछे दूसरी रतूबत जलीदया है जो साफ बरफ जैसी हे और इसके बाद रतूबत जजाजी हे जो आबगीनेसी है । पांचवां तबका "शबकिया" है इसमें जालसा पुरा है । छठा तबका "मशीमिया" हे यह बँच दानसा हे और सारी आंखपर छाया रहता हे । सातवां तबका "सल-बिया" है जो सख्त झिल्लीसा है ॥

नेत्ररोग ।

१ सातो तबकोंकी व्याधियां, २ आंखोंमे पानी टपकना (ढलका),३ कभी आंख बढना कभी मन्द होना, ४ धुँधलासा दीखना, ५ आंखोंमें तुनकासा गिरना, ६ आंखमें चोट लगना, ७ आंखमें कूरा पडना, ८ पयाज पाली पुनर्गवर (सुपेदी आजाना), ९ आंखोंमे दराड़मी हो जाना, १० दिवन्द (भँगापन), ११ रतोंधा, १२ दिनको न सूजना, १३ आंख छोटी पडजाना, १४ आंखोंमे पानी उतर आना

(नजरुल्मा), १५ भूरी आंखें होना, १६ जाफरमर (निगाहकी कमजोरी), १७ आंखें दुबली पड़जाना, १८ आंखें मोटी और निकलीसी होना, १९ रोशनी बुरी लगना ॥

पलकोंके रोग ।

१ पलक भारीसी होना, २ पलकोंमें गांठसी पड़जाना, ३ पड़वाल, ४ पलकोंके बाल गिरजाना, ५ पलकें सुपेद होजाना, ६ पलकें मोटी और गरगर होना, ७ पलकोंमें खाज आना ॥

कान (गोश)

यह एक अवयव मांस त्वचा और रगोंसे बना हुआ है इसमें एक छिद्र होता है उसके राहसे हवामें जो शब्द लहराता है वह उस, छेदकी राहसे भीतरकी रगोंमें टकराकर रगोंके जरियेसे मगजके शब्दावबोधक स्थानमें पहुंचता है जिससे जीवको शब्दोंका ज्ञान होता है ॥

कानके रोग ।

१ कानका दर्द २ कम सुनाई देना, ३ कानमें आवाजसी होना, ४ कानसे रुधिर निकलना, ५ कानकी जड़ उखड़ना, ६ कानकी जड़में वरम होना, ७ कानमें जखम होना, ८ कानमें खाज होना, ९ कानमें जखम होना ॥

नाक (बीनी)

यह दो छिद्रवाला अवयव मुंहके ऊपर है इसका मार्ग तालूके पास नीचेको खुला है जिसमेंसे श्वास आता जाता है और आमाशय मेदेकी रतूबत भी ऊपर चढ़कर इसीसे निकलती है और दिमागकी तरफ इसमें एक नाली है सुगंध दुर्गंध इसी राहसे दिमागमें पहुंचती है और दिमागका मल भी कुछ इसी राहसे टपकता है दो छिद्र जो अगाड़ी हैं पीछे वे मिलकर एक होजाते हैं ।

नाकके रोग ।

१ गंध नहीं आना, २ ठीक गंधका ज्ञान न होना, ३ नाकमें जखम होना, ४ नकसीर, ५ नाकमें दुर्गंध आना, ६ छींक बहुत आना, ७ नाकमें खाज आना, ८ नाकमें कृमि पड़जाना आदि कई व्याधियां होती हैं ॥

मुंह, जबान और दांत ।

कई भाग मिलनेसे इसका नाम मुंह होता है पर यहां विशेषकर दोनों होठोंसे मुंह समझना चाहिये ये होंठ केवल त्वचा, मांस, शिराओं और नसोंके बने हैं जबानभी मांस और शिराओंसे बनी हुई है। दांत हड्डीके छोटे २ टुकड़े हैं जो भोजनको चबाते हैं जबान इसका स्वाद लेकर भीतरको भेजती है इनके आकार और काम स्पष्टही दीखते हैं ॥

मुँह आदिके रोग।

१ जबानका वरम, २ स्वाद न आना (रसाज्ञान), ३ जबान भारी होना, ४ जबान बढजाना, ५ जबान सुस्त होना, ६ जबानके नीचे और जबान होना (अधिजिह्व), ७ जबान फट जाना, ८ जबान सूखना, ९ जबानमें जलन होना, १० जबानमें खारश होना, ११ जबानसे छिलके से उतरना, १२ मुँह आजाना, १३ मुँह और जबानमें कुरा पडना, १४ मुँहसे दुर्गंध आना, १५ मुँहम बहुत लुआब आना (लालास्राव), १६ तालूका वरम ॥

होठोंके रोग।

१ होठ सुपेद होना, २ होठ फटना, ३ होठ फरकना, ४ दोनों होट खिचना, ५ होठोंमे मस्सा होना, ६ होठ सूजना, ७ होठोंका जखम ॥

दंतरोग।

१ दांतोंका दर्द, २ दांत अँमलना, ३ दांतोंकी आब जाती रहना, ४ दांत भुरभुरे होना, ५ दांतोंका रंग बदलना, ६ दांत हिलना और गिरजाना, ७ अधिक दांत निकलना, ८ नींदमें दांत चबाना ॥

मसूढोंके रोग।

१ मसूढोंका वरम, २ इनमें खून आना, ३ मसूढोंमें कुरा पड़ना, ४ मसूढे फटने लगजाना, ५ मसूढोंमें मांस बढजाना, ६ मसूढे पकना ॥

हलकका बयान।

मुँहके भीतर कव्वेके पाससे हलक शुरू होता है इसमें दो रास्ते हैं पहला रास्ता वह है जिस राहसे भोजन मेदेमें पहुँचता है इसको "मरी" कहते हैं और दूसरा रास्ता वह है जिस राहसे श्वासका वायु भीतर फेफडोंमें पहुँचता है और मनुष्य बोलता है इसे "हँजरा" कहते हैं यह हँजरेकी नली अगाडीको है और मरी इसके पिछाडीको। मरी तालूके पाससे शुरू होकर मेदेके मुँहतक है जिसे "फम मेदा" कहते हैं और जो फोडोंके मुकाबिल है वहांतक गई है और मेदेमें जाकर मिली है इसी तरह हँजरेकी नली "कसबे रीया" तक जो फेफड़ोंका शिरा है वहांतक जाकर फेफडोंमें जा मिली है ॥

हँजरेकी नली बहुत कोमल है इसमें शुद्ध हवाके सिवाय यदि जरासा गर्द गुबारभी चला जावे तो उसी समय खांसी आकर उसे बाहर निकाल देगी इसी भांति जरासा तुनका, जरासा भोजन या पानीका भाग चला जाय तो उसे कभी कबूल न करे किन्तु धोसमें बाहर निकाल दे परन्तु मरीकी नाली मस्त पडी है, पडेमें पड़ी कस इसमें होकर मेदमें जाती है ॥

हलकके रोग ।

१ पत्तेका वरम, २ कव्वा ढीला पड़जाना (काग छिड़कना), ३ हलकमें खर-खराहट होना, कोई चीज निगलनेमें दिक्कत होना, ४ हलकमें गरम फुन्सियां होना, ५ मसीका वरम, ६ हजरेमें सुस्ती आना, ७ आवाजमें फरक आना ॥

सीना और फेफड़े ।

फेफड़ोंको अरबीमें "रीया" या "शुश" कहते हैं यह नरम पोपला अवयव है और मांस शिराओंसे तथा झिल्लीसे बनाहुआ है गशा (झिल्ली) तमामपर है इस फेफड़ेमें स्पर्शज्ञान नहीं है पर उसपर जो गशा है उसमें कुछ स्पर्शज्ञान है फेफड़ा ऊपर हलकके पाससे शुरू होकर नीचेको लटकता हुवा है और इसके दो भाग हैं एक दाहिना दूसरा बायाँ। दाहिनेमें तीन शाख (लोथड़े) हैं और बांयेंमें २ और ऊपर-से ये दोनों भाग जुड़े हुए हैं और यह दिलके गिर्द आरहा है और इसमें ये शिरायें हैं जो दिलमें लगी हैं यह बाहरकी हवाको दिलके लायक बनाकर दिलमें पहुँचाती है इसका जिस्म मसकीके छत्ते जैसा पोला है रंग हलका सुरख है यह सीनेके अंदर बीचमें कुछ ऊँचा और दोनों तरफ नीचा लटका हुआसा है ऊपरसे हलकी नलीसे मिला हुआ है मरीकी नाली इसके पीछे होकर मेदेमें गई है । सीनामें सात हड्डियां हैं और २४ पँसलियां हैं १२ बांई तरफ और १२ दाहिनी तरफको इनके बीचमें ढकन हैं और यह गशा है जो पँसलियोंको ढके हुए है । ७, ७, पँसलियों गोडीसे नीचे और ५, ५, ऊपर सीनेमें दोनों तरफ हैं ॥

सीना फेफड़े और पँसलियोंके रोग ।

१ सांसका ठीक न चलना, २ दमा, ३ खाँसी, ४ मुँहसे खून आना (यह मेदेसे भी आ सकता है और फेफड़ेमेंसेभी), ५ मुँहसे पीप आना, ६ फेफड़ोंका जख्म गिरना (जातुर्रियो), ७ सिल फेफड़ोंमें जखम पड़जाना, ८ सीनेमें पीप पड़कर घाव हो जाना, ९ पँसलियोंमें वरम व दर्द, १० जातुल्जय (पँसलियोंमें वरम होकर दर्द होना), ११ जातुल जब गीर खालिस पँसलियोंके पीछे जो उसके और झिल्ली है उसमें वरम और दर्द होना १२ जातुल सदर और जातुल अर्ज (सीनेके अगले हिस्सेमें वरम दर्द होनेको जातुल सदर है, पिछलेमें जातुल अर्ज), १३ पँसलियोंके हिस्सेमें वरम हो, १४ सीनेमें वरम और दर्द (वरसाम) १५ वजउलमुत्तसदर (*सीनेमें हवाओंसे दर्द होना*) ॥

गलफ-दिल ।

यह मांस और अस्तर (पर्दे) और शिराओंसे बना हुआ सीनेके बांयें तरफ बांई तरफ झुका हुवा रहता है और बहुतसी शिरायें इसमेंसे निकली हैं इसके

मांस कडा हे ओर जा झिल्ली इसपर हे वहभी कडी है और इसकी गशा (गिलाफ) इससे चिपकी हुई नहीं हे यह गाजरकी सूरतका वना हे इसका मोटा रुख ऊपर-को तिरछा हे शिरायें यहांहीसे पेदा हुई है और गजरूफ (नरम हड्डियां)भी इसी तरफ हे दिलके दो घतन (हिस्से) है एक दाहिनी तरफ ओर दूसरा उसका वायां रुख जिसमें दाहिना रुख वहुतसे खून ओर थोडीसी रुहसे भरा है यह बायें रुखसे चौडा है और वायें रुखमें रुह वहुत हे और खून कम हे इस रुखका खून वहुत पतला हे इस लिये कि रुहमें मिला हुआ हे दोनों रुखोके बीचमे तजवीफ (हद) हे दिलमे रास्तेभी है जिनमेसे खून फेफड़ेकी तरफ पहुँचे ओर फेफड़ेसे हवा दिलमें पहुँचे और ये मोटे शिरेकी तरफ है और इधरही मासके दो टुकड़ेसे जमकर खिड़-कीकी सूरत हो गये है इन्हे " अजनी उलकलब " कहते है जिस समय दिल सुकड़ता हे तो ये इकट्ठेसे हो जाते है ओर जब फेलता हे तब ये खुल जाते है और दमवदम मिंचते खुलते रहते हे जोकि दिल " अजु रईस " (उत्तमाग) है और हरारत गरीजी (मुख्य शारीरक अग्नि) का स्थान है और रूह हैवानी (जीव-नीय शक्ति) का उत्पत्तिस्थान है इस लिये इसको छातीमें ईश्वरने स्थित किया है इसका रग सुरख है जिन जीवोका दिल बडा ओर मजबूत जादा होताहै वे दिलर और बहादुर होते है ॥

दिलके रोग ।

१ सूयमिजा (दिलपर गरमी खुशकी तथा सरदी या तरी हिमानसे जादा हो), २ दिल धड़कना (खफगान) एक प्रकारका उन्माद, ३ दिलमें धुवांसा उठना, ४ दिलकी किवाड़ियोंका वरम (दिलभारीसा हो), ५ दिलमिचासा रहे कभी बे-होशीभी हो जावे, ६ जेसे कोई दिलको ठेलता हो और गश आजावे (तकरुगुल कलब), ७ जसे दिल सीनेसे बाहरसा निकलता हो,८ दिलपर रतूबत छाजावे ९ जेसे दिल नीचेको खिंचतासा हो ॥

जिगर-यकृत ।

जिगर " अजूरईस " (उत्तमाग) है इसमे रुतूबतवई पेदा होतीहै ओर जो फूदनेवाली रगे है जिन्हे "आउरदा "कहतेहैं वे इसमेंसे निकलतीहै ओर "फेनूस" (जो मेदेमे द्रवरूप परिपाक बनाहै उस) का खून जिगरमें बनताहै परतु फेनूसमे पतला रगें मासारीकामेंभी जाती है (रगें मासारीका जिगरके पास हैं) फेनूसका खून बनकर तो जिगरकी रगोंसे सारे शरीरमे पहुँचताहै और उसका द्रवरूप मल अर्थात् पेशाब यहांसे गुरदोंकी तरफ चलाजाताहै जिगरका रग सुरख है जैसे जमाहुआ खून, और यह खून मांस और रगोंमे बना है इसमें रसशान (हम)

हलकके रोग।

१ कव्वेका वरम, २ कव्वा ढीला पडजाना (काग छिटकना), ३ हलकमें खरखराहट होना, कोई चीज निगलनेमें दिक्कत होना, ४ हलकमें गरम फुन्सिया होना, ५ मरीका वरम, ६ हंजरेमें सुस्ती आना, ७ आवाजमें फरक आना ॥

सीना और फेफडे।

फेफड़ेको अरबीमें " रीया " या "शुश" कहते है यह नरम पोपला अवयव है और मांस शिराओंसे तथा झिल्लीसे बनाहुआ है गशा (झिल्ली) तमामपर है इस फेफडेमे स्पर्शज्ञान नहीं है पर उसपर जो गशा है उसमें कुछ स्पर्शज्ञान है फेफड़ा ऊपर हसलीके पाससे शुरू होकर नीचेको लटकता हुआ है और इसके दो भाग है एक दाहिना दूसरा बायाँ। दाहिनेम तीन शाव (लोथडे) है और बायेंमे २ आर ऊपरसे ये दोनों भाग जुडे हुए हैं और यह दिल्के गिरद आरहा है और इसमे वे शिरायें है जो दिल्से उगी है यह बाहरकी हवाको दिलके लायक बनाकर दिलमें पहुँचाती है इसका जिसम मक्खीके छत्ते जैसा पोला है रग हलका सुरख है यह सीनेके अदर बीचमे कुछ ऊँचा और दोनो तरफ नीचा लटका हुआसा है ऊपरको हजरेकी नलीसे मिला हुआ है मरीकी नाली इसके पीछे होकर मेदेमे गई है। सीनामें सात हड्डियां है और २४ पॅसलियां है १२ बाई तरफ और १२ दाहिनी तरफ ओर इनके बीचमें उजले है और वह गशा है जो पॅसलियोंको ढके हुए है। छ छ पँसाल्यां कौड़ीसे नीचे और छ छ ऊपर सीनेमे दोनों तरफ है ॥

सीना फेफडे और पॅसलियोंके रोग।

१ सांसका ठीक न चलना, २ दमा, ३ खाँसी, ४ मुँहसे खून आना (यह मेदेसे भी आ सक्ता है और फेफडेसेभी), ५ मुँहसे पीब आना, ६ फेफडोपर नजूल गिरना (जातुलरिया), ७ सिल फेफडोमें जखम पडजाना, ८ सीनेमे पीब पड़कर घब होजाना, ९ पॅसलियोंमे वरम व दर्द, १० जातुलजब (पॅसलियोंमें वरम होकर दर्द होना), ११ जातुल जब गैर खालिस पॅसलियोंके बीच जो उजले और झिल्ली है उनमें वरम और दर्द होना, १२ जातुल सदर और जातुल अर्ज (सीनेके अगले हिजावमें वरम दर्द हो तो जातुल सदर है, पिछलेमें जातुल अर्ज), १३ पँसलियोंके हिजावमें वरम हो, १४ सीनेमे वरम और दर्द (वरसाम), १५ जहमूदउलसदर (सीनेमें शर्दीसे दर्द होना) ॥

कल्ब-दिल।

यह मांस और असब (पट्ठों) और झिल्लीसे बना हुआ सीनेके बीचमे जरा बाई तरफ झुका हुआ रहता है और बहुतसी शिरायें इसमेंसे निकली है इसके

मांस कडा हे ओर जो झिल्ली इसपर है वहभी कडी है और इसकी गशा (गिलाफ) इससे चिपकी हुई नहीं हे यह गाजरकी सूरतका वना है इसका मोटा रुख ऊपरको तिरछा है शिरायें यहांहीसे पेदा हुई है और गजरूफ (नरम हड्डियां)भी इसी तरफ है दिल्के दो वतन (हिस्से) है एक दाहिनी तरफ और दूसरा उसका बाया रुख जिसमें दाहिना रुख बहुतसे खून और थोडीसी रुहसे भरा है यह बायें रुखसे चौडा है और बाये रुखमें रुह बहुत हे और खून कम है इस रुखका खून बहुत पतला है इस लिये कि रुहमें मिला हुआ हे दोनों रुखोंके बीचमे तजवीफ (हद) है दिलमे रास्तेभी है जिनमेसे खून फेफड़ेकी तरफ पहुँचे और फेफड़ेसे हवा दिल्में पहुँचे और ये मोटे शिरेकी तरफ है ओर इधरही मांसके दो टुकडेसे जमकर खिड़कीकी सूरत हो गये है इन्हें " अजनी उल्कल्ब " कहते है जिस समय दिल सुकड़ता हे तो ये इकट्ठेसे हो जाते है और जब फेलता है तब ये खुल जाते है और दमबदम खिंचते खुलते रहते है जोकि दिल " अजु रईस " (उत्तमांग) है और हरारत गरीजी (मुख्य शारीरक अग्नि) का स्थान है और रुह हेवानी (जीवनीय शक्ति) का उत्पत्तिस्थान ह इस लिये इसको छातीमें ईश्वरने स्थित किया ए इसका रग सुरख है जिन जीवोंका दिल बडा ओर मजबूत जादा होताह वे दिलेर ओर बहादुर होत है ॥

दिलके रोग ।

१ सुयमिजा (दिलपर गरमी खुशकी तथा सरदी या तरी हिमायसे जादा हो), २ दिल धड़कना खफकान) एक प्रकारका उन्माद, ३ दिलमें धुवांसा उठना, ४ दिलकी खिवाड़ियोंका वरम (दिलभारीसा हो), ५ दिलमिचासा रहे कभी बेहोशीभी हो जावे, ६ जेसे कोई दिल्को ठेलता हो ओर गश आजावे (तकशुर टलकल्ब), ७ जैसे दिल सीनेसे बाहरका निकलता हो, ८ दिल्पर रतूबत छाजावे ९ जेसे दिल नीचेको खिंचतासा हो ॥

जिगर-यकृत ।

जिगर " अजूरईस " (उत्तमाग) है इसमें रतूबतें पेदा होतीहें और जो कूदनेवाली रगें हे जिन्हे "आउरदा "कहतेहे व इसमेंसे निकलतीहे और "केलूस" (जो मेदेमे द्रवरूप परिपाक बनाहे उस) का खून जिगरमें बनताहे परतु केलूसमें पल्या रग मासारीकामेंभी आती है (रगें मासारीका जिगरके पास है) केलूसका खून बनकर तो जिगरकी रगोमे सारे शरीरमे पहुँचताहे और उसका द्रवरूप मल अर्थात् पेशाब यहांसे गुरदोंकी तरफ चलाजाताहै जिगरका रग सुरख है जेसे जमाहुआ खून, और यह खून मांस और रगोंमे बना है इसमें रसौनात (हम)

नहीं है पर जो गशा (झिल्ली) इसपर छाई हुई है उसमें हस जादा है जिगरमे अंगुलियोंकी तरहके अंकुरसे है कईयोंमे ये अंकुर ५ होतहे कइयोंमें ४ कइयोंमें ३ ही इन्हीसे मेंदेके गिरद लगा हुआहे जैसे कोई अंगुलियोंसे किसी चीजको पकड़े हुए रहताहै ऐसे यह मेदेसे लगाहै। जिगर सीनेके हिजाबके मुकाबिल दाहिनी तरफ रहताहै और पिछली तरफ पँसलियोंसे बँधाहै ओर नीचेका शिरा मेदेके फेरके पास है। जिगरकी तलीसे १ रग निकली है उसे " बाब " कहतेहैं उसमेंसे कई रगें निकली है जिनमेंसे कुछ तो जिगरमे फैलगई है और कुछ बाहर आकर मेद और अंतड़ियोंमे मिलगई है और इन्हीको " मासारीका " कहते है जिगर कैलूसको इसतरह खींचताहै जैसे स्पंज पानीको खींचताहै जिगरके मोहद्दबसे १ और रग निकलतीहै जिसे " अजूफ " कहतेहै उसकी बाजी शाखें तो जिगरहीमे फैलगई है और बाकी बाहर निकलकर दो शाखा होकर उनमेंसे १ ऊपरको जाकर फैलगई है ओर दूसरी नीचे उतरकर नीचेके बदनमें फैलगई है। खून इन्हीसे तमाम बदनमे पहुँचताहै और ये " अजूफ " ही " आउरदे " बदनमें रगोंकी असल जड़ है और इन्हींसे दो और शाखें गरदनकी तरफ पानीके निकलनको निकली है इन्हें " तालईन " कहतेहै ओर केर (तली) की तरफ बाबके ऊपर एक रास्ता है जो पित्तेकी तरफ आताहै जिससे सफरा अर्थात् खूनका झाग पित्तेमे आवे " मराग " (पित्ते) की थेली १ बड़े अंकुरके ऊपर है और तलीकी तरफ जिगरमे १ और भी रास्ता है जो तिल्लीकी तरफ जाताहे इस राहसे "सौदा" अर्थात् खूनका तलछट तिल्लीकी तरफ चलाजावे इसीभांति जिगरसे एक रग दिलमे आतीहै जिससे जिगर और दिलमे परस्पर संबंध हो ओर एक दूसरेका उपकार करे ॥

जिगरमे होनेवाले रोग।

१ सूयमिजाज जिगर (जिगरमें गरमी सरदी खुश्की तरी अंदाजसे जादा हो, २ जोफ जिगर (इसमे दस्त मांसधोवनसा थोड़ा २ हो भूख कम लगे जिगरमें धीमा दरद हो), ३ सुद्देकबद (जिगरमें सुद्दा पड़जावे जिससे जिगर भारीसा हो दस्त और उबकाई हो कभी तपभी आवे), ४ सुद्दे मासारीका (मासारीकामे सुद्दे पड़जावें और भारीपन हो हाजमा बिगड़े दुबलापन हो), ५ नफ़ख़ तुलक्बद (जिगरमें अफरा हो दाहिनी पहलूमे दरदभी हो), ६ वजेउलक्बद (जिगरका दर्द या यकृत् शूल), ७ निहार या श्रमके बाद जादे ठंढे पानीसे जिगरमे दर्द हो, ८ वरम कबद (वरम जिगर जिगरपर वरम होना), इसमें तप प्यास और दद और जलन हो थूक बंद होवे खुश्क खांसी और बड़ तब हिचकी भी, ९ वरम उजलात शिकम (पेटके उजलोंमें वरम होना) यह जिगरके वरमके मानिन्दही होता है इससे यहा लिखा है, १० दमीले कबद (जिगरमें फुंसी पकजावे और पीब

पड़ जावे) इसमे तप हो दर्द हो प्यास हो सीधा न लेटसके, ११ जिगरमें छोटी२ अलाइयांसी होजावे (इसमे जलन और कभी कंपभी होवे), १२ हिसातुल कबद (जिगरमे रेता छोटी २ पथरीसी पेदा हो) इसके खूनमे रेता जम जाता है, १३ इसहाल जिगरी (खूनके या पीबके दस्त आवे), १४ फिसादमिजाज व जोफ-जिगर इसमे पेटमे कुरकुराहट रहे कभी अफरा हो कभी मसूढो और होठोंमें सुरखी और फुन्सियां हों, १५ इसतिसका (जलोदर)।

तिहाल (तिल्ली)

यह अवयव मांस और शिराओंसे बना है यह पोपला है इसका रंग कुछ स्याही लिये है यह मेदेके बाई तरफको रहता है इसमे स्वय हस नहीं हे इसपर जो गशा है उसमें हस जादा है इसके शिरेसे १ रास्ता निकलकर जिगरकी तलीमें खुलरहा है इसे तिहालकी गरदन कहतेहे इसी राहसे जिगरसे सोदा खिचकर तिल्लीमे आताहे तिल्ली कच्चे सोदाके रहनेकी जगह हे तिल्लीमेसे १ राह मेदेमेंभी खुला हे इस लिये कि थोड़ा सौदा मेदेमे आवे और मेदेके मुँहपर खुजलावे और तुरशी पदा करे जिससे भूख लगे।

तिल्लीके रोग।

१ यरकान (पांडु पीला भाय जिगर और मरोरसे होता हे और स्याह तिल्लीस जिसे हलीमक कहते हैं), २ सूय मिजाज तिहाल (तिल्लीम गरमी सरदी वगैरह जादा पहुँचना), ३ वरमतिहाल तिल्लीका वरम, ४ जोफतिहाल (तिल्लीका जोफ), ५ तिल्लीका अफरा, ६ तिल्ली बढजाना, ७ तिल्लीमें सुद्दा पडजाने ॥

मेदा (आमाशय)

यह एक गोल अवयव थैलेकी सूरतका मांस और पट्ठों और शिराओं और झिल्लीसे बनाहे इसके तीन भाग हे १ "मरी" (आहार नलका), २ "फम मेदा" (मेदेका मुँह), ३ "कैरमेदा" (मेदेकी तली) "मरी" जो मुँहके भीतरसे शुरू होकर छातीकी कोड़ीतक है इसका वर्णन पहले होचुका हे "फम मेदा" यह मरीके नीचे है और "कैरमेदा" यह भाग नाभिसे ऊपर है "मेदे" में हस (स्पर्शज्ञान) बहुत है इससे जो इसे बुरी लगे उसे झट वमनके राह निकाल देता है मेदेमें दो तबके हैं भीतरका तबका असबानी है जिससे स्पर्शशक्ति उत्पन्न हो और बाहरका परत लहमानी (मांसल) है ताकि हाजमेमें सहायता करे और आंदपे आगि यथोचित पैदा हो भीतरी परतमे रेशे बाजे तो तिरछी हैं और बाजे लम्बी इस वास्ते कि आहारको रोकसके और बाहरके परतमें रेशे चौड़े हैं ताकि फक आहारको मदेसे निकालदे और मरीमे कोई रेशा तिरछा नहीं है क्योंकि यहां पर आहारके ठहरनेका कामही नहीं है और "कैरम" भोजनका उतार (आम)

यहांही बनता है फिर यहांहीसे उसका सार भाग द्रव बारीक रगोंके वसीलेसे जो मेदेसे जिगरकी तलीमे मिलरही है जिगरकी तरफ खिंच जाता है और फोकस "असना अशरी" आतकी तरफ जो मेदकी तलीमे है चलाजाता है भोजनकी इच्छा और प्रथम परिपाक मेदेहीसे पूर्ण सबंध रखता है और सब अवयवोंको इसकी तरफही वाछा रहती है और मेदेमे विकार होनेसे सब अवयवोंमे विकार हो जाता-है इस वास्ते हरेक व्याधिके इलाजमें मेदेकी रियायत जरूर रखनी चाहिये ॥

मेदेके रोग ।

१ सूयामिजाज मेदा (मेदेमे गरमी खुश्की सरदी तरी अदाजेसे जादा हो), २ वजे उल्मेदा (मेदेका दर्द), ३ जोफे हज्म (जोफेमेदा) (क) मेदेकी कुव्वत जाजिबामे जोफ, (ख) मेदेके कुव्वत मासकेमे जोफ, (ग) मेदेकी कुव्वत हाजमेमें जोफ, (घ) मेदेकी कुव्वत दाफेमें जोफ, ४ हैजा (विसूची), ५ नुकसान शहवततुआम (क्षुधानाश होना), ६ बहुत ज्यादे भूख लगना, ७ जूडल-वकर भूँख तो हो पर मेदा न चाहे (अरुचि), ८ जुउलगसी (भूखकी बरदाश्त न होना), ९ प्यास जियादा लगना (तृषा), १० वरममेदा (मेदेमें वरम और दर्द व जलन व हरवक्त तप रहना), ११ मेदेमे किसी जगे पीब पड़जाना और जखम होना इसमे तप जोरका दर्द, १२ मेदेमे फुन्सिया ओर जखम हो, १३ नफ्ख (अफरा), १४ डकारे जादा आवे (अत्युद्गार), १५ जमाही जादा आना (अतिजृंभा), १६ के (उलटी करना वमन), १७ जी मिचलाना (उत्क्लेद), १८ तहूअ (उबकाई हृल्लास), १९ तकल्लुब (जी मिचलाया रहना), २० के उलदम (खूनका वमन होना), २१ मेदेमे खून या दूध जमजाना, २२ हिचकी जादा आना २३ इन फलाव मेदा (कुछ ही जमा होतेही के होजाना), २४ कलक (बेचैनी), २५ इम्तिलात मेदा बेचैनी ओर जी मिचलानेके साथ कफगानसा हो, २६ वजे उल्फवाद (मेदेके मुहपर जोरका दर्द हो), दिलके नजदीक होनेसे इसे दर्द दिल कहते है, २७ मेदेमे सोजिश ओर जलन हो, २८ मेदमे खारिश होना और भीतर छोटी फुन्सियां होना तेज चीज खानेसे या नजुल मेदेमें गिरनेसे होती है, २९ इस्तर खाप मेदा (मेदा ढीला पडजाना), ३० तशन्नुज मेदा (मेदेमें किसी जगह ऐंठ-नसी होना और अकड़ावासा होना जिससे बिना हजम हुई चीज दस्तमें आवे),

---

(क) कुव्वत जाजिबा यह है जिससे भोजनको अपनी तरफ जजब करे (दीप्ति) (ख) कुव्वत मासका यह है जिससे भोजन ठहरा रहे (ग) कुव्वत हाजमा यह है जिससे हजम हो (घ) कुव्वत दाफे यह है जिससे पचा हुआ देरसे हो निकल आवे ।

३१ हिसारत मेदा (मेदा कडा पडजाना), ३२ इस हालमेदा (मेदकी गिजा कभी पची कभी बिना पची दस्तके राहें निकला करे या खातेही गिजा अतडियोंमें उतर आवे और दस्त होवे) ॥

अमआ (अनडियॉं)

यह अवयव मुलायम थोथा दो तहका झिल्ली और चरबी और शिराओंसे बना हुआ होता है । आंतोमें हस (स्पर्शशक्ति) होती हे ये आतें पेटमें छ' हैं अर्थात आंत तो वास्तवमे एकही हे उसीके ७' भाग हैं प्रथमका नाम "असना अशरी' है दूसरी " सायम " तीसरी " दकीक " ये तीन आंते ऊपरको रहती हे और बारीक है चोथी " अझूर " पांचवीं " कोलून " छठी " मुस्तकीम " ये पिछली तीनों नीचेको रहती हैं और गलीज रहती है पहली आंत " असना अशरी " मेदेकी तलीसे शुरू होती है यह १२ अगुल लम्बी है इसका मुह तब खुल्ता हे कि जब मेदासे निकली गिजा तगाजा करे । इसके पीछे दूसरी आत " सायम " हे यह प्राय॰ खाली रहती हे क्योंकि यह जिगरके पास हे और पित्तका रास्ता इसमें खुला है जो पित्ता (सफरा) मरेह आतोके नीनेको आता है वह पहले सायमपरही आता हे ओर जल्द इसे साफ करदेता हे इसके पीछे तीसरी आंत "दकीक" है यह सबसे बारीक आर लम्बी और पेचदार है जिसमे गिजा इसमे देरतक ठहरे और उसमें जो कुल सत्त्व हो उसे "मासारीका" खींचले । इसके पीछे चौथी आंत " अझूर " हे इसमे एकही रास्ता है यह थेलीसी हे इसमे गिजा पकी हुई भरी रहे और हरघडी दस्तकी हाजत न हो आर जोकुछ मेदेमे हाजमा न हुआ हो वह इसमे हाजमा होजाय इसमें एक हरारत इसी लिये रहती है और " फिनक ' (अडवृद्धि) मे इसीका भाग फोतोमे उतर आता हे इसमें एक और छोटीसी आंत लगी है यही फोतोंमे उतरती हे । इसके पीछे पांचवीं "कौलून" है यह अझूरमे पीछे ह यह दाहिनी तरफसे ऊपरको होकर बाई तरफ आई है यह हलकेकी तरहपर है इसमे मल रहता है और दर्द कुलज इसीमें होता है । इसके पीछे छठी आंत " मुस्तकीम है " यह कुलजके हलकेके बाद सीधी चलीगई हे और गुदाकी मियरीतक पहुंची है यह लगभग मेदेके बराबर चौडी है और " फुतनतगागवा ' इसमे ९ इस लिये कि मलको और आंतोंमे अपनी तरफ खींचले और नीचाई इस लिये है कि, यह मलका खजाना है जब यह मलसे प्राय' भरजाती है तब दस्तकी हाजत होती है और जब गिजा अझूर और मुस्तकीममे पहुचता है तब विप्राकी सूरत बनजाती है ॥

अतडियोंके रोग।

१ जलकुल अमआ (गिजा आँतोंमे न ठहरे कच्चे पके दस्त लगना), २ इस हाल खून (खूनके दस्त आना), ३ पीव और पीला पानीसा दस्त लगना, ४ जहीर राथ लहूका थोडा थोडा दस्त लगना, ५ मरोड़ आँतोका दर्द, ६ नफख व कराकुर (आँतोमे अफारा और कुरकुरी होना), ७ कुलज ऐठनका दर्द रहना, ८ हमर कबजीयत होना, ९ किरम आतोमें कृमि पडजानीं ॥

मिकअद (गुदा)

यह फुजला (मल) निकलनेका रास्ता है इसमे कुव्वत इनकबाज सकोचन शक्ति है जिससे हर समय मल नहीं टपकता बल्कि जब मुस्तकीम अतडी मलको बाहर निकालना चाहती है तब इसका मुह खुलता है ।

गुदाके रोग।

१ बवासीर (अर्श) मस्से, २ नासूरे मिकअद (भगदर), ३ आरामामिकअद (गुदाका वरम), ४ शकाक मिकअद (गुदा तडक जाना दराड होजाना), ५ इस तरखाय मिकअद (गुदा सुस्त होजाना), ६ खरूजमिकअद (कांच निकलना या गुदभ्रंश), ७ कुरुहामिकअद (गुदामे जखम होजाना), ८ खारिशमिकअद (गुदामे खाज होना) ॥

वृक्क (गुरदे)

गुरदे दो है एक दाहिना दूसरा बांयां और ये दोनो अपनी जगह पुश्तके नीच पहलुओंके पास जमे हुए है ये मांस, चरबी और रगोंसे बने है स्वय इनमें हस (स्पर्शशक्ति) नहीं है पर जो गशा इनपर है उसमें हस जादा है और हरेक गुरदा जिगरसे उन रगोंके वसीलेसे सबध रखता है जो जिगरसे गुरदोंमे आई है । उन दोनो रगोंको कई " तालईन " कहते है और जो गिजाके द्रवभागमें खून और पानी मिला हुआ जिगरमे रहता है उसमेंसे पानी (मूत्र) का भाग इन रगोंहीके जरियेंस गुरदोमे आता है और खून और पानीको येही रगें जुदा करती है अर्थात् पानीको खींच लेती है और खूनको जिगरसे नही खींचतीं और गुरदोंसे दो रगें नीचेको और निकली है जो मसानेमे गई हैं इस लिये कि गुरदोंमें ज्योंही मूत्रका भाग आवे त्योंही उसे मसानेमें पहुँचा दें गुरदोंका आकार ऐसा है जैसे आधा खोपरा औंधा रक्खा हो रग हल्का सुरख है इनको अरबीमे कुल्या कहते हैं ॥

गुरदोंके रोग ।

१ सूयामिजाज कुल्या (गुरदोंमे सरदी गरमी तरी खुशकी जादा हो) २ गुरदेमे "दबीला (फोडा होना), ३ जोफ गुरदा (दोनों गुरदोंमें जोफ हो पेशाबमें

तलछट हो कभी दरदभी हो), ४ रीहुलकुल्या (गुरदोंमे रीह अर्थात् गलीज हवा हो जिससे गुरदों और कमरमें दर्द हो), ५ वजउल्कुल्या (दर्द गुरदा), ६ वरम गुरदा (गुरदोंमे वरम होना जिससे तप, प्यास, दर्द सर, निद्रानाश और गुरदोंमे दर्द और जलन, केमें सफरा आवे, दस्त पेशाब कम हो), ७ गुरदोंमे वरम हो फुन्सियां होजाय, कुरा पडजाय इसमे पेशाबमें खून और कुरडसे आवे, ८ गुरदोंमे अलाइयांसी हो जावे, ९ जयावेतश पेशाब वारवार या जादा आवे प्राय पानी पीतेही पेशाब आवे, १० गुरदोंमे रेत शरकरा पडजावे या छोटी पथरीसी पडजावे ॥

मसाना (वस्ति)

मसाना एक थैली हे जिसके दो तवके हे तवका भीतरी तो असवी हे ताकि मूत्रकी तेजी मालूम हो और वाहरी तवका (परत) कडी झिल्लीका हे कि भीतरलेकी रक्षा करे मूत्रसे भरनेपर फट न जाय और मसानेमें एक नाली हे अगली तरफ यही मूत्र वाहर निकलनेका मार्ग हे जो मसानसे लिंगेंद्रियमें होकर गुजरी हे यह मूत्रनाली पुरुषोके तीन खम रखती हे और स्त्रियोंके एक खम । मसानेमें दोनों गुरदोंसे दो रंग आई हे जिनसे गुरदोंमेसे मूत्र मसानेमें आवे और मूत्र मसानेमें गुरदोंसे कतरे २ टपक कर आता हे और मसानेमें जमा होता है ॥

मसानेके रोग ।

१ औराममसाना (मसानेका वरम जिसमे मूत्र रुक २ आवे तप हो), २ कुरूह मसाना (मसानेमें कुरा पडजावे दर्द हो पीव आवे), ३ ममानेसे पेशाबमे खून मिला आवे और खुरडसे आवे, ४ मसानमें खून जमना यह खूनी पेशाबके वाद प्राय. होताहे इसमे शरीर कापे ठंडा पसीना होवे, ५ दर्दमसाना (यह कई सबबसे होताहै वरमसे कुरसे पथरीसे), ६ मसानेका अकरा, ७ हिस्सात मसान, मसानेकी पथरी या रेत या शर्करा), ८ पेशाबमें जलन होना, ९ एहतवासुलबोल (पेशाब बंद होना) (चाहे वरमसे चाहे गुरदोंके वरमसे चाहे पथरीसे), १० तकतीरुलबोल (पेशाब करते २ टपकके आना), ११ करागुलबोल (नींदमे पेशाब निकल जाना और मालूम न होना, १२ वोलुद्दम (खूनका पेशाब आना) ॥

कुजेया (लिंग)

यह अवयव थोडेसे मांस और बहुतसी शिराओं आर पट्ठो और नसोंम बनाहै जब मैथुनादि करनेकी वांछा चित्तमें होतीहै तव मनीके प्रवृत्त होनेके साथ रीहगलीज नसोंमें भरजातीहै और लिंगको एस्तार और मुटाईमें फुला देतीहै और जब मनी निकलजातीहै तब वह रीह गलीजभी खारिज होजातीह हस(स्पर्शशक्ति) इसमें बहुतहै ।

लिंगके रोग।

१ आतशक, २ सूजाक, ३ नुकसानवाह (क्लैब्य), ४ जिरयान (प्रमेह), ५ कसरत एहतलाम (स्वप्नमें वीर्य गिरना या शीघ्र वीर्य गिरना) ॥

खुसिये (वृषण)

दोनों खुसियोमसे हरेक मांस और मेदा तथा शिराओंसे बनाहै और जब मनी शरीरसे टपककर इनमें आती है तो यहांकी हरारतसे गाढी और सुपेद हो जाती है॥

खुसियोंके रोग ।

१ खुसियोंका वरम, २ खुसिये बढजाना (अंडवृद्धि), ३ खुसियोंका दरद, ४ खुसियाम खाज होना ॥

रहम (स्त्रियोंका गर्भाशय)

यह एक असवानी (झिल्लीका) अवयव है इसका स्थान मसाने और अमआय मुस्तकीम और नाभिके दरम्यान है और इसकी गरदन भगतक गई है और इसकी जडमें भीतरको दोनों खुसियेभी होते है " रहम " के दो तबके होते हैं अंदरके तबकेमें रगे और नशेब बहुत है। गोया यह चुनवटदार थैली है और बाहरका तबका अंदरके तबकेका गिलाफमा है रहमकी लम्बाई नाभिसे योनिके भीतरी द्वार तक है (यह रहमकी गरदन है) यह योनि अनुमान छ' अंगुल होती है जादासे जादा ११ अंगुल होती है। रहमका मुँह अंदरूनी हरवखत खुला नहीं रहता है सिरफ हैजके कुछ दिन बादतक खुला रहता है फिर " नुतफा " कबूल करनेपर या हैजसे ज्यादा दिन होनेपर बंद हो जाता है ॥

रहमके रोग।

१ बच्चा न होना (वन्ध्यापन),२ कसरतसे हैज आना, ३ रहमसे रतूबत बहना (प्रदर), ४ एहतबासतमम (हैज बंद होजाना), ५ रहम निकल आना, ६ ओराम रहम (रहममें वरम होना जिसमें नाभिमें दरद, तप, जबान स्याह होना और पुस्तमें दर्द होना), ७ सरतान रहम (रहममें खोल्री पड़ना),८ इखतनाकरहम (रहममें खुशकी होना जिससे गशी बेहोशी होना और तशन्नुज होना) ॥

यहां स्थानसंबंधसे कुछ रोग दिखाये हैं बहुतसे रोगोंकी संख्या और भेद और जगह उत्तरतंत्रमें या चिकित्सितस्थानमें उन उन रोगोंकी चिकित्साके मौकेपर यथासंभव यूनानी तथा डाक्टरी मतसेभी कहेंगे वहां देखना ॥

यूनानी प्रकीर्ण रोगोंका संक्षेप (पृष्ठ और शाखाओंके रोग)

१ वजे उल जुहर (पीठका दर्द), २ वजे मुफासिल (जोड़ोंका दर्द गठिया), ३ पिंडलियोंमें मोटी नसें होना और गाँठें पड़ना, ४ पीलपाव (श्लीपद), ५ वजे उल अकब (एडीका दर्द), ६ नुकरस (टाकनेसे अँगूठेतक पीड़ा), ७ वजे उलवरक (चूतड़का दर्द), ८ अरकुन्निसा पांवमें झनझनाहटका दर्द अर्थात् गृंगन शाय ॥

रक्तसबधी रोग ।

१ गलीज खूनसे सुर्ख वर्म, २ सुर्खवादा (विसर्प), ३ आतशक, ४ दबीला (एक भांतिका फोड़ा), ५ सलआ (रसोली), ६ उक्द (गोठन ग्रंथी), ७ सरतान (कछवे जेसा शोथ और पाक), ८ रिश्ता नारू (स्नायुक), ९ गज, १० अलाइयाँ, ११ खुश्क खारश (सूखी खाज), १२ गीली खारश (तर खुजली, पामा), १३ कौवा (दाद), १४ मुहासे (मुखपिडिका), १५ तोतह झांई, १६ निसकटा, १७ आवले फिरंग (फिरंग रोग एक भांतिका आतशक), १८ चेचक व खसरा, १९ वरस (श्वेतकुष्ठ), २० वरस असवद (स्याह दाग), २१ खाल (तिल), २२सालील (मसा), २३ फसाद लौन (रंग बिगड़ जाना), २४ हाथ पॉव फटना, २५ तकशीर जिल्द (त्वचापरसे छिलकेस उतरना), २६ जुजाम (कुष्ठ अगुलियें गलना), २७ नाखून फटना ॥

बालोके रोग ।

१ तसाकुत शेर (बाल उड़ना बालोकी जड गलना),२तशकीक शेर (बालोंकी नोक फटना), ३ शेब (बे समय बाल सुपेद होना (पलित)

अन्यरोग ।

१ अरकुदम (पसीनेमे सुरखी, खून आना), २ बदनसे दुर्गंध आना, ३फरवही (बहुत मोटा होजाना-स्थौल्य), ४ लागरी (बहुत दुबला होना कार्श्य), ५ जू तथा लीखें जादा पडना ॥

तपके भेद ।

१ तप हमीयूम (एक दिनमे एकबार उतरनेवाला ओर जरा फुरफुरी देकर चढे, २ तप खिलतिया बल्गमी फिसाद जादा हो तो रोज तप रहे जो सफराके फिसादसे हो तो एकदिन छोडकर हो ओर जो सौदाके फिसादसे हो तो दो रोज बीचमे छोडकर चौथे दिन होवे और तप खूनी फिसादसे हो तो रोज जोरसे चढे पर बना हरसमय रहे ॥

ओर ये खिलती तप यदि उस खिलतका मादा कम हो तो ऊपर लिखे मूजिब दौरेक तरीकपर आते है और यदि मादा अधिक हो तो जल्दी२ दौरा करे या स्थिर होजावे॥

(क) बलगमी तपमे शरीर भारी हो आलस्य हो अर्थात् कफज्वरके लक्षण हों (ख) सफरावी तपमें बेचनी, गरमी, प्यास, उबकाई (पित्तज्वरके लक्षण हों), (ग) सोदावी तपमे शरीरमे दर्द,हडफूटन,जमाही जादा हों,चढनेपर कप और ऐठन हो तथा उठउठकर भगना, वाय भडकना (वातज्वरके लक्षण हो), (घ) तप, चेहरा लाल, सिरमें दर्द, हलकमें फुन्सी वगैरह इसमें बढनेसे सरसाम हो प्रलाप तथा बचैनी विशेष हो (रक्तज्वरके लक्षण हों), ३ हमीयात मुरक्कब दो या जादा

खिलत जिसमे बिगडे और उन्हीं खिलतोंकी अलामत (लक्षण) मिले (द्वन्द्वज तथा त्रिदोषज या सन्निपातज), ४ वे तप जो आमासमे होवे ॥

५ हमीगशिया (वे तप जो बेहोशी और जौफ पैदा करें ये कच्चे बलगमसे प्राय होतेहै),६ हमीदिक तपेदिक(बारीक तप जिसमे मीठी जुरी सदा बनी रहे अर्थात् जीर्णज्वर ठहर जाना) ॥

यूनानीकी प्रकीर्ण बाते ।

शारीरकका साराश सक्षेप लिखनेसे पीछे कुछ २ प्रकीर्ण बातें जो बहुत आवश्यक है और जिनका जानना वैद्योको बहुत जरूरी है वे लिखते है १ "खिलत" खिल्त उस द्रवपदार्थको कहते है जो बहुत शीघ्र शरीरमे फैलकर सब अगोमे पहुँच सके या यूँ कहो कि जो गिजा हम खाते हैं उससे पहले जो वस्तुद्रव हमारे शरीरके पोषणके लिये बनता है उसे खिलत कहते है । ये खिलत चार है १ खून यह गरम तर है, २ सफरा (पित्त) गरम खुश्क, ३ बलगम (कफ) सरद तर है, ४ सौदा सरद खुश्क । फिर इन हरेकके दो २ भेद होते है १ तबई स्वच्छ, २ गैरतबई विकारयुक्त ॥

(आजाय रईसा) आजाय रईसा तीन है (प्रथम दिल, दूसरे दिमाग, तीसरे जिगर) दिल कूवत हयातका मबदा है अर्थात् जीवनी शक्तिका मूल है दिमाग हस (स्पर्शज्ञान और ज्ञानेंद्रियो) तथा हरकत-चलनशक्ति कर्मेंद्रियोंका मूल है जिगर गिजादही तमाम बदन (पोषणशक्ति) का मूल है जिगरमें कुव्वत तबई रहती है और दिल्मे कुव्वत हवानी रहती है तथा दिमागमें कुव्वत नफसानी रहती है ॥

जैसे चार खिल्त है वैसेही मनुष्योंकी प्रकृति) खासियत भी चारही है १ खूनी, २ सफरावी, ३ बलगमी, ४ सौदावी ॥

(बदनका रग) बलगमकी प्रधानतासे शरीरका रग सुपेद होता है और रक्त (खून)की प्रधानतासे रगमें सुरखी विशेष होती है तथा सफराकी प्रधानतासे पीला रग होता है और सोदाकी प्रधानतासे स्याह ॥

खून रुधिरको कहते है यह जिगरमें बनता है सफरा खूनके पकावके ऊपरके फेनसे बनता है और यह बनता तो जिगरहीमें है पर रहता है मुख्यतासे मरारे अर्थात् पित्तकी थैलीमें सौदा यह खूनके पकावका तलछट है इसका नियत स्थान तिल्ली है । बल्गम यह वह कच्चा मादा (रस) है जिससे खून बनता है यह मेदेम रहता है ॥

यूनानी हिसाबसे कुल शरीरमें २४२ हड्डियॉ होती है इन बातोंका विशेष वर्णन देखना हो तो देखो कानूनचा बुकराती या तिब्य अकबर या अकसीर आजम वगैरह ॥

॥ इति परिशिष्ट शारीरक भाग ॥ २ ॥

॥ श्रीः ॥

सबका सारांश और ऐक्य।

परिशिष्ट भाग ३

शरीरके मुख्य २ अवयवोके नामोका भाषांतर।

संस्कृतनाम-	अंग्रेजी (डाक्टरी) नाम-	यूनानी या फारसी अरबी नाम-	देशभाषा
मूर्द्धा	ब्रेन	दिमाग	दिमाग
बृहत्‌मस्तिष्क	सेरेबरम		दिमागका अगला बड़ा हिस्सा-
क्षुद्रमस्तिष्क	सेरेबलम		दिमागका पिछला छोटा हिस्सा
नेत्र	आई	ऐन (चश्म)	आँख
कर्ण	ईर	अजन (गोश)	कान
नासिका	नोज	अनफ (बीनी)	नाक
मुख	मोथ	दहन	मुह
दंत	टूथ	ददान	दांत
आहारनलकाका ऊपरिभाग	ईसा फेगस	मरी	नाली
श्वासनलका	लेरिंक्स	हजरा	
श्वासनलीका अधो-भाग	ट्राकिया	,,	
फुप्फुस	लंग्स	शुश्र्(रिया)	फेफड़े
आमाशय	स्टमक	मेदा	
तन्त्र	स्मालइंटस्टाइस	अमआये दकीक	बारीक अंतडियाँ

डिओडिमन (१) असना अशरी
जिज्यूनम (२) साइम
इलीअम (३) दकीक

स्थूलांत्र	लार्जइटस्टाइस	अमआये गलीज ३	मोटीअंतडियां
	(१) सीकम	अज़ूर[1]	
	(२) कोलन	कोलन	
	(क) एसिडिंग कोलन	"	
	(ख) ट्रांसवर्सकोलन	"	
	(ग) डिसडिंग कोलन	"	
मलाशय	रेकटम	मुस्तकीम	
यकृत्	लिवर	कबद जिगर	लेयार
पित्ताशय	गालब्लाडर	मरारा	पित्ता
हत्कमल	हार्ट	कल्ब दिल	दिल
प्लीहा	स्पिलीन	तिहाल	तिल्ली
वृक्क	किडनी	कुलया गुर्दे	गुरदे
मूत्राशय	ब्लाडर	मसाना	पेड़
अंडकोश	टेस्टीकिल्स	खुसिये	फोते
लिंग	पैनिस	कज़ब	मरदी
गर्भाशय	यूटरस	रहम	बच्चेदानी
नाभि	नेविल	नाफ	सूंडी
पृष्ठवंश	स्पाइन	जुहर	पीठ
हस्तद्वय	सुपीरियरएक्सटमीटीज		
पादद्वय	इनफीरियर एक्सटमीटीज		
यकृत्नाडी		मागारीका	
रुधिर	ब्लड	दम खून	खून
पित्त	बाइल	सफरा	पित्त
कफ	म्यूकस	बल्गम	कफ
कापालिक शिरामूल	स्पाइनलकार्ड	नुखा	

1 सीकम अर्थात् अज़ूरके मूलमेंसे एक छोटी अंतड़ी निकली है उसे अंग्रेजीमें एपिंडिक्स कहते हैं और यह अंडकोशमें उतर आया करती है।

सबके मतका साराश और ऐक्य।

यदि वैद्यक यूनानी और डाक्टरी मतके शारीरकको विचारकर देखें तो ऐसा मालूम होता है कि, यूनानी और डाक्टरीका शारीरक तो मिलताही है परंतु वैद्यकके शारीरकमे कुछ न्यूनाधिक पाया जाता है इसका कारण यह जान पडता है कि, वैद्योंने गर्भके समय जैसे शरीर बनता है उसके ही अनुसार उत्पत्ति लिखी है और बीजमात्र वर्णन कियाहै फिर यूनानीवालोंने उसका अधिक विवेचन किया जैसे बीजसे वृक्ष बनता है उसके पीछे डाक्टरोंने और भी खोजकरके उसमे बढाया है॥

देखो वैद्योने ३०० हड्डिया लिखीं वह कुछ अयोग्य नही क्योंकि बहुतसी हड्डियां छोटी अवस्थामे जुदी होती है पर अवस्था बढनेपर मिलकर एक होजाती है (जैसे सेक्रम पृष्ठवंशके नीचेकी हड्डी जिसमे आद्य अवस्थामें पाच जोड होते है पर जवानीमे एकही प्रतीत होती है) इत्यादिको वैद्योंने भिन्न लिखा और डाक्टरों आदिने एक लिखा बल्कि खुद डाक्टर लोगही लिखते है कि, पहले ये५ भिन्न भिन्न होते है बस डाक्टर २४६ हड्डियां मानते है और यूनानी २४२ तो हड्डियोंमें इसी प्रकार कुछ अतर है सो हो पर वास्तवमे अतर नहीं ॥

आमाशय (मेदे) में प्रथम आहार जाना सब मानते है सो प्रत्यक्षही है तथा यकृत् (जिगर) रसको लेकर रुधिर बनानेमे प्रवृत्त होता है इसे भी सब एकस्वर होकर मानतेही है प्लीहाको वैद्य और डाक्टर रक्तशोधन करनेवाला कहते है यूनानी इसे सोदा (रुधिरकी तलछट जल्न) का स्थान बताते है सो भी कुछ अतर नहीं क्योंकि जब यह रक्तकी तलछटको छांटता है तो रक्तशोधनेवाला हुआही ॥

हृत्कमल (दिल) सबके मतमे जीवका आधार और सर्वत्र जीवनी शक्ति पहुचानेवाला रक्तकोश है सो ठीकही है ॥

अतडियां किसीके मतमे ६ है, किसीके मतमे २, किसीके मतमे ७, किसीके मतमे कितनी पर बात यह है कि, वास्तवमें परिपाककी अतडी मेदेसे गुदातक एकही कई पेच खाये हुए है कहींसे मोटी कहीं पतली कहीं लबी कहीं गुच्छेदार इसे किसीने (यूनानीवालोंने) ६ भाग मान लिये, वैद्योंने दोही भाग माने (तन्त्रंत्र और स्थूलांत्र) इसीप्रकार डाक्टरोंने भी पहले दो भाग (पतली अतडियां और मोटी अतडियां) माने है फिर इन्हींके कई भेद यू माने है कि, पतलीके तीन भाग जुदे और मोटी (कोलन) के भाग जुदे ॥

फुफ्फुस (फेफडा) वैद्योंने उत्पत्तिके समय हृदयमे बाई तरफ उत्पन्न होता है ऐसा माना है फिर हृत्कमलके दाहिनी और बाई तरफ फैल जाता है) और प्राणवायु श्वासका मुख्यस्थान हृदय अर्थात छातीही माना है सो यह भी विशेष विरुद्ध

नहीं है यूनानीवाले और डाक्टर श्वासका स्थान मुख्य फेफडा कहते है सो उर अर्थात् छातीका भीतरी भागही तो फेफडोंका स्थान है ॥

पित्ता जिसे यूनानीवाले मरारा और डाक्टर गाल ब्लाडर कहते है यह जिगरसे लगा हुआ ऊपरको है सो वैद्योंके मतसे भी पित्ताशय दाहिनी तरफ यकृत्के समीपही माना है कई कौम इसेही मानते है ॥

वृक्क (गुरदे) डाक्टर इसे मूत्रका बनानेवाला मानते है और यूनानी कहते है कि, ये गुरदे जिगरसे मूत्रका भाग लेते है अर्थात् जिगर जब रसका रुधिर बनाता है तो सारभाग रुधिरको तो शिराओं द्वारा शरीरमें पहुँचाता है और उसका जलरूप मल अर्थात् मूत्र गुरदोंकी तरफ दाखिल करता है वहांसे मसानेमें जाता है पर वैद्यकमें कहीं ऐसा नहीं पायागया वैद्यकमें ऐसाही लिखा है कि, वस्ति अर्थात् मसाना कोरे कलशके समान उदरके अधोभागमें है जब यकृत् रसका रुधिर बनाता है तथा आमाशयके मलका भाग आंतोंमें आता है तब उक्त स्थानोंमेंसे सहस्रों सूक्ष्म नालियोंद्वारा झिर झिरकर मूत्र स्वयं मसानेमें इकट्ठा होजाता है देखो निदानस्थानका तृतीय अध्याय जहाँ वस्तिका विवेचन है ॥

वस्ति (मसाना) मूत्रका स्थान है इसे सब मानतेही है परन्तु यूनानीवाले और डाक्टर ऐसा मानते है कि, इसमें दोनों गुरदोंसे दो नालियोंद्वारा मूत्र आता है और वैद्योंके मतसे अनेक नालियोंद्वारा आमाशय यकृत् वृक्क और अन्त्रादिसे इसमें मूत्र झिर झिरकर आता है अस्तु यह भी कुछ विरुद्ध नहीं क्योंकि और अन्य सूक्ष्म नालियां ठीक २ दिखाई नही देतीं और उन्हींमेंसे ये दो नाली स्थूल होंगी जो दिखाई देतीं है ॥

मूर्द्धा (दिमाग) वैज्ञानिक शक्ति और शिराओं तथा पट्ठोंका मूल है इसे सब मानतेही है परन्तु वैद्य हृत्कमलको बुद्धिका स्थान सर्वोत्कृष्ट मानते है और यूनानीवाले और डाक्टर दिमागको सर्वोत्कृष्ट बुद्धिका स्थान मानते है यह भी कुछ विशेष विरुद्धता नहीं क्योंकि सबके मतमें दोनोंही बुद्धि और विज्ञानके मुख्य स्थान है कि बहुना विज्ञेषु इति ॥ इति परिशिष्ट शारीरक भाग ॥ ६ ॥

॥ इति शारीरस्थान परिशिष्ट समाप्त ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बम्बई